प्रकर

भारतीय साहित्य : २५ वर्ष

मई-जून १९७३ संयुक्तांक

दिल्ली को बेहतर और सुन्दर बनाने के लिए

आइए

संकल्प

लें

** बिजली की वर्तमान कमी को देखते हुए मैं व्यक्तिगत रूप से बिजली के मामले में अधिकतम किफायत करूँगा और इस बात की कारगर कोशिश करूँगा कि जिन संस्थानों से मैं सम्बन्धित हूँ वे बिजली के इस्तेमाल में कमखर्ची करेंगे।

** मैं व्यक्तिगत रूप से और जिन संस्थाओं से मैं सम्बन्धित हूँ, उनके द्वारा अन्न की बर्बादी और पार्टियों तथा सामाजिक समारोहों में फिजूलखर्ची रोकने का प्रयास करूँगा।

** मैं स्वयं और अपने से सम्बन्धित संस्थाओं के जरिये अकारण कीमतों को बढ़ाने और महँगाई, जमाखोरी तथा व्यापारिक अनियमितताओंके खिलाफ कारगर कदम उठाऊँगा।

** मैं हिंसा, साम्प्रदायिकता तथा असामाजिक तत्वों द्वारा सार्वजनिक सम्पत्ति के विनाश के खिलाफ संघर्ष करने की पूरी कोशिश करूँगा।

** अपने से सम्बन्धित संस्थाओं के जरिए मैं गरीबी हटाने, जात-पांत का भेद-भाव दूर करने तथा सामाजिक तथा आर्थिक अन्याय दूर करने की योजनाओं के प्रति वैचारिक चेतना पैदा करने तथा इन्हें अमली जामा पहनानेके लिए पूरा प्रयत्न करूँगा।

** मैं दिल्ली नगर को सामाजिक, आर्थिक तथा भौतिक वातावरण की दृष्टि से बेहतर बनाने के प्रयासों में भरपूर सहयोग दूँगा।

उद्योग, व्यापार, समाज-सेवा, शिक्षा, श्रम और अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों तथा संस्थाओं से अनुरोध है कि वे अपनी प्यारी मातृ-भूमि की राजधानी की प्रतिष्ठा के अनुरूप स्वस्थ सामाजिक और भौतिक वातावरण तैयार करने के लिए उपर्युक्त संकल्प लें।

हमें आदर्श राजधानी के निर्माण में सहायता दें

दिल्ली प्रशासन, दिल्ली

हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी के प्रकाशन

	पुस्तक का नाम :	लेखक :	एकमात्र वितरक :	मूल्य :
१.	लोक सम्पर्क	राजेन्द्र	राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६	१५.००
२.	सामाजिक तथा राजनैतिक शास्त्र के सिद्धान्त	अर्नेस्ट बार्कर	,,	१५.००
३.	मनोविकार विज्ञान और धर्म में व्याप्त संकट	ओ० ओबर्ट मौरर	,,	१५.००
४.	समाज मनोविज्ञान— एक परिचय	डा० बी कुप्पुस्वामी	आर्य बुक डिपो, ३०, नाई वाला, करोल बाग, नयी दिल्ली-५	२५.००
५.	शिक्षा मनोविज्ञान	जे० एम स्टीफन्स,	,,	३०.००
६.	इतिहास शिक्षण	वी० डी० घाटे	,,	५.००
७.	फलनों का सिद्धान्त	ई० सी० टिचमार्श	मैसर्ज इण्डियन पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, दिल्ली-६	३५.००
८.	बीजगणित	डा० निरंजनसिंह	,,	१६.००
९.	समाकल समीकरण	आई० जी० पैट्रावस्की	,,	१०.००
१०.	समस्या बालक	डा० एन० एल० दोसाझ		५.००
११.	संस्कृत-शिक्षण	डा० प्रभाशंकर मिश्र		७.५०
१२.	प्रायोगिक कार्बनिक रसायन	डा० शांतिनाथ साहनी डा० रामप्रकाश कपूर		५.००
१३.	दर्शनशास्त्र का परिचय	जार्ज टामस व्हाइट पैट्रिक		२०.००
१४.	अध्यापन-विधि के सिद्धान्त	ए० पिन्सेण्ट		१८.००

निदेशक :

हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

३०३६, सेक्टर १९-डी, चण्डीगढ़

नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले उपन्यासकार

अलेक्जैण्डर सोलनित्सीन

का

बहुचर्चित उपन्यास

कैन्सर वार्ड

दो भागों में

मूल्य { लाइब्रेरी संस्करण प्रत्येक भाग : आठ रु०
पेपरबैक संस्करण प्रत्येक भाग : पाँच रु०

इसी लेखक का एक अन्य लघु उपन्यास

उद्देश्य की दृष्टि से

मूल्य { लाइब्रेरी संस्करण : पांच रु०
पेपरबैक संस्करण : तीन रु०

नेशनल एकाडमी

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

६, अंसारी मार्केट, दरियागंज,

दिल्ली—११०००६ फोन० २७१६४६

अमृतलाल नागर की श्रेष्ठ रचनाएँ

अमृतलाल नागर

हिन्दीके आधुनिक उपन्यासकारोंमें अमृतलाल नागरका स्थान शीर्षस्थ है। उनकी रचनाएँ सामान्य पाठकका भरपूर मनोरंजन करनेके साथही साहित्यके नये कीर्तिमान स्थापित करनेकी क्षमता रखती हैं। गंभीर लेखनके साथ नागरजीने समय-समयपर रहस्य और व्यंग्यकी उत्कृष्ट रचनाएँ भी दी हैं। साहित्य-कारके रूपमें उनकी ख्यातिके लिए दोनों प्रकारकी रचनाएँ परस्पर पूरक हैं।

मानस का हंस (उपन्यास) : यह बृहत् उपन्यास सिद्ध कृतिकार अमृतलाल नागरके अनेक वर्षोंके मंथनका परिणाम है जिसे उन्होंने अपने विशिष्ट लखनवी रंगमें डूबकर लिखा है। इसमें भारतके प्रिय कवि तुलसीदासकी असामान्य मार्मिक कथा है जिसकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। दर-दर ठोकरें खानेवाला बालक रामबोला किस तरह महान् विद्वान्, ज्योतिषी, कवि तथा संत बन गया, यह सब रोमांचक गाथा पहली बार इतनी गहराई और विस्तारसे प्रस्तुत की गई है। फिरभी यह सामान्य उपन्यासोंसे अधिक मनोरंजक है। यह नागरजी की प्रौढ़तम कृति सिद्ध हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

आकार डिमाई, पृ० सं० ४४१ मूल्य : २५.००

सात घूँघट वाला मुखड़ा (उपन्यास) : स्वयं लेखकके शब्दों में "यह इतिहास नहीं, ऐतिहासिक चरित्रप्रधान उपन्यास है।" इसमें भारतीय इतिहासके एक अति रहस्यमय चरित्र बेगम समरूके रोमांचक और घटनापूर्ण जीवन को आधार बनाया गया है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रथम पृष्ठसे ही यह अपनी सशक्त कथावस्तु और शैलीके कारण पाठकको अंततक पूरी तरह बाँधे रहता है।

मूल्य : ५.००

भारतपुत्र नौरंगीलाल (कहानी-संग्रह) : प्रस्तुत कहानी-संकलनमें नागरजीकी १६ हास्य-व्यंग्यकी रचनाएँ सम्मिलित हैं। इसमें लेखककी नयी कहानियोंके अतिरिक्त वे पुरानी कहानियाँ भी ली गयी हैं जो अपने समयमें चर्चाका विषय रही थीं।

मूल्य : ६.००

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

1. **भाषा शिक्षण तथा भाषा विज्ञान** : भाषा शिक्षण और भाषा विज्ञान 29 विद्वानों के भाषणों का संकलन है। इसकी उपयोगिता इसी से सिद्ध है कि इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो चुका है तथा दूसरा संस्करण प्रेस में है। जिल्द व आकर्षक कवर के साथ इसका मूल्य रु० 10/- है।

2. **गवेषणा** : संस्थान की अर्द्ध वार्षिक शोध पत्रिका है जिसमें समय समय पर विद्वानों के शोधात्मक लेख प्रकाशित होते हैं। अब तक इसके 20 अंक प्रकाशित हो चुके हैं और 21 वाँ अंक शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है। इसका वार्षिक चन्दा रु० 8/- है।

3. **शैली विज्ञान और आलोचना की नई भूमिका** : डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव द्वारा लिखित इस विषय पर पहली पुस्तक है जो शैली विज्ञान पर समीक्षात्मक प्रकाश डालती है। सुन्दर साज-सज्जा के साथ इसका मूल्य रु० 6/- है।

4. **समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता** : (स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद) डा० रघुवंश ने इस पुस्तक में समसामयिकता को परिभाषित कर आधुनिक हिन्दी कविता के समसामयिक सन्दर्भ को स्पष्ट किया है। सुन्दर साज-सज्जा के साथ इसका मूल्य रु० 6/- है।

इसके अतिरिक्त संस्थान के निम्न प्रकाशन भी अपने विषय में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं :—

×	1. हिन्दी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियाँ	रु० 2.00
×	2. हिन्दी और तमिल की समानस्रोतीय भिन्नार्थी शब्दावली	रु० 2.90
×	3. हिन्दी के अव्यय वाक्यांश	रु० 2.70
	4. तेलुगु और हिन्दी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन	रु० 4.00
×	5 हिन्दी की आधारभूत शब्दावली	रु० [illegible].00
	6. हिन्दी क्रियाएँ	रु० 1.50
	7. हिन्दी परसर्ग	रु० 1.00
×	8. भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन	रु० 8.00
×	9. भारतीय साहित्य—तुलनात्मक अध्ययन	रु० 8.00
	10. मणिपुरी और हिन्दी परसर्गों का तुलनात्मक अध्ययन	रु० 6.00

(×) चिह्नित पुस्तकों के प्रथम संस्करण समाप्त हो चुके हैं। द्वितीय संस्करण प्रेस में हैं जो शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहे हैं।

वर्ष ५
अंक ५-६
मई-जून '७३
[संयुक्तांक]

प्रकर

['भारतीय साहित्य : २५ वर्ष'
विशेषांक]

वार्षिक मूल्य	६.०० रु
विदेशों में	१५.०० रु.
सामान्य अंक	०.७५ रु.
प्रस्तुत विशेषांक	६.०० रु.

विषय-सूची

भारतीय साहित्य : २५ वर्ष

'भारतीय साहित्य : २५ वर्ष' के रूपमें 'प्रकर' का यह विशेषांक प्रस्तुत करनेका उद्देश्य यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादसे देशकी साहित्यिक गतिविधिका एक लेखा-जोखा उपलब्ध हो जाये। स्वातन्त्र्योत्तर कालमें देशकी सभी भाषाओंके साहित्योंमें अनेक मोड़ आये हैं, अनेक प्रकारके साहित्यिक आन्दोलन हुए हैं, नयी प्रवृत्तियोंके दर्शन हुए हैं। देशकी राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियोंने भी सभी क्षेत्रोंमें साहित्यको प्रभावित किया है। इन प्रभावोंके कारण बुद्धिजीवियों, विशेषतः सर्जनशील साहित्यिकों में आक्रोश और क्षोभ बढ़ा है। ये लोग न केवल स्वयं परिस्थिति-जन्य बिभीषिकाओं, यातनाओं और कुण्ठाओंकी नियतिमें से गुज़रे, बल्कि उनके चारों ओरका परिवेश इससे भी अधिक यन्त्रणाप्रद था जिसे वे असहाय भावसे देखभर पाते थे। इन संवेदनशील बुद्धिजीवियोंने जिस भुक्त और अनुभूत जीवनको अभिव्यक्ति प्रदान की, उनके वास्तविक साहित्यिक मूल्यांकनका प्रश्न बना हुआ है। इस मूल्यांकनके सन्दर्भमें यह परीक्षणीय है कि यह कितनी यथार्थ है और कितनी आरोपित, कितनी अन्तरंग है और कितनी गहरी, कितनी क्रान्तिकारी है और कितनी कल्याणकारी। इन प्रवृत्तियों, आन्दोलनों और वादोंका साहित्यमें जो प्रतिबिम्बन हुआ है, वह साहित्यको गति-प्रगति प्रदान करने कितना सफल रहा है, यहभी सर्वांगीण अध्ययनका विषय है।

प्रस्तुत विशेषांकमें इसी दशामें हमने एक कदम बढ़ाया है। इसे किसी सर्वांगीण अध्ययनका नाम देना अप्रासंगिक है, यह केवल प्रारम्भमात्र है। हिन्दीकी विभिन्न विधाओं का, इस प्रयोजनसे, कुछ अधिक विस्तारसे अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जोकि विवेचनात्मक अधिक है। पर साथ ही, संविधानमें उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं जोकि प्रायः परिचयात्मक विहंगावलोकन हैं। विद्वान् लेखकोंने अपनी-अपनी रुचि और अपने-अपने दृष्टिकोणसे इन्हें प्रस्तुत किया है, इसलिए इनमें किसी सम्यक् दृष्टिकोण अथवा तुलनात्मक अध्ययन के दर्शन नहीं होते। फिरभी, इस क्षेत्रमें रुचि रखनेवाले लोग सहजही किन्हीं तुलनात्मक परिणामोंपर अवश्य पहुँच सकते हैं और देशकी साहित्यिक गतिविधिका लेखा-जोखा तैयार कर सकते हैं।

इसी प्रसंगमें, देशकी सभी भाषाओंको एक सूत्रमें बांधनेवाली परन्तु 'मृत' घोषित भाषा संस्कृतसम्बन्धी लेखकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। यह एक तथ्य है कि अन्य भारतीय भाषाओंमें जिस नवजीवनके दर्शन होते हैं, समसामयिक समस्याएँ जिस रूपमें प्रतिबिम्बित होकर उनमें उभरती हैं, उस रूपमें इस सर्वदेशीय भाषामें आजका जीवन अँगड़ाई लेता नहीं दिखाई देता। पर, यह भी स्पष्ट है कि इसमें भी साहित्यिक स्पन्दन हो रहा है। यह स्पन्दन तीव्र रूप लेकर उसे कितनी गति प्रदान करेगा, यह भविष्यवाणी करना हमारी पात्रतासे बाहरकी वस्तु है, फिरभी, वर्तमान लक्षणों और इस लेखमें उपलब्ध संकेतोंसे यह अवश्य प्रतीत होता है कि प्रोत्साहन मिलने पर इस सर्वदेशीय भाषामें सर्जनात्मक और रचनात्मक गति तीव्र हो सकती है और यह केवल एकसूत्रतामें आबद्ध करनेवाली 'वृद्धा' भाषा न रहकर सशक्त, गतिशील सद्यः प्राणकर आधुनिकाका स्थान ले सकती है।

हमारा सदा यह प्रयत्न रहा है कि हिन्दीके साथ सभी भारतीय भाषाओंकी साहित्यिक गतिविधिका परिचय 'प्रकर' के माध्यमसे प्रदान किया जाये। इस विशेषांकमें भी यह प्रयत्न किया गया है। प्रयोजन केवलमात्र यह नहीं है कि हिन्दी पाठकों और हिन्दी माध्यमसे देशकी गति-विधिपर दृष्टि रखनेवाले हिन्दीतर पाठकोंको देशकी साहित्यिक गतिविधिका परिचय दिया जाये और देशके सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रोंमें प्रवाहित होनेवाली आन्तरिक और मूल एकसूत्रतासे परिचित कराया जाये, अपितु भारतीय भाषाओंकी आदान-प्रदानकी प्रक्रियाको प्रोत्साहन देना और गति प्रदान करना भी है। विभिन्न भाषायी क्षेत्रोंसे सम्पर्कके कारण हमने अनुभव किया है कि अन्य भारतीय भाषाओंके प्रतिनिधि साहित्यके हिन्दीमें अभावके कारण असन्तोष विद्यमान है। इसका राजनीतिक लाभ उठानेका भी प्रयत्न किया गया है और किया जा रहा है। यद्यपि यहभी सत्य है कि किसीभी भारतीय भाषाका प्रतिनिधि साहित्य अन्य किसी भारतीय भाषामें पूर्ण रूपसे उपलब्ध नहीं है और ऐसी स्थितिमें इसप्रकारके राजनीतिक फलितार्थकी चर्चा करना बहुत उपयुक्त नहीं है, तोभी हिन्दीसे सम्बद्ध होनेके कारण यह अवश्य अनुभव होता है कि हिन्दीमें देशकी प्रत्येक भाषाका प्रतिनिधि साहित्य उपलब्ध होना चाहिये। बँगलाके कथा-साहित्य की बाढ़ हमारी भाषामें अवश्य आयी हुई है, उसमें सभी स्तरोंका साहित्य है, परन्तु अन्य भाषाओंके साहित्य तथा

बँगलाके कथा-साहित्यके अतिरिक्त अन्य साहित्यकी उपेक्षा सराहनीय नहीं है और अपनी भाषाकी समृद्धिकी दृष्टिसे भी उपयुक्त नहीं है। हमें विश्वास है कि इस दृष्टिसे भी हमारे इस प्रयत्नपर, भारतीय भाषाओंमें आदान-प्रदानमें वृद्धि के लिए विशेषांकद्वारा प्रस्तुत सूचनाओं और जानकारी पर ध्यान दिया जायेगा।

आदान-प्रदानकी यह समस्या केवल साहित्यिक विधाओंतक सीमित नहीं है। इससे बड़ी समस्या ज्ञान-विज्ञान साहित्यके आदान-प्रदानकी है, जिसकी सभी भारतीय भाषाओंमें बहुत कमी है। देशकी सभी भाषाएँ इस क्षेत्रकी कमीको पूरा करनेके लिए प्रयत्नशील हैं। जिस निष्ठाके साथ यह कार्य सम्पन्न किया जा रहा है, उसमें हमें एक प्रारम्भिक सतर्कताकी भी आवश्यकता प्रतीत होती है और वह यह है कि सभी भारतीय भाषाओंके इस रचनात्मक कार्यमें अभीसे समन्वय रखा जाये। यह कार्य अभी प्रारम्भिक स्थितिमें है, इसलिए यह प्रारम्भिक समन्वय भविष्यमें सभी भाषाओंको एक-दूसरेको एकसूत्रता में बाँधे रखेगा तथा ज्ञान-विज्ञान साहित्यके आदान-प्रदान की समस्या उतनी कठिन नहीं रह जायेगी।

हम चाहते थे कि विशेषांकमें ज्ञान-विज्ञान साहित्यपर भी कुछ परिचयात्मक सामग्री प्रस्तुत कर सकें, परन्तु हम अपने प्रयत्नोंमें इस बार सफल नहीं हो पाये। हमारा संकल्प हमें इस कार्यको भी सफल बनानेमें सहायक होगा, यह विश्वास अवश्य है। इस बारकी इस असफलताके लिए हम अपने पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं।

भारतीय भाषाओंके सम्पर्क और आदान-प्रदानपर हमारे आग्रहके कुछ विशेष कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर हम इस अनुष्ठानमें संलग्न हैं। हिन्दीतर क्षेत्रोंमें प्रायः यह आशंका प्रकट की गयी है कि स्वतन्त्र देशमें हिन्दीतर भाषाओंकी स्थिति गौण बना दी गयी है। अंग्रेजीसे अभिभूत वर्ग इस आशंकाको इस प्रयोजनसे पालता-पोसता आया है कि इससे देशमें उस वर्गको प्रतिष्ठा प्रदान करनेवाली भाषाका प्रभुत्व सदा कायम रहे। यह वर्ग आजभी यह प्रचार कर रहा है कि अंग्रेजीका स्थान यदि हिन्दी ले लेगी तो हिन्दीतर भाषाओंकी स्थिति गौण हो जायेगी। यह भुला दिया जाता है कि संविधानमें एक ओर जहाँ हिन्दी को संघीय राजभाषाके रूपमें मान्यता प्रदान की गयी है, वहीं अन्य भारतीय भाषाओंको राज्योंकी राजभाषाओंके रूपमें मान्यता प्रदान की गयी है जोकि संविधानपूर्व काल में उन्हें प्राप्त नहीं थी। अंग्रेजी-समर्थक वर्गके इस सप्रयोजन प्रचारके वशीभूत हमारा बुद्धिजीवी वर्ग यह बात हृदयंगम नहीं कर पाया कि संवैधानिक व्यवस्थाओंके अन्तर्गत उनकी भाषाओंको जो स्थान प्राप्त हो गया है, उन भाषाओंके विकासके अवरुद्ध द्वार जिस रूपमें खुल गये हैं, अथवा संवैधानिक संशोधनों और परिवर्तनोंद्वारा अपने-अपने क्षेत्रोंमें उन भाषाओंके विकासकी सम्भावनाओं के जो अवसर उपस्थित हो गये हैं, वे अंग्रेजीके विद्यमान रहते उपलब्ध नहीं हो पा रहे। अंग्रेजीके कारण ये भारतीय भाषाएँ अपने ही क्षेत्रोंमें गौण बनी हुई हैं। वस्तुतः उनके सामने समस्या हिन्दीसे प्रतिद्वन्द्विताकी नहीं, उसके विरोधकी नहीं, अपितु अपने क्षेत्रमें अपनी भाषाओंको प्रमुखता प्रदान करनेकी है। उन्हें यह सोचनेकी आवश्यकता है कि कहीं अपने अंग्रेजी-मोहके कारण हिन्दीका विरोधके नामपर अपनी भाषाओंके विकास कार्यमें तो अवरोध उत्पन्न नहीं कर रहे? तमिलनाडुके छात्र-आन्दोलनकी परिणति इसी रूपमें हुई, अंग्रेजीका समर्थन किया गया और हिन्दीका विरोध, और छात्रोंने तमिल माध्यमसे अध्ययन ही अस्वीकार कर दिया। अंग्रेजी माध्यमके कारण देशकी जनताके सम्पर्क-सूत्र छिन्न-भिन्न हैं, एक प्रदेश या राज्य दूसरे प्रदेश या राज्यकी आकांक्षाओं विचारों चिन्तन से अपरिचित है, उनमें आदान-प्रदान नहीं है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक प्रदेश या राज्यकी जनता अपने देशके अन्य राज्यों या प्रदेशोंकी जनताकी आकांक्षाओं विचारों चिन्तनों से भलीभाँति परिचित हो और उनमें आदान-प्रदान हो—एक दूसरेकी भाषाके माध्यमसे। प्रतिष्ठाजीवी, जनसम्पर्क विहीन और अति अल्पसंख्यक अंग्रेजी-समर्थक लोगोंसे यह कार्य नहीं हो सकता। इसीकारण यह दुस्तर कार्य 'प्रकर' के माध्यमसे हम कर रहे हैं।

इस कार्यको सम्पन्न करनेमें हमें जिन मनीषी विद्वानों ने मुक्त भावसे सहयोग प्रदान किया है, उनके प्रति हम आभारी हैं। इन मनीषियोंमें हिन्दीभाषी और हिन्दीतरभाषी दोनों हैं। सभी विद्वान् अपने-अपने क्षेत्रके प्रतिष्ठित और विचारशील अध्येता हैं। जिस श्रम और मनोयोगसे इस विद्वद्वर्गने अपने-अपने विषयकी सामग्री इस अंकमें प्रस्तुत की है, आशा है हमारा पाठकवर्ग उसका उपयुक्त मूल्यांकन करेगा।

—वि० सा० विद्यालंकार

संस्कृत साहित्य : २५ वर्ष

—डॉ० वेदव्रत
श्रद्धानन्द कालेज, दिल्ली

नैसर्गिक नदी, जिसका मूलस्रोत हिमगिरिके हिमाच्छित श्रृंग हों, ग्रीष्म ऋतुके ठेठ जेठके महीनेमें भी निर्मल नीरसे धरतीकी प्यास बुझाया करती है। संभव है, बाँधोंसे उसका जल कुछ कालके लिए अवरुद्ध हो जाये, किन्तु शीघ्रही फिरसे उसके प्रवाहको प्रकृति-निर्मित या मानव-निर्धारित दिशाओंमें बहने देना अनिवार्य हो जाता है। संस्कृतकी सरिताभी कुछ इसी प्रकृतिकी है। इसका उत्स भी किसी प्रान्त या सम्प्रदाय-विशेषकी तात्कालिक अपेक्षाओं या साधनोंतक सीमित न होकर समग्र भारत देशकी प्राचीन और चिरस्थायी संस्कृतिसे उद्भूत होकर न केवल यहाँके जनमानसके संस्कारोंमें प्रत्युत देशके कणकणमें व्याप्त हो गया है।

अज्ञात प्रागैतिहासिक कालसे जिस भाषाको साहित्यमें और व्यवहारमें भारतीयोंने भाव-संप्रेषणका वाहक बनाया वही न जाने कितने समयतक वैदिक और लौकिक संस्कृत के रूप में विकसित होती हुई अन्तिम भाषा-शास्त्र-निर्माता आचार्य पाणिनिके कालमें आजसे लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व जिस नियमबद्ध रूपमें स्वीकार की गयी वही उसका अन्तिम परिष्कृत रूप हो गया। इस नियमित भाषाका क्षेत्र धीरे-धीरे साहित्य और संस्कृतितक सीमित होता चला गया। लोकभाषाके रूपमें, उस समय प्रारंभ होनेवाले विदेशी प्रभाव आदिके फलस्वरूप संस्कृतके जिन रूपोंका विकास हुआ उन्हें अपभ्रंश नाम दिया गया। अन्य देशोंसे जैसे-जैसे सम्पर्क और सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ता गया ये अपभ्रंश भाषाएं और अधिक भिन्न रूप ग्रहण करती चली गयीं और संस्कृतके साहित्यकारके लिए संस्कृत-व्यवहारके अवसर उतने ही कम होते चले गये।

संस्कृत साहित्यकारके लिए यह कठिनाई होनेपरभी उसका साहित्य सृजन चलता रहा है। राजा हर्षके कालतक तो विदेशी आक्रान्ताओंपर हमारे हावी रहनेके कारण, सर्वत्र हिन्दू राज्यों या कभी-कभी चक्रवर्ती राज्योंके प्रश्रयमें संस्कृतको प्रोत्साहन मिलनेसे साहित्यकी उत्कृष्टता व प्रभूतता रही। इस कालके बादभी अंग्रेजोंके आगमनसे पूर्वके आक्रमणकारी शक, हूण तो अधिक टिके नहीं। और, मुगलोंने टिककर शासन भी किया तो उनमें से अनेकोंने साहित्यसृजनको निरुत्साहित नहीं किया। अतः, इस कालमें भी साहित्य रचा जाता रहा, यद्यपि उसकी मात्रा क्रमशः कम होती गयी। दूसरे, इस समस्त कालके राज्याश्रयी साहित्यमें लोकजीवनका प्रतिफलन कम होना भी स्वाभाविक था। तीसरे, ललित साहित्यमें भी आलंकारिकता व शास्त्रीयताको महत्त्व दिया जाने लगा। और, चौथे, सामान्यतया भी ललितकी अपेक्षा शास्त्रीय साहित्यकी ही सृष्टि अधिक हुई।

इसके बाद, अंग्रेजोंका पदार्पण हुआ। इनके कालमें संस्कृत साहित्यकी सरिता सूखती हुई दिखायी दी, कहा जाता है, अंग्रेजोंने ही इसका पुनरुद्धार किया। वस्तुतः, उनका योगदान संस्कृतका महत्त्वशाली, प्राचीन भाषाके रूपमें अध्ययन करनेतक सीमित था, नये साहित्य सृजनके लिए नहीं। उन्होंने तो पुरातन मृत भाषाके रूपमें संस्कृतकी 'ममी' की कौतूहलवश शल्यक्रिया प्रारंभ की थी। किन्तु वस्तुतः, वह मुर्दा न होकर मात्र बेहोशीमें थी। चीरफाड़का असर हुआ। 'मुर्दे' ने करवट बदली और आँखें खोल दीं। इससे अंग्रेजोंके शासक वर्गका व्यापारी मन घबरा उठा था। तभी तो, हीन भावना पैदा करनेके लिए कुछ-एकने इसके प्राचीन वाङ्मयको गडरियोंका गीत कहनेकी कोशिश की। दासता बनाये रखनेके लिए, आखिर, लार्ड मैकालेकी शिक्षाका लक्ष्य क्या था? वह तो भला हो जर्मन देशवासियोंका, जो 'मुर्दे'

की पीठ थपथपाते रहे। इधर अपने देशमें ब्रिटिश-शासन कालमें भी संस्कृतकी शिक्षा-दीक्षा देनेवाली संस्थाएँ, गुरुकुल पाठशालाएँ, आदि साहित्य-सृजन-परम्पराको अवसर आनेपर पुनरुज्जीवित करनेवाले विद्वानोंके निर्माणमें लगी हुई थीं।

स्वातन्त्र्योत्तर

स्वतन्त्रता-प्राप्तितक तो देशकी समस्त शक्ति दासतासे मुक्त होनेमें लगी थी। स्वतन्त्रताके बाद देश सँभला और तब विदेशमें गिरती प्रतिष्ठाके पुनरर्जनके लिए हमारा ध्यान धीरे-धीरे भारतीय थाती संस्कृतकी ओर गया। अंग्रेजोंकी भौतिक शक्तिकी चकाचौंधमें हीनताकी भावनासे ग्रस्त साधारण भारतीयको संस्कृत साहित्यसे कुछ लाभ नहीं दीखता था। जब नेहरू जैसे राजनेताओंने इसे 'एकमात्र मूल्यवान धरोहर' कहा तब देश इस भाषा और साहित्यकी सुरक्षामें तत्पर हुआ। संस्कृत आयोगकी स्थापना हुई, संस्कृतका अध्ययनाध्यापन बढ़ा और अनेक विश्वविद्यालयोंमें संस्कृत विभाग खुले। संस्कृतमें शोधभी शनैः शनैः बढ़ने लगी। विगत दोसौ वर्षोंमें विगत २५ वर्षोंका काल ऐसा कहा जा सकता है जब संस्कृतसम्बन्धी शोध-कार्य भारतीयोंद्वारा ही सर्वाधिक हुआ।

साहित्य-सृजनकी धारा जो स्वतन्त्रतासे पूर्व जहाँ-तहाँ, छुटपुट रूपमें बहती थी या अप्रकाशित रह जाती थी, वह अब जैसे उमड़-घुमड़कर प्रवाहित होने लगी है। संस्कृत यदि जीवित रही है तो इसकी अपनी जीवन-शक्तिके अतिरिक्त, इसके निष्ठावान् अध्येता भी कारण रहे हैं। अबतक जिसे केवल वंशपरम्पराके कर्त्तव्य-पालनार्थ विद्वान् सुरक्षित करते चले आ रहे थे, अब उसके संवर्धनमें वे अधिक उत्साहसे प्रवृत्त हुए। इसतरह विपुल, विविध और विशिष्ट गुणवान् साहित्य इस कालमें सहजही प्रकट होने लगा।

'साहित्य' शब्दका प्रयोग मुख्यत दो अर्थों में होता है। एक व्यापक है और दूसरा सीमित। व्यापक दृष्टिसे साहित्यमें किसीभी भाषाका समग्र साहित्य आता है, चाहे वह ललित हो या शास्त्रीय, सृजनात्मक हो या संकलनात्मक, सूचनात्मक हो या शोधात्मक। साथही, उस भाषा और साहित्यपर अन्य किसी भाषामें किया अध्ययन, विवेचनभी इस व्यापक साहित्यका अंग हुआ करता है। दूसरी ओर, सीमित दृष्टिसे साहित्य ललित साहित्यका द्योतक है। संस्कृत साहित्यकी २५ वर्षीय गतिविधिको देखनेके लिए यदि व्यापक साहित्यके दर्शन करना चाहें तो उसके लिए पत्रिका नहीं स्वतन्त्र ग्रन्थकी आवश्यकता होगी। इसके स्थानपर सीमित अर्थवाले ललित साहित्यकी झलक दिखाना यहाँ पर्याप्त और अपेक्षित होगा, किन्तु फिरभी संकुचित या एकांगी नहीं। इसके कई कारण हैं :—

(१) अनुभूतिजन्य होनेसे ललित साहित्यही मानव व्यक्तित्व एवं समाजके निकटतर होता है। जीवनकी नवीनताएँ सर्वप्रथम इसीके माध्यमसे प्रकट होती हैं। अध्ययनात्मक साहित्य भी युगकी आवश्यकताओंके अनुरूप होता है पर युगभावनाकी अपेक्षा वह विद्वद्-वाग्-विलास अधिक है।

(२) ललित साहित्यमें सृजनपक्ष प्रबल होता है जिससे उसकी मौलिकता व कल्पना शक्तिके साथ हृदय पक्षका भी अंकन होता है।

(३) संस्कृतमें आज जिसे शास्त्रीय या ललित भिन्न साहित्य कहेंगे उसमें मौलिकताके दर्शन विरल हैं। अभीतो संस्कृत-विद्वान् विस्मृत और उपेक्षित प्राचीन शास्त्रीय ज्ञानको ही समझने या अपनी भाषामें अपनानेमें प्रवृत्त हैं। अभी उसका अध्ययन भर हो रहा है, नवलेखन नहीं। दूसरे शब्दोंमें, शास्त्रीय साहित्यमें नवीन स्थापनाओं या सिद्धान्त-प्रतिपादनका काल अभी नहीं आया। पूर्वार्जित ज्ञानके आत्मसात् होनेपर और देशका आत्मविश्वास प्रबल होनेपर (अभी तो हमारा बहुत-सा समय विविध भाषाओंके सीखने और इम्पोर्टेड ज्ञानको पानेमें बीत जाता है,) भविष्यमें आ सकता है।

सृजनात्मक ललित साहित्यके साथ एक और प्रकार का साहित्य भी संस्कृतकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है, और वह है अनूदित साहित्य। एक समयमें जिस भाषासे जिसप्रकार का साहित्य लिया जाता है वह उस अनुवादक साहित्यकारकी अनुभूतियोंका प्रतीक है। दूसरे, जिन भाषाओंमें उसका जैसा साहित्य जाता है वह उसकी व्यापकताके साथ उससे की जा रही अपेक्षाओंका द्योतक है। संस्कृत भाषा और उसका साहित्य कहाँतक देशमें लोकप्रिय है, यहभी इसके अनूदित साहित्यसे जाना जा सकेगा। इस दृष्टिसे संस्कृतके सृजनात्मक और अनूदित साहित्यका विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

१. सृजनात्मक

साहित्यकारकी सिसृक्षाको इस कालमें साहित्य सृजनके लिए न केवल मुक्त वातावरण एवं स्वतन्त्र परिवेश उपलब्ध रहा, प्रत्युत भावनाओंके

प्रभूत प्रेरणा-स्रोत पाकर विषय-क्षेत्रके वैविध्यसे उसने अनेक दिशाओंमें नवीनताके दर्शन किये। फलस्वरूप प्रसूत साहित्य, जिसे सृजनात्मक, क्रियेटिव (Creative) या ललित कहा जा सकता है, आधुनिक संस्कृत साहित्यकी प्रगति व समृद्धिका पुष्ट आधार तो है ही, साहित्यकारकी गत्यात्मकता व जीवन्तताका प्रबल सूचक भी है। जैसाकि आगेके कई उदाहरण स्पष्ट करेंगे, आजका संस्कृत-लेखक केवल भूतकालमें जीता हो, ऐसा नहीं है। वह आजके युगधर्मको पहचानता है और समयके अनुरूप आधुनिक मानवके कन्धेसे कन्धा मिलाकर चलनेमें समर्थ भी है और उद्यत भी। यह अवश्य उसके सुदृढ़ संस्कारोंका प्रभाव है कि वह परम्परामात्रको रूढ़ि या दकियानूसी विचारधाराका प्रतीक मानने या नकारनेके लिए तैयार नहीं है। एक ओर, यदि वह सुबुद्ध है तो आज के जीवनमें भी पुरातन-सनातन-मानव-मूल्योंके आदर्श व सन्देशको न भुलाते हुए जीना श्रेयस्कर समझता है। और दूसरी ओर, यदि उसपर परम्पराका प्रभाव कुछ तीव्रतर है तो वह अपनी परिपाटीको छोड़ना पसन्द नहीं करता, प्रत्युत उसे आगे बढ़ाता है। आजके युगमें भी देवताओंके प्रति नये-नये स्तोत्रों की रचना करनेवाले संस्कृत कवि इसी दूसरे प्रकारके साहित्यिक का प्रतिनिधित्व करते हैं, और वे भारतके दक्षिणी भाग में कुछ अधिक ही हैं। यहभी स्वयंमें एक अलग विचारणीय विषय है।

इन पच्चीस वर्षोंके ललित साहित्यमें यद्यपि कविता, नाटक व गद्य—ये तीनों रूप पर्याप्त संख्यामें दृष्टिगत होते हैं तथापि संस्कृतका 'काव्य'-स्रष्टा पद्यबद्ध रूपको अधिक अपनाता है। सम्भवतः, बहुत कुछ यह उसके लिए स्वाभाविक है। ललित साहित्यका, फिर वह चाहे गद्य ही क्यों न हो, 'काव्य' कहलाना और सामान्यतया, साहित्यकारका 'कवि' नामसे अभिहित होना भी तो संस्कृतमें कविता व कवित्व शक्तिके प्राधान्यकी ओर इंगित करते हैं। इस युगके साहित्यने भी इस प्राधान्यको बनाये रखा है। जहाँतक काव्यके कथ्यका प्रश्न है, संस्कृतका साहित्यकार प्राचीनसे जुड़ा हुआ अवश्य है, परन्तु उससे भी अधिक अब वह अर्वाचीन विषयोंके चित्रणमें रस लेता है। प्राचीन महापुरुषोंके आख्यानों और पौराणिक कथानकोंकी तुलनामें अर्वाचीन और समसामयिक महापुरुषों, विद्वानों और सन्तोंकी गाथाएँ उसके हृदयको कुछ कम नहीं छूतीं। उसकी दृष्टिका प्रमुख आकर्षण-बिन्दु आजका जीवन होता जा रहा है। यह दूसरी बात है कि वह आजकी विषमताओं में भी और नवमानवका स्वर विद्रोही होनेपर भी, साहित्य-स्रष्टाके उद्बोधनके दायित्वसे स्वयंको मुक्त समझनेकी स्थितितक अभी नहीं पहुँचा है।

१.१. कविता

१.१.१. स्तुतिपरक

संस्कृत साहित्यकारके सर्वाधिक प्रिय माध्यम कविताका एक प्रमुख विषय आज भी अपने इष्टदेव या देवीके गुण-माहात्म्य आदिका स्तवन है। एक देवतापरक स्तोत्रके रूपमें **'उमा सहस्रम्'**[१] को लिया जा सकता है जो रमण महर्षिके शिष्य गणपति मुनि वासिष्ठके अनेक ग्रन्थोंमें से प्रधान है। अनेक छन्दोंमें रचे इस काव्यमें दस सौ पद्योंमें वेद, वेदान्त, तन्त्र, शास्त्रोंके तत्त्वोंका उमा देवीके प्रादुर्भाव, विवाह आदिकी सरस कथाओंमें अनुप्रवेश हुआ है। गुरूपदेश व शास्त्रानुशीलन-जन्य ज्ञानके साथ स्वानुभवका भी उपयोग हुआ है। बचपनसे सरस्वतीके प्रसाद-प्राप्त कविने इसे काव्य गुणोंसे संयुक्त करके प्रस्तुत किया है। ऐसे स्तोत्रोंके प्रिय देवता प्रायः श्री दुर्गा, श्री माया, श्री शिव, श्री राम, श्री विष्णु, श्री गनेश आदि प्रसिद्ध देव तो हैं ही, कुछ दक्षिणमें प्रिय इष्ट भी हैं। जैसे इन स्तोत्रोंमें 'श्री **कामाक्षी** नाम त्रिंशत्', 'जयाशाशारदापञ्चस्तवी', 'श्री **सुब्रह्मण्य** कर्णामृतम्', 'श्री शिवकामसुन्दरीशतकम्', 'श्री नटेशरत्नमालिका', श्री वेङ्कटेशपदापलम्बस्तोत्रम्' आदि।

विविध देवतापरक स्तुतियोंका एक रचना में समावेश इस युगकी भावनाका सच्चा प्रतिबिम्ब है। उदाहरणार्थ—**स्तुतिपुष्पोपहारः**[२] में मद्रासके एक प्रसिद्ध कवि श्री महालिंग शास्त्रीने स्वरचित कतिपय स्तुतियोंको परिष्कृत कर छापा। इसमें शारदा, कमला (लक्ष्मी), श्री त्यागराज, दशावतार, गोपाल, वृन्दावन आदिके सम्बन्धमें स्तुतियाँ और कुछ मुक्तक भावाभिव्यक्तियाँ हैं।

---

१. मा० पु० पण्डित, श्री अरविन्दाश्रम, पाण्डिच्चेरी-२, रु० १५)

२. साहित्यचन्द्रशाला, तिरुवालङ्गाडु, तँन्जौर, मद्रास, रु० ४)

ऐसी ही एक कृति है पं० रुद्रदेव त्रिपाठीकी **'गायत्री लहरी'**[1] जिसमें गायत्री आदि अनेक देवताओंकी स्तुति अलंकार-बहुल निर्दोष भाषामें की गयी है। इसके उपोद्घातमें ऐसे सैंकड़ों लहरी ग्रन्थोंकी सूची दी गयी है जिनमें अनेकोंके विषय आधुनिक जीवनसे सम्बद्ध हैं।

रसज्ञको प्रसन्न करनेवाले उत्तम काव्यके गुणोंसे युक्त पं० काशीनाथकी महेश-स्तुति-विषयक **'पीयूषगंगा'**[2] की चर्चा करना यहाँ उपयुक्त होगा। इसमें कवि विलष्ट-कल्पनामें प्राचीन काव्योंको भी लाँघ जाता है तो कहीं सरलतर प्रयोग भी करता है। महेशके नामपर ही सही, यह ग्रन्थ जिस एकेश्वरवादकी स्थापना करता है वह तेतीस कोटि देवताओंवाले पुरातनपन्थी भारतीयोंके गले जितनी जल्दी उतर जाये, अच्छा है :—

"श्री रामचन्द्र-हरि-कृष्ण-शिवादि शब्दा,
वस्त्वेकमेव सकलाः प्रतिपादयन्ति।
कुम्भो घटः कलश इत्यभिशब्द्यमानो,
नाणीयसीमपि भिदां भजते पदार्थः॥"

"श्री राम, हरि, कृष्ण, शिव नाम जितने,
सबसे उसी तत्त्वका ज्ञान होता।
कह लो कलश, या घट, कुम्भ, कोई,
घड़ेमें अणुमात्र अन्तर न होता॥"

१.१.२. प्राचीन-वस्तु-परक

श्री राम और श्रीकृष्ण ऐसे पात्र हैं, जो देवोंकी कोटिमें भी गिने जाते हैं और महापुरुषोंमें भी। सचमुच, ये अतुलनीय युगपुरुष हुए हैं, कि युगों-युगोंसे आजतक इनकी गाथा गाकर भी साहित्य न तो इनसे उऋण होता है और न साहित्यकार ही ऊबते हैं। जैसा कि आगे अनूदित साहित्यके सन्दर्भमें भी हम पायेंगे, भारतके तो प्रान्त-प्रान्तमें इनकी छविको लोकमानस हृदयंगम करनेके लिए लालायित दीख पड़ता है। प्राचीन वस्तुपर लिखनेके लिए जब साहित्यिक दृष्टि दौड़ाता है तो प्रमुखतः इन्हींके यशस्वी महाकाव्यों, रामायण और महाभारतका आश्रय लेता है। श्री रामरञ्जन स्मृतितीर्थने सौ-

१. साहित्य संवर्धन संस्थान, मन्दसौर, म०प्र०, रु० १)

२. सं० व्याख्या हिन्दी टीका—जगन्नाथ वासिष्ठ, कश्मीर।

सौ श्लोकोंके ३३ सर्गोंका एक महाकाव्य **'श्रीरामचरितम्'**[1] लिखा है जो खण्डशः छपनेमें आया। प्रथम खण्डमें पाँच सर्गोंमें विश्वामित्रकी यज्ञ रक्षा तककथा है। रामकथाको फिर-फिर कहनेपर भी सरलता, ललित व उचित पद प्रयोग, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता जैसे लोकप्रिय छन्दों व अधिकतः अर्थालंकारोंके फलस्वरूप यह एक आकर्षक महाकाव्य बन पड़ा है। सीता और रामका गौतमी नदीके तीरपर पञ्चवटीमें निवास, प्रकृतिके विलासका दर्शन, सरस अलाप आदि लेकर ६३ मन्दाक्रान्ता छन्दोंमें रचा एक खण्डकाव्य **'पञ्चवटी'**[क] भी इस सन्दर्भमें उल्लेखनीय है।

संस्कृतमें ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओंमें भी श्रीकृष्णका चरित्र लेखकोंको कुछ अधिक ही प्रिय रहा है। पाराशर्यका एक विशाल ग्रन्थ **'श्रीकृष्णचरितम्'** है। इसका एक संक्षेप[2] किया गया है जिसे दो भागों, पूर्वार्ध व उत्तरार्धमें रखकर अनुष्टुप् छन्दमें रचा गया है। संक्षिप्त होते हुए भी नया कृतित्व व नया रूप। श्रीकृष्णके विषय में पौराणिक काव्यका आकर ग्रन्थ श्रीमद्भागवतपुराण है। उसका प्रभाव अन्य काव्योंपर देखा जा सकता है। **'श्री कंससंहार महाकाव्यम्'**[3] में सत्रह सर्गोंमें कृष्णजन्मसे लेकर कंसवधपर्यन्त भागवतकी कथा और भावोंका ही लगभग उपवर्णन है। इसी भाँति महाभारतके 'उद्योगपर्व' से भगवान् श्रीकृष्णद्वारा युधिष्ठिरके लिए किये दौत्य-कर्मकी कथावस्तुपर १५ सर्गका महाकाव्य **'अद्भुतदूतम्'**[4] है जो काव्यलक्षणोंपर खरा उतरनेकी दृष्टिसे प्रेरित प्रतीत होता है। इसमें युधिष्ठिरकी प्रार्थना, द्रौपदीकी इतर स्त्रियोंसे विलक्षणता, कृष्णकी कर्णसे उक्ति-प्रत्युक्ति आदि हृदयग्राही कथाप्रसंग भी हैं और हेमन्त ऋतु, श्रीकृष्ण-यात्रा, हस्तिनापुर नगरी, सूर्यास्त आदिके अनेक शास्त्र-

१. प्रका०—श्री विश्वनाथ, ४१ न्यायालंकार, ठाकुर रोड, पो० भाटपाड़ा, २४ परगना, प० बंगाल, प्रथम खण्ड, रु० २)

क. ले०—के०वे०नृ० अप्पाराव, कोव्वूर, पश्चिम गोदावारी, आ०प्र०।

२. ले०—श्री ए०एन्० श्री निवासराघव अय्यंगार, दक्षिण वीथी, तिरुवनन्तपुरम्, रु० ५)

३. ले०—पुलय उमामहेश्वर शास्त्री, १९५८, रु० २)५०

४. ले०—श्री बकुल भूषण जग्गू, फोर्थ क्रास रोड, मल्लेश्वरम्, बंगलौर-३, रु० ४)७५

सम्मत वर्णन स्थल भी। अर्थसारल्य है फिरभी 'रत्नप्रभा' नामसे स्वयं टीका भी कर दी है। यह सब प्राचीन काव्यके समकक्ष बैठनेका प्रयास-सा है। दूसरी ओर, प्रसिद्ध हिन्दी महाकवि सूरदासके वात्सल्य रसका स्मरण करानेवाला बालयोगी, धनुप्रिय, गोरसतस्कर श्रीकृष्णके बालपनका चमत्कारपूर्ण वर्णन करनेवाला **'वात्सल्य रसायनम्'**[४(क)] इसी कालके काव्योंमेंसे है।

प्राचीन इतिहासका स्मरण करानेवाले काव्य भी रचे गये हैं। अनेक खण्ड काव्योंके रचयिता श्री सूर्यनारायण शास्त्रीका **'संयुक्तास्वयंवरम्'**[१] भी एक लघुकाव्य है जिसमें सौ के लगभग श्लोकोंमें जयचन्द्रकी पुत्री संयोगिताके राजा पृथ्वीराज चौहानसे स्वयंवरकी ऐतिहासिक घटना सरल शैली में है और जिसके वर्णनोंमें कहीं-कहीं आंग्ल कवियोंके वचनोंका अनुसरण-सा दीखता है। इसीप्रकार, वैष्णव भक्तिके प्रतिष्ठापक, द्रविड भाषामें आऴ्वार् नामसे प्रसिद्ध, दक्षिणमें विशेष महत्त्वशाली दिव्यसूरिके जीवन चरित्र, कालनिर्णय, प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख, गाथाओं के सार व वैष्णव मन्दिरोंमें मूर्त्तियोंके चित्रों सहित एक काव्य आया है **'दिव्यसूरिचरितानि'**[२]।

१.१.३. नवीन वस्तुपरक

यदि काव्योंकी संख्याको मापदण्ड माना जा सकता है, और यह किसी सीमातक उचित भी है, तो निस्संकोच कहा जाएगा कि आजके संस्कृत-कविको भी अन्य साहित्यकारोंकी भाँति वर्तमानकी वस्तुको वर्ण्यविषय बनाना अधिक अभीष्ट है। निश्चयही, उसमें भी वह सोद्देश्य लेखनमें प्रवृत्त होता है। सम्भवतः इसीलिए, उसके प्रिय विषय हैं जननायक या सन्त महापुरुषोंके जीवन-चरित्र एवं भारत भूमिका गौरवगान। सिक्ख-गुरु, भारतीय धर्म संरक्षक वीर श्री गुरुगोविन्दसिंहकी ३००वीं जयन्तीपर उनकी राष्ट्र सेवापर रचे गये ग्रन्थोंमें एक उत्कृष्ट संस्कृत काव्य भी था **'श्री गुरु गोविन्दसिंह चरितम्'**[क] जिसे लिखकर डॉ॰सत्यव्रत शास्त्रीने कार्यके अनुरूप साहित्य अकादमीका पुरस्कार भी अर्जित किया। इसीप्रकार इस पाव-शताब्दी का एक महान् ऐतिहासिक चरितकाव्य है **'श्री तिलकयशोऽर्णवः'**[१] जो तीन खण्डोंमें प्रकाशित हुआ है, ८५ तरङ्ग या सर्ग हैं और कुल ११ सहस्र से अधिक श्लोक। सुबोध भाषाशैलीमें रचे इस महाकाव्यमें मुख्यतः अनुष्टुप् छन्द हैं परन्तु कहीं-कहीं दीर्घतर वृत्तका प्रयोग भी हुआ है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने अपने लम्बे कारावासके जीवनमें गीता जैसे अनमोल ग्रन्थका 'रहस्य' खोजा और संस्कृतमें प्रावीण्य भी अर्जित किया था। ऐसे विचारक नेताका जीवनचरित्र उन्हींके एक शिष्य और स्वातन्त्र्य-योद्धा श्री अणेके स्वानुभूत प्रसंगोंके साथ देववाणीमें मुखरित हुआ है। तिलकजीसे सम्बद्ध और अनुभूति प्रत्यक्ष ऐतिहासिक घटनाओंके साथ जलियांवाले बागकी अमर आहुतिका भी मार्मिक उल्लेख हुआ है। अन्तमें ऐतिहासिक टिप्पणियाँ हैं और सम्बद्ध चित्र भी। संस्कृतमें ऐतिहासिक काव्यकी न्यूनता ऐसे अमर ग्रन्थ ही दूर कर सकते हैं।

महाकाव्यके लक्षणोंपर पूरा उतरनेवाले **'श्री नेहरू चरितम्'**[२] में, १८ सर्गोंमें लोकनायक जवाहरलालका चरित्र है। ललित पदविन्यास, सन्दर्भोंकी अक्लिष्टता और सरल गम्भीर शैलीकी यह रचना संस्कृत टीका व हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशमें आयी। दुःख यही कि कवि इस कार्यको पूराकर स्वयं भी शीघ्र दिवंगत हो गये। जिसप्रकार यह महाकाव्य ऐसे महापुरुषसे सम्बद्ध है जो इस युगमें जिया और प्रसिद्ध हुआ ऐसेही, इस युगके दार्शनिक राजनेता डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन्‌पर भी एक लघुकाव्य **'श्री राधाकृष्ण सतकम्'**[३] प्रकाशमें आया जिसमें श्लेषप्रधान किन्तु सरल श्लोक हैं, विषयप्रतिपादन मनोहर है और जो जीवित महापुरुषोंके जीवन का अंकनकर भाषाकी सजीवताको प्रमाणित करता है। भारतीय आध्यात्म तत्त्वके व्याख्यानोंसे पाश्चात्य जगतमें भारतीय महिमाके उद्घोषक राधाकृष्णके जीवन-चरित्र, मेघाविलास, राष्ट्रीय व

---

४. (क) ले॰—श्री भा॰ वर्णेकर, वागीश्वरी निकेतन, धनतौली, नागपुर।

१. ले॰—सूर्यनारायण शास्त्री शिरोमणि सन्निधान, ४४ जीरा, सिकन्दराबाद, रु॰)५०

२. ले॰—श्री जग्गुवैंकटाचार्य, महाराज संस्कृत कलाशाला, मैसूर, १९६६, रु॰ ६)

क. प्रका॰—पटियाला क्षेत्रीय श्री गुरु गोविन्दसिंह प्रतिष्ठान, रु॰ १०)

१. ले॰—माधव श्री हरि अणे, तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ, पूना, तीन खण्ड, क्रमशः—१९६९,७०,७१, तृतीय खण्ड पृष्ठ ४५०

२. ले॰—ब्रह्मानन्द शुक्ल, शारदा सदन, ३८ राधाकृष्ण, खुर्जा, उ॰प्र॰ १९६६, रु॰ १०) व १२)

३. ले॰—श्री ति॰ वा॰ रामचन्द्र, कर्पकाम्बाल कालौनी, मयिलापुर, मद्रास-४.

अन्तर्राष्ट्रीय कार्य, उदार मनोभाव आदिका प्रसादपूर्ण वर्णन एक अन्य खण्ड काव्य **'श्रीराधाकृष्ण-प्रभा'**[1] में भी हुआ है।

स्वतन्त्रता-सेनानियोंमें रानी लक्ष्मीबाई और नेताजी सुभाषचन्द्र बोसका नाम सर्वोपरि है और दोनोंपर संस्कृत कविकी लेखनी उठी है, क्रमशः **'झान्सी लक्ष्मीभायो'**[2] व **'श्री-सुभाषचरितम्'**[3] में। पहला काव्य १९ वीं सदीकी वीरांगना रानीका समग्र जीवन कालिदास प्रभावित ललित शैलीमें कहनेवाला दो सर्गों का लघुकाव्य है। दूसरा, नेताजीके उदय, सद्गुरुकी खोज, तेजस्वी दर्शन, अतुल त्याग, देशसेवा, उत्कर्ष, अन्तर्धान, नेतृत्व लाभ, स्वातन्त्र्य समर, आत्मसमर्पण आदिका रसात्मक व रमणीय वर्णन करता है। सुबोध शैली में दस सर्गोंका यह महाकाव्य होकर भी परम्परागत शब्दालंकार आदिकी जटिलताओंसे मुक्त है। इस कविने अन्य अनेक ग्रन्थ भी रचे हैं। न जाने ऐसी उपयोगी रचनाएँ संस्कृत पाठ्यक्रमोंका अंग कब बनेंगी? किसी एक महापुरुषका ही नहीं, श्रीराम, श्रीकृष्ण-से आदर्श पुरुषों, बुद्ध, दयानन्द, विवेकानन्द-से महात्माओं, वेदव्यास व शंकर-से आचार्यों, तिरुवल्लुवर् व बसवेश्वर-से दाक्षिणात्य समाजसुधारकों, विक्रमादित्य-अशोक जैसे सम्राटों, तिलक-लाजपतराय-से राष्ट्रनायकों, कालिदास-से महाकवियों, जवाहरलाल-राजेन्द्रप्रसाद-से नेताओंका एकत्र वर्णन करनेवाले **'महापुरुषकीर्तिनम्'**[4] जैसे सात काण्ड वाले ललित मधुर आलंकारिक आडम्बर-रहित काव्य ग्रन्थ भी तो संस्कृत छात्रोंके उपयोग की वस्तु हैं।

महापुरुषोंमेंसे सतोगुणप्रधान सन्त लोग संस्कृत कवि को विशेषतः प्रभावित करते हैं। अपनी वृद्धावस्थामें भी जो अध्यापन कार्य व ग्रन्थ-विरचनमें प्रवृत्त रहे, ऐसे विद्वान् कवि पं० रामसुन्दर भक्तितीर्थके ५ सहस्र पद्योंके महाकाव्य **'श्री रामकृष्णभागवतम्'**[1] के नायक हैं स्वामी विवेकानन्द सरीखे प्रतापी शिष्योंद्वारा भारतीय आध्यात्म विद्याके उन्नायक श्री रामकृष्णपरम हंस। परमहंसजीकी पत्नी श्रीमती शारदादेवी, शिष्य विवेकानन्द एवं सम्बद्ध अन्य महापुरुषोंका ऐतिहासिक चरित्रभी इसमें आ गया है। उनके उपदेश और उनका वेदान्त शास्त्रसे सम्बन्ध भी इसमें अन्तर्भूत है। बंगाली व अंग्रेजी अनुवाद साथ दिये गये हैं। दस सर्गके एक अन्य लघु ग्रन्थ **'श्री रामकृष्ण कर्णामृतम्'**[2] में भी परमहंसजीके वाग्वैभवसे युक्त एवं उनके स्तवनके लिए सुबोध मधुर पद्य दिये गये हैं।

दक्षिण कन्नड़ प्रदेशमें महात्मा रामदासका एक आश्रम है। अनेक भारतीयों व विदेशियोंने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। श्री एम० रामकृष्ण भट्ट ने **'श्री रामदास गीता'**[3] में उनके वचनोंको सरल शैलीमें पद्यबद्ध किया है और आंग्ल अनुवाद भी दिया है। इसमें सर्ग-विभाजन 'योग' नामसे किया है। चौदह 'योगों' में ईश्वर, सद्दर्शन, गुरु, सत्संग, श्रद्धा, राम, प्रेम, ध्यान आदिपर श्री रामदासके विचार प्रस्तुत हैं। ऋषिकेशके प्रसिद्ध स्वामी शिवानन्दपर इन्हीं कवि श्री भट्टकी एक रचना है **'श्री शिवानन्द विलासः'**[4] जिसमें ग्यारह सर्गोंमें स्वामीजी के जन्मसे लेकर पूरी जीवनीके साथ-साथ ताम्रपर्णी क्षेत्र, महोदधि तीर्थ व हिमालय आदिका प्रसन्नमधुर श्लोकों में वर्णन हुआ है। आचार्य श्री विनोबा भावेद्वारा प्रवर्त्तमान भूदान यज्ञकी क्रिया और उसके फलका ललित-मधुर शैलीमें यशोगान गाती है **'भूदान यज्ञ-गाथा'**[5]। स्पष्ट है, युगधर्म-प्रधान विषय संस्कृतके साहित्यकारके लिए विशिष्ट प्रेरणा बने हैं।

संस्कृत जगत्के विद्वानोंका जीवन भी संस्कृत कवियोंके लिए काव्य-प्रणयनकी सामग्री देनेवाला बना

---

१. ले०—ग०जो० सोमयाजी, भारतीय विद्या भवन, नयी दिल्ली, १९७०, रु० ४)
२. ले०—पी० गोपालकृष्ण भट्ट, पावञ्जे गुरुराव एण्ड सन्स, उडुपि, रु०)५०
३. ले०—वी० के० छत्रे, जोगलेकर सदन, कल्याण नगर, महाराष्ट्र, १९६३-६४, रु० २)५०
४. ले०—धर्मदेव विद्यावाचस्पति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, ज्वालापुर, रु० २)

---

१. प्रका०—श्री काशीनाथ शास्त्री भट्टाचार्य, ५६।४ ग्रेस्ट्रीट, अरविन्द सरणि, कलकत्ता–६, १९६६ रु० १५)
२. ले०—ओट्टूर उण्णि नम्पूतिरि, तुलसी भवन, ओत्तप्पालम्, केरल १९६३, रु० १)२५
३. आनन्दाश्रम, कासर रोड, दक्षिणपथ, रु० २)
४. प्रका०—योगवेदान्ताश्रम, शिवानन्द नगर, ऋषिकेश, १९६२, रु० ६)
५. ले०—श्री गणपतिशंकर शुक्ल, शारदा सदन, बड्-वाहा, म० प्र०, रु०)५०

है। श्री पाण्डुरंगवामन काणे, 'धर्मशास्त्रके इतिहास' के यशस्वी लेखक जो इसी युगके अवसानपर दिवंगत हुए, के जीवनपर संक्षिप्त **'जीवन सागरः'**[1] उनके अस्सी वर्ष की अवस्था पानेपर प्रणामाञ्जलिरूपमें कवि श्री मि० वेलणकर ने बम्बईके अमृतोत्सवपर अर्पित किया।

१.१.४. राष्ट्रप्रेमपरक

राष्ट्रप्रेमके रससे सराबोर कई अच्छे काव्योंमेंसे कुछेकका उल्लेख करना है। भारतके गौरवमय अतीत और वर्तमान, दोनोंके चित्रणमें और उसमेंभी वर्तमानके अनुरूप काव्य निर्माणमें कवि विशेष गौरवान्वित अनुभव करता है। वैदिककालसे लेकर राजा हर्षवर्धनतकके भारतीय इतिहासका काव्य है **'भारतायनम्'**[2] जो मुख्यतः छात्रोपयोगी है। इसकी तुलनामें द्रष्टव्य है आधुनिक राष्ट्रीय वृत्तपर आधारित महाकाव्य **'विशालभारतम्'** का प्रथम भाग 'जवाहर-दिग्विजयम्'[3], जिसमें पृष्ठभूमि रूपमें राष्ट्रोद्धारक श्री दयानन्द, विवेकानन्द, तिलक, गोखले, ठाकुर, गान्धी जैसे नेताओंके योगदानकी चर्चा करके जवाहरगान्धी-समागम, सत्याग्रह आरम्भ, पटेल, राजेन्द्रप्रसाद आदिके साथ मिलकर किये कार्यसे लेकर नेहरूजीके निर्वाणतककी ऐतिहासिक व राजनीतिक गतिविधिका निरूपण हुआ है।

स्वतन्त्र भारतके सामने सर्वप्रथम जो प्रधान सन्देश आया वह था नेहरूजीद्वारा प्रस्थापित शान्ति-सन्देश। इससे काव्य भी प्रभावित हुआ। **'भारत सन्देशः'**[4] जैसा सन्देश काव्य इसी प्रभावको लेकर रचा गया। यूँ तो इस काव्यपर कालीदासीय 'मेघदूत' के शिल्पका सर्वतोमुखी प्रभाव है, पर रस शृंगार न होकर शान्त है। 'विदेशी राष्ट्रपतियोंका कोई संघ विश्वशान्ति स्थापित करनेके प्रयासमें भारतवर्षमें आया है। सब तरफ घूमकर प्रधान नगरों व क्षेत्रोंका दर्शन करता है। काश्मीरसे कन्याकुमारीतक वह संघ भारतकी विशिष्ट आत्माके सौन्दर्यको पहचानता है।' यह पूर्वार्धकी वस्तु १५३ श्लोकोंमें है। फिर उत्तरार्धमें १२९ पद्योंमें 'संघका दिल्ली आना, श्री राजेन्द्रप्रसाद-जवाहरलाल नेहरूसे मिलना और राजसभामें राष्ट्रपतिके मुखसे अणुबम और वैज्ञानिक विनाशलीलासे संत्रस्त विश्वके लिए शान्ति सन्देश ग्रहण करना' वर्णित है। कालिदासके अनुसरणमें छन्द भी मन्दाक्रान्ता अपनाया है।

विश्वको शान्तिका सन्देश देनेवाले होकर भी हम अपने देशमें किसप्रकार परस्पर कलहमें रत हैं, इस विडम्बनाको ध्यानमें रखते हुए एक खण्डकाव्य आया **'मातृपरिदेवनम्'**[1] जिसमें वेद, धर्म व विज्ञानमें मंजे हुए अपने प्राचीन पुत्रोंका स्मरण करके आधुनिक युगमें गुणोंका अभाव, विदेशी आक्रमणसे उत्पन्न दास्य भाव और प्रजाजनके दोष देखकर भारत माता दुःखी होती है; और, अपनी सन्तानको परस्पर मैत्री, उपकारभावना और परम्परागत शान्ति अपनानेका परामर्श देती है। इसमें व्यक्त निराशाका स्वर संस्कृत कवियोंमें प्रायः विरल है।

भारतका स्वतन्त्र होना स्वयंमें एक उत्साहवर्धक प्रसंग है जिसपर कविका भावविभोर हो उठना नितान्त स्वाभाविक है। तभीतो पचासोत्तरमें दिवंगता पण्डिता क्षमाराव जैसी प्रसिद्ध गद्यलेखिकाभी इस विषयपर पद्यबद्ध रचनाके लिए बाध्य हुई होंगी। उनका **'स्वराज्य-विजय'**[2] अनुष्टुप् छन्दमें बीस अध्यायोंका एक सरस महाकाव्य बन पड़ा है जो स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् आलोच्य कालके प्रथम दशकमें लिखा गया। महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें स्वराज्यका संग्राम कैसे लड़ा गया, किस-किस नेताका क्या चारित्रिक योगदान रहा, इसका उत्तम अंकन हुआ है। इसके अतिरिक्त, स्वतन्त्रताके साथ-साथ ग्रामीणोंमें किस प्रकार जागृति फैली, इसका बोध करानेके लिए इसी कवयित्रीका तीन कथाओंको तीन 'मयूखों' (किरणों) में सुनाने वाला एक काव्य प्रकाशमें आया **'ग्रामज्योति'**[3]।

---

१. प्रका०—ब्राह्मण सभा, प्रार्थना समाज, बम्बई-४, रु० १)५०
२. ले०—श्री दिनेशप्रसाद पाण्डेय, सूर्यामुख प्रकाशन, रांची, १९६८, रु० ३)५०
३. ले०—श्री पं० श्यामवर्ण द्विवेदी, गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरखपुर, रु० ४)५०
४. ले०—श्री शिवप्रसाद भारद्वाज, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर

---

१. ले०—के० अच्युतप्पे दुवल्, संस्कृत कलाशाला, तिरुप्पुणित्तुरा, केरल, १९६१
२. प्राप्ति०—श्रीमती लीलाराव दयाल, ३७ न्यू मैरीन लाईन्स, बम्बई-१, रु० ६)
३. प्राप्ति०—श्री जे० सी० चैट्टर्जी, भूपेन्द्र बोस एवेन्यू, कलकत्ता-४

चीनका आक्रमण होनेपर संस्कृत कवि भी आलोड़ित हुआ। आक्रान्ता धूर्तोंकी निन्दामें कविताएँ रची गयीं और कई लघुकाव्यभी आये जिनमेंसे श्री वासुदेव द्विवेदीके 'भारत राष्ट्रगीतम्', 'जयभारतम्' और 'चपेटिका'[1] (चपत=) लघु होनेपर भी वीररसोद्रेक करानेमें नितान्त समर्थ हैं। ये कतिपय काव्य संस्कृत-साहित्यकारकी राष्ट्रभक्ति एवं राजनीतिक सतर्कता दर्शानेमें पर्याप्त होने चाहिये।

१.१.५. उद्बोधनपरक

संस्कृतका कवि आदर्श जीवनका उद्घोषक है। समाजकी बुराई उसे असह्य है। दैनिक जीवनमें मनुष्य जिन दोषोंका शिकार हो जाता है, उस ओर भी कवि अँगुली-निर्देश करना अपना कर्त्तव्य समझता है। इसीलिए, श्रीदुर्गादत्त शास्त्रीने अपनी 'तर्जनी'[2] उठाई तो ग्यारह सर्गका हिन्दी अनुवाद सहित महाकाव्य रच डाला जो दोषोंको कुरेदता तो है पर सरल भाषा, अलंकारों व सुभाषितोंसे सुशोभित होनेके कारण पाठकोंको आह्लादित भी करता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि यह भाषान्तर-पदों का प्रयोग स्वीकारता है। 'अस्पृश्यः कोऽस्ति संसारे?' जैसे प्रश्न उठाकर छूआछूत जैसी रूढ़ियोंपर प्रहार करता है। अन्तिम सर्ग 'त्यागपत्रं गृहाण मे' (यह लो मेरा त्याग-पत्र) में समस्त दोषोंसे रहित समाजके निर्माणकी बलवती आकांक्षा स्पष्ट हो उठती है। मुख्यतः, उद्बोधनकी भावनासे प्रेरित ऐसेही कुछ अन्य लघुकाव्य यहाँ उल्लेख-नीय हैं। 'जागरणम्'[3] में तीस विषयोंको लेकर सरस गीत हैं जो मानवोचित भावनासे पूर्ण प्रेम, मृत्यु, राष्ट्रप्रेमका चित्रण, वृद्धि-भावनाका संवाद आदि दर्शाकर रसास्वादनके साथ पाठकका दृष्टिकोण व्यापक बनाते हैं। गीतोंका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। 'वैराग्यमन्दाकिनी'[4] तीन लहरियोंमें विभाजित मुक्तक काव्य है जो भर्तृहरिकी परम्पराको जीवित करता हुआ संसारकी असारता, जन्मके दुःख, भोगोंके दोष, धन, यश, राग, प्रेम, मोह, परोपकार, आदि गुण दोषोंकी विवेचना करनेवाले १८९ श्लोकोंसे उदात्त अध्यात्म भावना और वैराग्यका पोषण करता है।

जैन विद्वानोंमेंसे कुछ मुनि सरस काव्य-प्रणयन करके स्वसिद्धान्तोंका प्रतिपादन व जन-साधारणका उद्बोधन करनेका पुण्य संचय कर रहे हैं। एक हैं आचार्य तुलसीके शिष्य श्री चन्दनमुनि जिन्होंने अनेक संस्कृत कृतियोंसे संस्कृतकी श्रीवृद्धि की है। आपका 'उपदेशामृतम्'[1] १६ चषकों (प्यालों) द्वारा सरल अनुष्टुप् छन्दोंमें सही जीवनदर्शन, अन्तर्मुखता, आत्मपरीक्षा और अन्तःशत्रुओं के नाशकी प्रेरणा देनेवाला आध्यात्मिक रसायन पिलाता है। इसीभाँति मुनि श्री बुद्धमल्लका 'उत्तिष्ठत जाग्रत'[2] उठने और जागनेका आह्वान करता है।

'अर्वाचीन वस्तुपरक' काव्योंमें ऊपर कुछ सन्तोंके चरितकाव्योंके अन्तर्गत उन सन्तोंके उद्बोधक उपदेश भी आ गये हैं। किन्तु स्वतन्त्र काव्योंमें भी सन्तोंके उपदेश अंकित हुए हैं। जैसे, योगी अरविन्दके विचार गर्भित भाव 'चिन्तनाश्च चिदुन्मेषाः'[3] नामक रचनामें अंग्रेजी अर्थके साथ पद्यबद्ध हुए हैं। इसी प्रकार महात्मा गांधीके 'अहिंसा, सत्य, त्याग, देशसेवा, पतितोद्धार' आदि उपदेशोंका ४१ शिखरिणी छन्दोंमें 'गान्धि गीता'[4] नामसे प्रकाशन हुआ। गान्धीजीके विश्वप्रसिद्ध अस्त्र सत्याग्रहको आज सर्वत्र दुरुपयुक्त होते देखा जा सकता है, किन्तु उसका शास्त्रीय स्वरूप क्या हो? इसका प्रतिपादन, व्याख्या व अनुवाद सहित पण्डित रुद्रदेव त्रिपाठीने 'सत्याग्रह नीतिकाव्यम्'[5] में किया है। पाँच अध्याय और प्रत्येक अध्यायके चार पादवाला यह काव्य वैद्यशास्त्रीय प्रक्रियाका अनुसरण करता है। सत्य, सत्याग्रह और सत्याग्रहियोंका स्वरूप लक्षण आदि स्थिरकर इन्हें विकृत करनेवाले दोषों रूपी रोगोंका निराकरण भी बताता है।

---

१. प्रका० – सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय, वाराणसी, मूल्य प्रत्येक रु०)२०
२. प्रका०—शशी तथा शेखभूषण, तलेटी, प्रागपुर, कांगड़ा, हि० प्र०, सं० २०२६, रु० ६)२५
३. ले० – डॉ० शिवशरण शर्मा, भारती निकेतन, अमर जयी, फतेहपुर, उ० प्र०, रु० १)२५
४. ले०—श्री मङ्गलार्णव यति (काशिकानन्द), प्रका० डॉ० अ० न० जानी, जमखानापोल, सुलतानपुर, बड़ौदा।

---

१. प्रका० – अणुव्रत समिति, राजहंस भवन, मैरीन ड्राइव, बम्बई-२
२. प्रका०—अणुव्रत समिति, १५३५ चन्द्रावल रोड दिल्ली-६
३. प्रका० – अरविन्दाश्रम, पाण्डेच्चरी, मूल्य रु० २)
४. ले०-श्री अ० वि० काणे, जे० विनायक प्रकाशन बम्बई २८, रु० १)
५. प्राप्ति—विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय गुरुकुल झज्झर, रोहतक, रु० २)

१.१.६. दार्शनिक-विद्या-परक

जब कोई दार्शनिक विद्वान् कवि भी हो तो दार्शनिक काव्योंकी सृष्टि होना स्वाभाविक ही है। केनोपनिषद्में अग्नि, वायु, इन्द्र आदि अहंकारी देवोंको शिक्षा देनेके लिए यक्षका प्रादुर्भाव, देवोंका उसे न जानना, हैमवती उमा द्वारा उसके ब्रह्मत्वपर प्रकाश डालना—यह सारी कथा बुद्धि और हृदय, दोनोंको छूती है। यही हुआ श्री स्वयंप्रकाश शर्माके साथ जो उन्होंने **'इन्द्रयक्षीयम्'**[1] काव्य रचा और आधुनिक भावोंका भी यथोचित समावेश कर भारत देशकी ब्रह्मविद्याका गौरव चार सर्गोंके इस छोटेसे खण्डकाव्यके अनुष्टुप् छन्दोंमें गा दिया।

अन्तःकरणका एक अंग है मनस् तत्त्व, जिसपर प्राचीन व अर्वाचीन सामग्रीका परिशीलनकर शान्तरसप्रधान काव्यके रूपमें प्रपंचितकर सकना श्री महीधर वेंकटराम शास्त्री जैसे सहृदय विद्वान्का ही कार्य है। बाह्य जगत् से लेकर कैवल्य जगत्तक मनस्का विस्तार बतानेवाले 'मानस-रास-केली'[2] के १२ प्रकरण हैं। ४०० के लगभग मुख्यतः शिखरिणी पद्य हैं। शास्त्रीय विषय होनेसे पारिभाषिक शब्दावलीका प्रयोग अपरिहार्य है पर फिर भी सरलता बनी रहती है। व्याकरण, आयुर्वेद और साहित्य—सभी क्षेत्रोंसे कविका असाधारण परिचय द्योतित होता है।

संस्कृतके एक सुपरिचित लेखक हैं डॉ० मङ्गलदेव शास्त्री विद्यामार्तण्ड' जिन्होंने अन्य रचनाओंके साथ आध्यात्मिक दर्शनपर भी ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु उनकी **'जीवन-ज्योतिः', (वैदिक गीताञ्जलि)**[3] की विशेषता है कि इसमें कर्त्ताकी कल्पनाशक्ति और मनोभावोंकी उदात्तता प्रदर्शित होती है। दुःखी दुनियामें घूमते हुए नर-नारायणके संवादको श्लोकबद्ध करते हुए इस जगको दुःख, निराशा या छायामात्र माननेवालोंको लेखकका सन्देश है कि वस्तुतः जगत् में आशा आनन्द और प्रसाद गुण हैं। अन्तर्यामी जगत्पति के प्रसादसे व्यक्ति यहीं जीवन्मुक्तिका अनुभव कर सकता है। इसके लिए व्रत, चरित्र, नीति, भावसंशुद्धि आदि साधन हैं। भावगर्भित शैलीमें विचारोत्तेजक विषयका निरूपण मनोहारी बन पड़ा है।

---

१ प्रका०—स्वयं, २६/२ रुड़की रोड, कैम्प, मेरठ, रु० ३)
२. प्रका०—ए० वै० संस्कृत कलाशाला, राजमहेन्द्री, आ० प्र०, रु० २)५०
३. प्रका०—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६८, रु० ६)

१.१७. संस्कृत-प्रसार-परक

संस्कृतके पठन-पाठनको सरल और सर्वभाषाग्राह्य बनाने में सभी भाषाओंके संस्कृतज्ञों व साहित्यकारोंकी अभिरुचि रही है। ठीक है, यह विषय भाषाविज्ञानका प्रतीत हो रहा है, किन्तु काव्यके प्रसगमें इसका उल्लेख इसलिए कि भाषाके सरलतासे अध्यापनके लिए कुछ काव्यमय पाठ्य क्रमोंका भी प्रणयन हुआ है। इस दिशामें चालीस दिनमें संस्कृत शिक्षणार्थ केरलसे छपा **'कामधेनुः'**[1] नामक काव्य का प्रथम खण्ड एक उदाहरण है, जिसमें अंग्रेजी, हिन्दी, मलयालम—तीनों भाषाओंमें अर्थ भी साथ-साथ दिया गया है जिससे तीनों भाषाभाषियोंको सरलता रहे।

भारतमें संस्कृतकी परिस्थिति देखकर उसके उद्धारके लिए स्वयं हरतरह यत्नशील श्री वासुदेव द्विवेदीने **'सुरभारतीसन्देश'**[2] नामक एक कविता ग्रन्थ रचा जिसके पाँच प्रकरणोंमें (१) संस्कृत व्यवहार, (२) संस्कृत प्रचार, (३) अध्ययनाध्यापन, (४) देश समाज सेवा, और (५) विचार व्यवहारके विषयमें कुल छियालीस सन्देश दिये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है, वासुदेवजीके मुखसे स्वयं देववाणी अपने हृदयके शल्यको प्रकट कर रही हो। संस्कृतके प्रचारके लिए द्विवेदीजीने जहाँ अनेक प्रकारके चार्ट बनाये हैं और लघु पुस्तिकाओंकी रचना की है, वहीं **'दीपमालिका'**[3] जैसा लघुकाव्य भी रचा है जिसमें अनुभवगर्भित, भावभरित, उपदेशपरक सुभाषित पदोंका सृजन किया है। भाषामें प्रवाह और जीवन्तता है, अलंकारोंमें अनुप्रास, दीपक जैसोंका प्रयोग होनेसे बुद्धिग्राह्यता। इसीप्रकारका एक प्रयास श्री पी० नीलकंठ शर्मा का है जिन्होंने अपनी **'मार्गबोधिनी'** के १०१ श्लोकोंमें स्तोत्र व सुभाषितोंके द्वारा सुबन्त, तिङन्त आदि व्याकरणका मार्ग प्रशस्त किया है।

---

१. ले०—एरनेलूर भरत पिषारटि, भारत विद्यापीठ, बोरतूर, केरल, १९६६, रु० ३)
२. प्रका०—संस्कृत प्रचार पुस्तक माला, टेढीनीम, वाराणसी, रु० १)५०
३. प्रका०—सार्वभौम प्रचार कार्यालय, वाराणसी, रु०) ६२

१.१.८. रस-विशेष-परक

क्या रसविशेषकी सृष्टिके लिए काव्यसृजन होता है ? आचार्य मम्मटने काव्यके उद्देश्योंमें यश, अर्थोपार्जन, व्यवहार ज्ञान, अशिवकी क्षत, और कान्तासम्मित उपदेशके साथ 'सद्यः पर निर्वृति' अनायास परम आनन्दकी प्राप्ति, को भी गिना है। महाकाव्यके लक्षणोंमें, एकवीर या श्रृंगार रसका प्रधान होना व शेष रसोंका गौण होना भी कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि रसोद्रेक काव्यसे होना अनिवार्य-सा है। फिर 'रसविशेषपरक' काव्यसे हमारा तात्पर्य क्या है ? अबतक जिन काव्योंकी चर्चा ऊपर हुई है उन सबमें रसोत्पत्ति गौण है, मंगल, ज्ञान और शिक्षाकी भावना ही प्रमुख है। पर कुछ काव्य रसोद्रेकको प्रधानता देते हैं और उनकी चर्चा यहाँ होगी ।

रसविशेषकी दृष्टिसे लिखे काव्योंकी संख्या इस कालमें बहुत कम रही है, और यह इस तथ्यकी ओर इंगित करता है कि संस्कृत कविने भी नवभारतके निर्माण में योग देना अधिक महत्त्वपूर्ण समझा न कि रस विलासमें खो जाना। फिरभी, श्रृंगार या हास्य जैसे रसोंके सृजन का इस युगमें नितान्त अभाव रहा हो, ऐसी बात नहीं है। सन्देश काव्योंकी परम्पराको अक्षुण्ण बनाता हुआ छोटा सा **'भृङ्ग सन्देशः'**[1] (दो भाग, ३९ व ३४ श्लोक) इसी कालका काव्य है, जिसमें कोई प्रेमी अध्ययनके लिए मुड्ढ पतिपुर जाता है। वहाँसे अपनी प्रियाके नाम भृङ्ग (भँवरे) के द्वारा सन्देश भेजता है। मेघदूतकी भाँति पूर्वार्धमें गन्तव्य मार्गका और उत्तरार्धमें प्रियाकी नगरीका वर्णन करके अन्तमें प्रेम सन्देश दिया गया है।

भगवान् श्रीकृष्णका जीवन यों तो प्राचीन इतिहास का अंग है। फिरभी उनका चरित्र अनेक श्रृङ्गारपरक रचनाओं का स्रोत रहा है और अब भी है। 'रुक्मिणी हरणम्'[1] (क) जैसा इक्कीस सर्गका महाकाव्य रुक्मिणी जन्मसे लेकर श्रीकृष्णके द्वारिका पहुँचनेतककी कथा कहता है जिसमें महाकाव्योंके लक्षणोंके अनुसार नगर, समुद्र, पर्वत, चन्द्र, सूर्य आदि प्राकृतिक वर्णन भी हैं। प्रसादमय श्रृङ्गार व वीर रसकी प्रधानतासे माघ जैसे कवियोंका स्मरण कराता है। पाण्डित्य और प्रतिभाका मेल हुआ है।

कालिदासके ऋतुसंहारमें जहाँ सभी ऋतुओंका क्रमशः वर्णन था वहाँ इस कालमें ऋतुराज वसन्तकी विविध शोभा, कामोद्दीपकता एवं भोग्यताकी प्रसादमयी स्फुट भाववाली एक शतश्लोकी कविता **"वसन्तशतकम्"**[1] की रचना हुई। प्रकृति-वर्णनका आनन्द और तद्द्वारा श्रृंगारको जगानेमें जैसे यह काव्य, वैसेही संगीतके माध्यम से रसराजको पुष्ट करनेवाला एक काव्य आया **'गीत गीर्वाणम्'**[2] जो सरल संस्कृत गीतोंको संगीत प्रेमियों के लिए सुलभ बनाता है। अन्य अनेक, लगभग ५०० गीतोंके स्रष्टा श्री वेलकर अनेक रूपकोंके निर्माणसे भी प्रसिद्ध हैं। इस काव्यमें उनके ५३ गीत हैं जो ५० भिन्न रागों में हैं, और जिनके 'स्वर विन्यास' अर्थात् राग लक्षण, स्वर एवं चार सहित सारे संकेत दिये गये हैं। गीतशास्त्रका विषय प्रदर्शित करनेवाले अनुबन्ध भी जोड़े गये हैं। इसप्रकार, यह काव्य, संस्कृत संगीत शास्त्रका उदाहरण-ग्रन्थ भी कहा जा सकता है।

हास्य रसको भी संस्कृत-कवियोंने अनेक काव्योंमें प्रमुख स्थान दिया। श्री 'कण्टकार्जुन' ने **'कण्टकाञ्जलि'**[3] में ऊपरसे हँसानेके कारण रमणीय पर भीतर चुभता व्यंग्य होनेसे विदीर्ण करनेवाले पद्य लिखे हैं। **'पौरच्छात्रीयम्'**[4] में महाविद्यालयके छात्रोंके थोथे प्रेमका परिचय दिया गया है।

१.१.९ संकलन-परक (मिश्र)

आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कवि किसी विषयपर पूरा काव्य रचे और तभी प्रकाशित हो। अन्य कार्योंमें व्यग्रताके कारण यदि किसी कविको कम अवकाशके क्षण मिलते हों तो ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक है कि विविध विषयोंपर पर्याप्त कालक्षेपके पश्चात्, कभी-कभी हृदयके भावरथपर आसीन होते ही, काव्यकणिकाएँ या सणिकाएँ जन्म लेती हों। ऐसी स्थितिमें विस्तारके स्थानपर संक्षेपकी दृष्टि रहती है, और साथही 'घनीभूत' अनुभूतिके शीघ्राति-

---

१. ले०, प्र०—श्री मुण्डश्शेरि कृष्ण नम्पूत्तिरिपाद, करिक्काट्, त्रिक्कलङ्गोड्, मञ्चेरि, केरल।

१(क). ले०—श्री काशीनाथ शास्त्री द्विवेदी, बी १/२२, अस्सी, वाराणसी-५, रु० २५)

१. ले०--श्री प्रियव्रत शर्मा, पद्मा प्रकाशन, काशी हिन्दू वि० वि०, वाराणसी, रु० ५)

२. ले०--श्री भि० वेलणकर, सुरभारती, भोपाल, रु० ५)

३. ले०—कृ० श्री अर्जुन वाडकर 'कण्टकार्जुन', पूना, १९६५

४. ले०—ग० ग० पेण्ढारकर, पूना, १९६७

शीघ्र वाग् रूप धारनेकी छटपटाहट । इसलिए ऐसी कविताओंमें 'गागरमें सागर' भी मिल सकता है । प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ० सी० डी० देशमुख अच्छे संस्कृतज्ञ तो हैं किन्तु कितने स्वाभाविक कवि भी हैं, इसका परिचय उनकी **'संस्कृत-काव्य-मालिका'**[१] से प्राप्त होता है, जिसमें नवीनतम् विषयोंकी अभिव्यक्ति प्राचीन शैलीमें होकर भी सरस है । कहीं कश्मीरकी सुषमाका वर्णन है, तो कहीं 'खेचर-विलसितम्' द्वारा आकाश-यात्राका । कहीं कोकिल के माध्यमसे अन्योक्तियाँ हैं तो कहीं 'सिंह-मूषक', 'अन्धे का दीपक', 'काककी पटुता' आदि नीतिपरक रचनाएँ । कहीं कैनेडीकी हत्याका हृदयद्रावक प्रसंग है तो कहीं 'गान्धी-सूक्ति-मुक्तावली' जिसे अंग्रेजी अनुवाद सहित दिया गया है । इसी तरहकी एक कृति है श्री अमीरचन्द्र शास्त्रीकी **'गीति कादम्बरी'**[२] जिसमें अनेक विषयोंपर रचे खण्ड-काव्य एवं काल-विशेष या व्यक्ति-विशेषपर लिखी कविताओं, गीत आदिका संकलन है । शास्त्रीजीकी कवित्व-प्रतिभा व सरस-सृजनमें सिद्धहस्तता स्फुट है ।

ऐसे कई अन्य मिश्रकाव्य लघु होते हुए भी उपयोगी बन पड़े हैं । **'पूर्णपात्रम्'**[३] में सन्निधान सूर्यनारायण शास्त्री ने प्रायः सरल अनुष्टुप् छन्दोंमें रामकृष्ण परमहंसके बीस उपदेश, महाभारतकी एकलव्य कथाका नवीनरूप, रामायण आदिसे कुछ पुराने आख्यान, भगवद्भक्तिपरक रचनाएँ आदि विविध आध्यात्मिक व प्राचीन विषय अपनाये हैं । बुद्ध, दयानन्द, गान्धी, पटेल आदि महापुरुषोंका चित्रण होनेपर भी **'अभिनवकाव्यम्'**[४] में नगर व ग्रामके उत्कर्ष व अपकर्षके सम्बन्धमें परस्पर संवाद, हिमालयवर्णनद्वारा नवीनता व माधुर्यकी सृष्टि और कहीं-कहीं हास्य रसके छींटे भी हैं । के० केशवन् नायरका आधुनिक विषयोंको लक्ष्य कर रचे गये पद्योंका संग्रह **'निवेद्यम्'**[५] नाना रसों व भावोंसे सहृदयका मनोरंजन करते हुए साहित्यसृजन-कौशल दर्शाता है । दूसरी ओर, संस्कृत-भाषा-संरचनमें पूर्ण प्रावीण्य न होनेपर भी श्री कर्णवीर राजशेषगिरिरावने इस भाषाके प्रति प्रेम व उत्साह दिखाते हुए **'वाणी'**[१] द्वारा महात्मा गान्धी, विनोबा भावे, और अपने पिता श्री कर्णवीर नागेश्वरकी प्रशंसामें रचे श्लोकोंके साथ भगवानकी प्रार्थना, भारतवीरोंका प्रबोधन और अन्य गीत संकलित किये हैं । आधुनिक संस्कृतिके प्रपंचको छूती हुई भाषामें 'फेल, नोट्स' जैसे प्रचलित विदेशी शब्दोंको प्रयुक्त करनेवाली रचना **'मिलिन्दमित्रम्'**[२] भी यहाँ उल्लेख्य है जिसमें एक ओर षड्ऋतु, सन्ध्या, प्रभात आदि प्राकृतिक वर्णन हैं, वहीं धूम्रपान व सुरापान जैसे दृश्योंका चित्रण भी है । इसी परम्परामें **'काव्य सरित्'**[२क] और **'शिञ्जारवः'**[२ख] जैसे कुछ संग्रहोंका और नामोल्लेख हो सकता है जिनमें नवीनता, वस्तुवैचित्र्य, उल्लेखकौशल, और हृदयग्राह्यता दृष्टिगोचर होती है ।

ऊपर एक कविकी विविध रचनाओंके संकलनोंका उल्लेख है । इसके विपरीत, अनेक कवियोंकी रचनाओंका एकत्र संकलन करनेका प्रयासभी इस कालकी एक नवीनता कही जा सकती है । उदाहरणके लिए प्रस्तुत है **'कवि-भारती-कुसुमाञ्जलि'**[३] जो तीन भागोंमें छपा है । इसके तीसरे भागमें बीसियों कवियों व कवयित्रियोंकी स्फुट रचनाएँ रम्य, अर्थगम्भीर, समाजकल्याणसे प्रेरित और सहृदयके लिए आह्लादक भी हैं ।

---

१. ले०—श्री चि० द्वा० देशमुख, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली-७, १९६८, रु० १२)

२. प्रका०--श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, कमलानगर, दिल्ली-७

३. प्रका०--राजा बहादुर वेंकटराम रेड्डी महिला कलाशाला, हैदराबाद, १९५९, रु० १)

४. ले०—जनमेजय विद्यालंकार, ७/१८३, स्वरूपनगर, कानपुर, १९५९, रु० १)

५. प्रका०—गीता मुद्रणालय, श्री शिवपुरम्, केरल, १९७०, रु० १)५०

---

१ प्रका०—आन्ध्र भारती प्रकाशन मन्दिर, जाण्ड्रपेटा, चीराला, आ० प्र०, १९७०, रु० १)

२. ले०—वनमाली भारद्वाज, हिन्दी प्रचार सभा, सदर, मथुरा, पृ० ६०

२(क). ले०—अनन्त विष्णुकाणे, पारनाका, बसई, ठाने, महाराष्ट्र

२(ख) ले०—डॉ० कृष्णलाल, वासुदेव प्रकाशन, माडल टाऊन, दिल्ली-५, रु० ४)५०

३. सम्पादक मण्डल, श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते आदि, डी १४/५२ कश्मीर हाऊस, टेढी नीम, वाराणसी, १९७०, तृतीय भाग, रु० ३)

१.२. नाटक

विषय-वस्तुकी दृष्टिसे विभाजन करते हुए जैसेकि ऊपर आधुनिक संस्कृत-कवितामें देखा गया, संस्कृत नाटकों में प्राचीन कथावस्तु कुछ अधिक और नवीन कुछ कम होनेपर भी देश-प्रेम व स्वाभिमानकी धारा पर्याप्त सशक्त-रूपेण विद्यमान है। आगेके उदाहरणोंसे स्पष्ट होगा कि मंचपर अभिनयके लिए या रेडियो रूपकके रूपमें प्रसारित करनेके लिए भी संस्कृतमें नाटक रचे गये हैं और अनेक दृष्टियोंसे नये-नये प्रयोग भी हुए हैं।

इष्टदेवकी स्तुति कविताके माध्यमसे ही की जाती है अतः नाटकोंमें स्तुतिपरक वर्ग नहीं बनाया जा सकता। उद्बोधनके भाव भी कविता या गद्यका चोला पहन सकते हैं किन्तु नाटकमें जब वे किसी कथाके माध्यमसे आना चाहते हैं तो ऐसे नाटक कथावस्तुके अनुरूप दूसरे किसी वर्गमें समाहित हो जाते हैं। दार्शनिक या धर्मोद्भावक नाटक अवश्य रचे गये किन्तु उनमें हास्य या शान्त रसकी प्रधानता हो जानेसे उन्हें रस-विशेष-परक नाटकोंके साथ रखा गया है। संस्कृत-प्रसारके लिए नाटकोंके माध्यमसे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं हुई। इसप्रकार चार वर्ग कम हो जानेसे शीर्षकोंको पाँच वर्गोंमें विभक्त किया जा रहा है।

१.२.१. प्राचीन-वस्तु-परक

संस्कृत नाटकोंमें इस कालमें भी पुरातन कथानकोंका आधिक्य रहा है। किन्तु इसप्रकारके कथानक पुराण, रामायण, महाभारतसे भी लिये गये हैं तो कालिदास जैसे कवियोंसे भी, बुद्ध जैसे सन्तोंसे सम्बद्ध हैं तो सम्राट् पृथ्वीराज जैसे ऐतिहासिक नरपुङ्गवोंसे भी। प्राचीन कवियोंके जीवनपर नाटक-प्रणयन तो इस कालकी एक नवीनता रही है।

डॉ० वेङ्कट राघवनने अनेक लघुनाटक रचे हैं, जिनसे अभिनय या प्रसारणका उद्देश्य भी सिद्ध होता है। उनका **'लक्ष्मी स्वयंवरः'**[1] मद्रासके आकाशवाणी केन्द्रसे प्रसारित ऐसा नाटक है जो विष्णुपुराण और भागवतके श्लोकोंको लेकर संवादोंमें ढालता है और पौराणिक कथानकको उदार भावभूमिपर ला खड़ा करता है। इसी भाँति, प्राचीन आख्यानोंमेंसे श्री झाका **'पूर्णकामः'**[1] एक ऐसे ऋषिकुमार को नायक लेकर बना एकांकी है जिसे स्वर्ग ले जाया गया किन्तु उसे वह ठुकरा देता है क्योंकि उसकी कामनाएँ पूर्ण हैं, बस अब तो मोक्षकी इच्छा है। शास्त्रोंके अनुसार इसमें स्वर्ग व मोक्षका अन्तर भी स्पष्ट किया गया है।

रामायणकी प्रसिद्ध खलपात्र मन्थराको पद्मपुराणकी कथाके अनुसार देवकार्यके लिए अप्सराका अवतार बतानेवाली **'विद्युन्माला'**[2] में मन्थराकी प्रेरणासे कैकयी द्वारा श्री रामचन्द्रका अभिषेक-भंग और बनवासका चित्रण है। महाभारतसे एकलव्यकी गुरुभक्तिकी प्रसिद्ध कथापर छोटे-छोटे पाँच अंकोंका एक लघुनाटक **'अङ्गुष्ठदानम्'**[3] है जिसे सम्भवतः, समयकी माँगसे, छात्र-शिक्षक-सम्बन्धोंमें उत्पन्न दुरावसे भी लिखनेकी प्रेरणा मिली है।

केवल दो वर्षोंमें छः उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य रचनेवाले श्री वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्यने अहिंसाके प्रचारक शाक्यवंशी महात्मा बुद्धका चरित्र **'सिद्धार्थचरितम्'**[4] के आठ अंकोंमें निबद्ध किया है। संवादोंमें यद्यपि अनेक पद्योंका समावेश है किन्तु उनमें क्लिष्टता नहीं है। पद-विन्यास सुललित है और निसर्गमधुर व भावाभिव्यञ्जक शब्द-प्रयोग है। कथावृत्त यद्यपि सुविदित है, पर कविकी कल्पनाने उसे नया रूप दिया है।

दिल्लीके अन्तिम क्षत्रिय सम्राट् पृथ्वीराज चौहानके दुःखान्त शौर्यकी गाथा अंकित करनेवाला छः अंक का वीररसप्रधान **'पृथ्वीराज-विजय-नाटकम्'**[5] महामहोपाध्याय पं० मथुरानाथ दीक्षितकी कृति है। दीर्घ समास न होनेपर भी भाषामें भावानुसारी ओजस्विता है। सरल, ललित, प्रसाद गुणोंवाली भाषाशैली इसे लघु होनेपर भी प्राचीन नाटक 'वेणीसंहार' के समकक्ष स्थापित करती है। पृथ्वीराजकी निर्द्वन्द्व शूरताके कारण उसकी हार भी हार नहीं थी, अतः इसका 'विजय' नाम सार्थक है।

---

१. ले०, प्रका० — डॉ० वे० राघवन्, संस्कृत रङ्ग, ७ श्रीकृष्णपुरम्, रायपेट, मद्रास-१४, रु०)५०

---

१. ले० — श्री ऋद्धिनाथ झा, प्रका० — श्री उमानाथ मिश्र
२. ले० — को० ल० व्यासराज शास्त्री, रा० अ० पुरम्, मद्रास-२८, रु० १)
३. ले० — रामकिशोर मिश्र, शारदा साधना मन्दिर, जड़वाड़ा, कायमगंज, उ०प्र०, रु०)५०
४ प्रका० — संस्कृत पुस्तक भण्डार, ३८ विधान सरणि, कलकत्ता, १९७०, रु० १२) या १५)
५. प्रका० — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, रु० १)

आदि कवि वाल्मीकिके प्रादुर्भावका वृत्तान्त; अर्वाचीन संस्कृत साहित्यपर उसका प्रभाव; लोकमें, प्रवचन, गान, पुस्तक, नाट्य आदि कलाओंमें उसकी गति; ये विषय स्वयंमें शोधका विषय प्रतीत होते हैं। किन्तु इन पर रोचक नाटक रच डालना श्री य० महालिङ्ग शास्त्रीजीका ही कमाल है। आदि कविके कई श्लोकोंका यथावसर प्रयोग करते हुए नाटकीय आकर्षणके साथ प्रस्तुत इनका नाटक **'आदिकाव्योदयम्'**[1] संस्कृतके किसी प्राचीन कविपर लिखे गये नाटकोंमें निश्चय ही अन्यतम है।

कविकुल गुरु कालिदासके जीवनपर आधारित दो नाटकोंका नाम लिया जा सकता है। एक तो, डॉ० वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्यका **'कविकालिदासम्'**[2], और दूसरे, श्री भि० वेलणकरका **'कालिदासचरितम्'**[3]। भट्टाचार्यजी ने कालिदासके विषयमें प्रचलित किंवदन्तियोंको छोड़ते हुए स्वकल्पनासे कथावस्तुका निर्माण किया है, जिसका आधार प्रायः कालिदासकी कृतियोंमें स्फुरित भाव हैं। यही नहीं, उन कृतियोंके अंशोंका 'कविकालिदासम्' में मालामें पुष्पोंके समान यथावसर व यथोचित प्रयोग हुआ है। श्री वेलणकरने भी इसी भाँति पाँच अंकके 'चरितम्' में महाकविकी कृतियोंसे ऐसे अंशोंको चुना है जिनसे उसके व्यक्तित्वकी समुचित सम्भावना की जा सके। विदर्भ नरेश विक्रमादित्यकी राजसभाके अन्य पण्डितोंके ईर्ष्यास्थान कविद्वारा प्रसंगविशेषोंमें क्रमशः ऋतुसंहार, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र और अन्तमें रघुवंश रचनेके क्षण आते हैं। भाषापर महाकविके प्रयोगोंका संस्कार है और पात्रोंके नामों—अलका, मदनिका, निपुणिका आदि पर भी।

संस्कृतके प्राचीन नाटककारोंमें भवभूतिको ही कालिदासके समक्ष रखकर तोला जाता है। शायद इसीसे प्रेरित हो, भवभूतिको नायक लेकर भी एक नाटक **'प्रेमपीयूषम्'**[4] रचा गया। कान्यकुब्जके नरेश यशोवर्माकी तनया शशिप्रभा इसकी नायिका है। दोनोंका प्रेम, विघ्न, निराकरण और अन्तमें दोनोंका विवाह सात अंकोंमें कालिदास और भवभूतिकी शैलीका अनुसरण करते हुए दर्शाया गया है।

दार्शनिक विद्वानोंका जीवन नाटककी वस्तु बन सकता है और आजके युगमें अभिनेय भी। इसका ज्वलन्त प्रमाण था सन् १९६० के दिसम्बर मासमें हुए 'निखिल भारतवर्षीय-सम्मेलन' के अवसरपर प्रेक्षकोंद्वारा अभिनन्दित नाटक **'विमलयतीन्द्रम्'**[1] जिसे लिखा प्रसिद्ध नाटककार व निर्देशक डॉ० यतीन्द्र विमल चौधुरीने, और उन्हींके नाट्यसंघने अभिनीत किया। इसमें विशिष्टाद्वैतके प्रतिष्ठापक श्री रामानुजाचार्य नामसे प्रसिद्ध श्री विमल यतीन्द्रका चरित्र सुगम भाषा रीतिसे अंकित हुआ है।

महाराष्ट्रके इतिहास में पेशवा माधवराव अपनी शक्ति राज्य शासन कौशल और प्रजावैभवके कारण प्रसिद्ध हुआ था। उसकी गुणानुरूपा पत्नी रमादेवी इतनी पतिपरायण थी कि माधवकी मृत्युपर उसने भी देह त्याग किया, ऐसा कहा जाता है। ऐसे आदर्श दम्पतीपर **'रमामाधवम्'**[2] अन्य यथोचित पात्रों व कथासन्दर्भोंके साथ पाँच अंकोंका सरस नाटक बना है।

कालिदास और बाणभट्ट जैसे प्राचीन कवियोंकी कृतियोंसे अंशविशेष चुनकर लघुनाटक रच देना यूँ तो मौलिक कविप्रतिभाका विलास नहीं कहायेगा, किन्तु कविके अव्यक्त भावोंको और काव्यमें निनादित ध्वनियोंको पहचानकर उन्हें उसीकी भाषाशैलीमें नये और व्यापकतर आयामोंमें प्रस्तुत कर पाना और कुछ नहीं तो उस कविविशेषमें गहरी पैठकी अपेक्षा अवश्य रखता है। डॉ० राघवन् ने यही किया है अपनी कतिपय नाटिकाओंमें। **'कामशुद्धिः'**[3] में कालिदासके 'कुमारसम्भव' का यकी कथावस्तुसे लेकर रूप खड़ा किया है। अर्थ-धर्म-विरोधी विशृङ्खल 'काम' शिवकी कोपाग्निमें भस्म होकर सात्त्विक बनकर भगवान्‌की शरण अंगीकार करता है। नायिका रति अपनी तपस्यासे पति कामकी शुद्धिमें सहायक होती है। स्थान-स्थानपर उचितरूपेण कालिदासके वचनोंको अपनाकर यह कालिदास-प्रेमियों और लघुरूपक-द्रष्टा दोनोंकेलिए आह्ला-

---

१. १९६३, रु० ६)
२ प्रका०—संस्कृत पुस्तक भण्डार, ३८ विधान सरणि कलकत्ता, रु० ८)
३. प्रका०—गीर्वाणसुधा प्रकाशन, झावलावाड़ी, बम्बई-२, १९६१, रु० ३)
४. ले० —श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर वि०वि०, म० प्र०, रु० २)

१. प्रका०—डॉ० जे० बि० चौधुरी, प्राच्यवाणी, ३ फैडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता-९, रु० ४)
२. ले०—श्री वि० पां० बोकिल, १२०३, सदाशिव पेठ, पूना-३०, १९७०, रु० २)
३. ले०, प्रका०—डॉ० वे० राघवन्, संस्कृत रंग, ७ श्री कृष्णपुर वीथी मद्रास-१४, मूल्य)५०

दक हुआ है। कालिदासके ही 'मेघदूत' की प्रारम्भिक कथावस्तु कल्पितकर 'आषाढस्य प्रथम-दिवसे'[1] में नाटकीयता धारण करती है। इसमें कालिदास स्वयं रामगिरि आश्रममें यक्षके साथ पात्र रूपमें चित्रित हुआ है। बाणभट्टकी 'कादम्बरी'से प्रख्यात, महाश्वेतावृतान्त' की कथाको बाणके ही वाक्योंका यथासम्भव उपयोग करते हुए 'महाश्वेता'[2] नाटिका बनायी गयी है। इन सबमें यथास्थान गेय पदोंका भी प्रयोग है। ये तीनों रूपक अकाशवाणीसे प्रसारित हो चुके हैं।

१.२.२ अर्वाचीन-वस्तु-परक

आधुनिक सन्तोंपर कुछ नाटक रचे गये हैं। डॉ० यतीन्द्र विमल चौधुरीने जहाँ सात अंकोंका नाटक महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यके मुख्य शिष्य श्री हरिदासपर लिखा 'महाप्रभु हरिदास चरितम्'[3] वहीं इस शतीके पांडिच्चेरी वासी महान् योगी अरविन्दपर पाँच अंकोंका 'भारत हृदयारविन्दम्'[4] भी रचा, जिसे चौधुरीजीकी 'प्राच्यवाणी नाटकगोष्ठी' ने अरविन्दाश्रममें अभिनीत भी किया।

चरित्र नाटकोंसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और समाजकी स्थायी सम्पत्ति होते हैं सामाजिक नाटक। डॉ० वीरेन्द्र भट्टाचार्यका 'शार्दूलशकटम्'[5] ऐसी ही सामाजिक कृति है जो संस्कृत साहित्यकारपर नवीनताकी छापका प्रतिनिधित्व करता है और इस दृष्टिसे महाकवि शूद्रकके 'मृच्छकटिक' का स्मरण कराता है। पाँच अंकोंमें 'आदिशूर' और 'श्यामाङ्गा' नायक-नायिका हैं। आदिशूर परिवहन-कर्मी=बसमें काम करनेवाला साधारण सरकारी कर्मचारी है, जिसके माध्यमसे श्रमिकों और कर्मजीवियोंके वास्तविक जीवनकी झाँकी दी गयी है। वस्तुकल्पना और रचना वैचित्र्य पाठकको आमोद देते हैं। निश्चयही ऐसे नाटक संस्कृत-नाटक विकासकी महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं और कविकी सामाजिकताके प्रतीक।

१.२.३. राष्ट्रप्रेम-परक

संस्कृत-नाटककारकी राष्ट्रीय चेतना इस कालमें पर्याप्त सचेष्ट दीख पड़ती है। कविताओंकी भाँतिही नाटकोंमें भी

१.-२. ले०, प्रका० — डॉ० वे० राघवन्, संस्कृत रंग, ७ श्री कृष्णपुर वीथी मद्रास-१४, प्रत्येक मूल्य)५०

३.-४. प्राच्यवाणी संस्कृतमाला, ३ फैडरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता, १९६० मूल्य रु० ३) व ३)५०

५. संस्कृत साहित्य परिषद्, १६८/१ राजा दीनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता-४, १९६९ रु० ३)

अनेक अच्छे स्तरकी राष्ट्रप्रेमसे आप्लावित कृतियां संस्कृत-साहित्यकारकी जागरूकता एवं कालज्ञताकी परिचायक हैं। श्री भि० वेलणकरका 'रणश्रीरङ्गः'[1] सर्वप्रथम गिनने योग्य है। इसमें तीन-तीन अंकोंके तीन खण्डरूपक हैं। पहला है, 'कालिन्दी' जिसके पात्रों— उत्तर भारतभू, गंगा, यमुना, मगधभू, बङ्गभू, समुद्र आदिसे भौगोलिक स्थलोंका दिग्दर्शन है। दूसरा खण्ड 'कैलास कम्प' देव, असुर, गणेश, परमेश्वर आदिका वृत्तान्त सुनाकर अन्यापदेश विधिसे आजकलके चीनी आक्रमणका संकेत देता है। तीसरे खण्ड 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी' में झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाईकी वीरतापूर्ण ऐतिहासिक यशोगाथा है। इसका कुछ भाग आकाशवाणीद्वारा प्रसारित भी हुआ। दूसरे खण्डका अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

डॉ० बी०आर० शास्त्रीका 'विक्रान्त-भारतम्'[2] चौदह दृश्योंका नाटक है जिसके उपक्रममें विदेशी चीनियोंके आक्रमणकी बात करके नाटककार हमें ग्रीकके चक्रवर्त्ती अलक्षेन्द्रके भारतपर आक्रमणका और चाणक्यकी बुद्धिके सहारे मौर्य साम्राज्यके संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्तकी विजयका इतिहास स्मरण कराता है। जिस पृष्ठभूमिमें इसका सृजन हुआ है वह इसे केवल ऐतिहासिक नाटकके स्तरपर न रहने देकर राष्ट्रीय गौरव और आत्मविश्वासकी भावना जगानेवाले देशप्रेमके साहित्यमें स्थान दिलाती है। श्लोकों व गीतोंसे युक्त यह नाटक भी आकाशवाणीपर प्रसार पा चुका है।

डॉ० यतीन्द्र विमल चौधुरीका एक नाटक है 'महिमय-भारतम्'[3] जो दिल्लीमें ग्रीष्म नाटकोत्सवमें प्रदर्शित भी हुआ। पहले, वैदिक व पुराण कालकी भारतीय महिमा, फिर मुहम्मदके युगमें भारतकी स्थिति, और अन्तमें स्वतन्त्र भारतके प्रयत्नों और आदर्शोंकी झाँकी, इन सबके द्वारा देशके नाड़ी-संस्थान जैसी महानदियोंकी महत्ता प्रतिपादित की गयी है। दामोदर नदी जल-परियोजना जैसे राजकीय कार्यकी उपयोगिता और गरिमा गायी गयी है। स्वतन्त्र होते ही देशमें होनेवाले बहुमुखी विकासकी गति अब चाहे भ्रष्टाचार व विदेशी हस्तक्षेप आदि के कारण लक्ष्यभ्रष्ट हो गयी हो, किन्तु प्रारम्भकी दशाब्दीमें संस्कृत व संस्कृतिके

---

१. गीर्वाणसुधा प्रका०, झावलाबाड़ी, बम्बई-२१, रु० ५)

२. ओस्मानिया यूनिवर्सिटी, विवेकनगर, हैदराबाद-२०, रु० ४)८०

३. प्राच्यवाणी संस्कृतमाला, कलकत्ता-९, १९६०, रु० १)

प्रति जो लगाव व उत्साह रहा उसे स्वीकारते हुए कवि डॉ० राघवनने 'पुनरुन्मेषः'[1] का सृजन किया और नयी दिल्लीमें, मई १९६०के ग्रीष्म नाटकोत्सवमें 'संस्कृतरंग' ने डॉ० राधाकृष्ण प्रभृति राजनेताओं व विद्वानोंके सम्मुख उसका अभिनय भी किया।

१.२.४ रस-विशेष-परक

नाटकके माध्यमसे रसोद्रेकके लिए जिन कुछ रसोंको इस कालमें अधिक प्रिय कहा जाना चाहिये, देश प्रेममें मिश्रित वीर रसके बाद, हास्य और शान्त उनमें प्रमुख हैं। शृङ्गारका स्थान गौण ही है। प्रहसनोंमें श्री महालिंग शास्त्रीका 'उभयरूपकम्'[2] आजके तथाकथित सुसभ्य मानवका उपहास करता है। कुक्कुटस्वामीका पुत्र 'छागल' मद्राससे अंग्रेजी और उसके संस्कार लेकर 'परिष्कृत' होकर गाँव लौटकर ग्रामीणोंकी हँसीका पात्र बनता है। सासद्वारा भी नयी बहूकी हँसी उड़वायी गयी है। लेखक आजके नवीकरणके प्रवाहमें बह जाना हास्यास्पद समझता है। अपनी संस्कृतिको पहचानना ही उसका सन्देश है। शुद्ध हास्यका एक उदाहरण है 'पाठक मुख विस्फोटकम्' जो विपरीतार्थ-बोधक भाषा-शैलीके विविध प्रकरणोंसे सहृदय विद्वानोंका मनोरंजन करता है।

प्रहसनके माध्यमसे आध्यात्मिक तत्त्व हृदयंगम करानेका एक नवीन प्रयोग किया है कविकोकिल डॉ० वे० राघवन्ने अपनी 'विमुक्तिः'[4] नाटिकामें। जैसे आत्मा मन और इन्द्रियोंसे पीड़ित है वैसेही एक आत्मनाथ ब्राह्मण अपनी दुर्विनीत भार्या और पुत्रोंसे सन्त्रस्त है। इसके कारण बेचारा आत्मनाथ किसप्रकार हास्यास्पद स्थितियोंसे निकलता है यह दर्शाते हुए उसके एकान्त सेवनसे ही विमुक्त होनेका उपाय सुझाया है।

धार्मिक शिक्षाके लिए नाटकका आश्रय किसप्रकार लिया जा सकता है, इसका एक रूप स्वामी सदाशिवतीर्थ के 'सनातन धर्म सर्वस्वम्'[5] में है। पाँच अंकोंके इस नाटकमें सनातन धर्मके अंगों—(१)मूर्तिपूजा,(२)नामजय, (३)सत्संग,(४)भक्ति और (५)ज्ञानको संवादके माध्यमसे विशद किया है। जहाँ जो उपयोगी हुआ वहाँ वैसाही पात्र जोड़ लिया गया है, चाहे वह किसी कालका हो। मार्कण्डेय, प्रह्लाद और युधिष्ठिर जैसे प्राचीन पात्र भी हैं तो सूरदास जैसे मध्ययुगीन पात्र भी। कहीं तुलसी दासजीके दोहोंको भी, तो कहीं गान्धीजीके अंग्रेजी उद्धरणोंको भी ले लिया है। इसप्रकार समन्वय भी किया है कि जो जिस मार्ग को अपनाता है उसीसे परम फल पा लेता है। ऐसा समन्वयात्मक दृष्टिकोण विरल ही है पर है सामयिक उपयोगका।

चाणक्य और शिवाजी जैसे इतिहासपुरुष जो अपनी राजनीतिक तत्परताके लिए दृष्टान्त रहे हैं, उनपर शान्त रसके नाटकोंका लेखन भी स्वयंमें दृष्टान्त है। पर इस कालमें यह हुआ है। 'चाणक्यविजयम्'[1] में श्री विश्वेश्वरने प्रसिद्ध कथावस्तुसे चाणक्यकी धर्म स्थापना वृत्ति, स्वयं विरक्तता,देशके कल्याणार्थ ब्राह्म व क्षात्रशक्ति अथवा शास्त्र व शस्त्रके सहयोगकी स्थापना आदि उदात्त और दूरदर्शी भावोंका प्रतिपादन किया है। इसीप्रकार, शिवाजीका सन्त तुकाराम, रामदास (समर्थगुरु), आदिसे जो सम्बन्ध रहा है उसीको विषय बनाकर पाँच वृत्तान्तोंके साथ पाँच अंकका 'श्री शिव वैभवम्'[2] वीर शिवाके उन सात्त्विक भावोंको उजागर करता है जिन्होंने उसे अपने राज्यके लिए संन्यासीके रंगवाले भगवा ध्वज अपनानेकी प्रेरणा दी।

जब शृङ्गार रसकी बात आती है तो संस्कृत-साहित्यकारकी कल्पनामें अबभी जो आलम्बन सर्वप्रथम उभरता है वे हैं श्रीकृष्ण, गोपियोंके मोहन, राधा और रुक्मिणीके रसिया। गोपीवल्लभकी लीलाएँ अबभी रची, खेली और गायी जाती हैं। डॉ० राघवन् जैसे विद्वान् लेखककी 'रासलीला'[3] गानके लिए रागोंकी सूचना सहित ऐसा नाट्यगीत है जो भागवतपुराणकी कथापर आधृत है और 'गीतगोविन्द' की परिपाटीको जीवित करता हुआ आकाशवाणीसे प्रसारित हो चुका है। गोपी चीरहरण पर भी संस्कृत प्रतिभाजैसी वरिष्ठ पत्रिकायें नाट्यगीत

---

१. संस्कृतरंग, मद्रास-१४, रु०)५०
२. प्रका०—साहित्य चन्द्रशाला, तिरुवालङ्गाडु,तञ्जापुर, रु० ३)
३. ले०—श्री रूपलाल कपूर, भारती निकुञ्ज, ९ डीमैलौज रोड, मद्रास-१२
४. प्रका०—स्वयं, श्री कृष्णापुरवीथी, रामपेट्ट, मद्रास-१४, रु० २)
५. प्रका०— नारायणाश्रम अयोध्या, उ० प्र०, रु० १)

---

१. प्रका०--ऋषिधाम, दत्तपुकुर, २४ परगना, प०बंगाल, रु० ६)
२. ले०—श्री वि० पां० बोकिल, १०३ सदाशिव पेठ, पूना-२, रु० ३)
३. प्रका०—संस्कृत रंग, ७ श्री कृष्णपुर वीथी, मद्रास-१४, रु०)५०

देखनेमें आया। ऊपर यथास्थान चर्चित 'रुक्मिणीहरणम्' जैसे महाकाव्यके समान **'श्रीकृष्ण रुक्मिणीयम्'**[1] नाटकभी पौराणिक कथांशको लेकर चला है पर साथही उत्पाद्य (कल्पित) कथाके मिश्रणसे नवीन रसोत्पत्तिमें निपुणता दर्शाता है।

१.२.५.संकलन-परक (मिश्र)

आधुनिक संस्कृत-साहित्यकारोंका प्रयास बृहत् काव्यग्रन्थकी रचनाके साथ संक्षिप्त लेखनकी ओर भी है। इसलिए एक साहित्यकार कभी-कभी अपने लघु काव्य-बन्धों, नाटकों और गद्य-बन्धोंको भी एक जिल्दमें जोड़ कर छपवा लेता है। कविताओंमें भी हम इसप्रकारके शुद्ध काव्य-मय संकलनोंकी चर्चा कर चुके हैं। नाटकोंमें ऐसे शुद्ध नाटकीय संकलन कम देखनेमें आये हैं। **'पाठक-मुख-विस्फोटकम्**, जिसका उल्लेख ऊपर हास्य रसके नाटकोंमें हुआ है, यूँ तो १५ प्रकरणोंका संग्रह है, पर उसमें एक रसप्रधान होनेसे 'मिश्रता' नही है। मिश्र संकलनोंके उदाहरण हैं **'मणिमञ्जरी'**[2] और **'काव्यनाटक संग्रह'**[3] जैसे ग्रन्थ। प्रथममें पाँच मणियाँ हैं। एक, 'देवयानी' और दूसरा 'यामिनी' रूपक हैं, जो क्रमशः महाभारतका आख्यान व बिल्हणकी जनपरम्परागत कथा-वस्तुपर आधृत हैं। तीसरी मणि है बाल्मीकिका तमसा तट का वृत्तान्त 'शोकः श्लोकत्वमागतः', और चौथी, विदेशमें गान्धीजीका गीताध्ययन आदि 'गान्धिचरितम' नामसे। दोनों काव्य अनुष्टुप् छन्दमें हैं। पाँचवीं मणि है 'गेयावलि', सात गेय पदोंका खण्डकाव्य। द्वितीय 'संग्रह' में पहले दो सर्गका 'सदाशिव-ब्रह्मेन्द्र-चरित' है, परमहंस श्री शिवरामकृष्णके विद्याध्ययन और विवाहपरलघुकाव्य। फिर है, 'उदारता जनकस्य', एक कहानी जिसमें निरक्षर कननकाचल किन्हीं वृद्ध दम्पतीको सरलतासे छलनेमें सफल हो जाता है। अन्तमें हैं दो लघु रूपक (नाटक), 'कुमार विजय' और 'ध्रुवचरित' जो प्रसिद्ध पौराणिक कथाओंपर आश्रित हैं। इसप्रकार यह छोटा-सा संग्रह ललित साहित्य की तीनों प्रमुख विधाओंका रसास्वादन करानेमें समर्थ है।

१. ले० — श्री वि० पां० बोकिल, १२०३, सदाशिवपेठ, पूना-२, रु० ६)
२. ले० — श्री बी० आर० शास्त्री, श्रीनिवास, १-१-३३६/६३, विवेकनगर, हैदराबाद-२०, रु० २)
३. ले० — श्री सुन्दरेश शर्मा, पश्चिम महावीथी, तंजौर, १६७१, रु० १)५०

१.३. गद्य

कविताकी तुलनामें नाटक, और नाटककी तुलनामें गद्य क्रमशः कम अपनाया गया है। सम्भवतः इसलिए कि साहित्यकार जब भावप्रवण होता है तो छन्दोबद्ध अभिव्यक्ति उसे अधिक सन्तोष देती है। दूसरे सामान्य पाठकपर भी वही अधिक प्रभविष्णु रहती है। नाटकमें कथाको यथोचित काट-छाँटकर संवादोंके द्वारा कहना होता है जो कुछ कठिन है, कल्पना-साध्य है। इसलिए कवितासे कम प्रयुक्त है। पर गद्य-लेखनमें तो न छन्दोंकी बाधा न संवादों की लगाम। फिरभी इस सरणिका कम प्रयोग क्यों? प्रतीत होता है कि गद्य-मय काव्य-सृजन इसलिए कठिन है कि इसमें लेखकके पास कोई आवरण नहीं जिससे भाषा या भावके अनौचित्यको ढक सके। अनावश्यक कथांश या अनुचित शब्द-प्रयोग सामने पड़ा दिखायी दे जाता है। जब तक गद्यलेखक प्रत्यक्षर सचेष्ट न हो, प्रभावित नहीं कर सकता। इसीलिए तो कहते आये हैं—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'। दैनिक प्रयोगके अभ्याससे वंचित आधुनिक संस्कृत-साहित्यकारके लिए गद्य में यथेष्ट सजीवता उत्पन्न करना उत्कृष्ट प्रतिभाकी अपेक्षा रखता है, जिसकी स्वल्पता अवश्य है किन्तु अभाव नहीं।

जिस आधारपर ऊपर कविता व नाटकका विभाजन किया गया है, उसी वस्तुगत आधारपर गद्यकाव्यका विभाजन करते हुए कुछ भिन्न नाम दिए जा रहे हैं जिससे इनका प्रतिपाद्य अधिक सुविधासे हृदयंगम हो सके।

१.३.१. पौराणिक

प्राचीन कथ्यको लेकर गद्यमें कथा कहनेकी प्रवृत्ति कम हुई है। पर इस कार्यमें निष्ठावान् विद्वान् प्रवृत्त होते हैं, अतः जो लिखा गया है, अच्छा लिखा गया है। रामायण की कथासे अनुप्राणित **'वैदेही विवाहम्'**[1] अपने पूर्वभागमें 'तपः स्वाध्याय निरत' वाल्मीकिके रामायण लेखनमें प्रवृत्त होनेसे लेकर रामजन्म तक, और उत्तर भाग में विश्वामित्रके आगमनसे लेकर सीता विवाहतककी बाल-काण्ड' की कथा कहता है। शब्दोंमें श्लेष, अनुप्रास और ओज गुण है, अप्रसिद्ध शब्द नहीं हैं, लालित्य है, समास भी हैं तो लघु पद भी। रामायणके कई अस्पष्ट स्थलोंकी व्याख्या भी करता है। लोकानुभवपर आधृत भावगाम्भीर्य

१. ले० व प्रका०—म० म० श्री के० ए० कृष्णमूर्त्ति शास्त्री, १५/६ मेन रोड, मद्रास-२८, रु० २)५०

भी है। इसीप्रकार भगवान् शिवद्वारा राक्षस त्रिपुरके नाशकी पौराणिक कथा कहती है 'त्रिपुरदाहकथा'[1] जो प्रौढ़ सन्दर्भ, भावगाम्भीर्य, अनुप्रासयुक्त, नूतनपदप्रयोग (जिनपर यथोचित टिप्पणी भी की गयी है), आदिके द्वारा कादम्बरीकी प्राचीन गद्य परम्पराका स्मरण कराती है। इसमें त्रिपुरासुरद्वारा की हुई स्वर्गकी दुरवस्था, कैलास-पुर, असुरकी पुरत्रयी आदि विविध भौगोलिक वर्णनोंमें शास्त्रीजीका विशिष्ट पाण्डित्य परिलक्षित होता है।

१.३.२. ऐतिहासिक

पौराणिक कथ्यकी तुलनामें वस्तुको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें देखनेकी प्रवृत्ति बढ़ी है जिसके साथ नवीन वस्तु और उसमें भी देशप्रेम या अपना इतिहास निबद्ध करना लेखकोंको अधिक भाया है। यह एक शुभ लक्षण है, जो संस्कृतकी प्रगतिशीलताका सूचक है। निस्सन्देह, इसप्रकार के गद्यग्रन्थोंमें काव्यात्मकताकी अपेक्षा वर्णनात्मकता प्रधान हो जाती है, किन्तु फिरभी सरसता किसी-न-किसी अंशमें बनी रहती है और सृजनात्मकता भी।

कालक्रमानुसार प्राचीन भारतके परिचयात्मक '**भारतेतिहासः**'[2] में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पतिने तीस अध्यायोंमें सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंका चरित्र चित्रण किया है, तोभी इसे मात्र पौराणिक कथा नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें एक तो दृष्टि ऐतिहासिक है और दूसरे भारतकी असाधारणता दर्शाना इसका प्रमुख उद्देश्य है। स्वतन्त्र भारतमें इसप्रकारके ऐतिहासिक सन्तुलनकी वास्तविक अपेक्षा है जिससे नयेकी चकाचौंधमें अपना पुराना गौरव और अनुभव विस्मृत न हो। श्री रामनिरीक्षणसिंहका '**स्वाधीन भारतम्**'[3] भारतवर्षके प्रथम कालसे लेकर प्रथम पंचवार्षिक योजनातकके सारे इतिहासका विहंगावलोकन कर इसी अपेक्षाको पूरा करता है। पहले चार परिच्छेदोंमें प्राचीन भारत, एकमें यूरोपियोंका आगमन और अंग्रेजी साम्राज्य, फिर नौ परिच्छेदोंमें आधुनिक भारतका चरित्र प्रतिपादित हुआ है, सुबोध भाषा व मनोहर शैलीमें। इसी भाँति, आधुनिक भारतके इतिहासको, स्वतन्त्रताप्राप्तिके लिए प्रारब्ध उद्योगसे लेकर विवेकानन्द, बा० ग० तिलक, म० गान्धी और ज० नेहरू—इन चारोंके युगोंका पृथक्शः विभाजनकर तत्सम्बद्ध ऐतिहासिक तथ्य-विश्लेषणको सरल गद्यद्वारा सात अध्यायोंमें प्रस्तुत करता है—स्वर्गीय श्री वामनकृष्ण चितलेका '**भारत स्वातन्त्र्यम्**'[1]।

भारतकी स्वतन्त्रतामें योगदान करनेवाली संस्थाओं और वीरोंपर भी गद्यलेखकोंकी लेखनी चुप नहीं रही है। कांग्रेस संस्थापर श्री दिनेशप्रसाद पाण्डेयकृत '**भारतीय कांग्रेस्येतिहासः**'[2] उपलब्ध है। भारतको परतन्त्रतासे मुक्त करनेके लिए साहसका मार्ग अपनाकर ब्रिटिश आधिपत्यको उलटनेमें यत्नशील वीर सावरकरकी कम ज्ञात या अज्ञात कथाओंको उजागर करती है श्री गजानन बालकृष्ण पलसुलेकी '**विनायक-वीर-गाथा**'[3]। ऐसे वीरोंकी बलिदानी गाथाएँ भूलना हमारी कृतघ्नता होगी जिनके आधारके अभावमें स्वातन्त्र्य मन्दिरका निर्माण असम्भव ही रहता।

राष्ट्रीय इतिहासके साथ-साथ प्रान्तीय इतिहास भी गद्यकारका विषय बना। प्रान्तीयताके सीमित रूपको अवश्य निन्दनीय कहा जायेगा, किन्तु स्वदेश-प्रेमको जगाने वाला प्रान्तीय गौरव भी देश-प्रेमका सहायक तत्त्व होता है। इस दृष्टिसे कश्मीर प्रदेशका वर्णन, प्राचीनता, पावनता, सौन्दर्य, शारदाका देश होना, वहाँकी विद्याएँ, राजा, कवि, विद्वान्, आधुनिक कश्मीरका चरित्र आदि निबद्ध करनेवाला '**काश्मीरेतिहासः**'[4] अभिनन्दनीय है, जो ऐतिहासिक व भौगोलिक ग्रन्थोंकी क्षतिपूर्ति करता है।

१.३.३ उद्बोधक

कथाके माध्यमसे अच्छी बातें सिखाना पुरानी परिपाटी रही है। इसका आधुनिक रूप पण्डिता क्षमारावकी

---

१. ले०—श्री रामस्वरूप शास्त्री, भू० पू० अध्यक्ष, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, रु० १)५०

२. प्रका०—हरयाणा संस्कृत संस्थान, गुरुकुल झज्झर, रोहतक, रु० ३)

३. प्रका०—साहित्य सदन, समर्थ, कल्याणपुर, दरभङ्गा, बिहार, १९५८, रु० ३)

---

१. प्रका०—शारदाश्रम मन्दिर, भवानीशंकर मार्ग, बम्बई-२८, १९६९, रु० ४)२५

२. प्रका०—उमाशंकर वैद्यालय, मुरारपट्टी, रघुनाथपुर, सारन, रु० २)

३. शारदा गौरवमाला-१२, 'शारदापत्रिका', ४२५, सदाशिव, पूना-२

४. सम्पा०—डॉ० मण्डन मिश्र, लालबहादुर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, १७३ डी, कमलानगर, रु० १५)

'कथामुक्तावली'[१] में द्रष्टव्य है जिसमें सरस और उपदेश-गर्भित १५ कथाएँ दी गयी हैं। जैनाचार्य श्री चन्दनमुनि की **'अर्जुनमालाकार-कथा'**[२] भी ५८ पृष्ठोंकी गद्यकथा है जिसमें नूतन काव्यत्व है, लघुवर्णन द्वारा धार्मिक-सामाजिक नीतिबोध है। हिन्दी अनुवाद साथ देनेसे बालकोंके लिए भी हितकारी है। श्री चन्दनमुनि इसप्रकारके उद्बोधक साहित्यसृजनमें लगे रहते हैं। उनकी दर्जनों ऐसी अन्य कृतियां संस्कृतमें हैं, और प्राकृतमें इसके अतिरिक्त हैं। बिना लागलपेटके सीधे ढंगसे उपदेश देनेवाले लेख भी वे लिखते रहते हैं। **'ज्योतिःस्फुलिङ्गाः'**[३] में आत्मशक्तिके तेजसे स्फुटित ५६ गद्यमय अनुशासन हैं जिनमें कुछ शीर्षकोंके भाव हैं—'अभी प्रारम्भ कर', 'विषको भी पीयूषमें बदल', 'समय ही बल या दौर्बल्य देता है', 'नित्य नया बन', आदि। ये सभी दैनिक जीवनोपयोगी हैं अतः मननीय और आचरणीय हैं।

आधुनिक भारतके विद्यार्थी-वर्गके प्रबोधनार्थ प्राचीन व अर्वाचीन ऐतिहासिक कथाओंका आश्रय लेकर छात्रधर्म, ब्रह्मचर्य, विद्याग्रहण, मनपर विजय, गुरुभक्ति, देशभक्ति, पितृभक्ति, सहयोग, सौन्दर्य अनुभूति, भाषणकला, पुस्तकालय, स्वतन्त्रता, गौ, राष्ट्रध्वज, सुरभारती (संस्कृत) दान, ऐक्य आदि विषयोंपर सरल शैलीमें लघु प्रबन्धोंका ग्रन्थ **'सफलो विद्यार्थी'**[४] श्री रामचन्द्र भारतीने छात्रोंके लिए विशेषतः उपयोगी बना दिया है, क्योंकि यह निबन्ध लेखनमें सहायक भी रहता है। इसीप्रकारके दो ग्रन्थ श्री वासुदेव द्विवेदीके हैं **'बालसदाचार शिक्षा'**[५] और **'एकचारिणीचर्या'**[६]। पहलेमें पुराणों व स्मृतियोंसे सदाचार परक सरल वचनोंका संकलन किशोरोंके लिए है। दूसरेमें वात्स्यायन, मनु, व्यास आदि मुनियों द्वारा निर्दिष्ट नारी धर्मका संकलन है। दोनोंका हिन्दी विवरण भी दिया गया है। दोनों भारतीयोंमें प्राचीन संस्कृतिकी जागृति के लिए हैं।

---

१. प्रका० - श्रीमती लीलाराव दयाल, ३७ न्यू मैरीन लाईन्स, बम्बई-१, रु० ४)५०

२. ३. प्रका०—शान्ति भवन, ६४ ए० एफ० लेन, चिकपेट, बंगलौर-२ ए

४. प्रका०—स्वयं, २५१८, चूड़ीवालान, दिल्ली, १९७०, रु० ४)२५

५--६. प्रका० —सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय, वाराणसी, प्रत्येक रु०)८०

१.३.४ संस्कृत-शिक्षणात्मक

संस्कृतके व्याकरणको सुबोध रूपमें हृदयंगम करानेके लिए प्रारम्भसे ही नाना उपाय होते रहे हैं। साहित्यके माध्यमसे भाषाकी शिक्षा, वैसेभी आज कुछ अधिक मान्यता प्राप्त है। इसी दृष्टिको सामने रखकर रची गयी एक संस्कृत कथा **'कौमुदी-कथा-कल्लोलिनी'**[१] श्री रामशरण शास्त्रीकी कृति है। इससे पूर्व 'भट्टिकाव्य' में सर्वप्रथम व्याकरण नियमोंके प्रयोग दिखानेका प्रयास हुआ था, पर वह कुछ दुरूह प्रयोगोंसे बोझिल था। इसमें सन्धि, कारक आदिका पृथक् शीर्षकोंमें निरूपण किया गया है और सम्बद्ध नियम पाद-टिप्पणियोंमें दिये गये हैं। फिरभी है तो यह साहित्य, पाठमाला तो है नहीं कि अन्य प्रकारके प्रयोगोंको किसी शीर्षक-विशेषमें न आने दिया जाये। इससे भी छोटी कक्षाओंके विद्यार्थियोंकी अपेक्षा व्याकरणका प्रारम्भिक ज्ञान-प्राप्त लोगोंको अभ्यासका लाभ मिलनेकी अधिक सम्भावना है। संस्कृत शिक्षणात्मक सरल साहित्यकी अपेक्षा अबभी बनी हुई है।

१.३.५ औपन्यासिक

कथाकीसरसता, भावोंकी मार्मिकता, वर्णनकी जीवन्तता और वस्तुकी सजीवतासे पाठकको रसकी अलौकिकतातक ले जानेवाली कृतियां, और वे भी गद्यमें, विरल हैं। पाश्चात्य साहित्यसे उपन्यास शैलीको लेनेवाली बात संस्कृतके सन्दर्भमें केवल भाषाकी सरलता या जीवनसे सम्पृक्ततातक तो सही है। अन्यथा, कादम्बरी जैसे उपन्यासके रहते विदेशसे इस विधाका ऋण लेनेकी आवश्यकता नहीं उठती।

आधुनिक विषय समूहको लेकर एक नया प्रेमाख्यान **'कुसुमलक्ष्मी'**[२] इस कालका सम्भवतः ऐसा अकेला उपन्यास है जिसमें कथा कल्पित अवश्य है पर उसका धरातल बंगलौरसे मुजफ्फरपुरतकके कन्नड़, मराठी, हिन्दी जगतको छूता हुआ समस्त आधुनिक भारतको प्रतिबिम्बित करता है। आधुनिक पदार्थोंके नाम प्रान्तीय भाषाओं या अँग्रेजी के अनुकरणपर संस्कृतमें भी बना लिये गये हैं जो लगभग समीचीन हैं। यह समस्या संस्कृतमें अभी बनी ही हुई है कि नये सन्दर्भके शब्द समूहको उसी रूपमें कुछ घड़कर

---

१. प्रका० – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६१, रु० ८)७५

२. ले०—श्री आ० र० रत्नपारखी, एफ० २६ नारोजी नगर, नई दिल्ली-१६, १९६१, रु०, ४)५०

अपनाया जाये या उनके पर्याय बनाये जायें। यह पुस्तक इस विषयपर भी अच्छा मार्गदर्शन करती है।

इसकी तुलनामें इसी कालका एक और उपन्यास **'चन्द्रमहीपतिः'**[1] लिया जाये, जिसकी कथा कल्पित भी है और शब्दप्रयोग भी मुक्तहस्त है। इसमें नायककी तीन पत्नियोंको समाज सेवामें तत्पर दर्शाया है। उनके माध्यम से कवि कुछ आदर्श प्रस्तुत करता है। पर न तो भाषा-शैलीमें एकरूपता है और न कथाबन्ध में। कहीं नदी-पर्वतों के वर्णनमें तो कहीं चित्रकाव्यके प्रणयनमें लेखक उलझ कर रह गया है। उपन्यासमें कथाको जब विस्तार दिया जाता है तो एकरूपता बनी रहनी अनिवार्य है। नहीं तो अच्छा यह होगा कि विविध कहानियोंका या वृत्तान्त-वर्णनोंका संकलन निकाला जाये, जैसा **'सूर्यप्रभा कि वा वैभवपिशाचः'**[2] में हुआ है। इसमें रक्षापुरुषोंसे लेकर धनिकों, प्रतिष्ठित पुरुषों और संसत्सदस्योंतकको मनोवृत्तिके विश्लेषणका यत्न है; गृहलक्ष्मी, पूजक, सुन्दरी, चिकित्सक आदिके वृत्तान्त हैं; बाष्पशकटी (रेलगाड़ी), ग्रन्थागार, कलंकित नगरी आदिके वर्णन हैं; और, शृंगारपर भी चर्चा है और भारतीय संस्कृतिके स्वरूपपर भी। इसप्रकार यह आधुनिक समाजके यथार्थ रूपको दोषापनयनके लिए उद्घाटित करता है। यद्यपि यह उपन्यास नहीं है, न कथा संकलन ही, फिरभी इसकी महती विशेषता है कि इसमें भारतीय समाज अपने सही रूपमें प्रतिबिम्बित होता है। इसी गुणसे यह औपन्यासिक रसास्वाद करानेमें सक्षम हो गया है।

संस्कृत-साहित्यके सृजनात्मक स्वरूपकी यह झाँकी वास्तविक साहित्यका दशमांश कठिनाईसे प्रस्तुत कर पायी होगी। अनेक महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय रचनाएँ भी दृष्टिमें न आनेसे छूट गयी होंगी। आज प्रकाशित होने वाली ५० से ऊपर संस्कृत-पत्र-पत्रिकाओं (जिनमें दो तो दैनिक पत्र है) में आने वाले लघु लेखों, कविताओं, कहानियों, नाटिकाओं आदिकी चर्चा तो बिल्कुल हो ही नहीं सकी। पर फिरभी इस उल्लेखको प्रतिनिधित्वके योग्य तो कहा ही जा सकता है जिसमें छोटी-बड़ी, नयी-

---

१. ले०—श्रीनिवास शास्त्री, ११८ ऐम्हर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता-६, रु० २)

२. ले०—कविराज श्रीनिवास शास्त्री, (श्री निवास आयुर्वेद भवन) १६१/१, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-६, १९६८, रु० १०)

पुरानी सौ-सवा-सौ कवि-सृष्टियोंके वस्तु-तत्त्वके विस्तार को विविध काव्य गुणोंकी आभामें निरखनेका यत्न है। इस आधारपर कहना होगा, संस्कृतमें मौलिक प्रतिभा इस कालमें प्रभूत साहित्य-सेवा करती रही है, भाषाका प्रयोगाभाव भी उसे कुण्ठित नहीं कर सका है। इस मौलिक सृजनके अतिरिक्त अन्य भाषाओंसे संस्कृतने क्या ग्रहण किया है या अपने साहित्यसे क्या दिया है अब यह और देख लिया जाये।

२. अनुवादात्मक : अन्य भाषाओंसे

भाषाओंके पारस्परिक आदान-प्रदानमें अनुवादका उपयोग होता आया है। किन्तु संस्कृत-भाषामें किसी विदेशी भाषाके या अन्य भारतीय भाषाओंके साहित्यका रूपान्तर बीसवीं शतीकी घटना है। इससे पूर्व ऐसा कोई प्रयास या तो हुआ ही नहीं और यदि हुआ भी होगा तो उसे महत्त्व नहीं दिया गया। स्वतन्त्रताके बादसे तो लेन-देनकी भावनामें उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। न केवल स्वदेशी भाषाओंके उत्तम ग्रन्थोंको संस्कृतमें लानेकी चेष्टा प्रारम्भ हुई, प्रत्युत् विदेशी साहित्यको भी।

१.२. अंग्रेजीसे

जिसप्रकार हमारे विदेशी-सम्पर्कका प्रमुख माध्यम अंग्रेजी बनी हुई है उसीप्रकार विदेशी साहित्यको हमतक पहुँचानेका द्वारभी यही भाषा है। अंग्रेजीके प्रख्यात नाटककार शैक्सपीयरको कालिदासके समकक्ष रखकर देखनेकी लालसाने सम्भवतः इसके नाटकोंके रूपान्तरको प्राधान्य प्रदान किया है। श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा इस कार्यमें विशेषरूपसे प्रवृत्त हुए। स्वसम्पादित पत्रिका मनोरमाद्वारा आपने शैक्सपीयरके अनेक रूपकोंका अनुवाद क्रमशः प्रकाशित किया है। शैक्सपीयरके 'ऐज़ यू लाइक इट', 'ट्वैल्थ नाइट', तथा 'मच ऐंडो अॅबाउट नथिंग' ('As You Like It', 'Twelfth Night', 'Much Ado About Nothing') के संस्कृत अनुवाद **'यथा ते रोचते'**[1], **'द्वादशी रात्रिः'**, तथा **'बह्वारम्भो लघुक्रिया'**[2] शर्माजीने ही किये हैं। भाषा सरल और

---

१. मनोरमा कार्यालय, ब्रह्मपुर गञ्ज, उत्कल, १९६९, रु० ३)५०

२. एम० पी० शिरोमणि मुद्रणशाला, ब्रह्मपुर गञ्ज, उत्कल, रु० ३) प्रति

गद्य-पद्य दोनोंका यथास्थान प्रयोग है। शेक्सपीयरके ही 'हैमलैट' (Hamlet, Prnice of Dennmark) का संस्कृतानुवाद कलकत्ताके श्री सुखमय मुखोपाध्यायने 'महाकविश्रीसेक्सपीयरविरचितं दीनार्कराजकुमारहेमलेखम्'[1] नामसे किया है। अनुवादकने कालिदास आदि कवियोंके विशिष्ट पदप्रयोगोंको यथोचित प्रयुक्त किया है जिससे भिन्न वातावरणमें भी संस्कृत-शब्दोंका अर्थगाम्भीर्य प्रकट होता है।

अंग्रेजीमें किसी भाव या प्रसंग विशेषका चित्रण करने वाली अनेक लघु कविताएँ बड़ी मार्मिक होती हैं। इनके अनुवाद संस्कृत प्रतिभा जैसी पत्रिकाओंमें भी प्रकाशित होते रहते हैं। वर्ड्सवर्थ, टैनीसन आदि अनेक कवियोंके ३५ लघुकाव्योंका अनुवाद 'आंग्ल लघुकाव्यानुवादमाला'[2] में हुआ है। अंग्रेजीकी बालोपयोगी कथाओंमें 'सिन्दबाद द सेलर' (Sindbad the Sailor) अत्यन्त लोकप्रिय कथा ग्रन्थ है। इसका संस्कृत अनुवाद 'पर्यटनशूरः सिन्दबादः'[3] नामसे हुआ है। संस्कृतके छात्रोंके लिए ऐसे आकर्षक अनुवाद उपयोगी हैं।

भारतीय विद्वानोंके अंग्रेजी ग्रन्थोंका संस्कृत अनुवाद भी देखनेमें आया। योगीराज अरविन्दके 'द मदर' (The Mother) का 'श्रीमाता' नामसे एवं उनके द्वारा लिखी दुर्गादेवीकी स्तुतिका व्याख्या सहित अनुष्टुप् श्लोकबद्ध अनुवाद 'दुर्गास्तोत्रम्'[4] रूपमें हुआ है। इनके अनुवादक श्री वेदालंकारद्वारा योगी अरविन्दके अनेक अंग्रेजी लेखोंका अनुवाद भी होता रहा है जो समय-समय पर 'संस्कृत प्रतिभा' पत्रिकामें प्रकाशमें आता रहा।

२.२. रूसीसे

अंग्रेजीके अतिरिक्त अन्य भाषाओंकी ओर संस्कृतमें अनुवादके लिए विद्वानोंका ध्यान कम आकृष्ट हुआ है। इस दिशामें वस्तुतः सन्तुलनकी अपेक्षा है। प्रख्यात रूसी साहित्यकार, टॉलस्टायकी धर्मोदेशयुक्त लघुकथाओंमेंसे सातका अनुवाद प्राप्य है—"टाल्स्टाय्-कथा-सप्तकम्"[1] जो अनुवाददृशा समीचीन अवश्य है, किन्तु बालोपयोगी होनेसे सरलतम भाषा-शैलीकी अपेक्षा रखता है। रूसीके अतिरिक्त फ्रांसीसी, जर्मनी, चीनी, जापानी आदि विविध विदेशी भाषाएँ भी भविष्यमें संस्कृत विद्वानोंकी दृष्टिमें उतरेंगी ऐसी कामना की जानी चाहिये।

२.३. कन्नड़से

भारतकी विविध भाषाओंसे संस्कृतमें अभिनन्दनीय अनुवाद ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है। हर्षका विषय है कि इस क्षेत्रमें दक्षिण भारतीय भाषाएँ अन्य भाषाओंसे बाजी मारती हैं। मैसूर विश्वविद्यालयके अध्यक्ष प्रसिद्ध कर्नाटक कवि श्री पुट्टुप्पने कन्नड़में 'पाञ्चजन्य', 'अग्निहंस' आदि अनेक कविता ग्रन्थ लिखे हैं। उनमेंसे कुछ चुने हुए अंश 'कन्नड़-काव्य-तरंगिणी-कुवेम्पुतरङ्गः'[2] में संस्कृत जानने वाले पढ़ सकते हैं। इनकी कृति 'कुमार व्यास' का अनुवाद भी हो चुका है। कुवेम्पुतरङ्गकी भूमिकामें कन्नड़ कवि श्री पुट्टुप्प लिखते हैं---'अबतक जो कन्नड़ जगत्के अनुभवतक सीमित था वह इस संस्कृतानुवादसे समस्त भारत देशके अनुभवयोग्य हो गया। ऐसी अनुवाद सेवा भारत हृदयकी एकताको दृढ़ करती है।' इसी भाँति, कन्नड़ साहित्यका हृदय माने जाते हैं 'वचन', ये प्रसिद्ध लघु गद्य वाक्य ज्ञान, वैराग्य, भक्तिके बोधक हैं और वीरशैव मार्गके गुरु श्री बसवने कहे हैं। इनमेंसे १०८ वचनोंका संस्कृतानुवाद 'बसव-वचनामृतम्'[3] में पद्यमें या कवितागुणयुक्त गद्यमें हुआ है।

२.४. तमिलसे

संस्कृतको अपना साहित्य सौंपनेमें तमिल भाषा पीछे नहीं रही है। आधुनिक द्रविड़के प्रतिनिधि कवि, राष्ट्रगीतोंके रचयिता श्री सुब्रह्मण्य भारतीकी कतिपय द्रविड़ कृतियोंका संस्कृतरूप 'भारतियार-काव्य-संस्कृतानुवादः'[4] में

---

१. अनु०—श्री सुखमय मुखोपाध्याय, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९७१, रु० ६)५०
२. अनु०—श्री ल० ज० खरे, 'शारदा' कार्यालय, पूना-२, रु० २)
३. अनु०—प्र० द० य० गम्भीर, भारतवाणी प्रकाशन कार्यालय, १४४२-४३, सदाशिव, पूना-३०, १९६६, रु० २)५०
४. अनु०—श्री जगन्नाथ वेदालंकार, अरविन्द सोसायटी, पाण्डिचेरी-२०

---

१. अनु०—डॉ० भागीरथीप्रसाद त्रिपाठी, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-१, १९७०, रु० ३)५०
२. अनु०—श्री सि० जि० पुरुषोत्तम, जयभारति प्रकाशनालय, २२६९/१, विनोबा वीथी, मैसूर-२, रु० २)
३. अनु०—श्री एम० जी० नञ्जुगुण्डाराध्य, बसव-समिति, बैंगलूर-९
४. अनु०—श्री एस० एन० रामदेशिक, २५, बकिंट रोड, त्यागनगर, मद्रास-१७, रु० ३)

देखा जा सकता है। इसमें कृष्ण प्रेमगाथा 'कृष्णन्-पाट्टु' से कथाएँ, 'ज्ञानरथ' का गद्यमय अनुवाद और अनेक राष्ट्र-गीतोंके पद्यमय अंश हैं। इसके अनुवाद श्री रामदेशिक द्रविड़ व आन्ध्र भाषासे अनेक अनुवाद समय-समयपर देते रहते हैं। द्रविड़ भाषाकी एक प्रसिद्ध कवयित्री 'औवयार' हैं जिनकी सूक्तियाँ बालकोंको विद्यारम्भके समय सरल रीतिसे ज्ञान संवर्धनके लिए सिखायी जाती हैं। ये सूक्तियाँ संस्कृतमें अनेक बार अनूदित हुई हैं। इन्हींकी दो प्रसिद्ध लघु कृतियों 'आत्तिच्चूडि' और 'कौन्रैवेन्दन्' का अनुवाद **'नीतिनिबन्धनम्'**[1] में हुआ है। 'आत्तिच्चूडि में दो तीन पदोंके मनमें समानेवाले सूत्रप्राय वाक्य अकारादिक्रमसे दिये हैं जैसे 'धर्माचरणे रमस्व', 'क्रोधं निगृह्णीष्व'='धर्म के आचरणमें आनन्द ले', 'क्रोध को रोक' आदि। इनके चार-चारके समूहको एक अनुष्टुप् श्लोकमें और कौन्रैवेन्दन् के नीतिवाक्योंको मात्रिक छन्दोंमें सँजोया गया है।

द्रविड़ भाषाके शठकोप मुनिकी 'तिरुवाय्मोलि' गाथाएँ श्री वैष्णव सम्प्रदायमें प्रवृत्ति कराती हैं। इनका २६६ श्लोकोंमें पद्यानुवाद **'श्रीमद्द्रमिडोपनिषत्सारसंग्रहः'**[2] देवनागरी लिपिमें और तात्पर्यार्थ कर्नाटकी भाषामें बताते हुए किया गया है।

२.५. तेलुगुसे

आन्ध्रप्रदेशकी भाषा तेलुगुसे संस्कृतानुवाद सम्भवतः सर्वाधिक हुए हैं। और इसका कारण यह है कि इस भाषा का संस्कृतके साथ आदान-प्रदान बहुत समयसे है। श्रीमद्भागवतपुराणका आन्ध्रभाषामें अनुवाद बहुत पहले हो चुका था। वह अनुवाद शृंगार व भक्ति रससे ओतप्रोत था और आन्ध्रमें खूब प्रसिद्ध हुआ। उसके कर्त्ता भी तो थे आन्ध्रकविपितामह 'अल्लसानि पेद्दनार्य' जो सोलहवीं शतीके विजयनगरनरेश श्रीकृष्णदेवकी सभामें अमात्यथे। इस आन्ध्र भागवतसे सुप्रसिद्ध 'प्रह्लाद चरित्र, गजेन्द्रमोक्ष, वामनावतार, गोपीकृष्ण-विलास, कंसवध, और उद्धव-सन्देश' इन छः कथाओंको लेकर **'आन्ध्रभागवतानुवाद'**[3] संस्कृतमें भागवत्की रूपयात्राकी कहानी कहता है। आन्ध्र के इसी दिग्गज कवि पेद्दनार्यने 'स्वारोचिष-मनु-सम्भव' काव्य रचा था जो आन्ध्रप्रदेशके पाँच महाकाव्योंमें गिना जाता है। यह स्कन्दपुराणकी 'प्रवरवरूथिनी' कथा व मनुकी उत्पत्तिकी कथाके आधारपर लिखा गया था। इसका एक पूर्ण अनुवाद **'मनुसम्भवः'**[1] नामसे हुआ है जो मूल भाषाके मुहावरे, भाव, रचना-शैलीकी रक्षा करनेसे मूलका सा आनन्द देता है। इसी सरस महाकाव्यके प्रथम दो आश्वासोंकी संस्कृत **'प्रवरवरूथिनीयम्'**[2] नामसे संस्कृत पाठको आन्ध्रलिपिमें देखकर तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित की गयी।

आन्ध्राक्षरोंमें मुद्रित और वहाँ प्रचलित सात शतकों का संस्कृतानुवाद **'शतक सप्तकम्'**[3] में हुआ। इसमें सम्मिलित हैं,'सुमतिशतक, भास्करशतक, श्री कालहस्तीश्वरशतक, श्री दाशरथिशतक, वेमनशतक, श्रीकृष्णशतक, और श्री नरसिंहशतक'। पदावली ललित है। मुक्तक काव्य की एक विशिष्ट धारा प्रवाहित करनेवाले जयदेवके गीत-गोविन्द-सी प्रसिद्धि प्राप्त और कर्नाटक संगीतमें स्थान रखनेवाले **'श्रीकृष्णलीलातरंगिणी'**[4] का अब कर्नाटकसे बाहर भी प्रसार सुलभ हो गया क्योंकि देवनागरी लिपिमें मुद्रण होकर यह संस्कृत अब सुलभ है।

हिन्दीमें भी बालकथाओंमें प्रसिद्ध तेनाली राम वस्तुतः तेनालीपुरके निवासी रामलिंग कविके प्रतीक हैं जिनकी हास्य कथाएँ आन्ध्रमें आबालवृद्ध प्रसिद्ध हैं। उनकी ४५ कथाएँ **'आन्ध्रदेश-हास्य-कथाः'**[5] में संस्कृतीकृत हुई हैं। राजाकृष्ण (१५०९-३०) के सभा कवि इस 'विकट कवि' की कथाएँ अब संस्कृतच्छात्रोंका मनोविनोद भी कर सकेंगी।

२.६. मलयालमसे

श्री नारायण भट्ट पादद्वारा रचित एक स्तोत्र भागवत्

---

१. अनु० — ति० स्वा० वैद्यनाथ शास्त्री, तिप्पराजपुरम्, तञ्जौर, रु० १)

२. अनु०—जग्गुवेंकटाचार्य, भक्तिविलास, मेलकोट, मैसूर, रु० २)२५

३. अनु० — सूर्यनारायण शास्त्री, सन्निधान, दक्षिण भारत मुद्रणालय, हैदराबाद-४, १९७१, रु० ६)

---

१. अनु०—कुण्टिमाद्दिशेष शर्मा, आ० प्र० साहित्य अकादमी, हैदराबाद, १९६८, रु० ३)५०

२. अनु०—सूर्यनारायण शास्त्री, चारी एण्ड कं०, सिकन्दराबाद, १९७०, रु० १)

३. अनु०—श्री ति० गु० वरदाचार्य, प्रका०—चिट्टिगुड्डूर, मछलीपत्तन रु० १)५०

४. अनु०—श्री नारायण तीर्थ यतीन्द्र, साहिती समिति, रेपल्ले, आ० प्र०, रु० ६)

५. अनु० —श्री सूर्यनारायण शास्त्री सन्निधान, आ० प्र० साहित्य अकादमी, १९६४, रु०)७५

का सार है और दक्षिणमें अत्यन्त लोकप्रिय है। इसका संस्कृतरूप 'नारायणीयम्'[1] में उपलब्ध है, केरल भक्तोंकी सुविधार्थ जो मलयालम लिपिमें रखा गया है। इसमें माधुर्यगुण प्रधान है और विश्वास किया जाता है कि इसके पाठसे सब रोग नष्ट होते हैं। अनुवाद के स्थानपर इसे मलय देशकी मौलिक रचना कहना अधिक उपयुक्त होगा।

२.७ मराठीसे

इस युगके प्रख्यात नाटककार स्वर्गीय 'मामा वरेटरकर' श्री भार्गवराम विट्ठलका एक नाटक **'भूमिकन्या'**[2] डॉ० रत्नमयी दीक्षितद्वारा अनूदित हुआ। इसमें कविने अनेक नये अभिप्राय और प्रसंग कल्पितकर उत्तर रामायणकी कथा कही है। मराठीके श्री यशवन्त कविका भावगीतिसे भरपूर काव्य **'जयमङ्गला'**[3] संस्कृतमें भी श्रृंगार भावोंके साथ त्याग, परोपकार आदि गुणोंको जगाता है। इसके अनुवादक श्री भि० वेलणकर अनेक कार्योंमें व्यस्त रहते हुए भी इसप्रकार संस्कृतलेखनमें प्रवृत्त रहते हैं यह प्रशस्य है।

२.८. बंगालीसे

महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्रीके 'बाल्मीकिर्-जय' का रमणीय भाषाशैलीमें **'वाल्मीकि-विजयः'**[3] अनुवाद हुआ जिसमें प्रधानतया वसिष्ठ-विश्वामित्रका विवाद; वाल्मीकिकी महिमा और रामायणकी कथावस्तुका सरस वर्णन है।

स्वामी विवेकानन्दने मूलतः बंग भाषामें प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृतिवाले भूखण्डोंकी तुलनापर एक विचार-ग्रन्थ लिखा था, जिसका संस्कृत-रूप **'प्राच्य-पाश्चात्यम्'**[4] में देखा जा सकता है। स्वामीजीने जिन पाश्चात्य देशों को देखा वे देश, विशिष्ट नगर, वहाँकी अनुभूतियाँ, सभ्यता साहित्य आदिका सूक्ष्म, दृष्टिसे वर्णन व विवेचन करते हुए दोनों भूखण्डोंके गुण-दोषोंपर और गुणोंके आदान-प्रदानपर निष्पक्ष व उदार बुद्धिसे प्रकाश डाला है।

१. प्रका०—गुरुवायूर-देवस्व-प्रसिद्धीकरण, केरल।
२. अनु०—डॉ० रत्नमयी देवी, ८।१।१०, माडल टाऊन, दिल्ली-९
३. अनु०—श्री परशुराम शर्मा वैद्य, इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, इलाहाबाद।
४. अनु०—डॉ०सीतानाथ गोस्वामी, ६६/१ ए, सैलिमपुर लेन, कलकत्ता-३१, रु० ३)

महाकवि रवीन्द्रकी महान् कृतियोंके संस्कृत-रूप विशेषतः उल्लेखनीय हैं। श्री कामिनीकुमार अधिकारीने जहाँ **'गीताञ्जलि'** का अनुवाद किया था वहीं **'उर्वशी'**[1] जैसे लघु खण्डकाव्यका २३ उपजाति छन्दों में रूपान्तर किया। दूसरी ओर, डॉ० के० राव जोशीने महाकविकी लघु कृति 'चित्रा' नाटिकाके आधारपर प्रसन्न मधुर शैलीमें **'रहस्यमयी'**[2] की रचना की है।

२.९. हिन्दीसे

कुछ ऐसा संस्कार हम हिन्दीभाषी संस्कृतज्ञोंपर है कि हम संस्कृतसे हिन्दी अनुवाद तो करनेमें दत्तदृष्टि हैं किन्तु हिन्दीके महान् काव्योंको संस्कृतमें रूपान्तरितकर अधिक स्थायी रूप देनेकी ओर हमारा ध्यान कम गया है। फिरभी, कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कृतानुवाद हुए हैं। उदाहरणार्थ तुलसीके सम्पूर्ण 'मानस' का **'तुलसी-रामायण-संस्कृतानुवाद'** हो चुका है जिसमेंसे सर्वप्रथम 'सुन्दरकाण्डम्'[3] आया था। यह अनुवाद एक मैसूरवासीने किया है। इसीप्रकार कवि बच्चनकी **'मधुशाला'** का अनुवाद एक महाराष्ट्रियन श्री माधवदेश पाण्डेयने किया जो संस्कृत प्रतिभामें १९७० व १९७१ में प्रकाशित हुआ।

डॉ० व० ग० राहूकरके **'भाषायोग वासिष्ठ सार'**[4] में, जिसका श्रेय फिर महाराष्ट्रको जाता है, कवीन्द्राचार्य सरस्वतीद्वारा दाराशिकोहके उपदेशार्थ हिन्दीमें किये 'योगवासिष्ठ' के संक्षेपका संस्कृत रूपान्तर हुआ है। हिन्दी अंग्रेजी उपोद्घातमें कवीन्द्रका चरित्र, कृतियाँ और सम्बद्ध विषयोंका विवेचन है। अन्तमें सारका अंग्रेजी अनुवाद भी है।

अन्य भारतीय भाषाओंसे होनेवाले संस्कृतानुवादोंकी तुलनामें हिन्दीका योगदान नगण्य है। इसमेंभी दुःखका विषय यह कि हिन्दी-क्षेत्रके विद्वान् इसप्रकारके प्रयासको महत्त्व नहीं दे रहे। लगता है, संस्कृत माध्यम अपनाकर हिन्दीके साहित्यको अखिल भारतीय बनानेकी इच्छा हिन्दी-तर हिन्दी प्रेमियोंमें तो है पर स्वयं हिन्दी-भाषियोंमें नहीं।

१. अनु०—कामिनीकुमार अधिकारी, सिलचार, असम।
२. प्रका०—भारतवाणी प्रकाशन कार्यालय, १४४२-४३, सदाशिव, पूना-३
३. अनु०—के० तिरुवेङ्कटाचार्य, देशीय विद्याशाला, बंगलूर-४
४. प्रका०—भारतवाणी प्रकाशनमाला, १४४२-४३, सदाशिव, पूना-२, १९६९, रु० ६)

३. अनुवादात्मक : भारतीय भाषाओंमें

भारतमें आजकल संस्कृतका जितना साहित्य प्रकाशमें आ रहा है उसका आधेसे भी अधिक निश्चित्ररूपेण भारतीय भाषाओंमें अनुवादके रूपमें होता है। इसे आँकड़ोंसे भी सिद्ध किया जा सकता है। भारतकी सब भाषाओंमें होने वाले प्रकाशनोंको सूचीबद्ध करनेकी राष्ट्रीय योजना १९५८ से प्रारम्भ हुई थी। जैसाकि स्वाभाविक था, (सरकारी तन्त्रकी नीति व मनोवृत्तिके फलस्वरूप), 'इण्डियन नेशनल बिब्लियोग्राफी' प्रकाशित होने लगी। शीघ्रही अनुभव किया गया कि इसे अधिक उपयोगी बनानेके लिए प्रत्येक भाषाका सूचीग्रन्थ उसीकी सम्बद्ध लिपिमें हो। इससे देश भरके स्कूलों, कालेजों व पुस्तकालयोंको भी अधिक सुविधा रहेगी। तब संस्कृतके ग्रन्थों-प्रकाशनोंकी सूची देवनागरी लिपिमें संस्कृत भाषाके माध्यमसे १९६३ अक्टूबरमें प्रकाशित हुई जिसमें १९५८ से १९६२ तक पाँच वर्षोंके संस्कृत प्रकाशनोंकी सूचना ड्यूई की दशमप्रणालीसे वर्गीकृत कर छापी गयी। सूची की गणनानुसार इनकी संख्या १३५० है[1]। इसीके परिशिष्टमें अन्य भारतीय भाषाओंमें अनुवाद सहित प्रकाशित संस्कृत ग्रन्थोंका परिगणन हुआ है-७०५। अर्थात् कुल प्रकाशनों के ५२%से अधिक। इस आधारपर संस्कृत-साहित्य आधुनिक भारतीयतक आजकी भाषामें पहुँचनेका जो श्रम कर रहा है उसे सन्तोषजनक अवश्य कहा जा सकता है।

दूसरे, इन अनुवादोंके माध्यमसे संस्कृत साहित्यका आस्वादन भारतके प्रत्येक भाषा-भाषीके लिए कितना सुलभ हो रहा है ? एतदर्थ, इसी ग्रन्थसूचीके परिशिष्टका यह विवरण ध्यान देने योग्य है :—

	भाषा		संस्कृतानुवाद
१.	असमीया	—	१
२.	इंग्लिश	—	९४
३	उड़िया	—	८
४.	उर्दू	—	०
५.	कन्नड़	—	३९
६.	गुजराती	—	८१
७.	तमिळ	—	३१
८.	तेलुगु	—	७३
९	पञ्जाबी	—	१
१०.	मराठी	—	४३
११.	मळयालम	—	३०
१२.	बंग	—	२९
१३.	हिन्दी	—	२७५
	कुलयोग	—	७०५

स्वभावतः हिन्दीका योगदान सर्वाधिक है लगभग ३९%, दूसरे स्थानपर अंग्रेजीका—१३% और तीसरे स्थानपर है आन्ध्र प्रदेशकी भाषा तेलुगुका—१०%से भी अधिक। यह विवरण स्वतन्त्रताके बादके २५ वर्षोंके मध्य भागके ५ वर्षोंका है। इसे सर्वथा प्रतिनिधित्वके योग्य माना जा सकता है। इससे प्रतीत होताहै कि संस्कृत-साहित्यके अधिक विस्तार व प्रसरका क्षेत्र, क्रमशः मध्य, दक्षिण व पश्चिम भारत है, पूर्वमें कम है और उत्तरमें और भी कम। दूसरे स्वातन्त्र्योत्तर पच्चीस वर्षोंमें **संस्कृतानुवादोंकी संख्या साढ़े तीन या चार सहस्र** (७०५×५) से कम नहीं आँकी जा सकती।

हिन्दी माध्यमसे प्रकाशित होनेवाला अनूदित संस्कृत साहित्य तो हिन्दी पाठकोंकी दृष्टिमें आता ही रहता है। अतः यहाँ अन्य भारतीय भाषाओंमें होनेवाले कुछ संस्कृत-अनुवादों एवं अध्ययनोंका भाषानुसारी उल्लेख उचित व रोचक होगा—

३.१. असमीयामें

प्रसिद्ध विचारक श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने मूलतः तमिलमें रामायण व महाभारतपर क्रमशः **'चक्करवर्त्ति तिरुक्कन'** तथा **'वियचर विरुन्तु'** नामसे समीक्षात्मक व परिचयात्मक ग्रन्थ लिखे थे। इनका अंग्रेजी अनुवाद भी हो गया था। अब अंग्रेजीसे असमीया अनुवाद[1] प्रकाशित हुआ है। गौहाटी नगरमें उग्रतारा पीठके प्रधान आराधक श्री चक्रेश्वर भट्टाचार्यने **'शक्ति तत्त्व'**, **'शतचण्डी प्रयोग तन्त्र'** आदिका जहाँ असमीयामें अनुवाद किया है वहीं वेद

१. दे०—'राष्ट्रिय ग्रन्थ सूचिः (संस्कृत-विभागः)', १९५८-६२, मुख्य सम्पादक - बी० एस० केशवन्, सैण्ट्रल रैफरैन्स लाइब्रेरी, भारत शासन, [वैज्ञानिक-अनुसन्धान-सांस्कृतिक-कार्य-मन्त्रालय], कलकत्ता, पृष्ठ सं० ३४५

१ 'रामायण', अनु०—लक्षेश्वर शर्मा, पब्लिकेशन बोर्ड, गौहाटी, १९७०, पृ० ३३६, मूल्य रु० ६) 'कथा महाभारत', अनु०—महादेव शर्मा, द्वि० सं०, पब्लिकेशन बोर्ड, गौहाटी, १९७१, पृ० ४५४, मूल्य रु० १२)

आदि शास्त्रोंका सार लेकर 'शाक्त दर्शनम्'[1] में शक्तिका विशद विवेचन किया है।

३.२. उड़ियामें

सम्पूर्ण '**श्रीमद्वाल्मीकि रामायण**'[2] का सात जिल्दों में तथा '**भट्टिकाव्य**'[3] जैसे प्रौढ़ प्रबन्ध काव्य का उड़िया अनुवाद उपलब्ध है।

३.३. कन्नड़में

आदि नाटककार भासके '**मध्यम व्यायोग**'[4], राजा हर्षवर्धनके साथी गद्य कवि बाणभट्टकी '**कादम्बरी**' के एक खण्ड,[5] तथा ७वीं शतीके मुक्तककवि भर्तृहरिके '**नीतिशतक**'[6] आदिके कन्नड़ रूपान्तर (अनुवाद) आज प्राप्य हैं। बौद्ध दार्शनिक कथा साहित्यकी प्रतीक '**जातककथाओं**' मेंसे ६ कथाओंको चुनकर '**जातकदकथेगलु**'[7] में कन्नड़ भाषामें रूपायित व अनूदित किया गया है। राघवेन्द्रतीर्थ कीटीका सहित '**काठकोपनिषत्सार**'[8] का कन्नड़ पाठ और अनुवाद हुआ। इन्हीं राघवेन्द्रतीर्थकी '**श्री रामचरित्र मञ्जरी**' एवं '**श्री कृष्णचरित्र मञ्जरी**' के कन्नड़ अनुवाद[9] के एकाधिक संस्करण निकले हैं।

---

१. प्रका०—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, गोपाल मन्दिर मार्ग, वाराणसी-१, १६७०

२. अनु०-श्री लिंगराज मिश्र, गोपबन्धु साहित्य मन्दिर, १६५५ से ५७ तक, सातों जिल्दोंकी पृष्ठ संख्या लगभग ३६००, मूल्य ५५) सबका।

३. अनु०—श्री गोपीनाथसिंह देव, उत्कल विश्वविद्यालय, कटक, १६५५, पृ० २५६, रु० ३)५०

४. अनु०--एल० गुण्डप्पा, सत्यशोधन बंगलौर, १६५८, पृ० ३४, रु० १)

५. 'कर्नाटक-कादम्बरी', अनु० सीतारमैय्या वी०,विश्वविद्यालय, मैसूर, १६५७ पृष्ठ ६७, मूल्य)१६

६. अनु०-एन० वी० उपाध्याय, अवधूत योगी महासभा, मैंगलौर, १६५७, पृ० ४६

७. रूपान्तरकार-श्री अज्जलिपाल, अनु० श्री क० शिव राम कारन्त, इण्डियन बुक हाऊस, बम्बई, १६६६, पृ० ६१ रु० २)५०

८. प्रका०-परिमल संशोधन, नञ्जङ्गुड पृ० १४६, रु० ३)

६. अनु०-राजा एस० गुरुराजाचार्य, परिमल संशोधन, १६५८, १६७१, पृ० ४७, १०१, रु० ३)५, ५)

३.४. गुजरातीमें

भगवद्गीतामें सांख्य योगका प्रतिपादन करनेवाले द्वितीय अध्यायमें 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्तिकी परिभाषा दी गयी है। इस अध्यायके ४५ से ७२ श्लोकतकका पाठ देवनागरी लिपिमें और छन्दोबद्ध अनुवाद एवं टिप्पणी गुजरातीमें[1] दी गयी है। गुजरातके श्रीकृष्ण प्रेम (१८६८-१६६५) ने भगवद्गीताके योगदर्शनका अध्ययन प्रस्तुत किया था अपने अंग्रेजी ग्रन्थ '**योग ऑव भगवद्गीता**' में। इसका गुजराती अनुवाद '**भगवद्गीतानो योग**'[2] में होना इस बातका प्रतीक है कि अंग्रेजीकी अपेक्षा भारतकी प्रादेशिक भाषाओंके माध्यमसे जन-जनतक संस्कृतका सन्देश पहुँचाना अब अभीष्ट हो चला है। इसीप्रकार संस्कृतके ग्रन्थोंमें प्रादेशिक भाषामें टिप्पणीका एक उदाहरण है श्री आनन्दसागर सूरिद्वारा संकलित '**लघुतम नाम कोश**' का गुजराती नोट्सके साथ[3] सम्पादित होना।

३.५ तमिलमें

'श्रीमद्वाल्मीकि रामायणम्—**अयोध्याकाण्डम्**'[4], कालिदासके प्रसिद्ध नाटक '**शाकुन्तलम्**'[5] के साथ खण्डकाव्य '**मेघदूतम्**', '**कत्तैक्कतल**' नामसे[6] सोमदेवके विशाल '**कथासरित्सागर**' की कथाओंका संक्षिप्त रूप, अद्वैतवेदान्त के प्रवर्त्तक शंकराचार्यके एकमात्र लघुकाव्य '**भजगोविन्दम्**' का '**पज कोविन्तम्**' नामसे तमिल में (और अब उसीका अंग्रेजी में[7]), इन्हीं शंकरके दार्शनिक ग्रन्थ 'शारीरक भाष्य' का टिप्पणी सहित सारीकृत '**शारीरक-भाष्य-**

---

१. अनु०—मुनि भानुविजय।

२. अनु०—श्री किशनसिंह गोविन्दसिंह चावड़ा, सोमया, बम्बई, १६७२, पृ० १६५, रु० २०)

३. सं०—लाभसागरगणि, रमनलाल जयचन्द शाह, कपद्वंज खेड़ा, १६६६

४. अनु०—श्री रामभद्र शर्मा, अशिरियार नुरपदिप्पुवकझगम्, १६५७, भाग १, पृ० ३३७

५. अनु०—श्री के० सन्तानम् बुक्स इण्डिया, मद्रास, १६५८, पृ० १६६, रु० १)

६. अनु०—श्री चिरंजीव प्रेम प्रशुराम, मद्रास, १६५८, पृ० ३६८, रु० १) ५०

७. तमिल में अनु०—श्री पी० शंकरनारायण, अंग्रेजी... श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, विद्याभवन, बम्बई, १६०१, पृ० ६१, रु० १)

सारम्'[1] 'श्रीमद्भगवद्गीता'का सटिप्पण 'श्रीमत्पकवत्कीतई'[2] (जिसमें संस्कृत पाठ भी तमिल लिपिमें है) आदि अनेक अनुवाद तमिलनाडमें संस्कृत प्रेमके उद्घोषक हैं । इसके अतिरिक्त संस्कृत वैवाहिक मन्त्रोंके अर्थ, जैमिनिके अनुसार 'सन्ध्यावन्दन' या भारद्वाजके अनुसार 'श्राद्ध' द्रविड़ के संस्कारोंमें काम आनेवाली चीजें हैं ।

३.६. तेलुगुमें

महर्षि वेदव्यासके विश्वकोश पञ्चमवेद महाभारतका संक्षेप संस्कृतमें ही करनेका एक विरल प्रयास तेलुगुमें हुआ--'आन्ध्रमहाभारतमु'[3] जिसकी भाषा यद्यपि संस्कृत है किन्तु लिपि तेलुगु है । इन पुराणकाव्योंका अखिल भारतीय धार्मिक व दार्शनिक महत्त्व है । तभीतो आदि पुराणकाव्य रामायणकी दार्शनिक व्याख्या करते हुए 'रामायणमटे'[4] लिखा गया, या रामायणके अहल्योपाख्यानका 'गौतमाश्रममु: अहल्या'[5] में आलोचनात्मक अध्ययन किया गया । और, यदि श्री बलंकईमन एस० श्रीनिवास शास्त्री (१८६६-१९४६) ने अंग्रेजीमें रामायणकी चित्रकूट-कथाको चित्रित किया तो अब 'उपन्यास-रामायणमु: चित्रकूट-समावेशमु'[6] में उसका तेलुगु अनुवाद होता है । और काव्य भी हैं जिनका अनुवाद हुआ जैसे 'श्री विक्रमसिंह पुरि-रामायणमु'[7], पण्डितराज जगन्नाथका 'भामिनीविलास'[8], आचार्य शंकरका 'भजगोविन्दमु'[9] या कालिदासके नामसे प्रसिद्ध 'शृङ्गार तिलक' आदि ।

कुछ प्रसिद्ध नाटक जिनका तेलुगुमें अनुवाद हुआ-- कालिदास रचित 'अभिज्ञान-शाकुन्तल-नाटकम्'[1], 'विक्रमोर्वशीयम्'[2], कवि विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षसम्'[3] आदि नाटककार भासके 'प्रतिज्ञायौग धरायणमुस्वप्नवासवदत्तमु'[4] और कुलशेखर वर्माका 'सुभद्र-धनञ्जयमु'[5] ।

वेदान्त दर्शनको तेलुगु भाषामें पद्यबद्धभी किया गया 'अद्वैतमु'[6] नामसे । भागवतपुराण जैसे विशाल पुराणको श्री पोटराजु जैसे नवयुवक (जन्म १९३७) ने अपने शोध-प्रबन्धका विषय चुनकर १९६५ में वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपतिसे डॉक्टरेटकी उपाधि ली और अगले वर्ष स्वयं 'आन्ध्र-भागवत-विमर्श'[7] को प्रकाशित किया ।

ऊपर देखा जा चुका है कि तेलुगु भाषाको संस्कृत-अनुवाद देनेमें तृतीय स्थान प्राप्त है । यही ऐसी भारतीय भाषा है जिसमें धार्मिक विधि-ग्रन्थोंको समझनेका प्रयास सर्वाधिक दीख पड़ता है । १९७१ में एक साथ चार विधायक-ग्रन्थोंका प्रकाशन इसी भाषामें हुआ --'धनुर्मासव्रत-माहात्म्यमु', 'पुराणोक्त-पर-कर्म-प्रकाशिकयनु वैश्यापर चन्द्रिका', 'रामोत्सवरत्नदर्शिनी' और 'शूद्रपर' चन्द्रिका' (सप्रयोग संहितमु)[8] इन सभीके संस्कृत पाठ तेलुगुमें हैं ।

---

१. अनु०--श्री बी० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, पझुर वेदान्त पाठशाला, पझुर, १९७१, पृ० १२०, रु० २)
२. अनु०--कीझात्तुर श्रीनिवासाचार्य, १९६६, १९७१, पृ० ३३६, रु० ४)
३. प्रका०--महाभारत प्रचारक संघमु, ककियाड़, १९५८, १० भाग, प्रत्येक लगभग पृ० १५०, रु० २)५०
४. ले० व प्रका०--सत्यनारायण अड्डेपल्लि, मन्डवल्ली, १९५८, पृ० ४८, रु० १)
५. ले०--व्यासमूर्त्ति कालूरी, प्रका०--बी० अच्युत रामामूर्त्ति, विशाखापत्तनम्, १९५७, पृ० ११२, रु०)८७
६. अनु०--श्री पुच्छ वेंकटरमैय्या, १९५७, पृ० ४४, रु०)२५
७. अनु०--श्री चदलवाड जयराम शास्त्री, सरस्वती ग्रन्थमाला, नेल्लोर, १९५८, पृ० ३८०, रु० ४)५०
८. अनु०--श्री वासिरेड्डी वेंकटसुब्बैय्या गुन्तूर, १९५८, पृ० १०४, रु० ३)
९. सम्पा०, टि०,प्रका०--कोव्विदि सूर्यप्रकाशरावु, गणपवरमु १९७१, पृ० ६२ ।

---

१. अनु० व टि०--नेलूटरूरामदास अय्यंगार, वेदम् वेंकटरय्या शास्त्री एण्ड ब्रा०, मद्रास, १९५७, पृ० ६२४, रु० १०)
२. अनु०--नण्डूरी रामकृष्णमाचार्युलु, विज्ञान प्रकाशन, भीमवरम्, आ०प्र० पृ० ५८, रु० १)
३. अनु०--अवधानम् चन्द्रशेखर शर्मा, साहिति साम्राज्यमु, पौरुममिल्ल, १९५७, पृ० १३७, रु० २)५०
४. अनु०--काटूरी वेंकटेश्वरराव, आन्ध्रराष्ट्र हिन्दी प्रचारक संघमु, विजयवाड़ा, १९५४, पृ० ११४, रु० १)५०
५ अनु०, प्रका०--पोटुकुच्चि सुब्रह्मण्य शास्त्री, तेनाली, १९७१ पृ० १३१, रु० ३)५०
६ ले०--सत्यनारायण सूरि द्विवेदी, श्री कला साहितिसंसत्, कोव्वूर, १९७१, पृ० ११६, रु० ४)
७. ले०--वेंकटलक्ष्मीवरप्रसाद राय कुलपति पोटराजु, गुन्तूर, १९६६, पृ० ५७६, रु० १५)
८. चारों के सं०,टि०--चल्ला लक्ष्मीनृसिंह शास्त्री, लक्ष्मी नृसिंह मुद्रणशाला, १९७२, पृ० ३२

निश्चयही व्रतप्रिय आन्ध्रवासियोंकी सुविधार्थ ऐसा किया गया है।

३.७. पञ्जाबीमें

उत्तरांचलकी इस भाषामें संस्कृत रूपान्तरोंका अभाव-सा है। फिरभी, संस्कृतविषयक अध्ययनमें कुछ रुचि इसने अवश्य प्रदर्शित की है। श्री रोशनलाल आहूजा (जन्म १९०४) का **'संस्कृत नाटक दा सर्वेखन'**[1] इसका उदाहरण है।

३.८ मराठीमें

'महामुनि वाल्मीकि प्रणीत रामायण'[2] नामसे मराठीमें गद्यमय रामायणका और छोटे बच्चोंके लिए संक्षिप्त **'बाल-रामायण'**[3] का प्रणयन हुआ। महाभारतसे **'विराट-पर्व'**[4] को मराठी लिपिमें छन्दोबद्ध अनुवाद, भूमिका, नोट्स, व्याख्या सहित छापा गया। महाभारतके पात्र कर्णका **'राधेय कर्ण'**[5] में एवं भीमका **'स्वयंभू'**[6] में वीरोदात्त पात्रोंके रूपमें विस्तारसे विश्लेषण मिलता है। महाकवि कालिदासकी रचनाएँ जैसे अन्यत्र वैसेही इस भाषामें भी लोकप्रिय हैं। उनके **'रघुवंश'** काव्य का **'मराठी-रघुवंश कथा'**[7] में गद्यरूप और **'मेघदूत'** का अनेक रूपों में अनुवाद हुआ है, कोई सखी छन्द में,[8] कोई गद्यमय[9] और कोई अन्य रूपमें[1]। पण्डितराज जगन्नाथकी **'गंगालहरी'** जैसे लघु किन्तु भावभरित खण्डकाव्यभी[2] अनुवादका पात्र बनते हैं।

नाटकोंमें महाकवि भासका **'स्वप्नवासवदत्तम्'**, भट्ट नारायणका **'वेणीसंहारम्'** और विशाखदत्तका **'मुद्राराक्षसम्'**[3] तथा कथा-साहित्यके यशस्वी लेखक विष्णु शर्माका **'पञ्चतन्त्रम्'**[4], आदिके रूपान्तर व व्याख्याएँ आज मराठी भाषियोंके लिए सुलभ हैं। मुद्राराक्षस नाटकके समीक्षात्मक अध्ययनपर भी एक पुस्तक उल्लेखनीय है—**'कुटिलमति कौटिल्य'**[5]।

३.९. मळयाळममें

'वाल्मीकि रामायण—बालकाण्डम्'[6] के ७७ सर्गोंका गद्य, भासका **'दूत वाक्यम्'**[7] नाटक, भवभूतिका **'उत्तर रामचरितम्'**[8] नाटक, **'व्यास महाभारतम्'**[9] का अनेक जिल्दोंमें गद्यानुवाद, नारायण पण्डितके हितोपदेशसे ३२ बालकथाओंके आधारपर **'निवडक हितोपदेश'**[10] और

[शेष पृष्ठ २८ पर]

---

१. प्रका०—लाहौर बुक शाप, लुधियाना, [?] पृ० १२२, रु० ७)५०
२. रूपा०—नारायण रामकृष्ण अभयंकर, नवभारत प्रकाशन संस्था, बम्बई, १९५६, पृ० २२८, रु० ४)
३. ले०—शंकर लक्ष्मण चिटणिस, मैजेस्टिक, बम्बई, १९७१, पृ० १४३, रु० ४)
४. रूपा०—मोरोपन्त, टि०—बालचन्द्र सोहोनी, श्री प्रसाद प्रकाशन, नागपुर, १९७१, पृ० १९२, रु० ५)
५. ले०—रामचन्द्र शंकर वालिम्बे, जोशी आनि लोखण्डे प्रकाशन, पूना, १९७१, पृ० २१९, रु० १०)
६. ले० पद्माकर विष्णु वर्त्तक, श्रीमती शोभाना वर्त्तक, पूना, १९७१, पृ० ३०८, रु० १५)
७. अनु०—नत्रे नीलकंठ शंकर, द्विसं० १९५७, पृ० १६७, रु० ८)२५
८. अनु०—राजाराम परशुराम सबनीस, कॉण्टिनैण्टल प्रकाशन, १९५८, रु० १)५०
९. अनु०—रामचन्द्र शंकर वालिम्बे, जोशी आनि लोखण्डे प्रकाशन, पूना, १९५७, पृ० १४३, रु० २)५०

---

१. 'कविकुलगुरु कालिदास-विरचित मेघदूताचा मराठी पद्यानुवाद,(मुक्तामाला)', अनु०—श्री शेषराव,गोविन्द जोशी, श्रीमती ऊषा जोशी, नागपुर, पृ० ३२, रु० २)
२. अनु०—नारायण मोरेश्वर टेम्भेकर, हिन्दुस्तान साहित्य, पूना, १९५८, पृ० ४८, रु०)३५
३. तीनोंके अनु०, टि०—रामचन्द्र शंकर वालिम्बे, जोशी आनि०, पूना, १९५८ क्रमशः पृ १३५, रु० २)५०, पृ० २९०, रु० ५) एवं पृ० ५५०, रु० १०)
४ अनु०—मार्त्तण्ड अम्बेडकर, चित्रशाला प्रकाशन, पूना, पाँचवाँ सं०, १९५७
५. ले०—रामचन्द्र शंकर वालिम्बे, जोशी०, पूना, १९५८, पृ०, १२०, रु० ४)
६. अनु०—के०एम०के० कुरुप,ओट्टपलम् प्रिंटर्स, १९५८ पृ० १५३, रु० १)५०
७. अनु०—पन्त लट्टु केरल वर्मा तम्बुराण, पी० के० ब्रदर्स, कोझीकोड, १९५८, पृ० ३१, रु०)३७
८. अनु०—चम्पत्तिल चाट्टुकुट्टि, (प्रथम सं० १८९२) द्वि०सं० १९५८, साहित्य प्रवर्तक, कोट्टयम्, १९५८, पृ० २१९, रु० २)
९. अनु०—के० प्रकाशन, व्यास पब्लिकेशन हाऊस, पलझी, १९७१, जिल्द २१ से ३०, पृ० लगभग ३५० प्रति, मूल्य प्रति रु० ६)
१०. अनु०—विश्वनाथ केशव फडके, जोशी ब्रदर्स, पूना, १९७१, पृ० ८८, रु० ३)

२. मध्यदेशीय भाषाएँ

हिन्दी साहित्य : २५ वर्ष
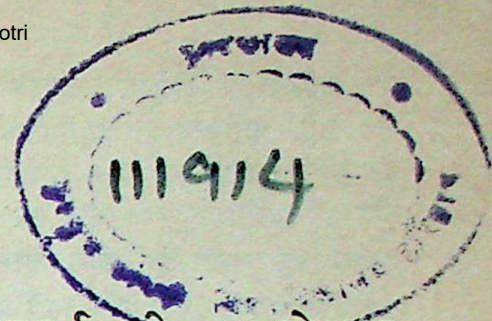
क. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी आलोचना

—डॉ० जयचन्द्र राय

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महानन्द
मिशन कॉलेज, गाजियाबाद

सन्, ४७ के आसपास साहित्य-रचना और विवेचनाके अग्रिम मोर्चोंपर 'प्रगतिशीलता' का स्वर सबसे ऊँचा था। जहाँतक संगठन और सहयोगी प्रयत्नका प्रश्न है, उस समयतक 'प्रगति' के पक्षधर कला-समीक्षाके क्षेत्रमें मार्क्सवादके प्रयोगकी सीमाओं और सम्भावनाओंको लेकर परस्पर विभाजित ही नहीं हो गये थे बल्कि कुछ बुनियादी साहित्यिक (और स्पष्टतः राजनीतिक) मुद्दोंपर एक दूसरे से टकराहट और संघर्ष भी अनुभव करने लगे थे। आजादीके पहले पाँच वर्षोंमें पारस्परिक वाद-विवाद, आरोप-प्रत्यारोप तथा व्यंग्य-प्रतिव्यंग्यकी घुटनके बीचसे गुजरता हुआ मतभेदोंका यह सिलसिला सन् '५२ में दिल्लीके प्रगतिशील लेखक सम्मेलनमें चरम उत्कर्षको जा पहुँचा जब 'संकीर्ण' दृष्टिके कुपरिणामोंकी भयावहता का एहसासकरके 'उदार', 'रचनात्मक' और 'सहानुभूति-पूर्ण' दृष्टिकोणसे साहित्य और साहित्यकारको परखनेका संकल्प किया गया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उस समयतक राजनीतिके क्षेत्रमें भी 'वामपन्थी कट्टरता' समयोचित उदारता, मृदुलता और सहिष्णुतामें रूपान्तरित हो चुकी थी। इधर साहित्यमें लेखकों और विचारकोंका संयुक्त मोर्चा (प्रतिक्रियावादियोंके खिलाफ) बनानेकी बातने जोर पकड़ा और 'प्रगति' शब्दको लचीला बनाकर उसके ध्वन्यर्थको व्यापक तथा दायरेको चौड़ा करनेका प्रयत्न किया गया लेकिन साहित्यकी मूल रचनाधारासे अपने आपको सम्पृक्त न कर पानेके कारण प्रगतिवादी आलोचना क्रमशः शास्त्ररूढ़, प्रेरणाहीन और प्रभावशून्य हो गयी। समकालीन लेखनको प्रेरणा, शक्ति और दिशा-निर्देश देना तो दूर उलटे उसीके द्वारा वह उपेक्षित, लांछित और तिरस्कृत कर दी गयी। तत्कालीन चाहे इसका परिणाम हिन्दी साहित्यके लिए जैसाभी हुआ हो, यह विडम्बनापूर्ण स्थिति तत्कालीन सन्दर्भमें अवश्यम्भावी थी।

स्वतन्त्रताके पहले पाँच वर्षोंका लेखा-जोखा केवल सर्जनाकी नयी दिशा और सम्भावनाओंको समझनेके लिए ही जरूरी नहीं है अपितु साहित्य-विचारकी क्रमिक प्रगति और उसके मार्गमें आनेवाले अवरोधोंको पहचाननेके लिए भी उपादेय होगा। स्वतन्त्रताके उल्लासमें देश-विभाजनका गरल मिला हुआ आया और वहभी कार्य-कारण-युक्त ऐतिहासिक घटनाओंके बावजूद इतना आकस्मिक था कि कुछ विचारक संशयपूर्ण स्वरमें कहने लगे—'यह आजादी है ही नहीं; केवल सरमायादारोंकी साँठ-गाँठ एवं नयी कानूनी व्यवस्था है जिसमें निर्द्वन्द्व भावसे उपमहाद्वीपमें मुक्त व्यापार और शोषण-दोहनकी प्रक्रिया चालू रह सकती है।' स्वतन्त्रता-संग्रामसे उबरे हुए लोगोंका एक बहुत बड़ा समूह उधर उत्सव-उल्लासके बीच राष्ट्रके नव-निर्माणकी दिशामें अग्रसर हुआ और बार-बार आग्रह करने लगा कि आपसी भेदभाव भुलाकर हमें राष्ट्रीय ऊर्जा और रचना-क्षमताको नये भारतके विकास में लगानेका संकल्प कर लेना चाहिये और इधर नवीन जन-अकांक्षाको समाजके नये आदर्शों तथा नूतन अर्थ-व्यवस्थाकी ओर अधिकाधिक जागरूक, सचेत और उत्साह-युक्त करनेका प्रयत्न युवापीढ़ीकी ओरसे प्रारम्भ हुआ। साहित्यमें भी उत्सवधर्मी चहल-पहल होती रही और आरतीका स्वर कुछ समयतक गूँजता रहा किन्तु रचना-

शील शक्तियाँ एक विचित्र प्रकारके अवरोधमें कुण्ठित-सी पड़ी रहीं। इसीलिए उस समय 'साहित्यिक गतिरोध' व्यापक चर्चाका विषय बन गया था। लम्बे अन्तरालके बाद मौन भंग करते हुए 'पन्त' जीने १९४९ में 'उत्तरा' नामक काव्य-संग्रह लम्बी भूमिकाके साथ प्रकाशित किया। 'स्वर्णकिरण' और स्वर्णधूलि पहले प्रकाशित हो चुकी थीं, किन्तु उत्तरा' की भूमिकामें उन्होंने विस्तारसे अपना दृष्टिकोण समझाया—मार्क्सवादद्वारा लोकसंगठन तथा गान्धीवाद और अरविन्द-दर्शनके सहयोगसे मनःसंगठन और सांस्कृतिक उर्ध्व-संचरणका समन्वयपूर्ण सिद्धान्त नवयुगके सन्दर्भमें सामने रखा। उसी वर्ष श्री धर्मवीर भारतीने 'प्रगतिवाद' का निरूपण अपनी स्वतन्त्र पुस्तकमें करते हुए यह स्थापना सामने रखी कि रूसी सरकार और वहाँका साम्यवादी दल अपने देशको प्यार करता हुआ अपने साहित्यको जो दिशा-निर्देश दे रहा है वह सार्थक और मूल्यवान् सिद्ध हो रहा है जबकि भारतका साम्यवादी दल और उसके संकेतपर चलनेवाले प्रगतिवादी आलोचक गर्हित 'संकीर्णता' के शिकार हो गये हैं और रचनाशील शक्तियोंको कुण्ठित करते जा रहे हैं। यह याद रखना जरूरी है कि उस समय प्रगतिवादके विरुद्ध अभियोग इस मूल धारणाको केन्द्रमें रखकर ही सरलतापूर्वक प्रमाणित किया जा सकता था। भारतीने एक कलाकारकी हैसियतसे आलोचनाको सही रचनात्मक दिशा देनेका उपक्रम किया और रचयिताकी ईमानदारी और निष्ठाका प्रश्न सर्वोपरि प्रतिष्ठित हुआ। आलोचना पुस्तकके अलावा उनकी प्रमुख रचनाओंमें भी (मिसालके तौरपर 'कनुप्रिया' में) भाव-संवलित तर्कका यही तेवर मौजूद है जिसमें राधा सहजबोध, सहजजीवन और अपने प्रति ईमानदार होनेको खोखले आदर्शोंके घटाटोपमें घुटघुटकर जीनेसे बेहतर समझती है। अपने

[शेष पृष्ठ २६ का]

संस्कृत साहित्यके इतिहासपर 'संस्कृत भाषयुम् साहित्यवुम्'[1] कुछ ऐसे अनुवाद व समीक्षात्मक ग्रन्थ हैं जो मलयालममें संस्कृत प्रसारके प्रतीक हैं।

३.१० बंगालीमें

'वाल्मीकि रामायणम्'[2] का संक्षिप्त गद्यानुवाद, एव इसके आधारपर लिखी 'रामायणी कथा'[3] का पुनर्मुद्रण, महाभारतके पात्रोंका चरित्रांकन करनेवाला 'महाभारते विदुर औ गान्धारी'[4] का १९५५ के बाद दूसरा संस्करण, शशिभूषणदास गुप्ताद्वारा वाल्मीकि, कालिदास व रवीन्द्र नाथ, इन तीन महाकवियोंका तुलनात्मक व समीक्षात्मक अध्ययन 'त्रयी[5] और उसके एकही वर्षमें दो संस्करण,

१. ले०—बालकृष्ण नायर टी०पी०, पीटर्स प्रिण्टरी, अलवये, १९७१, पृ० २८०, रु० ५)
२. अनु०--शिशिरकुमार नियोगी, ए० मुखर्जी एण्ड को०, कलकत्ता, १९५८, पृ० १०००, रु० १२)
३. ले०—दिनेशचन्द्र सेन, जिज्ञासा कलकत्ता, १९५८, पृ० २२, रु० २.५०
४. ले०--त्रिपुरारी चक्रवर्ती, ए०मुकर्जी एण्ड को०, कलकत्ता, १९५८, पृ० ६४, रु० १)२५
५. प्रका०—मित्रालय, कलकत्ता, १९५६, १९५७, पृ० २५२, रु० ६)

कालिदासके काव्यकी समीक्षा 'मेघदूत परिचय'[1] और डेढ़ वर्षमें दो बार 'छपना, अद्वैत दर्शनपर श्री योगेन्द्रनाथ बागचीके शोधपूर्ण ग्रन्थ 'अद्वैतवेदान्ते अविद्यानुमान'[2] (अद्वैतवादे अविद्या) तथा 'वेदेर मन्त्रभागे अध्यात्मविद्या'[3] का सम्पादन या योगीराज बसुका 'वेदेर परिचय' आदि विविध गतिविधि संस्कृत साहित्यके बंगालमें सतत अध्ययन और लोकप्रियताको सूचित करती है।

भारतकी कतिपय प्रमुख भाषाओंमें संस्कृतका मौलिक साहित्य किन रूपोंमें आत्मसात् हो रहा है, इसकी एक संक्षिप्त-सी झाँकी ऊपरके खण्डमें दर्शायी जा सकी है। वस्तुतः इसकी विपुलता और उत्कृष्टता संस्कृत अध्येताको इस भाषाकी अखिल भारतीयता, सर्वजनाह्लादकता और गरिमाके गुणोंसे गद्गद करनेमें समर्थ है। ××

१. सं०--पार्वतीचरण भट्टाचार्य, संस्कृत पुस्तक भण्डार, कलकत्ता, १९६८, १९६९, पृ० ३४५, रु० १२)५०
२. सं०—शीतांशुशेखर बागची, संस्कृत पुस्तक भण्डार, कलकत्ता, क्रमशः १९६९, पृ० ४३५, रु० २५) तथा १९६५, पृ० ८२, रु० ४)५०
३. प्रका०—संस्कृत पुस्तक भण्डार, कलकत्ता, १९७०, पृ० २१०, रु० १०)

प्रति पूर्ण रूपसे ईमानदार होनेका अर्थ है स्वतः सम्पूर्ण लेखकीय स्वतन्त्रता। लेखकीय निष्ठा, ईमानदारी और स्वतन्त्रता तथा तदनुकूल आचरणको लेकर आजादीके पहले पाँच वर्षोंमें हिन्दी आलोचकों और लेखकोंमें काफी बहसें हुईं और फलस्वरूप नये लेखकोंका बहुत बड़ा समूह इस आस्थाकी छायामें जीवन-वास्तवको अंगीकार कर अपनी कृतियोंद्वारा अभिव्यक्त करनेमें जुट गया। उसके सामने संकल्प यह रहा कि 'प्रश्न सम्प्रदायों और सत्ताओंका नहीं है, बल्कि मानवीय मूल्य मर्यादा, उसकी साहसपूर्ण स्वीकृति और निष्ठापूर्ण आचरणका है(भारती)।' हिन्दी साहित्य और भारतीय साहित्य में उस समय उलझनपूर्ण स्थितिको जिस प्रकार झेला गया लगभग उसी प्रकार यूरोपीय देशोंमें भी द्विधाग्रस्त साहित्य-चेतना दलीय आदेशोंकी अवहेलनाकर या उनके विरुद्ध विद्रोहकर आगे बढ़ी थी और एक शिविरसे निकलकर दूसरे शिविरके द्वारतक जा पहुँची थी—वहाँ शिविरोंकी स्थिति अधिक स्पष्ट थी और लेखक अपनी सम्पूर्ण ईमानदारी और सात्विकताके बावजूद एकके गुरुत्वा-कर्षणके बाहर आते ही दूसरेसे लगाव या दूसरेका दबाव महसूस करनेके लिए विवश था। इसप्रकार प्रगतिवादके विरोधका राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ भी था जिनसे भारतीय साहित्यिक परिस्थितियाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावसे जुड़ी हुई थीं और राजनीतिक मंचपर यही हाल साम्यवादके विरोधका रहा जो कई कोणोंसे चलता हुआ अन्तमें पूँजीवादी तन्त्रके सान्निध्यमें जा पहुँचा था, उससे शक्ति-संचय करनेका प्रयत्न करता था और अन्ततोगत्वा उसीका वंशवद बनकर रह जाता था। घटनाओं और विचारोंका चक्र इतिहासमें इस प्रकार चल रहा था कि सारी स्थितियोंके बीच सम्बन्ध-सूत्र स्वयं जुटता चला गया है और इसे समझनेके लिए किसीको जोर लगाकर तालमेल बिठानेकी आवश्यकता नहीं।

ऊपरकी चर्चाकी हिन्दी आलोचनाके सम्बन्धमें क्या प्रासंगिकता है, यह प्रश्न उठ सकता है। हम पहलेही निवेदन कर चुके हैं कि साहित्य-विचारके अग्रिम मोर्चे पर जो चहल-पहल और सक्रियता तब थी उसका प्रगतिवादके पक्ष अथवा विपक्षसे गहरा लगाव था। प्रगतिवाद सर्वमान्य न रहा हो, बहुमान्य भी वह न रह गया हो किन्तु बहुचर्चित अवश्य था, अतः साहित्य-क्षेत्र की प्रत्येक नयी प्रतिभा उससे जुड़ी हुई थी; चाहे टकराव या विरोधके ही स्तरपर क्यों न हो। यह सचाई है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता लेकिन सारी-की-सारी हिन्दी आलोचना इतनेही तक सीमित थी या इतने मात्रका परिचय प्राप्त कर लेनेसे ही तत्कालीन हिन्दी आलोचनाकी सारी सरणियोंकी गतिविधिका सम्यक् बोध हो सकेगा, यह कहना सही नहीं है। जिसप्रकार किसी युद्धमें अग्रिम मोर्चेके अलावा भी पृष्ठभूमिमें सूक्ष्म रण-कौशल और रण-दर्शनका गूढ़ चिन्तन-मनन चलता रहता है और अपने ढंगसे रक्षा पंक्तियोंको सबल तथा दृढ़ बनाता हुआ आक्रमणात्मक प्रक्रियाको शक्तिसम्पन्न करता रहता है उसीप्रकार समालोचक भी सुव्यवस्थित एवं प्रतिष्ठापित कृतियोंके प्ररिप्रेक्ष्यमें गहरे एवं व्यापक मानमूल्योंकी छान-बीन करता हुआ, अपने युगकी रचना शक्तिको सम्बल और दिशा प्रदान करता है। शर्त केवल यह है कि वह शास्त्रको केवल शास्त्र-साधना और बुद्धि-विलासके लिए इस्तेमाल न करे और न अतीतको अतीतमें ही विवेचित करे। अतीत और शास्त्रके प्रति उसका प्रत्येक अभिदेश वर्तमानके संकट और समस्याको लेकर हो। इस दृष्टिसे विचार करते हुए हिन्दी आलो-चना-क्षितिजपर **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी**का उदय हमारे लिए सन्तोषका विषय होना चाहिये। वे ऐन मौकेपर, जब इतिहासको इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी, मानवीय मूल्योंके सबल उद्घोषक बनकर उपस्थिति हुए। यह सही है कि उनकी प्रमुख आलोचनात्मक कृतियाँ—'सूर-साहित्य', 'कबीर' और 'हिन्दी साहित्यकी भूमिका'—स्वतन्त्रतासे पूर्व ही प्रकाशित हो चुकी थीं किन्तु हिन्दी आलोचनाके शुक्लाच्छादित आकाशमें प्रवेश करने और प्रतिष्ठितापित होनेमें उन्हें इतना समय लग गया कि हम उनकी चर्चा स्वातन्त्र्योत्तर-युगमें सुविधापूर्वक कर सकते हैं। समीक्षककी जो पहचान पण्डित पद्मसिंह शर्मा और आचार्य शुक्लसे हिन्दी जगतको प्राप्त हुई थी, द्विवेदीजी उसके अनुरूप नहीं निकले—कुछ लोगोंने कदाचित् इसीलिए साहित्यसे कहीं ज्यादा संस्कृतिके या मूलतः विराट मानव संस्कृतिके अध्येता और समीक्षकके रूपमें उन्हें वरेण्य ठहराया। इस स्थापनाके पीछे 'शुद्ध साहित्य' के साथ-साथ 'शुद्ध समीक्षा' की धारणा भी काम कर रही थी किन्तु सन् '४७ के आसपास प्रगतिवादी चिन्ताधाराके प्रबल आवेगने साहित्यको केवल संस्कृति ही नहीं मानव इतिहासके विराट परिदृश्यके साथ इतना अधिक सम्बद्ध कर दिया था कि 'शुद्ध साहित्य' या 'शुद्ध समीक्षा' जैसी किसी वस्तुकी अपेक्षा करना उपहासास्पद

लगने लगा था। यही कारण है कि 'प्रगति' के उदार पक्षधर आलोचकों (शिवदानसिंह चौहान आदि) ने आचार्य द्विवेदीको अपने सर्वाधिक निकट पाया और दूसरी ओर लेखकीय स्वतन्त्रता, ईमानदारी, आत्म-निष्ठ आचार एवं मानवीय मूल्योंके पक्षपतियोंने भी अपनी तमाम खीझ, आशंका और संशयशीलताके बावजूद उनके साहित्य-विचारसे अपनी सहमति व्यक्त की, यद्यपि यह शिकायत बनी रही कि समकालीन साहित्य-धाराओंपर उनके निर्णय दो-टूक नहीं, याकि निर्णयकी कोई दृढ़ धुरी नहीं और आक्रोश भी वे किसीके पक्षधर होकर एक तरफ क्यों नहीं जाते? यह कम दिलचस्प बात नहीं कि मानवीय मूल्योंको किसीभी दर्शन अथवा सिद्धान्तकी अपेक्षा अधिक महनीय माननेवाले लोगोंके गले द्विवेदीजी का मानवतावाद, जो व्यापक दायित्व-बोधसे संवलित था, नहीं उतरा। परिस्थितियोंसे विवश होकर किसीके महत्त्व का स्वीकार दूसरी बात है।

आलोचक रूपमें द्विवेदीजीका सबसे बड़ा योगदान है साहित्येतिहासविषयक धारणाका संशोधन और अभिनवीकरण। वह प्रकारान्तरसे हमारी साहित्य-दृष्टिका शोधन भी है। यह कहना गलत होगा कि रावीन्द्रिक काव्य-बोधका पुनराक्तरण हमारी काव्य-मीमांसामें द्विवेदीजी द्वारा कराया गया। सच तो यह है कि रवीन्द्रनाथके उदात्त सौन्दर्य-बोध और सुसंगत जीवन-दर्शनके सान्निध्य में अपनी जिज्ञासा और अनुसन्धित्साका संस्कार करके उन्होंने इतिहास और मानव-संस्कृतिके विराट फलकपर हिन्दी साहित्यकी सुदीर्घ परम्पराके साक्षात्कारद्वारा अपने उस नवीन साहित्य-दर्शनका अर्जन और विकास किया जो खण्डित मानव मूल्योंको समेकित और संयोजित करके काव्य-समीक्षामें विनियुक्त करनेका समुचित पृष्ठाधार बन सके। स्पष्ट है कि शास्त्रोंके निष्णात पण्डित और प्राचीन काव्यादर्शोंसे पूर्णतः परिचित होते हुए भी उन्होंने साहित्येतिहासके निर्माण एवं साहित्य-समीक्षाओंमें सहज-स्वाभाविक किन्तु अप्रतिहत गतिसे प्रवेश किया और शास्त्रारोपण अथवा मूल्यारोपणसे अपने आपको बचाये रखा। हमारी साहित्य-समीक्षाके इतिहास में न केवल यह पद्धति ही नयी जान पड़ी बल्कि यह दृष्टि भी इतनी अपरिचित-सी लगी कि अनेक लोगोंको यह सात्त्विक भ्रम हुआ कि यह साहित्य (जिसे सचमुच रस-साहित्य कहते हैं) की समीक्षा है अथवा नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि द्विवेदीजीके शुभ प्रयत्नसे हिन्दी पाठकोंमें नवीन काव्य-बोधका संस्कार विकसित हुआ और साहित्यकी उपेक्षित धाराओं और उसके शक्ति-सम्पन्न कवियोंकी मूल्यवान् कृतियोंके प्रति उसने रागात्मक लगावका अनुभव किया। निर्गुण काव्यधारा और उसके श्रेष्ठ कवि कबीरके काव्यके प्रति पाठकीय रुचिका संस्कार-परिष्कार द्विवेदीजीकी समीक्षाओंद्वारा ही हुआ, इसे कौन इंकार कर सकता है? पर, हिन्दी-समीक्षाके समग्र परिवेशमें रखकर इस साहित्य-दृष्टि और इसकी उपलब्धिको जाँचते समय हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आचार्य शुक्ल द्वारा प्रवर्तित समीक्षा-दृष्टि और उपलब्ध निष्कर्षोंकी परिपूर्ति और सम्पुष्टिमें ही यह अधिक सार्थक और मूल्यवान् बन सकी—यह उसकी प्रतियोगी न बनकर परिपूरक बनी। प्रमाण यह है कि आचार्य शुक्लद्वारा उपेक्षित अथवा अवमूल्यित काव्यधाराओं एवं कवियोंके सम्बन्धमें ही पाठकीय रुचि और निर्णयको यह परिमार्जित और परिवर्तित कर सकी; उनके द्वारा परिपोषित और आशंसा प्राप्त काव्यधाराएँ एवं कवि एवं उनकी कृतियाँ पाठकीय मानसमें यथास्थान प्रतिष्ठित और सम्मानित बनी रहीं। उनमें अनुसंहित और उद्घोषित काव्य-मूल्य भी ज्यों-के-त्यों स्वीकृति पाते रहे। इतना कहनेका यह अर्थ नहीं कि द्विवेदीजीकी साहित्य-समीक्षा का महत्त्व कम समझा जाये या उसकी मूल्यपरकतामें सन्देह किया जाये अपितु सत्य यह है कि हमारी स्वातन्त्र्य-पूर्व साहित्य-दृष्टिके संकोच और पूर्वाग्रहको दूर करके उसे नवयुगके अनुरूप ढालनेमें उसने, ठीक समयपर, सही ढंगका रचनात्मक योग दिया। शुक्लजी द्वारा उत्थापित काव्यादर्शों और प्रतिष्ठापित काव्यधाराओंको विस्थापित करनेका न तो उसने प्रयत्न किया और न इस रूपमें उसकी गरिमाको निरूपित-विवेचित करनेमें कोई सफल ही हो सकेगा। यह एक विचित्र सत्य है कि रवीन्द्रनाथके स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्याराधनकी सन्निधि में ही अपनी काव्याभिरुचिको परिमार्जित और विकसित करनेपर भी द्विवेदीजी छायावादके समर्थक-परिपोषक हिन्दी-समीक्षकोंसे बिलकुल अलग दिखायी पड़ते हैं। पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयी, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी तथा डॉ० नगेन्द्र की समीक्षा-दृष्टियोंको समेकित करनेपर हिन्दी आलोचनाका जो व्यापक स्वच्छन्तावादी निकाय उभरकर सामने आता है उसमें द्विवेदीजीको

समाविष्टकर देनेपर स्थिति सुलझनेके बजाय उलझ जाती है। ऐसा मानकर ही हम उक्त तीनों आलोचकोंके ऐतिहासिक महत्त्वका निर्णय स्वातन्त्र्य-पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर आलोचनामें कर सकते हैं।

पण्डित शान्तिप्रिय द्विवेदीको लेकर प्रश्न हो सकता है कि आजादीके बादकी हिन्दी आलोचनाको उनका क्या प्रदेय है? वस्तुतः उस समयतक उनका झुकाव सामाजिक विकासकी प्रक्रिया और भारतीय समाजके विशिष्ट ढाँचेके अन्तर्गत मनुष्यके बहिरंतर विकासकी सम्भावनाओं को समझने-परखनेकी ओर हो गया था और अपनी नवीन 'सर्वोदयी' धारणाओंको ठोस रूपमें अभिव्यक्ति देनेके लिए वे निबन्ध-लेखनमें लगे रहे और केवल कभी-कभी पन्त-काव्यका पुनर्मूल्यांकनकर लेनेके सिवाय साहित्य-समीक्षा के नामपर और कुछ नहीं किया। यह सचाई है कि स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्यका कोई रचनाकार, चाहे वह किसी सम्प्रदाय, वर्ग-समूह या विचारका हो,आलोचक रूपमें उनका अस्तित्व महसूस नहीं करता, प्रोत्साहन, अवरोध अथवा दबावका तो कहना ही क्या? लेकिन यही बात **बाजपेयीजी** और **डॉ० नगेन्द्रको** लेकर नहीं कही जा सकती। स्वातन्त्र्योत्तर नवीन काव्य-बोधके साथ प्रत्यक्ष टक्कर सर्वप्रथम बाजपेयीजीकी ही हुई। संस्कृति और मानवतावादी मूल्योंके प्रति उनमें भी रक्षणशीलताका भाव था किन्तु साथही कविके अन्तः आवेग और सूक्ष्म सौन्दर्य-बोधका सहिष्णु मूल्यांकन वे समीक्षकके लिए अनिवार्य मानते थे। काव्यके भीतर विवेक और सामाजिक नीतिमत्ताका कठोर आग्रह उन्हें मान्य न था और इस मुद्दे पर उन्होंने शुक्ल-युगमें ही अपने तेजस्वी एवं स्वतन्त्र विचारोंका उद्घोष कर नयी काव्यधाराकी भाव-सम्पदाको समुचित समादर प्रदान किया था किन्तु आजादीके बादका नव्यतर काव्य-बोध, उनकी विशिष्ट साहित्यिक अभिरुचिके कारण, उन्हें अग्राह्य प्रतीत हुआ। उन्होंने पुनः निर्भीकता और ईमानदारीके साथ नवीन काव्यकी प्रमुख कृतियोंका विश्लेषण करके अपने निबन्धोंमें उसके गर्हित पक्षका प्रत्याख्यान किया। आक्रोश और व्यंगको झेलते हुए भी वे नये काव्य के विश्लेषणमें दत्तचित्त रहे और उसकी मानव-द्रोही, आत्म-केन्द्रित कुण्ठाग्रस्त रूढ़ भाव-व्यंजनाओंको वर्जनीय ठहराते रहे। वे मुख्यतः कविताके ही पारखी थे अतः गद्य-साहित्य की विवेचनाकी ओर उनकी आलोचनाओंमें कम ध्यान दिया गया। हम यह आग्रह नहीं कर रहे कि बाजपेयीजी के नवलेखनविषयक निर्णय निर्भ्रान्त एवं सटीक हैं पर यह आरोप हमें बचकाना लगता है कि नये साहित्यके 'क' 'ख' 'ग' तक भी उनकी पहुँच नहीं थी। उन्होंने अपनी रुचियों और संस्कारोंके बीचसे ही 'अज्ञेय' और उनके समानधर्मा कवियों और रचनाकारोंको देखा, यह बात भी अभियोगके तौरपर पेशकी गयी किन्तु यदि सिद्धान्त पहले ही त्याज्य ठहराये गये हों और रुचियों तथा संस्कारोंको भी तिलांजलि दे दी जाये तो बचा क्या जिसे लेकर कविता और कलाके पास जाया जाये? दरअसल लेखकीय निष्ठा और ईमानदारीके दावेदारोंको आलोचकीय निष्ठा और ईमानदारीकी आँच सहनेके लिए तैयार रहना चाहिये और यदि कसौटी यही हो तो लेखकों और पाठकोंको आलोचक बाजपेयीसे शिकायतकी गुंजाइश अधिक नहीं होनी चाहिये।

डॉ० नगेन्द्रकी स्थिति किंचित् भिन्न है। यह नहीं कि रचनाकारोंके विभिन्न निकायोंसे उनकी टक्कर नहीं हुई (उल्टे सचाई यह है कि उनकी पहली टक्कर प्रगतिवादियोंसे ही हो गयी—जिससे कदाचित् बाजपेयीजी बचे रहे—फिर प्रयोगवादियोंसे उनकी असहमति हुई और कालान्तरमें नयी कविता और नव-लेखनके रचनाकार और पुरोधा उनसे विभिन्न स्तरोंपर टकराते रहे—दबाव तथा अवरोधके रूपमें उनका अस्तित्व महसूस करते रहे) बल्कि वास्तविकता यह है कि उन्होंने आलोचक धर्मका सम्यक् रूपसे निर्वाह करनेके लिए गभीर शास्त्राभ्यास और सार्थक चिन्तन-मनन किया। उनकी पद्धति सुनियोजित थी। स्वातन्त्र्योत्तर कालमें उन्होंने भारतीय साहित्य-शास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तोंका परिचयपूर्ण विवेचन-व्याख्यान करते हुए उन्हें पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्तोंके आलोकमें जाँचने-परखनेका व्यापक उपक्रम किया और अन्ततः क्रमिक विकासके फलस्वरूप विभिन्न तत्त्वोंके साधु समन्वयको रसके उदात्त काव्य-मूल्यके रूपमें स्वीकार किया। इस क्रममें रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि प्राचीन काव्य-सिद्धान्तोंकी गहरी और प्रामाणिक छानबीन उन्होंने लम्बे आलोचनात्मक निबन्धोंमें की जो विविध ग्रन्थों की भूमिकाओंके रूपमें लिखे गये थे। भारतीय काव्य-शास्त्रमें रुचि रखनेवाले प्रबुद्ध पाठक इस छानबीनसे लाभान्वित हुए और किसी सीमातक अपनी कलाविषयक अभिरुचि और धारणाओंका शिक्षण और परिष्कार कर सके। हिन्दीके सामान्य पाठकके लिए आज भारतीय काव्यशास्त्रजो इतना सुगम और स्पष्ट हो सका है उसका बहुत कुछ श्रेय डॉ० नगेन्द्रकी अध्ययन एवं सम्पादन-योजनाको देना पड़ेगा।

इस विषयको लोकप्रिय और ग्राह्य बनानेमें भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। डॉ० नगेन्द्रकी इस उपलब्धि को रेखांकित करनेका यह अर्थ नहीं कि हम समीक्षक रूपमें उनके कर्तव्यकी इतिश्री सिद्धान्तोंके व्याख्यानतक ही मानते हैं। पहले कहा जा चुका है कि वे आलोचना और रचना की नव्यतर समस्याओंके प्रति जागरूक रहकर ही सम-सामयिक लेखनसे किसी-न-किसी रूपमें जुड़े हुए हैं। 'कामायनीके अध्ययनकी समस्याएं' लिखकर उन्होंने अपनी समीक्षा-दृष्टिको व्यावहारिक आलोचनाके रूपमें प्रतिफलित किया और 'काव्यके बिम्ब' लिखकर बिम्बके स्वरूप, उसके रचनात्मक उपकरण, रचना-प्रक्रिया, काव्यमें उसके महत्त्व आदिका निरीक्षण शास्त्रीय प्रणालीपर करके अपने साहित्य-विचारके साथ उसकी संगति भी दिखायी। 'नयी समीक्षा और नये सन्दर्भ' नाम्नी पुस्तिकामें उन्होंने नव-चर्चित मूल्यमानों और समीक्षा-प्रणालियोंका निरूपण और मूल्यांकन किया, साथही भारतीय काव्यशास्त्रका सन्दर्भ देकर उनके अनेक पक्षोंको अपनी परम्परागत धारणाओं के मेलमें बिठा दिया। इससे पाश्चात्य काव्यशास्त्रके अपेक्षाकृत अल्प परिचित 'प्रत्यय' भी सहज परिचित हो सके हैं। डॉ० नगेन्द्रका यह सम्पूर्ण अध्ययन और चिन्तन रस-सिद्धान्तको केन्द्रमें रखकर ही विकसित होता रहा है और नानाप्रकारसे उसीका सम्पोषण करता रहा है। उनकी धारणा है कि स्थूल उपकरणोंका परित्याग करके यह सिद्धान्त अपने मूल रूपमें कलाके मूल्यांकनका सार्वभौम सिद्धान्त बन सकता है और उन साहित्यिक विधाओंकी विवेचनामें भी सहायक हो सकता है जो कवितासे अलग हैं। यहाँ डॉ० नगेन्द्रकी रसविषयक धारणाके विस्तारमें जाना सम्भव नहीं किन्तु इतना संकेत कर देना आवश्यक है कि अभेद-भूमिपर उसके आनन्दवादी पक्षका समर्थन उन्होंने किया है जो उनके स्वच्छन्दतावादी काव्य-बोधके सान्निध्यमें सुसंगत प्रतीत होता है।

किसी आलोचकसे यदि यह अपेक्षा की जा सके कि वह किन्हीं विशिष्ट कृतिकारोंपर समीक्षा अवश्य ही लिखे या उनकी उपलब्धिके विषयमें अपना अभिमत और निर्णय अवश्य ही व्यक्त करे तो नवलेखनके प्रति डॉ० नगेन्द्रका तटस्थ भाव अथवा मौनावलम्बन आलोचकका विषय बन सकता है। वे आलोचक रूपमें अपनी स्वाधीनताकी मर्यादा अक्षुण्ण रखना चाहते हैं और इस सम्बन्धमें उनकी स्पष्टोक्ति है कि—'प्रायः प्रतिष्ठित या ऐसा काव्यही जिसके स्थायी मूल्य स्पष्ट लक्षित हों, मेरी आलोचनाका विषय रहा है। 'दिनकर' की 'उर्वशी' का अभिशंसन उन्होंने अपनी इसी सहज रुचि और वृत्तिके अनुकूल किया। इसलिए उनके सामने प्रश्न समकालीन प्रकाशनों और सद्यः प्रकाशित रचनाओंका नहीं है अपितु आलोच्य कृति का चुनाव करते समय, उन काव्य-मूल्यों का है जो उनकी धारणाओंके अनुसार स्थायित्व प्राप्त कर सकनेकी सम्भा-वनासे युक्त हों। हमारे विचारसे नवलेखनके अन्तर्गत भी इस दृष्टिसे देखनेपर महत्त्वपूर्ण आलोच्य कृतियाँ उपलब्ध हो सकती हैं। अस्तु। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गत पच्चीस वर्षोंमें डॉ० नगेन्द्रने हिन्दी आलोचनामें शास्त्र-चिन्तनके प्रति अनुराग एवं स्थायी काव्य-मूल्योंकी खोजके प्रति उत्सुकता जगाकर हिन्दी पाठकको अपने ढंगसे प्रबुद्ध और जागरूक बनानेका प्रयत्न किया है और इस दायरेमें अपने दायित्वके प्रति सदैव सजगताका परिचय दिया है।

हमने **प्रगतिवादी समीक्षा**की बात प्रारम्भमें कही थी किन्तु उसके विशिष्ट आलोचकोंके कृतित्व और स्वान्त्र्यो-त्तर युगमें उनके प्रदेयका मूल्यांकन वहाँ अभीप्सित नहीं था। यहाँ हम क्रमसे उनकीचर्चा कर सकते हैं। **डॉ० राम विलास शर्मा** जो सन् '४७ से पूर्व प्रगतिशील-लेखक-संघके मंत्रीके रूपमें, साहित्यके अन्तर्गत वामपन्थी संकीर्णता के लिए उत्तरदायी ठहराये गये आजादीके बादके युगमें, मार्क्सवादी समीक्षा-पद्धतिका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक उदार दृष्टिसे करते पाये जाते हैं। आलोचक रूपमें उनकी सक्रियता सदैव बनी रही है और विविध विषयोंपर उन्होंने निर्भीक भावसे अपना स्पष्ट अभिमत व्यक्त किया है। प्रेमचन्द, भारतेन्दु, निराला और तुलसीदास जैसे महान् साहित्यकारोंकी समीक्षाएँ वे पहलेही प्रकाशित कर चुके थे, इधर आचार्य रामचन्द्र शुक्लपर स्वतन्त्र समीक्षा-पुस्तक प्रकाशित करके उन्होंने मार्क्सवादी इतिहास-बोधके सन्दर्भ में हिन्दी समीक्षाके अन्तर्गत शुक्लजीका महत्त्व रेखांकित किया और अपने समकालीन परिवेशमें उनकी मान्यताओं की संगति भी स्थापित कर दी। यह कहना अनावश्यक है कि शुक्लजीके विषयमें प्रचलित-प्रचारित अनेक भ्रान्त धारणाओंको दूर करनेमें यह पुस्तक बहुत सहायक हुई। इन धारणाओंका सम्बन्ध साहित्येतिहासविषयक निष्पत्तियों, तथ्यों तथा समीक्षा-सम्बन्धी मूल्यवान् निष्कर्षोंसे भी था। अनेक निबन्ध-संकलनोंमें साहित्य और भाषासम्बन्धी साम-यिक प्रश्नोंपर भी डॉ० शर्माने अपनी व्यंग्य-विनोदमयी चुटीली शैलीमें विचार किया और बड़ेसे बड़े व्यक्ति और कृतिकारको आलोचनाका विषय बनानेसे नहीं चूके।

'निराला' उनके प्रिय कवि रहे हैं और उन्होंने एक महती योजनाके अधीन उनके जीवन, जीवन-दर्शन एवं साहित्य तथा उनके अन्तरंगको उजागर करनेवाले पत्रों आदिके आलेखन, विवेचन और संकलनका संकल्प करके 'निराला और उनका साहित्य' का प्रथम खण्ड प्रकाशित किया है—शेष दो खण्ड यथासमय प्रकाशित होनेवाले हैं। इस पुस्तकका प्रथम प्रकाशित खण्ड शुद्ध आलोचना ग्रन्थ न होने पर भी स्वतः सम्पूर्ण ऐसा जीवनी-ग्रन्थ है जो रचनाकारके मर्मतक पहुँचनेका अमोघ साधन होनेके साथ-साथ अपने विस्तीर्ण परिसरमें रम्य सृष्टि भी है। वह हमारे जीवनी-साहित्यको गुणवत्ताकी दृष्टिसे पर्याप्त समृद्धिप्रदान करता है। शर्माजी अपने अध्ययन-मननद्वारा पाण्डित्यका विस्तार करते हुए भी समकालीन सर्जनात्मक धारासे अपने आपको विच्छिन्न नहीं रखते। अधिकांश नये लेखकोंकी उल्लेखनीय रचनाओंपर उनकी प्रतिक्रियाएँ लेखोंके माध्यमसे व्यक्त होती रहती हैं। वे जिसप्रकार 'अज्ञेय' और भारतीके साहित्यकी दुर्बलताओंको रेखांकित करते हैं उसी प्रकार शमशेर और मुक्तिबोधकी शक्ति-सीमाओंकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। वे कवितामें 'रहस्य' अथवा 'रहस्य-मुद्राओं' के विरुद्ध हैं फिर चाहे वे 'मुक्तिबोध' में लक्षित हों चाहे 'निराला' में, उसका विरोध अवश्य करेंगे। उनके आलोचक-व्यक्तित्वकी एक बात जो हमारा ध्यान अवश्य आकृष्ट करती है वह यह है कि मार्क्सवादी 'प्रत्ययों' पर उनकी इतनी दृढ़ आस्था है और वे इतने आश्वस्त भावसे अपनी आलोचनामें उनका विनियोग करते हैं; साथही इस क्षेत्रमें अपने दो-टूक मूल्यांकन और निर्णयों के लिए वे इतने प्रख्यात हो गये हैं कि उन्हें लेकर नव-लेखन तथा नयी-कविताके शिविरोंमें कोई सहज-लक्ष्य तनाव नहीं प्रतीत होता। जैसे वे क्या कहेंगे और कैसे कहेंगे इसे लोगों ने, निरन्तर अभ्याससे, पहले ही पूर्वाशित कर लिया हो।। यह जहाँ उनके सुस्पष्ट चिन्तन, दुर्दम्य आत्म-विश्वास और अमोघ निर्णय-क्षमताका द्योतक है वहाँ रचना और रचयिताके प्रति आरोपित आग्रह तथा आलोचकके चित्तकी द्रवणशीलताके अवरोधका संवाहक भी है जिससे सृजन-धर्मके प्रति अपेक्षित आत्मीयताका विकास असम्भव हो जाता है। इतना होनेपर भी हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि आलोचक रूपमें डॉ० शर्माने हिन्दी पाठकोंके एक बहुत बड़े समूहको समकालीन लेखनके सम्बन्धमें अपने विवेचन और निर्णयोंसे प्रभावित किया है और विरोधियों के तमाम आरोपोंके बावजूद हिन्दी आलोचनामें अपना स्थान बना लिया है।

श्री शिवदानसिंह चौहान प्रारम्भसे ही प्रगतिशीलता को व्यापक एवं उदार बनानेमें लगे रहे जिससे उसमें जीवन-वास्तवको अभिव्यक्ति देनेवाले अधिकसे अधिक रचनाकारोंका समावेश हो सके परन्तु अज्ञेय और उनके समानधर्मा सप्तक-बद्ध कवियोंकी मानव-द्रोही वृत्तियोंका उन्होंने खुलकर विरोध किया। 'त्रिशंकुओं' का साहित्य उनकी दृष्टिमें वह साहित्य है जो देशकी धरती और व्यापक जन-जीवनसे पराङ्मुख ही नहीं बल्कि कभी-कभी उसका विरोधी होकर, मनोविश्लेषणकी गहराइयोंके नाम पर, आत्मकेन्द्रित और कुण्ठाग्रस्त जीवनकी स्वरचित अथवा नितान्त प्रतिज्ञात्मक समस्याओंसे डॉनक्विक्जॉटिक लड़ाई लड़ता रहता है और शहीदाने अन्दाजमें कुर्बानियों का कल्पित गान गाया करता है। त्रैमासिक 'आलोचना' का सम्पादन करते हुए चौहानजीने मार्क्सवादकी पक्षधर बिखरी हुई शक्तियोंको समेटने और हिन्दीकी सर्जनशीलता ऊर्जाको नयी दिशा देनेका भरसक प्रयत्न किया किन्तु लेखकोंका संशय इतना तीव्र था कि सभी तर्क और स्पष्टीकरण बेकार साबित हुए। किसीभी बाहरी सुझाव या परामर्शको, चाहे वह कितने ही साधु उद्देश्यसे प्रेरित क्यों न रहा हो, लोग एकदम माननेके लिए तैयार नहीं थे। अतः छठवें दशकके समाप्त होनेके काफी पूर्व ही चौहानजी ने आलोचना-कार्यसे एक प्रकारका सन्यास ले लिया और समकालीन लेखनके बीच उनके अस्तित्वका बोध क्रमशः क्षीणतर होता चला गया। 'हिन्दी साहित्यके अस्सी वर्ष' 'आलोचनाके मान' आदि पुस्तकोंमें उन्होंने अपने चिन्तनका सार प्रस्तुत किया है किन्तु, कुल मिलाकर स्वातन्त्र्योत्तर कालमें उनकी उपलब्धियाँ उनकी पूर्वप्रतिष्ठा और ख्यातिके अनुरूप ठहरायी जा सकेंगी, इसमें सन्देह है।

समाजोन्मुख और प्रगतिशील शक्तियोंको संयोजित और जागरूक रखनेका दायित्व सहज भावसे **डॉ० नामवर सिंह**के ऊपर आया। वे हमारी नयी पीढ़ीके आलोचक हैं लेकिन जब प्रगतिशील आलोचकोंकी चर्चाका प्रसंग उपस्थित है तब अच्छा यही होगा कि हम उनके कर्तृत्वका विश्लेषण पहलेही कर लें। नवीन साहित्यके विवेचन-मूल्यांकनमें उन्हें सुविधा यह थी कि वे उस पीढ़ीके ही आलोचक थे जिसमेंसे रचनाकारोंका समूह निकलकर आ रहा था। उनके साहित्यिक व्यक्तित्वका कोई ऐसा 'अतीत' नहीं था जिसके प्रति लोगोंके मनमें किसी प्रकारकी शंका-ग्रन्थियाँ हों और जो उनके प्रति आत्मीयता उत्पन्न करनेमें बाधक

हों। केवल कुछको छोड़कर जो नव-सृजनके स्वनिर्वाचित पुरोधा थे, वे अधिकांश रचनाकारोंके विश्वासभाजन बने; उन्होंने सर्जनाको अपनी आत्मीयता प्रदान की और पाठकों में 'नयी कविताकी उन उपलब्धियोंको पहचाननेका विवेक जाग्रत किया जो सामाजिक यथार्थके संस्पर्शसे मूल्यवान् बन गयी थीं। अन्य प्रगतिवादियोंकी भाँति समूची 'नयी कविता' को 'समाजविरोधी', 'कुण्ठाग्रस्त', 'आत्मकेन्द्रित' और अमरीकी प्रभावसे ग्रस्त न बताकर उन्होंने वैचारिक पृष्ठभूमिपर समाजोन्मुखी काव्यधाराको अलग प्रतिष्ठित किया और उसके शक्तिशाली प्रतिनिधिके रूपमें 'मुक्तिबोध' को नवीन गौरवसे मण्डित किया। नामवरजी अपने इस निर्णयको बार-बार रेखांकित करना चाहते हैं कि छायावादी कवियोंमें 'पन्त' सबसे पहले स्वीकृत हुए और 'निराला' सबसे बादमें जबकि मूल्यवत्ता और महत्ताकी दृष्टिसे क्रम बिल्कुल उल्टा है। उसी प्रकार नयी कवितामें 'अज्ञेय' पहले स्वीकृत हुए और 'मुक्तिबोध' प्रायः सबसे अन्तमें जबकि 'मुक्तिबोध' ही उसके सबसे प्राणवान कवि हैं। और फिर यह समीकरण भी सामने रखते हैं कि 'पन्त' और 'अज्ञेय' दोनों इस बातमें समतुल्य हैं कि दोनोंने स्वयंको बचाकर कविताको मर जाने दिया जबकि निराला और मुक्तिबोधकी तुल्यधर्मिता इस तथ्यमें निहित है कि दोनोंने स्वयंको मारकर कविताको बचा लिया। आलोचकके इस समीकरणमें एकपक्षीयताका दोष है—उसकी बात 'निराला' और 'मुक्तिबोध' के सन्दर्भमें जितनी तर्कपूर्ण और विश्वसनीय लगती है उतनी 'पन्त' और अज्ञेय के सन्दर्भमें नहीं। उसकी कटुताको अगर नज़रन्दाज़ भी कर दें तोभी तथ्योंके आधारपर उसे प्रमाणित करना कठिन है। इन मतभेदोंके बावजूद इस बातसे इंकार नहीं किया जा सकता कि नामवरसिंहने समकालीन लेखनको विश्वसनीय ढंगसे व्याख्यायित और प्रभावित किया है। केवल कवितातक ही अपने आपको सीमित न रखकर उन्होंने कथा-साहित्य और नाट्य रचनाओंकी भी प्रसंगवश मीमांसा की है। इस प्रकार उनका सम्बन्ध हिन्दी भाषाके सम्पूर्ण रचनात्मक परिसरसे जुड़ा हुआ है। 'छायावाद', 'इतिहास और आलोचना' तथा 'कविताके नये प्रतिमान' आदि उनकी महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। 'आलोचना'के सम्पादकके रूपमें वे समकालीन साहित्य-चिन्तनको समुचित दिशा प्रदान करनेमें संलग्न हैं।

वरिष्ठ प्रगतिवादी आलोचक **प्रकाशचन्द्र गुप्त** ने अपने उदार दृष्टिकोणसे स्वातन्त्र्यपूर्व कालमें सहिष्णुतापूर्ण समीक्षाएँ लिखीं किन्तु वे प्रायः निर्विवाद रहते हुए भी साहित्यके वर्ग-आधार और वर्ग-संघर्ष तथा उसके प्रभावी सहयोगका विवेचन करते रहे। उनका आलोचना-कार्य रिव्यू-लेखनके रूपमें अधिक है। 'हिन्दी साहित्यकी जनवादी परम्परा', 'साहित्यधारा' आदि उनकी आलोचना पुस्तकें हैं।

अमृतराय कथाकारके रूपमें जितने प्रसिद्ध हैं, प्रगतिशील आलोचकके रूपमें भी उतने ही सक्रिय रहे हैं। 'नयी समीक्षा', 'सहचिन्तन', 'आधुनिक भाव-बोधकी नयी संज्ञा' आदि निबन्ध संकलन उनके आलोचक रूपको उजागर करते हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है स्वतन्त्र चिन्तन और तदनुकूल सहज अभिव्यक्ति। लगता है भाषाकी रवानी उन्हें विरासतमें प्राप्त हुई है। वे समकालीन साहित्य में समाजवादी शक्तियोंको उभारने तथा मजबूत करनेका प्रयत्न करते हैं। मार्क्सवादमें उनकी आस्था है किन्तु वर्तमान जीवन-संकट, मानव-नियति, मनोग्रन्थियाँ, 'एब्सर्डिटी, आदिकी सचाई और उसकी अस्तित्ववादी व्याख्या तकसे भी वे किसी सीमातक सहमत होनेमें हानि नहीं समझते—उन्हें एतराज सिर्फ इस बातपर है कि नयी पीढ़ीके लेखकोंको अपने चारों ओर फैले जीवनमें इन शब्दोंके भीतर निहित अर्थको देखने-समझनेका प्रयत्न करना चाहिये, इन्हें रटते रहनेसे दर्शनकी नवीनता उजागर नहीं होगी।

'मुक्तिबोध' मूलतः कवि थे किन्तु साहित्य-विचारकी दिशामें शास्त्रकी अपेक्षा दर्शनका अधिक आश्रय लेकर निरन्तर सक्रिय रहे। 'कामायनी' का पुनर्मूल्यांकन तो उन्होंने अपने ढंगसे किया ही, 'नयी कविताका आत्म-संघर्ष' निरूपित करते समय विवेक और सूक्ष्म विवेचन शक्तिका भी परिचय दिया। 'एक साहित्यिककी डायरी' रचना-प्रक्रियाका स्वतन्त्र निरूपण करनेवाली पठनीय पुस्तक है। 'नये साहित्यका सौन्दर्य शास्त्र' जो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में रचित निबन्धोंका संकलन है और जिसका प्रकाशन उनकी मृत्युके बाद हुआ है, सामयिक प्रश्नों और साहित्यिक समस्याओंको निरूपित करनेका प्रयत्न करता है। रचना-प्रक्रियाका निष्ठा और ईमानदारीसे निरूपण करने के बाद मुक्तिबोध इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि साहित्य-मीमांसामें इस बातकी जाँच अवश्य होनी चाहिये कि रचनाकारने बाह्यका आभ्यन्तरीकरण कितनी सचाई और कौशलके साथ किया है और पुनः उसकी बाह्य अभिव्यक्ति में सत्य और चारुत्वका संगम किस सीमातक हुआ है।

उन्होंने इस सम्पूर्ण प्रक्रियाको अधिक जटिल और गम्भीर माना और सारे विवेचनके बावजूद किसी सरलीकृत सूत्र द्वारा इसे समझानेका उपक्रम नहीं किया। जहाँतक नयी कविताका प्रश्न है वे उसके विस्तारको, मनके निविड़ अन्धकारसे लेकर जन-जीवनके असीम प्रसारतक, भावोंकी क्रिया-प्रतिक्रियाद्वारा समझने-समझानेका प्रयत्न करते हैं—उनके लिए अन्तर्मुखी जटिलता और बाह्याभिमुखी सामाजिक दृष्टिमें भेद करना कठिन है। वे दोनोंके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष तनावमें कवि-कर्मकी महत्ता मापना चाहते हैं और मार्क्सवादी कला-सिद्धान्तोंको उनकी पूर्ण जटिलतामें ही स्वीकार करते हैं, किसी सरलीकृत रूपमें नहीं।

श्री नेमिचन्द्र जैनने स्वातन्त्र्योत्तर कालमें जो समीक्षाएँ लिखीं उनका सम्बन्ध हमारे कथा-साहित्य और नाट्य लेखन एवं उनके मंचनसे है। 'अधूरे साक्षात्कार' में संकलित उनके निबन्ध हिन्दी उपन्यासके गौरव-चिह्नोंको विश्लेषित करते हैं। सांगोपांग विवेचन न होनेपर भी, इन लेखोंद्वारा रचनाके मर्मतक पहुँचनेमें सहायता मिलती है और लेखक आत्मीयतापूर्ण ढंगसे, कृतियोंके अछूते पक्षोंको उजागर करता चलता है। इधर हिन्दीमें नाट्यालोचन धीरे-धीरे रंग-कर्मके व्याख्यानकी ओर झुक चला है। नेमिचन्द्र जैनकी पुस्तक 'रंग-दर्शन' इस दिशामें, हमारी समझको विकसित करनेवाली है। मंचन-प्रक्रियाकी समीक्षा द्वारा उन्होंने नाट्यगत 'काव्यार्थ' को समग्रतः अभिव्यक्त करने अथवा मूर्त्त रूप देनेकी व्यावहारिक कठिनाइयोंपर विचार किया है। इस सन्दर्भमें समकालीन नाट्य-प्रयोगों का सम्यक् परिदर्शन भी हो गया है।

सन् '४७ के बाद प्रयोगवाद, नयी कविता और समग्रतः 'नवलेखन' के विशिष्ट पक्षका पोषण करनेवाले नये आलोचक भी सामने आये जिनमें अधिकांश रचनाकार भी थे और जिनका प्रगतिवादी चिन्ताधारासे विरोध रहा। 'अज्ञेय' का व्यक्तित्व स्वातन्त्र्यपूर्व कालमें ही प्रतिष्ठित हो चुका था और धीरे-धीरे उनके साहित्यमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और अहंरक्षाका स्वर ऊँचा होता गया। 'प्रतीक' के माध्यमसे उन्होंने ऐसे लेखकोंका समायोजन किया जो इस स्वरको शक्ति प्रदान कर सकें। अतः लेखककी ईमानदारी जो अन्ततः 'अपने प्रति ईमानदारी' के आन्दोलनके रूपमें बदल गयी, पर विशेष बल दिया गया। साफ बात यह थी कि लेखकके ऊपर किसी प्रकारका दबाव, अनुशासन अथवा आदेश कारगर नहीं होगा, वह अपने ज्ञान और अनुभवको आत्मसात्कर स्वेच्छासे अभिव्यक्ति देगा क्योंकि "ईमानदारी वास्तवमें एक मौलिक गुण है और उस बौद्धिक स्तरका पर्याय है जिसपर आकर हमारा तर्क, पूर्वग्रह और व्यक्तिगत रुचिके ऊपर उठ जाता है और जिसपर आकर हमें वस्तुओंकी वास्तविकताका सही अनुभव होता है।" ('प्रतीक'-१९५१) 'ईमानदार लेखन' की यह माँग जायज थी और सदैव रहेगी लेकिन इसका आचरण और निर्वाह तथा इसकी सही पहचान कठिन है, इससे कौन इंकार करेगा? इतिहासके जिस मोड़पर यह आवाज उठी वहाँ इसके मूल कारण स्पष्ट थे और यहभी जाहिर था कि किन शक्तियोंके खिलाफ यह आवाज थी। देशके स्वतन्त्र होनेके साथ ही एक ओरसे राष्ट्रभक्ति तथा नव-निर्माणका स्वर मुखर हुआ और दूसरी ओर प्रगतिवादने वर्ग-संघर्ष और समाजवादी व्यवस्थाके परिचित नारेको बुलन्द किया और दोनों ने अपने-अपने ढंगसे साहित्य-रचनाको प्रभावित करनेका आयोजन किया। दोनोंने साहित्यकारके दायित्वका प्रश्न भी अपने-अपने ढंगसे उठाया। दोनोंमें परिणामी समानता यह थी कि वे समाजके प्रति कलाकारको सचेत एवं जागरूक रखना चाहते थे। 'ईमानदारी' का सवाल दोनोंके आदेशोंसे मुक्त होनेके लिए उठाया गया चाहे वे आदेश कितने ही औचित्य-पूर्ण क्यों न रहे हों। 'अज्ञेय' ने 'प्रतीक' की सम्पादकीय टिप्पणियों और स्वतन्त्र लेखोंमें इसीको प्रसारित किया और इसप्रकार रचनाकारके साथ-साथ आलोचकके धर्म का भी निर्वाह किया। गत पच्चीस वर्षोंमें उन्होंने अपने लेखोंमें रचनाकी अनेक समस्याओंपर विचार करते हुए इस मूल धारणाको केन्द्र में रखा। उनके निबन्ध-संग्रह 'आत्मनेपद', 'हिन्दी साहित्यः आधुनिक परिदृश्य', 'भवन्ती' आदि इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं।

'अज्ञेय' मूलतः रचनाकार हैं, आलोचक नहीं; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनके विचारोंसे कुछ आलोचकोंने प्रेरणा प्राप्त की। इनमें **डॉ॰ रघुवंश, डॉ॰ जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकान्त वर्मा, डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी** आदि मुख्य हैं। 'नयी कविता' और 'नवलेखन' को स्थापित करनेमें उक्त आलोचकोंके निबन्धों और पुस्तकोंने बड़ा योग दिया, यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस स्वरको सबसे अधिक समर्थन दिया गया, केवल वही प्रतिष्ठित नहीं हुआ। दूसरे स्वरभी जो समयकी माँगके अनुरूप अपनी तेजस्विता लेकर उभर रहे थे अपनी शक्तिके बलपर स्वीकृत हो गये और आज उनकी उपेक्षा किसी प्रकार नहीं की

जा सकती। **लक्ष्मीकान्त वर्मा** की पुस्तक 'नयी कविता के प्रतिमान' इस सन्दर्भमें काफी चर्चित रही; निश्चय ही वह समूची नयी कविताके आस्वादन-आकलनका आधार नहीं प्रस्तुत करती। तर्कों और उदाहरणोंके सारे घटाटोपके बावजूद वह व्यक्तिबद्ध, अन्तर्मुखी आत्मकेन्द्रित काव्यके मूल्यांकनका ही आधार बन सकती है। उसका दायरा सीमित है और उसकी 'साम्प्रदायिकता' स्वतः स्पष्ट है। उनकी दूसरी पुस्तक 'नये प्रतिमान : पुराने निकष' अनेक भ्रान्तियोंको जन्म देती है। सामान्यतः यह बात सही है कि जो समकालीन साहित्यके अध्ययन-मननद्वारा अपनी रस-दृष्टिको स्वच्छ और विकसित रखता है वही प्राचीन के मान-मूल्योंका ठीक विश्लेषण कर पानेकी क्षमताका विकास कर सकता है। प्राचीनको हृदयंगम करनेके लिए वर्तमानका 'बोध, अनिवार्य है। लेकिन वर्माजीने पुराने सिद्धान्तोंका जिस ढंगसे विश्लेषण किया है उसे देखते हुए सन्देह होता है कि वर्तमान साहित्यके सन्दर्भमें उनकी समझ गहरी और पूर्ण है। मिसालके तौरपर उनकी रसविषयक धारणाको ले सकते हैं। 'कनुप्रिया' को सामने रखकर वे कहते हैं कि रस-सिद्धान्तके अनुसार राधाको कौन-सी नायिका माना जायेगा? 'विभावानुभाव' के साँचेमें उसकी योजनाको कैसे आबद्ध किया जायगा? ......इत्यादि-इत्यादि। और जब ऐसा नहीं हो सकता तब रस-सिद्धान्तके आधारपर उसकी या किसी आधुनिक कविताकी समीक्षा नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहना चाहते कि 'रस-सिद्धान्त' के आधारपर किसी आधुनिक रचनाकी समीक्षा की जाये किन्तु यह अवश्य पूछना चाहेंगे कि क्या आचार्य शुक्लने उक्त सिद्धान्तके आधारपर 'मानस', 'सूरसागर' और 'पद्मावत' की आलोचना नहीं की? क्या नायक-नायिका-भेदके प्रश्न उनकी आलोचनामें उठे या क्या उनके आने-न-आनेसे कोई कठिनाई आलोचकके सम्मुख आयी? हमारे विचारसे यदि लक्ष्मीकान्तजी शुक्लजीपर दृष्टि रखते तो उनकी 'रस'-विषयक धारणा साफ होती और भ्रान्तिजनक आपत्तियाँ सामने नहीं आतीं।

डॉ० रघुवंशने प्रयोगवादसे 'नयी कविता' का व्यावर्त्तन करते हुए अपनी आलोचनाद्वारा मुख्यतः नयी कविता और सामान्यतः नवलेखनको ही विवेचित किया। सन्दर्भ-गत परिस्थितियों, राजनीतिक-सामाजिक घात-प्रतिघातों और नवीन सामाजिक सम्बन्धोंका विचारमूलक विवेचन करनेका भी उन्होंने प्रयास किया। प्राचीन साहित्य-शास्त्र और विशेष रूपसे भरतके नाट्यशास्त्रको लेकर उन्होंने साहित्यकी मूल धारणाओंकी भी ऊहापोह की है। प्रत्येक क्षेत्रमें उन्होंने निष्ठा और गम्भीरतापूर्वक कार्य किया किन्तु नयी कविताके पक्षधर आलोचकके रूप में उनकी ख्याति अधिक हुई। आधुनिक मनुष्यकी पहचान वे इस रूपमें करते हैं : "मानव-नियतिका निर्देशक युगोंसे मनुष्यके बाहरकी अनेक आध्यात्मिक अथवा सामाजिक शक्तियाँ रही हैं, पर आजका मानव अपनी नियतिका दायित्व अपने विवेकपर लेना चाहता है।" (साहित्यका नया प्रिरिप्रेक्ष्य)। इस मूल-धारणाके आधारपर वे मानव (लघुमानव) और समकालीन काव्यकी परीक्षा करते हैं। जाहिर है कि इस परीक्षामें विवेकका अन्तः स्वर ही मुख्य होगा, 'मनुष्यके बाहरकी आध्यात्मिक और सामाजिक शक्तियों' का प्रभाव प्रायः नहींके बराबर माना जायेगा। यहाँ पहुँचकर बात रहस्यपूर्ण बनने लगती है और 'विवेक' की कसौटी 'ईमानदारी'की कसौटी बन जाती है जिसकी पहचान स्वयं एक समस्या है। 'मनुष्यके बाहरकी सामाजिकता' को नकारनेका अथवा तिरस्कृत करनेका उपक्रम जिन कठिनाइयोंको जन्म देता है वे सभी रघुवंशजीकी आलोचनामें मौजूद हैं इसीलिए नयी कविताकी यथार्थमूलक सामाजिकता तथा उसकी संघर्ष-प्राण ओजस्विताको रेखांकित करनेमें उन्हें सफलता नहीं मिली। मनुष्यके बाहर जो यथार्थ घटित हो रहा है, जो नये सामाजिक सम्बन्ध विकसित हो रहे हैं, जो नवीन मूल्यवत्ता और मर्यादा आविर्भूत हो रही है और समग्रतः ऐतिहासिक विकासकी जो प्रक्रिया निरन्तर चालू है उसकी पकड़ या सही पहचान विवेकके आधारपर—केवल विवेकके आधार पर सम्भव नहीं। वह कुछ विशिष्ट नियमोंके आधारपर परिचालित हो रहा है जिन्हें गहरे बौद्धिक विवेचन और समाज तथा इतिहासकी तथ्यपूर्ण समझके बाद ही जाना जा सकता है। वैसा करना रचनाकारके लिए गैरजरूरी हो सकता है किन्तु आलोचकके लिए नितान्त अनिवार्य है। भोगा हुआ 'यथार्थ' हो सकता है किन्तु यदि उसे ही 'यथार्थ-बोध' भी मान लिया जाय तो कहना पड़ेगा कि रोगकी समग्र जानकारी डॉक्टरकी अपेक्षा रोगीको ही अधिक हो सकती है। लेकिन रोगी दर्दका अनुभव करता है, 'दर्दके कारणों' का अनुभव नहीं करता। इससे प्रकट है कि समग्र साहित्य-दृष्टिकी उपलब्धि अपने भीतर टटोलते रहनेसे नहीं हो सकती। डॉ० रघुवंशके आलोचनात्मक निबन्धोंमें बावजूद पाण्डित्य और व्यवस्थित तर्क-योजनाके, यदि एकांगिता नजर आती है तो केवल उक्त संकीर्णताके कारण ही।

डॉ० धर्मवीर भारतीने 'प्रगतिवाद—एक समीक्षा' (१९४९) लिखकर आजादीके बादकी नवीन साहित्य-दृष्टिका प्रथम उन्मेष प्रदर्शित किया किन्तु मूलतः रचनाकार होनेके नाते वे साहित्यिक प्रश्नों और समस्याओंपर फुटकर लेखोंमें विचार करते रहे। ये लेख आगे चलकर पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुए। 'भारती' की पहली पुस्तक भारतके प्रगतिवादी आन्दोलनका विरोध और रूसके 'समाजवादी यथार्थवाद' का समर्थन करती हुई भी मानव-सत्यको सबसे ऊपर प्रतिष्ठित करती है। जब अपनी प्रवाहपूर्ण शैलीमें वे कहते हैं: "मानव हमारा देवता है, हमारा उपास्य है, हमारा ईश्वर है। मार्क्स हों या ईसा, लेनिन हों या गान्धी, सभी मानवता की जयमालमें गुँथनेवाले गुलाब हैं, और हम हरेकका तबस्सुम, हरेकका सौरभ स्वीकार करनेके पक्षमें हैं, मगर किसीकी सीमामें बँधना नापसन्द करते हैं। मार्क्स हों या ईसा, दोनोंसे बड़ा मानव है। उपनिषद् हों या कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो, मानव जीवनका सत्य दोनोंसे बड़ा है।" तब हमें ऐसा लगता है कि नये रचनाकार और आलोचक किसी ऐसे सांगोपांग सम्पूर्ण सत्यका साक्षात् करने-करानेवाले हैं जो मानव-इतिहासकी दीर्घकालीन परम्परामें आश्रुतपूर्ण और एकदम नया है, जो मानवके सामने न केवल साहित्यके क्षेत्रमें बल्कि राजनीति और समाज-विज्ञानके क्षेत्रमें भी नवीन चिन्तनों और सिद्धान्तों का उन्मेष करनेवाला है। लेकिन आगे आनेवाले पच्चीस वर्षोंने सिद्ध कर दिखाया कि कुछ युवा लेखकोंके रोमैण्टिक उच्छ्वासोंनें बसा हुआ 'विराट् मानव सत्य' का कल्पना जगत मध्ययुगीन आध्यात्मिकताकी अपेक्षा अधिक रहस्य-पूर्ण तथा वर्तमान युगके अनेक थोथे नारों और खोखले आदर्शोंसे रचे हुए मोहावरणोंकी तुलनामें कहीं ज्यादा भ्रामक रहा है। वस्तुतः सामने खड़े हुए गम्भीर सत्यके संकटसे अपने आपको मुक्त करनेका वह एक दार्शनिक पृष्ठाधार बनकर रह गया। सहज जीवन और मानव-सत्यके नामपर जो साहित्य और साहित्य-विचार एक खास वर्गके लेखकोंद्वारा रचा और विकसित किया गया उस पर सरसरी निगाह डालनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। और व्यावहारिक जीवनकी सचाई तो यह है कि हम सबसे ऊपर उठने, सबसे अलग रहने और सब कुछको सार रूपमें ग्रहण करनेकी बात कहकर भी अपनी सुविधा और स्वार्थोंके अनुकूल परिस्थितिदेखकर कहीं-न-कहीं अपने-आपको बँध जाने देते हैं, और कहने लगते हैं कि ऐसे बंधना हमारे विवेकको कुण्ठित नहीं करता। बँध जाना अपने-आपमें बुरा अथवा अवांछनीय नहीं और न मनुष्यकी सहज मुक्ति कामना और सामाजिक सम्बद्धतामें कोई मौलिक अन्तर्विरोध ही है किन्तु मानव-सत्यके भ्रममें किसी मायाविनी अवास्तविकताको गले लगाना हानिकर और खतरनाक है। हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि पूर्ण युग-सत्यका सम्यक् साक्षात्कार भारती और उनके समानधर्मा लेखक नहीं कर सके और अपनी इसी सीमाके कारण ही वे केवल उस लेखक समुदायके पुरस्कर्त्ता बने जो विशाल भारतीय जन-मानसमें उद्वेलित महत्त्वाकांक्षाओं और भावनाओं-विचारोंको सामान्यतः नजरन्दाज करके लेखन-कार्यमें रत रहा।

आजादीके बाद साहित्य-विचारकी दिशामें लेखकों की जो कनिष्ठ पीढ़ी अग्रसर हुई वह वरिष्ठ लेखकोंके अतिवादोंसे बचती रही—वह साहित्यको किसी समाज-दर्शनके निगड़में आबद्ध करनेके लिए मजबूर नहीं थी और न उसके सामने कोई ऐसा दर्शन अथवा मनोविज्ञान ही मौजूद था जो साहित्यिक प्रयोगोंके स्तरपर अपना आकर्षण न खो चुका हो। अतः वह सही सामाजिक परि-दृश्यमें साहित्यका मूल्यांकन सुविधापूर्वक कर सकी। इस पीढ़ीके लेखकोंकी संख्या अधिक है, फिरभी कुछ नाम सामने हैं: **डॉ० शिवप्रसादसिंह, डॉ० रामदरस मिश्र, देवीशंकर अवस्थी, धनंजय वर्मा, परमानन्द श्रीवास्तव, अजितकुमार, विश्वनाथ त्रिपाठी, रमेशचन्द्र शाह, नागेश्वरलाल, मधुरेश, रमेश कुन्तल मेघ** आदि। ये लेखक रचनाके अग्रिम क्षेत्रोंमें पहुँचकर अपने साहित्य-चिन्तनको निरन्तर विकसित और स्वच्छ रखनेवाले सिद्ध हुए और इसीलिए उनमें समकालीन सर्जनशीलताको प्रभावित और प्रेरित करनेकी शक्ति दिखायी देती है। पत्र-पत्रिकाओंमें आलोचनात्मक निबन्धोंके प्रकाशनके अलावा इनकी स्वतन्त्र समीक्षा कृतियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं और हिन्दी जगतमें उन्हें सुरक्षित प्रतिष्ठा भी मिली है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी आलोचनाकी गतिविधिका जो संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया गया है उससे उन विचारों का किंचित् आभास मिल सकता है जो इस कालमें आलोचकोंको प्रभावित करते रहे हैं। किन्तु आलोचना-सिद्धान्तों और प्रणालियोंको विकसित करनेका भी कुछ उद्योग इस कालमें किया गया। ऐतिहासिक, समाज-

शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक, मूल्यपरक, मिथकीय, संरचना-मूलक, शैली वैज्ञानिक आदि अनेकानेक आधुनिक समीक्षा-सरणियोंको रचनाओंके व्यापक सन्दर्भमें परीक्षित और परिमार्जित किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि ये नवीन प्रकार या प्रयोग पश्चिमीय साहित्य जगतमें उद्भूत हुए थे किन्तु हिन्दी समीक्षामें इनका सावधान विनियोग कल्याणकारी ही होगा, यह धारणा अबतककी गति-प्रगतिके आधारपर बनायी जा सकती है। साहित्यको इतिहास, समाज तथा संस्कृतिके विराट सन्दर्भमें रखकर देखने-समझनेका रिवाज अब काफी पुराना पड़ चुका है और उससे लोग ऊबने लगे। कारण यह था कि साहित्यके स्थानपर 'सन्दर्भ' ही प्रधान हो गया जिसकी व्याख्याके लिए नानाप्रकारके साहित्येतर सिद्धान्तोंका साहित्य-मीमांसामें अबाध प्रवेश कराया जाने लगा। फलस्वरूप पाठकका ध्यान रचनाकी आन्तरिक विशेषताओंसे हटकर उसके बाह्य परिवेशमें इस सीमातक उलझने लग गया कि यह आशंका हो चली कि सारे विवेचनमें मूलरचनाका मर्म कहीं ढूँढ़नेपर भी न मिले। इसलिए आलोचकोंका एक सम्प्रदाय रचनाको रचनाके दायरेमें ही विश्लेषित करने अथवा रचनाकी राहसे स्वयं गुजरनेकी प्रक्रियापर अमल करनेका संकल्प लेकर आया है। अंग्रेजी समीक्षक क्लीथ ब्रूक्सके प्रयोगोंके आधारपर **डॉ० इन्द्रनाथ मदान** ने 'मुक्तिबोध' की कविताओंकी मीमांसा इसी पद्धतिपर की। आलोचकका दावा है कि इस प्रक्रियामें रचनापर किसी बाह्य सिद्धान्तके आरोपणका खतरा नहीं रहेगा और उसकी बुनावट तथा आन्तरिक संरचना और अछूती अर्थवत्तातक आलोचक और पाठककी पहुँच सहज रूपमें हो सकेगी। अन्य कृतियोंको लेकर भी ऐसे विवेचनात्मक प्रयत्न किये जा रहे हैं। समीक्षाके क्षेत्रमें यह प्रक्रिया हमारे प्राचीन शास्त्रकारोंकी विवेचन-पद्धतिके अत्यन्त निकट होनेपर भी उससे भिन्न और स्वतन्त्र है।

समीक्षाके क्षेत्र भी अब धीरे-धीरे अलग हो रहे हैं। कविता, उपन्यास-कहानी तथा नाटकके विशिष्ट सौन्दर्यका मूल्यांकन करनेवाले अलग-अलग समीक्षक अब हिन्दीमें दिखायी पड़ने लगे है। जाहिर है कि काव्य-रूपके भिन्नत्वके विचारसे इन आलोचनाओंमें मुख्यतः संरचनाके स्तरपर अलगाव प्रत्यक्ष होगा। कविताका आलोचक उपन्यास-कहानीतक तो उसी रस-संवेदनाको लेकर जा सकता है किन्तु नाटकके मूल्यांकनमें तो निश्चयही तकनीकी ज्ञान और तदनुरूप नाट्यबोध आवश्यक है। नाटक ज्यों-ज्यों रंगमंचके नजदीक आ रहा है त्यों-त्यों उसकी समीक्षा रंग-कर्मके व्यावहारिक विश्लेषणकी ओर झुकती चली गयी है। इस क्षेत्रमें नेमिचन्द्र जैनके अतिरिक्त डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ० सुरेश अवस्थी, वीरेन्द्र नारायण आदिके प्रयोग-मूलक चिन्तनसे हिन्दी-समीक्षाको अवश्य ही समृद्धि प्राप्त हुई है।

समीक्षाके अन्तर्गत अनुसन्धानकी चर्चा भी आवश्यक है। स्पष्ट ही उसके दो वर्ग हैं : एक विश्वविद्यालयोंकी सीमा में निर्धारित मर्यादाओं और सरणियोंमें विकसित हुआ है और दूसरा उनसे बाहर स्वतन्त्र रूपमें साहित्य-साधकोंकी तपस्याका प्रतिफल बनकर आया है। पहला वर्ग परिमाण में विपुल और प्रचारित होनेपर उन कमजोरियोंका शिकार है जो ज्ञानके क्षेत्रमें निन्दनीय हैं किन्तु दूसरा किसीप्रकार उपेक्षणीय नहीं। पुरानी पीढ़ीके शोधकोंमें पं० परशुराम चतुर्वेदी, स्वर्गीय पं० चन्द्रबली पाण्डेय, स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, स्वर्गीय डॉ० माताप्रसाद गुप्त, अगरचन्द नाहटा, प्रभुदयाल मीतल, आचार्य विश्वनाथ मिश्र आदि स्वातन्त्र्योत्तर युगमें, अपनी रुचि और प्रवृत्तिके अनुरूप क्षेत्रोंका चुनाव करके तात्त्विक शोध और गम्भीर साहित्य-निरूपणका कार्य करते रहे हैं। उनके शिष्य-प्रशिष्योंने इन्हींका अनुसरण करते हुए अनुसन्धान कार्यको विभिन्न दिशाओंमें अग्रसर करनेका प्रयत्न किया है। **पं० परशुराम चतुर्वेदीने** तथ्यशोधके साथ-साथ उस सन्त-सूफी दृष्टिका योगदान हिन्दी-समीक्षाको दिया जो मानव मूल्यको साहित्यमें प्रतिष्ठित करनेका पुष्ट आधार बन सकी। **चन्द्रबली पाण्डेयने** नवीन तथ्यों और तर्कोंसे भाषा और साहित्यविषयक उन धारणाओंको प्रस्थापित किया जो शुक्ल-विरोधियोंद्वारा उखाड़ी जा रही थीं। **वासुदेवशरण अग्रवालने** इतिहास और संस्कृतिके परिदृश्यमें मध्यकालीन साहित्यको समझाया। **डॉ० माताप्रसाद गुप्तने** पाठालोचनके वैज्ञानिक साधनद्वारा प्राचीन कविताओंके विलुप्त मूल पाठका सन्धान किया और प्रक्षेपोंकी काई हटाकर स्वच्छ अर्थ-जलतक पाठकोंकी पहुँच करायी। **अगरचन्द नाहटाने** राजस्थानके विलुप्त साहित्यको प्रकाश और प्रतिष्ठा दी तथा **प्रभुदयाल मीतलने** ब्रज-संस्कृतिके आलोकमें तत्कालीन साहित्यको उजागर किया। **आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र** ने शुद्ध रस-साहित्यसे हमारा नया सम्पर्क कराया। वे मूल रचनाके सफल अध्येता ही नहीं, उसके पारखी रस-मीमांसक तथा साहित्य धाराओंके प्रवीण इतिहासकार भी

[शेष पृष्ठ ४० पर]

ख. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

--डॉ० नन्दकुमार राय
हिन्दी विभाग, देशबन्धु कॉलेज
(सान्ध्य), नयी दिल्ली

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यासकी चर्चा सही मानेमें तभी उचित हो सकती है, जब इसे स्वतन्त्रता-पूर्व उपन्यासों से अलग करके देखा जा सके। यह अलगाव दो दृष्टियों से सम्भव हो सकता है : एक तो कालकी सीमा-रेखा खींचकर और दूसरे, युगकी विशिष्ट प्रवृत्तियों, संवेदनाओं एवं सचेतनाकी संश्लिष्टताकी दृष्टिसे। साहित्य अथवा कृतिके मूल्यांकनका पैमाना काल तभी बन सकता है, जब उसका प्रत्यक्ष तथा क्षिप्र प्रभाव साहित्यपर प्रतिलक्षित हो। अन्ततः इस दृष्टिसे भी कालके माध्यमसे उसकी विशिष्ट संवेदना और प्रवृत्ति ही प्रत्यक्ष होती है। उदाहरणके बतौर, स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्वके साहित्य तथा स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य के बीच जो विभाजन-रेखा कल्पित है, वह बहुत हदतक सार्थक और साभिप्राय है। स्वातन्त्र्य-पूर्व हमारी सम्पूर्ण चेतना और शक्ति गुलामीके तौकको उतार फेंकनेमें तल्लीन और सचेष्ट थी। हम यह मानकर संघर्षरत थे कि स्वतन्त्रता मिलते ही हमारी बहुतेरी सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समस्याओंका समापन और समाधान स्वयमेव हो जायेगा। किन्तु, वैसा न हो सका। हमारी वह पूर्व धारणा और कल्पना ध्वस्त हो गयी। फलस्वरूप, लोगों का मोह-भंग हुआ, आस्था चरमराकर टूट गयी, निराशा के काले मेघोंसे हमारा मानस-क्षितिज आच्छन्न हो गया, मन कुण्ठाओंसे परिग्रस्त हुआ तथा सर्वत्र विघटनकी स्थिति पैदा हो गयी। क्रान्तदर्शी कथाकार प्रेमचन्दने बहुत पहले 'ग़बन' में आजकी इस सम्भावित विषम स्थितिको महसूस किया था। अपने एक पात्र--देवीदीनके माध्यमसे आजके इस मौलिक प्रश्नका प्रस्तुतीकरण उन्होंने इन शब्दोंमें किया था : "सच बताओ, जब सुराजका नाम लेते हो, तब उसका कौन-सा रूप तुम्हारी आँखोंके सामने आता है? तुमभी बड़ी तलब लोगे? तुमभी अंग्रेजोंकी तरह बँगलोंमें रहोगे? पहाड़ोंकी हवा खाओगे, अंग्रेज़ी ठाट बनाये घूमोगे? इस सुराजसे देशका कल्याण न होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बन्दोंकी जिन्दगी भले आराम और ठाटसे गुजरे, पर देशका कोई भला न होगा।" वस्तुतः स्वाधीनता-प्राप्ति की परिणति हुई भी इन्हीं विडम्बनाओंमें। भला तो हुआ--गिने-चुने कुछ लोगोंका। सामान्य लोगोंका तो मोह-भंग ही हुआ। आजका औसत आदमी 'अकारों' में हाँफती हुई जिन्दगी जी रहा है : असन्तोष, अनास्था, अतः अनाचार, अवमूल्यन व विघटनका चतुर्दिक आधिपत्य! आधुनिक मनुष्य और समाजकी अब ये सहज प्रवृत्तियाँ बन गयीं। स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारोंने मोह-भंगकी प्रतिक्रियाओंको बड़ी तलखीसे प्रस्तुत किया है, जिसमें निराशा, कुण्ठा, अनास्था, घुटन, टूटन, विघटन, पराजय और विक्षोभकी भावना गहन और घनीभूत होती गयी है।

प्रेमचन्द हिन्दीके धुरी तथा शीर्षस्थ उपन्यासकार हैं, जिनमें एक ओर परम्पराके प्रति आकर्षण और मोह है, तो दूसरी ओर, भविष्यके प्रति आस्था। वास्तवमें इन दोनों से ही बढ़कर उनमें सामयिक-बोध तथा उससे सम्बद्ध यथार्थके प्रति अधिकाधिक आग्रह दिखायी पड़ता है। इस प्रकार, प्रेमचन्दके उपन्यासोंमें अतीत, वर्तमान और (उनके अपने) भविष्यका एकजुट भाव-बोध लक्षित होता है। इस सन्दर्भमें आचार्य नलिन विलोचन शर्माका यह परिकथन बहुत हदतक सही और तथ्यात्मक प्रतीत होता है कि "गोदान" के पहलेतकके प्रेमचन्द हिन्दी-उपन्यासके अतीतकी चरम परिणतिके पथचिह्न हैं। 'गोदान' के रचयिता प्रेमचन्द ही हिन्दीके वर्तमान और भविष्यके निर्देशक हैं। प्रेमचन्द उस शिखरके समान हैं, जिसके दोनों ओर पर्वतके दो भागोंके उतार-चढ़ाव हैं।"[1]

प्रेमचन्दकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि रोमांस, सस्ते मनोरंजन और वायवी कल्पनासे अलग हटकर

---

१. 'हिन्दी-उपन्यास' शीर्षक निबन्ध : आलोचना-इतिहास, विशेषांक, पृष्ठ ११२

उन्होंने अपने उपन्यासोंको नया आधार और मोड़ दिया है। वह आधार और मोड़ है— **सामाजिक यथार्थवाद का**। यही कारण है कि उनके प्रायः समस्त उपन्यासोंका मूल स्वरभी **सामाजिक यथार्थवाद** ही ठहरता है। किन्तु उनका यथार्थवाद कोरे आदर्शसे कोई परहेज नहीं करता। दर-असल, प्रेमचन्दका यथार्थवाद आदर्शकी बैशाखीके बिना चल ही नहीं पाता। इसलिए उन्होंने अपने औपन्यासिक और साहित्यिक दृष्टिकोणको '**आदर्शोन्मुख यथार्थवाद**' के रूपमें प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्दने अपने उपन्यासोंमें समसामयिक युग-जीवन की समस्याओं और संवेदनाओंको सामाजिक परिप्रेक्ष्यमें परखनेकी चेष्टा की है। यहाँतक कि व्यक्तिको भी वे समाजके कटघरेमें ही खड़ा करके देखना चाहते हैं। प्रेमचन्दने आधुनिकताकी चुनौतीको सर्वथा सामाजिक स्तर पर स्वीकार किया है।

यथार्थवादकी जिस सशक्त परम्पराका सूत्रपात प्रेमचन्दने अपने उपन्यासोंके माध्यमसे किया, उसेही परवर्ती उपन्यासकारोंने आधुनिक भाव-बोधके परिप्रेक्ष्यमें विकसित करनेका प्रयास किया है। प्रेमचन्दमें जहाँ सामाजिक यथार्थके प्रति अधिकाधिक आग्रह है, वहाँ परवर्ती उन्यासकारोंके विशेषतः स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासोंमें वैयक्तिकताका रंग अत्यन्त गाढ़ा है। प्रेमचन्दने आधुनिकताकी चुनौतीको जहाँ सामाजिक धरातलपर स्वीकार किया है, वहाँ बादके उपन्यासकारों, जैसे, जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय तथा डॉ० देवराज आदिने वैयक्तिक संवेदनाके रूपमें उसका साक्षात्कार किया है। इस प्रकार, प्रेमचन्दके उपन्यासोंमें जहाँ समष्टि-सत्यकी बुनावट है, वहाँ परवर्ती अथवा स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारोंने अपनी रचनाओंमें व्यक्तिके अन्तर्मनकी सूक्ष्म रेखाओंका पर्यवेक्षण, विश्लेषण तथा पर्यांकन किया है। स्पष्ट है कि स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यासकी अन्तर्यात्रा— समष्टि अथवा स्थूलताके विलोम में —व्यष्टि-सत्यकी सूक्ष्मताकी ओर उन्मुख और प्रवृत्त है।

'कथ्य' और 'शिल्प' दोनोंही दृष्टियोंसे स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यासमें प्रयोगके गाढ़े रंग दिखायी पड़ते हैं। आजका उपन्यासकार 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य'के सन्दर्भमें 'अनुभूति के सातत्य' और 'नैरन्तर्य्य' पर विशेष बल देता है। दर-

[शेष पृष्ठ ३८ का]

सिद्ध हुए। इसप्रकार प्राचीन साहित्यकी छानबीन और उसे समकालीन ज्ञान सम्पत्तिके आलोकमें देखने-समझने का कामभी स्वातन्त्र्योत्तर समीक्षामें होता रहा है। इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि शोधकर्ताओंमें साहित्यके रचनात्मक विकासकी चिन्ता कम है। उसके संकलन, रक्षण और रख-रखावका भाव अधिक प्रबल है और इसमें सन्देह नहीं कि इसका भी अपना अलग महत्त्व है।

उपसंहारके रूपमें स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी समीक्षाकी उपलब्धियोंको रेखांकित करते समय हम पहले उसकी सीमाओंको निर्धारित कर लेना चाहते हैं। इस समीक्षामें किसी ऐसी मूल्यवत्ताका अनुसन्धान नहीं हुआ जो प्राचीन हिन्दी साहित्यको नयी दृष्टिसे निरूपित कर सके और उसके अध्ययन-आस्वादनको नये धरातलपर प्रतिष्ठित कर सके। उदाहरणके लिए तुलसी, सूर, जायसी आदिके काव्यका आस्वादन अबभी उसी भूमिपर हो रहा है जिसका उद्घाटन आचार्य शुक्लने किया था। इससे यह मालूम होता है कि हम केवल समीक्षाके ब्यौरोंका विकास-प्रसार कर सके हैं उसमें किसी ऐसे निकषका निर्माण नहीं कर सके जो प्राचीनकी नयी पहचान करा सके। हम बार-बार 'पुनर्मूल्यांकन' का उद्योग कर रहे हैं किन्तु वास्तविक सफलता हमारे हाथ नहीं लगी, यह मानना पड़ेगा। लेकिन स्थितिका एक दूसरा पहलू भी है। आजादीके बाद आलोचना क्षेत्रमें चहल-पहल काफी रही है, चाहे वह स्थापन-विस्थापनके प्रयत्नोंके रूपमें ही क्यों न हो। इसप्रकारकी सरगर्मीसे भी जीवन्तताकी सूचना मिलती है और चिन्तन की धार तेज होती है। इस दिशामें पाठकोंकी संख्या बढ़ी है और उनकी रुचिमें भी परिवर्तन हुआ है। नवीन सिद्धान्तों और रचनाओंको लेकर अनेक पत्रिकाओंका प्रकाशन और प्रसार यह सिद्ध करनेके लिए काफी है कि समकालीन हिन्दी पाठक समीक्षाओंके माध्यमसे पुस्तककी पहचान विश्वासपूर्वक कर सकता है। नव्यतर प्रकाशनोंपर स्तरीय साहित्यिक टिप्पणियाँ नियमित रूपसे प्रकाशितकर मात्र पुस्तक-समीक्षाकी पत्रिकाएँ इस दिशामें महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। अन्य पत्रोंमें भी ऐसी मूल्यवान् टिप्पणियाँ निकलती रहती हैं जो हमारी आलोचनाको समृद्ध करेंगी। इस प्रकार समकालीन 'लक्ष्यग्रन्थों' की सन्निधिमें स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी आलोचनाको रखकर देखनेपर हमें निराश नहीं होना पड़ता, यह क्या कम है? ××

असल, यही वह विशिष्ट बिन्दु है, जहाँसे स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास[1] को पीछे छोड़कर अपनी अन्तर्यात्रा शुरू करता है। इसकी यह यात्रा समष्टि-सत्य और बाह्य-सत्यके विरुद्ध, व्यष्टिके अन्तः सत्योंकी ओर समग्र रूपसे उन्मुख और प्रवृत्त दिखती है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास सर्वथा आधुनिक और नया उपन्यास है। कारण यह है कि इसमें नये परिवेश और आवेष्टनके प्रति सशक्त प्रतिक्रियाका अंकन है, आधुनिकताकी चुनौतीकी स्वीकृति है और है नये मूल्योंके सन्धानकी तीव्र जिजीविषा। अज्ञेय[2] के शब्दोंमें कह सकते हैं कि आधुनिक अथवा नये उपन्यासोंमें 'नये मूल्योंकी खोजने जो अनेक दिशाएँ ग्रहण कीं', वे इस प्रकार हैं :

क—धर्म और नीतिके क्षेत्रमें—मानववाद, करुणाके आदर्शकी पुनः प्रतिष्ठा।

ख—सहज बोध बनाम बुद्धि—मनके विरुद्ध 'रक्त' का सहारा।

ग—समाज-संगठनके क्षेत्रमें—बूर्जुआ सामाजिक ढाँचेका तिरस्कार, घरानों और परिवारोंके जीवनका विघटन।

घ—काम-सम्बन्धोंके क्षेत्रमें—सेक्सकी नयी परिभाषा, जो उसे न निरा शरीर-सम्बन्धी मानती है, न केवल सामाजिक बन्धन या व्रत बल्कि एक 'गतिशील सम्पृक्त भाव' ['डाइनैमिक कम्यूनिकेशन']।[3]

नयी परिस्थिति[4] और नये परिवेशके कारण आजके उपन्यासके उपजीव्यमें भी स्वाभाविकतः एक विशेष प्रकारका नयापन है। यह नयापन सबसे बढ़कर जीवनके प्रति नये दृष्टिकोण तथा नये मूल्योंको लेकर है। अज्ञेयने इस तथ्यका उद्घाटन करते हुए बिल्कुल सही लिखा है : "आधुनिक उपन्यास नया उपन्यास है, लेकिन उसका नयापन न तो विषयवस्तुका नयापन है, न विधानका, न कथानकका, न रूपाकारका; वह मूलतः जीवनके प्रति दृष्टिकोणका नयापन है। यद्यपि वस्तु, शैली, विधान, कथा आदिका नयापन उसमें हो सकता है, और होता भी है, तथापि उसकी आधुनिकताकी कसौटी वह नहीं है, **कसौटी उसका नया दृष्टिकोण ही है।**"[1]

आधुनिक उपन्यास अपने पूर्ववर्ती और परम्परित उपन्यासोंसे संवेदना तथा दृष्टिकोणके स्तरपर तो भिन्न है ही, सबसे बढ़कर भिन्नता और अलगाव है—पात्रों (मानव-चरित्रों) के मानसिक तनाव और संघर्षको लेकर। इसीलिए आजका हिन्दी-उपन्यास 'किस्सागोई' को त्यागकर पात्रोंके मानसिक संघर्षके विश्लेषणकी ओर अग्रसर होता जा रहा है। अज्ञेयने इस तथ्यका उद्घाटन इन शब्दोंमें किया है : "नये वैज्ञानिक अनुसन्धान और ज्ञानने उपन्यासकारकी दृष्टि बदल दी। उसका लिखना ही बदल गया क्योंकि उसकी दृष्टि बदल गयी। उसके बाद **एक और बहुत बड़ा परिवर्तन फ्रॉयडके साथ आया। उसकी मनोविश्लेषण-पद्धतिने व्यक्ति-मानस और व्यक्ति-चेतनाकी गहनताओंपर नया और तीखा प्रकाश डाला।** इससे उपन्यासकारको व्यक्ति-मानसको समझनेमें बड़ी सहायता मिली, बल्कि एक नयी दृष्टि और पैठ मिली, जिसके सहारे वह विशेष व्यक्तिके मनके भीतर होनेवाले संघर्षको पहचान सका। **'चेतना-प्रवाह'** ('स्टीम ऑफ कॉन्शसनेस'), अथवा **स्वगत-भाषण** ('इण्टर्नल मोनोलॉग') के उपन्यास इस दृष्टिके परिणाम हैं। और आधुनिक उपन्यासमें मानसिक संघर्षका विश्लेषण विशिष्ट महत्त्व रखता है।"[2]

ऊपरके इस विवेचनसे स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास की, पूर्ववर्ती उपन्यासोंसे भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। साथही, इससे इतनी बात भी पूरी तरह साफ हो जाती है कि यथार्थका तीव्र स्वर और आग्रह आधुनिक उपन्यास का सबसे विशिष्ट लक्षण है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यासकी भावात्मक संचेतनाका विश्लेषण करनेपर

---

१. 'प्रेमचन्दके उपन्यासोंका दोष अनुभवकी सीमाका दोष है'—अज्ञेय : 'हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक, 'परिदृश्य' पृष्ठ ३६
२. 'हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य', पृष्ठ ७८–७९
३. डी० एच० लॉरेंस ने कहा है : "मैन मस्ट बी सुप्रीम, अदरवाइज रिलेशनशिप इज फिलियल, दैट इज, इट इज इनसेस्ट"।
४. "मानस स्वयं ही एक परिस्थिति हो गया है"—अज्ञेय : 'हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य', पृ० ८३

---

१. 'हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य', पृ० ७९-८०
२. वही, पृ० ८२-८३

मुख्य रूपसे इनमें दो प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती हैं : एक, वैयक्तिक और दूसरी, सामाजिक। वैयक्तिक प्रवृत्तियोंका सम्बन्ध मनोविश्लेषणसे है, जबकि सामाजिक प्रवृत्तियाँ एकाधिक रूपोंमें परिव्याप्त हो जाती हैं, जैसे, राजनीतिक-सामाजिक, ऐतिहासिक और आंचलिक। इस प्रकार, अध्ययन और विवेचन-विश्लेषणकी सुविधाकी दृष्टिसे स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यासका विभाजन मुख्यतः दो भागों में किया जा सकता है :

१. मनोवैज्ञानिक उपन्यास तथा

२. सामाजिक उपन्यास।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्याससे अभिप्राय है उन उपन्यासोंसे जिनका 'कथ्य' मूलतः मनोविश्लेषणपर आधारित हो। ऐसे उपन्यासोंमें उपन्यासकार सामाजिक हलचलोंके बजाय व्यक्तिके अन्तर्मनको अपने अध्ययनका केन्द्र बनाता है। यही कारण है कि ऐसे उपन्यासोंमें न तो बाहरी जीवन का विस्तार और फैलाव होता है और न ही पात्रोंकी अनावश्यक भीड़भाड़ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार 'किस्सागो' बिल्कुल नहीं होता। या तो वह भोक्ता द्रष्टा होता है अथवा प्रेक्षक सम्प्रेषक। इसीलिए उसमें कथा कहने या सुनानेकी भावाकुलता नहीं होती। बल्कि क्षीण कथा-तत्त्व के माध्यमसे वह व्यक्तिके अन्तर्मनकी यात्रा करता है। दरअसल, ऐसे उपन्यासोंमें कथाका महत्त्व भी उतना नहीं होता, महत्त्व होता है—व्यक्ति-पात्रोंकी मानसिकताका। ऐसे उपन्यासकारका, अतः मूल उद्देश्य होता है—व्यक्ति-मनके आन्तरिक खुरदुरापनका विश्लेषण और चित्रण भर प्रस्तुत करना। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार आधुनिकताकी चुनौती को व्यष्टि-सत्य व संवेदनाके स्तरपर स्वीकार करता है। उसकी इस स्वीकृतिमें पलायन नहीं, वरन् आन्तरिक सत्यों की आत्यन्तिक संश्लिष्टताका सन्धान निहित है। वस्तुतः ऐसे उपन्यासकार व्यक्तिके माध्यमसे समाजकी तहतक पहुँचना चाहते हैं। श्री इलाचन्द्र जोशीका कहना है कि "व्यक्तिगत जीवनकी समस्याएँ ही संसारके महान् राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक चक्रोंके बीज-रूप—बल्कि मूलगत प्रतीक और आधारभूत सिद्धान्त हैं। जबतक आप इन 'व्यक्तिगत समस्याओं' के भीतर निहित रूपकोंमें विश्व के विराट बाह्य जीवन-चक्रकी समस्याओंको देखनेकी दृष्टि नहीं रखते तबतक आप न तो यथार्थ प्रगतिके रूपसे परिचित हो सकते हैं, न साहित्य-कलाके मूल प्राणोंका विकास आपके आगे भासित हो सकता है।"[1]

व्यक्तिके जीवनमें स्वतन्त्रताके बाद जितना बड़ा परिवर्तन हुआ है, उतना सम्भवतः कभी नहीं। समाज और राष्ट्रका इतिहास भी निश्चित रूपसे बदला है, किन्तु व्यक्तिवादी चिन्तन-दृष्टिके ही आधारपर। आज सामाजिक बोध उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रहा; जितना वैयक्तिक दाय-बोध और भाव-बोध। स्वतन्त्रताके इस ढाई दशकमें घटित कतिपय घटनाओं, जैसे, काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलका संघटन, उनका पारस्परिक विघटन, द्वितीय विश्वव्यापी महायुद्ध की विभीषिका, बंगालका भयंकर अकाल, बाँगला देशका स्वतन्त्रता-संघर्ष तथा उसमें मानवीय नृशंसता प्रभृतिने मनुष्यकी आस्थाको खण्डितकर, भारतीय जीवन-दर्शनको अत्यन्त तीव्रताके साथ मोड़ दिया। इन महत्त्वपूर्ण घटनाओंके परिप्रेक्ष्यमें व्यष्टिमूलक जीवन-दर्शनका अधिकाधिक विकास हुआ है, जिसका अध्ययन करना समकालीन उपन्यासकारोंका अभीष्ट रहा है। इन उपन्यासकारोंकी दृष्टिमें मनुष्यका बाह्य जीवन ही साहित्य-सृजनका केन्द्रीय विषय नहीं बन सकता, प्रत्युत् इसका आन्तरिक सत्य औरभी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, जिसका अन्वेषण, सृजन और विश्लेषण करना आवश्यक है। समसामयिक उपन्यासकारोंने अपने उपन्यासोंमें विशेष रूपसे इसी दायित्वके निर्वाहका श्लाघनीय प्रयास किया है।

वैसे तो मनोवैज्ञानिक उपन्यासोंकी शुरूआत स्वतन्त्रता के कुछ पूर्व, बल्कि प्रेमचन्द-कालमें ही हो चुकी थी, किन्तु इसकी प्रौढ़ताका दर्शन स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासोंमें ही अधिकांशतः होता है। इसप्रकारके उपन्यासका प्रवर्त्तन और प्रकर्ष जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय तथा डॉ० देवराज के उपन्यासोंमें हुआ। इस आधारपर इन्हें हम मनोवैज्ञानिक-चतुष्टयकी संज्ञासे भी अभिहित कर सकते हैं। कालान्तरमें इनका प्रभाव इतना व्यापक और गहरा पड़ा कि अब शायदही कोई ऐसा उपन्यास मिले, जिसमें कतिपय मनोवैज्ञानिक शब्दावली अथवा भाव-चेतनाके उपनयन ('एप्रोच') का प्रयोग न किया गया हो।

कुण्ठा, सन्त्रास और घुटन आजके मनुष्यकी सबसे बड़ी नियति है, जिसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्रने अपने औपन्यासिक पात्रोंके माध्यमसे अभिव्यक्त किया है।

---

१. इलाचन्द्र जोशी : 'विवेचना', पृ० १७२

'**सुनीता**' में जो मानसिक उलझन, द्वन्द्व और तनाव है, लगभग वही स्थिति '**सुखदा**' और '**विवर्त्त**' की भुवन मोहिनीकी भी है। '**सुखदा**' में अहंकारसे ग्रस्त और पीड़ित एक नारी (व्यक्ति-पात्र) की मार्मिक कथा है। '**विवर्त्त**' की भुवनमोहिनी बहुत हदतक '**सुनीता**' का ही प्रतिरूप मालूम पड़ती है, जबकि जितेन, हरिप्रसन्नका। 'विवर्त्त' में जितेनके माध्यमसे जैनेन्द्रने आधुनिकताकी चुनौतीका साक्षात्कार किया है। '**व्यतीत**' जैनेन्द्रका पुरुषप्रधान उपन्यास है, जिसकी समस्या '**सुनीता**' और 'विवर्त्त की समस्याओंसे भिन्न और इतर नहीं है। इसका नायक जयन्त 'प्रत्यक्-दर्शन-प्रणाली' ('फ्लैश-बैक टेकनीक') और आत्मकथात्मक शैलीमें अपने अतीत (व्यतीत) को मानस-पटलपर दुहराता अथवा उसका प्रत्याह्वान करता है। '**व्यतीत**' की प्रेम-कथा जैनेन्द्रके अन्य उपन्यासोंकी ही भाँति त्रिपार्श्वपर स्थित है। अर्थात् सम्पूर्ण कहानी जयन्त, अनिता और मिस्टर पुरीके इर्द-गिर्द घूमती है। फिरभी, जयन्त ही औपन्यासिक कथाकी धुरी है। उसके चरित्र और अन्तर्व्यक्तित्वका सूक्ष्म विश्लेषण ही उपन्यासकार जैनेन्द्रका जैसे अभीष्ट है। निष्कर्ष और सूत्र-रूप में कहा जा सकता है कि 'व्यतीत' एक पुरुषकी एक स्त्रीके प्रति — जयन्तकी अनिताके प्रति— रुग्ण आसक्ति (Morbid Fixation) की अवस्थामें पुरुषकी मनःस्थितिका लेखा है। इस आसक्तिके मूलमें जयन्तकी आहत अहंमन्यता अवस्थित है।"[1]

जयन्त अनिताके वियोगमें एक मनोवैज्ञानिक पात्र (और 'केस') है, जो कभी तो 'हीनता-ग्रन्थि' से पीड़ित होता है, कभी अहंसे और कभी आत्म-पीड़नसे। सामाजिक भेद-भाव और विषमतासे वह घृणा करता है। कविके लहजेमें वह कहता है : "कविता, मालूम होता है, सबमें है। उसीसे अभेद है। लेकिन भेदपर समाज टिकता है। कवितासे समाजको यही लाभ है और यही खतरा है। बुजुर्ग लोग भेदकी लकीरोंको पहचानते और पालते हैं। उन्हें यहाँतक लगता है कि लकीरें ही सत्यकी भाषा है। जवान किन्तु जिन्दगीके पास होते हैं और नीति-नियमों से दूर। इसीसे कविताके पंखोंपर बैठकर मर्यादाकी लकीरोंसे लाँघ जाना उन्हें उतना कठिन नहीं होता।"[2]

स्पष्ट है कि जयन्त कविताके सहारे तथाकथित सामाजिक मर्यादाकी सीमाका अतिक्रमण करना चाहता है। वस्तुतः परम्परा और रूढ़िके विरुद्ध यह नये और स्वस्थ प्रत्ययों और विचारोंका प्रयाण है। इस रचनाके माध्यमसे उपन्यासकार जैनेन्द्रने नवीनतम संवेदनाओंको स्वीकारकर, रूढ़िवादी विचार-परम्पराके आगे प्रश्नचिह्न लगाया है। जयन्तकी लघुत्व-भावना, अहम्मन्यता, निराशा, बिखराव, घुटन-टूटन और कुण्ठा, वास्तवमें, आजकी नयी व अभिशप्त पीढ़ीकी बेबसी और सच्चाई है, जिसका उद्घाटन और विश्लेषण करना उपन्यासकारका उद्देश्य रहा है।

जैनेन्द्रके पूर्ववर्ती उपन्यासोंकी अपेक्षा उनके परवर्ती और नवीनतम उपन्यास '**जयवर्द्धन**' और '**मुक्तिबोध**' में पर्याप्त भिन्नता और अलगाव है। '**जयवर्द्धन**' में भविष्य (सन् २००७ ई०) के भारतकी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था व स्थितिका काल्पनिक चित्र आकलित किया गया है, जो एक विदेशी पत्रकार निलवर हूस्टनकी डायरीके आधारपर है। इस उपन्यासमें भी आत्म-रति का प्राधान्य है। सम्पूर्ण प्रेम-कथानक जयवर्धन, इला और स्वामी चिदानन्द—तीन बिन्दुओंपर खड़ा होता है। इस प्रकार, इसकी स्थिति भी सर्वथा त्रिकोणात्मक है। '**मुक्ति बोध**' में भी जैनेन्द्रने कथा-तत्त्वके माध्यमसे व्यक्ति-चरित्र को मनोविज्ञान और दर्शनके झीने आवरणमें लपेटकर प्रस्तुत किया है।

इलाचन्द्र जोशी ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासोंमें मनोविज्ञानको एक ओर, शास्त्रीय सिद्धि-पीठिका और गहराई दी तो दूसरी ओर, उसे जीवनके व्यापक धरापलपर प्रतिष्ठित करनेका प्रयास किया है। स्वतन्त्रताके बाद उनके ये उपन्यास प्रकाशित हुए : '**मुक्ति-पथ**', '**सुबहके भूले**', '**जिप्सी**', '**ऋतु चक्र**' और '**जहाज का पंछी**' और इनमें 'मुक्तिपथ' को छोड़कर बाकी सभी उपन्यास मनोविश्लेषणपरक हैं। 'मुक्तिपथ' में भी वैसे मनोविज्ञान के बहुतेरे रंग बिखरे पड़े हैं—यौन-भावना तथा लैंगिक समस्याओंका आकलन हुआ है, किन्तु केन्द्रीय रूपमें नहीं, प्रत्युत् प्रासंगिक तौरपर। वस्तुतः इस उपन्यासमें संवेदना के स्तरपर अलगाव है। एक ओर इसमें देशोत्थानकी चिन्ताका भाव व्यक्त किया गया है तो दूसरी ओर सर्वोदयी अहिंसा तथा मानववादके प्रति अथोर आस्था।

'**जिप्सी**' सम्मोहन ('हिप्नोटिज्म') और भयपर आधारित मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। इसमें एक जिप्सी लड़की—मनियाके मानसिक द्वन्द्वों, उद्वेगों एवं

---

१. रघुनाथशरण झालानी : 'जैनेन्द्र और उनके उपन्यास', पृ० ८

२. जैनेन्द्र कुमार : 'व्यतीत', पृ० २७

अन्तर्भावोंको विश्लेषित करनेका प्रयास किया गया है। इसमें मानव-ग्रन्थियोंकी जटिलताओंकी इतनी अधिक विशदता है कि लगता है, जैसे, उपन्यासकारने इनका पूर्व-नियोजन कर रखा हो। **'सुबहके भूले'** में आरोपित मूल्य और क्रिया-व्यापार अधिक है, मनोविश्लेषण कम। इन उपन्यासोंमें **'जहाजका पंछी'** काफी चर्चित और विख्यात है। विषय और शिल्प--दोनोंही दृष्टियोंसे इस उपन्यासमें मौलिकता और नयापन है। उत्तम पुरुष यानी 'मैं' शैली में लिखे गये इस उपन्यासके माध्यमसे उपन्यासकारने महानगर कलकत्ताको कथात्मक केन्द्रके रूपमें प्रस्तुत कर, आजके सामाजिक जीवनकी विकृतियों और उसके घिनौनेपनका अच्छा-खासा चित्र आकलित किया है। इसका नायक 'मैं' समाजके अनेक वर्गोमें भटकता, दर-दरकी ठोकरें खाता और अन्तमें, ऊबकर, निराश होकर उसे पुनः अपनी पहली और पुरानी जगह और अवस्थामें लौट आनेको विवश होना पड़ता है। इस प्रकार, प्रस्तुत उपन्यासके माध्यमसे उपन्यासकारने आजके कुण्ठित, सन्त्रस्त, बिखरे और असहाय मनुष्यकी रूपरेखा नियोजित की है। साथही, वर्तमान समाजकी मूल्यहीनताको उपन्यासकारने बेबाक और निरावृतकर उरेहनेका प्रयास किया है। इस तरह, इस उपन्यासमें यथार्थ का स्वर काफी तीव्र है। **'ऋतुचक्र'** में मनुष्यकी मानसिकता और मनःस्थितिको बड़े करीनेसे विश्लेषित किया गया है। मानव-मन ऋतुओं की भाँति परिवर्तनशील होता है। उसके विभिन्न रंगों और रेशोंको उपन्यासकारने बड़ी बारीकीसे देखा-परखा है।

ऊपरके इस विवेचनके आधारपर निष्कर्ष यह हाथ लगता है कि इलाचन्द्र जोशीके प्रायः समस्त उपन्यासोंमें व्यक्ति-मनके अन्तर्संघर्षका विश्लेषण किया गया है, जिसकी परिणति होती है–व्यक्तित्वकी, अस्तित्वकी तथा आइडेण्टिटी की खोजमें। विघटन और अनास्थाके भाव तथा चित्र वस्तुतः इसीके परिणाम हैं।

जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेयने अपने औपन्यासिक साहित्यमें निरूपित स्थूल आदर्शके विरुद्ध जिस सूक्ष्म और प्रकृत यथार्थका विद्रोह व्यक्त किया, उसकी चरम परिणति हुई—**अज्ञेयके उपन्यासोंमें**। अज्ञेय सृजन-चेतना के प्रति अत्यधिक 'कॉन्शस', कलाके प्रति ईमानदार तथा शिल्प-सन्धानके प्रति जागरूक हैं। अतः प्रबुद्ध आलोचक डॉ० देवराजका यह कहना बिल्कुल संगत और उपयुक्त है कि "संवेदनाके सूक्ष्म अंकनमें, और कहीं-कहीं, भावात्मक प्रवेगमें (यह विशेषता 'शेखर' में अधिक प्रतिफलित हो सकी है) अज्ञेय दोनों लेखकों (प्रेमचन्द और जैनेन्द्र) से बाजी ले जाते हैं।"[1] सच तो यह है कि सम्पूर्ण हिन्दी-उपन्यास प्रेमचन्द और अज्ञेय—दो उपन्यासकारोंके पाये (स्तम्भ) पर खड़ा है। प्रेमचन्दमें स्थूलता, मोटापा और फैलाव है तो अज्ञेयमें सूक्ष्मता, गहराई और कसावट। प्रेमचन्द समाजवादको लेकर आगे बढ़ते हैं, इसलिए समाज के विश्वासके साथ जीवित रहनेका उपक्रम करते हैं, जबकि अज्ञेय समाजकी परवाह किये बिना व्यक्तिके मनोविज्ञान और दर्शनके उरेहने और रंगामेजीमें विश्वास करते हैं। स्पष्ट है कि अज्ञेयमें भावोंकी सूक्ष्मता, संवेदना की बारीकी और शिल्पकी निपुण कारीगरीका सामञ्जस्य है।

अज्ञेयका पहला उपन्यास 'शेखर : एक 'जीवनी' (दो भाग) स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व प्रकाशित हो चुका था। बाद में उनके दो उपन्यास—**'नदीके द्वीप'** (सन् १९५१ ई०) और **'अपने-अपने अजनबी'** (६१ ई०) नामसे प्रकाशित हुए। **'नदीके द्वीप'** का उपजीव्य और स्वर 'शेखर : एक जीवनी' की ही भाँति मनोविश्लेषणपरक है। 'शेखर : एक जीवनी' शेखर (व्यक्ति-पात्र) का जीवनीमूलक उपन्यास है, जिसमें 'रोमैण्टिक विद्रोह' को बड़ी निपुणतासे अभिव्यक्त किया गया है। ठीक उसी प्रकार, **'नदीके द्वीप'** में भी व्यक्ति-नायक भुवनके प्रणय-व्यापार तथा यौन-भाव को विश्लेषित कर, उसके माध्यमसे व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन के प्रस्तुतीकरणका प्रयास किया गया है। अतः इसेभी प्रणयमूलक अथवा 'रोमैण्टिक उपन्यास' की संज्ञासे अभिहित कर सकते हैं।

अज्ञेयका कहना है कि 'नदीके द्वीप' व्यक्ति-चरित्र का उपन्यास है। घटना इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे काफी हैं, पर घटनाप्रधान उपन्यास वह नहीं है। शेखर की तरह वह परिस्थितियोंमें विकसित होते हुए एक व्यक्तिका चित्र है और उस चित्रके निमित्त इन परिस्थितियों की आलोचना भी नहीं है। वह व्यक्ति-चरित्रका, चरित्र के उद्घाटनका उपन्यास है।"[2] इसमें मुख्य रूपसे भुवनके चरित्रको उपन्यासकारने विश्लेषित और उद्घाटित किया है। भुवनके अलावा रेखा, गौरा और चन्द्रमाधव, तीन और भी मुख्य पात्र हैं। इन्हीं चार व्यक्ति-चरित्रों

---

१. डॉ० देवराज : 'प्रतिक्रियाएँ', पृ० ११३
२. अज्ञेय : 'आत्मनेपद', पृ० ७२

(Individual Characters) का उद्घाटन और सम्यक् विश्लेषण उपन्यासकार अज्ञय का अभीष्ट है। डॉ० देवराज के शब्दोंमें कहा जा सकता है कि "वर्ण्यजगत, परिवेश अथवा पात्रकी प्रत्येक विशेषताको यह कलाकार भिन्न, विशिष्ट रूपमें रखता है। उनकी प्रत्येक अनुभूति प्रत्येक क्षण व्यक्तित्व-सम्पन्न है।"[1]

विवेच्य उपन्यासका शीर्षक प्रतीकात्मक है। इसमें प्रतीक-रूपकका प्रयोग प्रमुखतः वैचारिक अर्थ-व्यञ्जनाओं के निमित्त ही हुआ है। उदाहरणके बतौर कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं :

क—"हम अधिकसे अधिक इस प्रवाहमें छोटे-छोटे द्वीप हैं, उस प्रवाहसे घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी, भूमिसे बँधे और स्थिर भी, पर प्रवाहमें सर्वदा असहाय भी......।"[2]

ख—"...कालका प्रवाह नहीं, क्षण और क्षण और क्षण .....क्षण सनातन है .....छोटे-छोटे ओए-सिस......सम्पृक्त क्षण...नदीके द्वीप...जो काल-परम्परा नहीं मानता, तभी वह परिणामों के प्रति इतनी उपेक्षा नहीं रख सकता है—एक तरहसे अनुत्तरदायी है....पर इससे क्या ? उत्तर माँगनेवाला कोई दूसरा है ही कौन ? मैं ही तो मुझसे उत्तर माँग सकता हूँ ? और अगर मैं अपने सामने अनुत्तरदायी हूँ, तो उसका फल मैं भोगूँगा—यानी अपने अनुत्तरदायित्व का उत्तरदायी मैं हूँ .....

क्या यह—परसों और कल और आज—वैसा ही एक द्वीप है—सम्पृक्त क्षणोंका द्वीप—काल-प्रवाहिनीमें अटका हुआ एक अलग परम्परा-मुक्त खण्ड—जैसे रेखा कहती है ? परसों, कल, आज फिर महाशून्य—नहीं, आज, फिर दूसरा आज, फिर आज तब महाशून्य।"[3]

इसी प्रकार, एक और भी उद्धरण, जो उपन्यासके 'कथ्य' पर प्रकाश डालनेके साथ-साथ इसके उद्देश्य को भी व्यञ्जित करता है :

"**हम जीवनकी नदीके अलग-अलग द्वीप हैं**—ऐसे द्वीप स्थिर नहीं होते, नदी निरन्तर उनका भाग्य गढ़ती चलती है, **द्वीप अलग-अलग होकर भी निरन्तर घुलते और पुनः बनते रहते हैं—नयी धील, नये अणुओंका मिश्रण, नयी** तलछट, एक स्थानसे मिटकर दूसरे स्थानपर जमते हुए नये द्वीप !"

यहाँ द्वीप-सत्य, व्यष्टि-सत्यके पर्यायके रूपमें प्रयुक्त है। द्वीपकी ऐकान्तिकता सामाजिक भीड़-भाड़से व्यक्तिकी संवेदनगत चेतनाके अलगावका अर्थापन प्रस्तुत करती है। भुवन खासा एक व्यक्ति-चरित्र है, जिसके माध्यमसे व्यक्तिकी आन्तरिक गुत्थियों व समस्याओंको सम्पूर्ण उपन्यासमें प्रस्तुत किया गया है। अज्ञेयके ही शब्दों में : 'नदीके द्वीप' समाजके जीवनका चित्र नहीं है, एक अंगके जीवनका है : पात्र साधारणजन नहीं हैं, एक वर्गके व्यक्ति हैं × × × कसौटी मेरी समझमें यह होनी चाहिये कि क्या वह जिसभी वर्गका चित्रण है, उसका सच्चा चित्र है ? क्या उस वर्गमें ऐसे लोग होते हैं, उनका जीवन ऐसा जीवन होता है, संवेदनाएँ ऐसी संवेदनाएँ होती हैं ? अगर हाँ, तो उपन्यास सच्चा और प्रामाणिक है, और उसके चरित्रभी वास्तविक और सच्चे हैं ......।"[1]

'नदीके द्वीप' में कथात्मक संघटना कम, चारित्रिक विश्लेषण अधिक है। ये चरित्र आरोपित न होकर मनोवैज्ञानिक हैं। इसलिए कहींभी और कभीभी वे अपरिचित और अनजान नहीं लगते। अज्ञेयने अपने इस उपन्यास में पात्रों अथवा चरित्रोंके अन्तर्भावोंका विश्लेषण मनोविज्ञानकी सैद्धान्तिक प्रयोगशालामें रखकर किया है। यही कारण है कि **इस उपन्यासके शिल्प-विधानमें भी अपेक्षाकृत अधुनातन मनोवैज्ञानिक विधियों; जैसे—'पूर्व दीप्ति'** अथवा **प्रत्यक् 'दर्शन-प्रणाली' ('फ्लैश बैक टेकनीक') 'चेतना-प्रवाहीकन' ('स्ट्रीम ऑफ कॉन्शसनेस') एवं अन्तश्चित्रों** (Inside views) आदि**का प्रायोगिक संधान किया गया है**। इस प्रकार, '**नदीके द्वीप**' में अज्ञेयने मनोविज्ञान का प्रयोग भाव और शिल्प—दोनोंही रूपोंमें सफलताके साथ किया है।

'नदीके द्वीप' वस्तुतः एक प्रेम-उपन्यास है। इसमें प्रणयकी संवेदनाको जीवन्त, प्राणवान तथा परिपक्व बनाती है-एक प्रकारकी आन्तरिक वेदना अथवा पीड़ा। यह पीड़ा सर्जनात्मक व विधेयात्मक है। उपन्यासकारने दरअसल, इसे एक सर्जनात्मक ऊर्जा तथा तत्त्वके रूपमें स्वीकार किया है। 'नदीके द्वीप' का नायक भुवन इस 'पीड़ा' के द्वारा 'मुक्ति' प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है।

. डॉ० देवराज : 'आधुनिक समीक्षा', पृ० १३९
. अज्ञेय : 'नदी के द्वीप', पृ० १४
. वही,, पृ० १३०

१. अज्ञेय : 'आत्मनेपद', पृ० ७३

उपन्यासके बिल्कुल प्रारम्भमें, बल्कि उससे भी पूर्व अज्ञेय ने दु:खके इस स्थापत्यको इन शब्दोंमें सँवारा है :

"दु:ख सबको माँजता है
और—
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।"

अज्ञेयके प्रस्तुत उपन्यासमें वेदना या पीड़ाको एक सशक्त दर्शनके रूपमें अभिव्यक्ति मिली है। इस पीड़ावाद पर छायावाद तथा बौद्ध दर्शनके दु:खवादका छाया-प्रभाव परिलक्षित होता है। 'शेखर : एक जीवनी' में 'शेखर' का प्रमुख लक्ष्य था—स्वतन्त्रता (Freedom), जबकि 'नदीके द्वीप' का लक्ष्य है—मुक्ति (Salvation)। यही कारण है कि रेखाके चरित्रमें प्रेम बन्धन नहीं—मुक्तिका काम करता है।

'नदीके द्वीप' में आधुनिक मनुष्यके व्यक्तित्वका नया आयाम प्रस्तुत किया गया है। आजके मनुष्यमें प्राय: कुण्ठा, तनाव और बिखरावका प्राधान्य हो गया है। यह मन:स्थिति मुख्यत: मध्यवर्गकी है। आजके युग-जीवनमें मानवीय सम्बन्धोंमें एक ओर तीव्र आकर्षण और संश्लिष्ट ऐक्य-भाव दिखायी पड़ता है, तो दूसरी ओर तनाव, बिखराव और टूटन। यही कारण है कि आज मानवीय सम्बन्ध जितनी शीघ्रता और तीव्रतामें स्थापित होते हैं, उतनी ही क्षिप्रतासे वे टूट भी जाते हैं। उदाहरण रूप में, 'नदी के द्वीप' के भुवन और रेखाके पारस्परिक सम्बन्धको लें : भुवन और रेखामें सम्बन्धका गाढ़ापन जितना अधिक है, ठीक उसी अनुपातमें छिजन भी। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध आकर्षण-विकर्षणकी दुविधाओंमें पलता, विकसित होता और अन्तमें, तनावके कारण टूट जाता है।

दरअसल, आजका मानवीय सम्बन्ध दो विपरीत दिशाओं तथा विरोधी वृत्तियोंकी रस्साकशीमें पलता और दोलायित होता है। अत: आजके मनुष्यका यही जीवन-द्वन्द्व भी है, जिसे अज्ञेयने अपने इस उपन्यासमें वैयक्तिक स्तरपर उभारनेकी भरपूर चेष्टा की है। मानवीय सम्बन्धोंमें निहित इस तनाव, बिखराव और टूटनको इन्होंने भलीभाँति पहचाना और महसूस किया है। अज्ञेय की एतद् सम्बन्धी अभिव्यक्तिका आधार-फलक निश्चयही सामाजिक जीवन न होकर वैयक्तिक है। यही कारण है कि इनके उपन्यासोंमें व्यक्तिका वैयक्तिक रंग अत्यन्त गाढ़ा दिखायी पड़ता है। इस सन्दर्भमें एक बात औरभी विशेष रूपसे यह कहनी है कि 'नदीके द्वीप' में आधुनिकताकी चुनौतीको सर्वथा वैयक्तिक स्तरपर स्वीकार और अभिव्यक्त किया गया है। बहरहाल, 'नदीके द्वीप' के लेखकका अभीष्ट सामाजिक जीवन-प्रवाहके व्याप्ति-विस्तारका अंकन न होकर, व्यक्ति-द्वीपोंके समस्त आन्तरिक ऐक्यको आधुनिक सन्दर्भोंमें विश्लेषित तथा प्रस्तुत करना है।

व्यक्तिके अकेलेपन, अलगाव और अजनबीपनके जिस बोधको 'नदीके द्वीप' में गृहीत व स्पर्शित भर किया गया था, उसेही अज्ञेय ने 'अपने-अपने अजनबी' नामक उपन्यास के व्यापक फलकपर कलात्मक ढंगसे अभिव्यक्त करनेका प्रयास किया है। आजके मनुष्यके जीवनमें इतनी अधिक अस्त-व्यस्तता और भाग-दौड़ हो गयी है कि आत्म-साक्षात्कार तककी फुर्सत उसे नहीं है। आस-पास, अगल-बगल, सबके-सब उसे अजनबीसे लगते हैं : "अजनबी चेहरे, अजनबी आवाजें, अजनबी मुद्राएँ, और वह अजनबीपन केवल एक-दूसरेको दूर रखकर उससे बचनेका नहीं है, बल्कि एक-दूसरेसे सम्पर्क स्थापित करनेकी असमर्थताका भी है—जातियों और संस्कारोंका अजनबीपन, जीवनके मूल्यका अजनबीपन।"[1] स्पष्ट है कि जीवनका अन्तर्बाह्य अजनबीपनही रचनाकारकी मूलभूत संवेदनाके रूपमें अभिव्यक्त होता है।

जीवन-जगतमें सबके-सब अजनबी ही अजनबी हैं, किन्तु सबसे अधिक अजनबी है : मृत्युका साक्षात्कार ! लेखककी दृष्टिमें 'मृत्यु' ही जीवनका चरम सत्य व तत्त्व है। वस्तुत: जीवनको वही अर्थवत्ता प्रदान करती है, अत: सर्वाधिक महत्ता भी उसीकी है। उपन्यासकार अज्ञेयने अपने प्रस्तुत उपन्यासमें जीवनके अजनबीपन तथा एकाकीपनकी समस्याके साथही साथ मानव-अस्तित्व, मृत्यु तथा ईश्वर आदिके प्रश्नोंको अस्तित्ववादी दर्शनके परिप्रेक्ष्यमें उरेहने तथा अन्वेषित करनेकी चेष्टा की है। 'शेखर : एक जीवनी' की भी मुख्य समस्या थी : फाँसी अथवा 'मृत्यु-भय', फिरभी (उपन्यासकारके ही शब्दोंमें) :

"अन्तर केवल यह है कि शेखरके सामने प्रश्न यह था कि मेरी मृत्युकी सिद्धि क्या है यानी मैं मर जाता हूँ तो कुल मिलाकर मेरे जीवनका क्या अर्थ हुआ ? पर, यहाँ यह है कि जीवन मात्रके नक्शेमें मृत्यु मात्रका स्थान है और

---

१. अज्ञेय : 'अपने-अपने अजनबी', पृ० १०४

यहाँ मैंने दो दृष्टियोंको सामने लानेकी कोशिशकी है। एक को मोटे तौरपर पूरबकी कह सकते हैं और दूसरेको पश्चिमकी।"[1]

इस उद्धरणसे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि पौर्वात्य और पाश्चात्य जीवन-दृष्टिकी पारस्परिक टकराहट और उसके तनावको अज्ञेयने अपनी प्रस्तुत कृति में रचनागत संस्कार और संवेदनाके रूपमें अनुभूत और अभिव्यक्त किया है। 'अपने-अपने अजनबी' वस्तुतः अस्तित्ववादी जीवन-दर्शनको बड़ी बारीकी और साफगोईके साथ उभारने वाला उपन्यास है। इसमें उपन्यासत्व कम, दर्शन और मनोविज्ञानका सम्पृक्तीकरण अधिक है।

प्रेमचन्द और अज्ञेयके औपन्यासिक बोध और विन्यास में विशेष प्रकारका अन्तराल और अलगाव है। यह अलगाव है—आधुनिक संवेदनाका, यथार्थ बोधका और सबसे बढ़कर जीवनके प्रति नये दृष्टिकोणका। भाव-बोध के बदलावसे, अतः इनके उपन्यासोंमें शिल्पिक नव्यताका निसर्गतः दर्शन होता है। निष्कर्ष रूपमें, समासतः इतना कहना पर्याप्त होगा कि अज्ञेयकी औपन्यासिक कृतियोंसे ही सम्पूर्ण हिन्दी-उपन्यासका दूसरा और नया मोड़ शुरू होता है। वस्तुतः प्रेमचन्दके बाद अज्ञेय ही इतने समर्थ उपन्यासकार हैं, जो हिन्दीके औपन्यासिक सेतुके विशिष्ट स्तम्भके रूपमें स्वीकारे जा सकते हैं।

अज्ञेय-स्कूलके ही कथा-विन्यास और मनोविश्लेषण-वादको लेकर आगे बढ़नेवाले विशिष्ट कथाकार हैं: डॉ० देवराज, इनकी सम्पूर्ण कृतियाँ चूँकि स्वतन्त्रताके बाद की हैं, अतः स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यासकी उपलब्धिके प्रतिमानको ज्ञापित करनेमें पूरी तरह सक्षम होती हैं। अपने सभी उपन्यासों—**'पथकी खोज'** (दो भाग), **'बाहर-भीतर'**, **'रोड़े और पत्थर'**, **'अजयकी डायरी'** तथा **'मैं, वे और आप'** में उन्होंने आधुनिकताकी चुनौती और प्रक्रियाको व्यष्टि-सत्य धरातलपर स्वीकार और अभिव्यक्त किया है। अपने प्रथम उपन्यास 'पथकी खोज' से ही वे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारके रूपमें प्रख्यात और स्थापित हो चुके थे तथा उनका विशिष्ट उपन्यास **'अजयकी डायरी'** तो जैसे मनोवैज्ञानिक यथार्थ-वाद तथा व्यक्तिकी अन्त चेतनाके दस्तावेजके रूपमें सिद्ध और प्रसिद्ध हुआ। मेरी दृष्टिमें 'अजयकी डायरी' इधरके ढाई दशक अर्थात् स्वतन्त्रताके बादके दस श्रेष्ठ हिन्दी-उपन्यासोंमें अपना एक अच्छा-खासा स्थान रखता है।

डॉ० देवराजमें अपने प्रथम उपन्यास **'पथकी खोज'** से ही अनाधुनिकको नकारने तथा आधुनिक भाव-बोधके नये पथकी खोजकी तीव्र जिजीविषा दिखायी पड़ती है। इस उपन्यासमें चन्द्रनाथ तथा साधनाके माध्यमसे उन्होंने पुरुष और नारीके यौन-भावको एकाधिक सन्दर्भोंमें, विभिन्न कोणोंसे देखने-परखनेका प्रयास किया है। डॉ० देवराज मूलतः दार्शनिक चिन्तक और सैद्धान्तिक विचारक हैं। स्वभावतः इनकी सृजन-चेतनापर इनका दार्शनिक-विचारक हावी होता हुआ दिखायी पड़ता है। दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि उपन्यासकार डॉ० देवराजने आधुनिकता की चुनौतीको संवेदनाके बजाय चिन्तन और वैचारिक स्तरपर अधिकांशतः स्वीकार किया है। दूसरे उपन्यास **'बाहर और भीतर'** में इन्होंने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा यौन-समस्याके प्रश्नको नये सिरेसे उठाया और उभारा है। समाजके प्रति वैयक्तिक विद्रोह और उन्मेषके स्वरको जाग्रत करना इस उपन्यासका अभीष्ट है। वस्तुतः इसमें बाहर (समाज-स्थूल) के विरुद्ध भीतर (व्यक्ति-मन-सूक्ष्म) की प्रतिक्रियाका भाव व्यक्त करना उपन्यासकारका मूल उद्देश्य है। आत्मकथात्मक शैलीमें लिखे गये इस उपन्यासमें राजनने अपनी सारी कथा कह सुनायी है। इस कारण पात्रोंके मानसिक विश्लेषणकी बारीकियाँ तो सामने आ ही जाती हैं, नाटकीय आकर्षण और प्रभावकी तीव्रता भी बढ़ गयी है। इस प्रकार, न केवल आधुनिक भाव-बोध की दृष्टिसे ही, वरन् शिल्पकी दृष्टिसे भी यह उपन्यास अपेक्षाकृत अधिक सफल और श्लाघ्य प्रतीत होता है।

'रोड़े और पत्थर' में हरीश और कम्मोके माध्यमसे निम्न मध्यवर्गीय भाव-चेतना (की विफलताओं) को उद्घाटित और विश्लेषित किया गया है। हरीश जैसे अनगिनत क्लर्क, एक छोटा-सा मकान बनानेकी कोमल कल्पनाको अर्थाभावके कारण, मनमें संजोये-सँवारे रह जाते हैं। उनके सीमित सुनहरे सपने, चेतनाके तवेपर पानीकी तरह भाप बनकर निष्प्रयोजन ही उड़ जाते हैं। फलस्वरूप, उनका जीवन कुण्ठाओंसे बोझिल बनकर चरमराने लगता है।

'अजयकी डायरी' डायरी-शैलीमें लिखा गया डॉ० देवराजका सबसे सफल और बहुचर्चित उपन्यास है, जिसमें प्रणय यौन-भावको सर्वथा मनोवैज्ञानिक ढंगसे विश्लेषित किया गया है। उपन्यासका नायक अजय 'क्रियेटिव प्रॉसेस' के लेखक होनेके नाते प्रसंगात् कला, प्रेम, रिली-

---

१. 'अपने-अपने अजनबी'—लेखक (अज्ञेय) की दृष्टि में : 'ज्ञानोदय', जुलाई, ६३

जन, दर्शन और मनोविज्ञान आदिपर भी अपनी टिप्पणी भी प्रस्तुत करता चलता है। उपन्यासकार, जो वस्तुतः और मूलतः दार्शनिक है, अपने मनःपूत अजयके माध्यमसे स्वयं अपने आपको आरोपित करता चला है। डायरी शैलीके कारण पात्रोंके मानसिक विश्लेषणमें अधिक सहजता और बारीकीसे काम लिया गया है। फ्रॉयडके 'सेक्सवाद' के समानान्तर चलते हुए भी लेखक प्रेमको आध्यात्मिक और आत्मिक चेतनाका प्रकाश मानता है। चिन्तनके एकाधिक पठारोंके एकजुट होनेके कारण इसमें समाहारात्मक और समग्रात्मक भाव-बोध प्रतिलक्षित होता है। इसे **'हिन्दीका पहला अन्तर्राष्ट्रीय उपन्यास'** कहकर पुकारा गया है। वह इसलिए नहीं कि कहानीकी खींच-तान देश-विदेशतक की गयी है, वरन् इसलिए कि इसमें मानव मात्रकी अन्तर्वृत्तियोंका उद्घाटन और विश्लेषण किया गया है। अन्तर्वृत्तियाँ एकदेशीय नहीं—सर्वदेशीय और शाश्वत होती हैं।

अपने अगले उपन्यास—'मैं, वे और आप' में भी डॉ०देवराजने आधुनिकताकी चुनौतीको व्यष्टि-सत्यके स्तर पर स्वीकार किया है। इसमें एक ओर प्रणयकी मसृण संवेदना है तो दूसरी ओर चिन्तन और दर्शनके वैचारिक तत्त्व। डॉ० देवराजकी संवेदना चिन्तन-यष्टिके बिना चल ही नहीं पाती अर्थात् दार्शनिकता और चिन्तनशीलता उनकी सृजन-प्रक्रियाकी रीढ़के रूपमें दीख पड़ती है। इसके अभावमें उनका सम्पूर्ण लेखन ही लिजलिजा लगता है।

इस उपन्यासके सम्बन्धमें स्वयं उनका कहना है कि **'मैं, वे और आप'** एक स्वतन्त्र उपन्यास भी है, और 'अजय की डायरी' का अगला भाग भी।

'डायरी' में निगम एक गौण पात्र है, यहाँ वही प्रमुख है। नायक निगमकी दृष्टिमें यह उसका 'दस्तावेज' है। उसका दावा है कि यह युगका दस्तावेज भी है। "गरज यह कि इस दस्तावेजका विषय 'मैं' हूँ और 'वे', उम्मीद है कि 'आप', जो मेरी जातिके प्राणी और मेरे युग के बाशिन्दे हैं, अपनेको इन दोनों परिधियोंसे बाहर नहीं पायँगे।" स्पष्ट है कि इस उपन्यासमें यथार्थ-बोधपर अधिक अवधान दिया गया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' मूल रूपसे यौन और कुण्ठाके कथाकार हैं। सन् १९४७ ई० में प्रकाशित इनके विख्यात उपन्यास **'गिरती दीवारें'** में यौन और प्रेम सम्बन्धी कुण्ठा तथा आर्थिक वैषम्य—दो समस्याओंको उठाया गया है। 'गिरती दीवारें' की मूल संवेदना वैयक्तिक है। इसकी तुलनामें 'गर्मराख' के 'काण्टेट्स' पर सामाजिकताके परतदार और गाढ़े आवरण पड़े हुए हैं। 'अश्क' ने इन दोनों उपन्यासोंकी पारस्परिक तुलना करते हुए (९ अक्तूबर, '६० : 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित 'मेरे उपन्यास – मेरीही दृष्टिमें') लिखा है: "मैं **'गिरती दीवारें'** को वातावरण-प्रधान उपन्यास कहूँगा। उसमें व्यक्तिके माध्यमसे समाजका चित्र प्रस्तुत है, जबकि 'गर्मराख' में समाजके माध्यमसे व्यक्तियोंका। 'गिरती दीवारें' समस्या-प्रधान नहीं, व्यक्ति-प्रधान है...'गर्मराख' समस्या-प्रधान है।" 'पत्थर-अल-पत्थर' व्यंग्य और शिल्पकी दृष्टिसे काफी सफल उपन्यास है। इनके परवर्ती उपन्यासोंमें 'गिरती दीवारें' के बाद **'शहरमें घूमता हुआ आइना'** बहुचर्चित उपन्यास है, जिसमें व्यक्ति-पात्र — चेतनके बारह घंटों—'सुबह', 'दोपहर' और 'शाम' की कहानी कही गयी है। कहानीके माध्यमसे व्यक्तिकी कुण्ठाओंको विभिन्न परिस्थितियोंमें चित्रित किया गया है। **'बाँधो न नाव इस ठाँव'** उपन्यासमें उपन्यासकार 'अश्क' ने कथा-नायक चेतनके माध्यमसे निम्न मध्यवर्गीय भाव-चेतनाका यथार्थ चित्रण किया है। इस प्रकार, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के उपन्यासोंमें कुण्ठा, निराशा और यौन-वर्जनाओंके वातावरण का आधिक्य है।

राजेन्द्र यादवके **'अनदेखे अनजान पुल'** में भी मनोविश्लेषणकीछिटक मिलती है। 'हीनता-ग्रन्थि' (Inferiority Complex) से ग्रस्त निम्निका मनोविश्लेषण इसमें बड़ी बारीकीके साथ किया गया है। स्वतन्त्रताके बादके अधिकांश उपन्यासोंकी प्रकृति मनोविश्लेषणात्मक है, जिसकी परिणति **'चेतना-प्रवाह शैली'** में हुई। ऐसे उपन्यासोंका अभीष्ट कथात्मक संघटनाका गढ़न न होकर मानव-मनका विवेचन-विश्लेषण करना है। अज्ञेयके **'नदीके द्वीप'** तथा **'अपने-अपने अजनबी'** के साथ-साथ डॉ० देवराजका **'अजयकी डायरी'**, डॉ० रघुवंशका **'तन्तुज्झल'**, डॉ० प्रभाकर माचवेका **'परन्तु'** ऐसे ही उपन्यास हैं। डॉ० रांगेय राघव के **'पतझर'** तथा मोहन राकेशके **'अँधेरे बन्द कमरे'** भी इसी श्रेणीके उपन्यास हैं। 'अँधेरे बन्द कमरे' में कतिपय मनोवैज्ञानिक शब्दावलियोंका प्रयोग तो हुआ ही है, साथ ही, उसमें एक लड़कीकी मनःविकृतिका भी संश्लेषण-विश्लेषण है, जो चिकित्साके लिए यूरोपकी यात्रा करती है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाका **'सोया हुआ जल'** एक

प्रतीकात्मक उपन्यास है, जिसमें मानवकी विभिन्न भावनाओं और मनःस्थितियोंको आकलित करनेका प्रयास किया गया है। 'सोया हुआ जल', 'यात्रिशाला' तथा 'बूढ़ा पहरेदार' क्रमशः अचेतनकी सुप्त अतृप्ति, संसार तथा 'जर्जर मानवता' के प्रतीक हैं। कमरा नं० ११ से जो आवाज आती है, अवान्तर रूपसे वही उपन्यासकारके 'कथ्य' की विज्ञप्ति करती है : "**इंसानको भीतरसे बदलने दो, बाहरसे बदलनेसे काम नहीं चलेगा।**" नरेश मेहताके '**डूबते मस्तूल**' को मनोवैज्ञानिक खेमेमें रख सकते हैं। राजकमल चौधरीके उपन्यासकारपर भी मनोविज्ञान हावी होकर प्रकट होता है।

ऊपरके विवेचनके आधारपर यह बात पूरी तरह साफ हो जाती है कि स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासोंपर मनोविज्ञानका कितना सघन और गहरा प्रभाव पड़ा। साथ ही यह कहना भी बेमानी और असंगत न होगा कि परवर्ती युगमें शायद ही कोई ऐसा उपन्यास हो, जिसकी सम्प्रेषणीयता तथा अभिव्यक्तिपर मनोवैज्ञानिकताकी सक्षम अथवा अक्षम रेखा खचित न हो।

मनोविज्ञानेतर अथवा सामाजिक उपन्यास

मनोवैज्ञानिक उपन्यासोंमें व्यष्टि-चेतना (मन) का प्राधान्य होता है, जबकि सामाजिक उपन्यास समष्टि-चेतनाका ज्ञापक होता है। समष्टिके भाव-बोधकी अभिव्यक्ति—राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा आंचलिक कई सरणियोंसे होकर गुजरती है। इसलिए इन उपन्यासोंमें सामाजिकताके कई आयामोंका उद्घाटन होता है। सामाजिकताके उद्घटित इन अनेक आयामोंके आधारपर इसे सामाजिक-राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा आंचलिक आदि उपन्यासोंकी संज्ञासे अभिहित करते हैं।

सामाजिक-राजनीतिक उपन्यास वे हैं, जो राजनीतिक स्तरपर सामाजिक मूल्य तथा व्यवस्थाको आधारभूत मानकर यथार्थवादकी अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार के उपन्यास-लेखकोंमें **यशपाल**का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने अपने उपन्यास '**मनुष्यके रूप**', 'बारह घण्टे' तथा 'झूठा' सच' आदिमें सामाजिक वैषम्य तथा राजनीतिक अव्यवस्थापर प्रहार करनेका प्रयास किया है। सोमाके माध्यमसे यशपालने कहना यह चाहा है कि परिस्थितियों के व्यूहमें फँसकर व्यक्ति क्या-से-क्या बन जाता है। यशपालका 'झूठा सच' अधिक प्रौढ़ और सफल उपन्यास है, जिसमें एक ओर पंजाबके सामाजिक और राजनीतिक जीवनको चित्रित किया गया है, तो दूसरी ओर देशके विभाजनके पश्चात्की आगत समस्याओं, स्वदेशी सरकार की शासन-अव्यवस्था तथा मूल्यहीनताके तल्ख अनुभवोंको स्पष्टतः अभिव्यक्ति दी है। निष्कर्ष रूपमें, डॉ० रमेश कुन्तल मेघके शब्दोंमें कहा जा सकता है कि "झूठा सच विषय-वस्तुकी दृष्टिसे मध्यवर्गीय शहरी जीवनका महाकाव्य है; और रूप (फॉर्म) की दृष्टिसे गठन (इण्टिग्रेशन) प्राप्त करनेकी कठिन कलात्मक चेष्टा है। प्रभावकी दृष्टि से यह कला-जैसा लिखा गया इतिहास है।"

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासोंमें भी राजनीतिक-सामाजिक भावोंका चित्रण अधिक है। '**आखिरी दाँव**' में ध्वंसोन्मुख पूँजीवादी समाज-व्यवस्थाको चित्रित किया गया है। इसके साथही उन्होंने बम्बईके अनैतिक और विकृत जीवनको उपन्यासका विषय बनाते हुए आर्थिक वैषम्यको गलत करार दिया है। '**अपने खिलौने**' भी एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें लेखकने मध्यवर्गीय समाजकी विभिन्न विकृतियोंको उद्घाटित करनेका प्रयास किया है। '**भूले बिसरे चित्र**', 'साहित्य अकादमी' द्वारा पुरस्कृत भगवतीचरण वर्माका एक ऐसा उपन्यास है, जो इनकी औपन्यासिक-लब्धिमें मीलके पत्थरका काम करता है। इस उपन्यासमें एक सामन्त परिवारकी चार पीढ़ियोंकी कहानी कही गयी है। प्रस्तुत औपन्यासिक कथानकके माध्यमसे उपन्यासकारने सामन्तशाहीके पतन तथा मध्यवर्गके अभ्युदयको प्रकाशित तथा चित्रित करना चाहा है। इस उपन्यासका आधार-फलक (कैनवास) काफी व्यापक है। इसमें सन् १८५८ से सन् १९३० ई० तकको भारतीय इतिहासकी राजनीतिक गतिविधियों, सामाजिक विषमताओं तथा युगकी परिवर्तनशीलताको बड़ी कुशलतासे चित्रित किया गया है। भगवतीचरण वर्माके परवर्ती उपन्यास हैं : '**वह फिर नहीं आई**', '**सामर्थ्य और सीमा**' तथा '**थके पाँव**'। 'वह फिर नहीं आई' आत्मकथात्मक शैलीमें लिखा गया उपन्यास है, जिसमें एक ओर पुरानी मान्यताओंपर प्रश्न-चिह्न लगाकर जीवनकी नयी संवेदनाओंको उरेहा गया है तो दूसरी ओर प्रासंगिक तौरपर मानवी वृत्तियोंपर भी प्रकाश डाला गया है। मानवकी आन्तरिक वृत्तियोंको उद्घाटित करनेके लिए उपन्यासकारने मनोविज्ञानका भरपूर सहारा लिया है। स्वतन्त्रताके बाद हमारे भाव-बोध बदले हैं, आधुनिक संवेदनाएँ और मान्यताएँ बदली हैं। इस उपन्यासके एक पात्र—ज्ञानके इस स्वगत-भाषणमें संवेदनाके इन्हीं बदलावोंको स्वीकारा गया है : "उखड़े

हुए लोग, उखड़ा हुआ जीवन, उखड़ी हुई मान्यताएं। सब कुछ उखड़ा हुआ—उजड़ा हुआ। पुराना उखड़ रहा है, नया जम रहा है।" **'सामर्थ्य और सीमा'** का भी धरातल स्पष्ट रूपसे सामाजिक है। इसमें यथार्थवादी आग्रह अधिक है। उपन्यासकार वर्माने आधुनिक राजनीतिके खोखलेपन तथा सामाजिक वैषम्यको बड़ी बारीकीसे चित्रित किया है। **'थके पाँव'** में भी यथार्थ का स्वर काफी तीव्र है।

अंचलके उपन्यासोंमें प्रगतिवादका विशेष आग्रह दिखायी पड़ता है। उनका **'नई इमारत'** (सन् १९४७ ई०) उपन्यास सन् १९४२ के भारतीय आन्दोलनपर आधारित है। 'उल्का' में समकालीन बोधकी अभिव्यक्ति हुई है। 'मरुप्रदीप' में प्रगतिशील दृष्टिकोणका प्राधान्य है।

रांगेय राघवके उपन्यासोंमें एक ओर इतिहास-रसकी अनुभूति होती है तो दूसरी ओर, राजनीतिके स्तरपर मार्क्सवादसे प्रभावित प्रगतिवादका स्वर मुखरित होता हुआ दिखायी पड़ता है। उनका **'सीधा सादा रास्ता'** भगवतीचरण वर्माके **'टेढ़े मेढ़े रास्ते'** के उत्तरमें लिखा गया प्रगतिवादी चेतनासम्पन्न उपन्यास है। 'उबाल' में यथार्थकी तीव्रता है। **'बोलते खण्डहर'** तथा **'अँधेरेकी भूख'** पर विदेशी साहित्यका गहरा प्रभाव है। **'कबतक पुकारूँ'** वैचारिक उपन्यास है। उनका **'बौने और घायल फूल'** एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें प्रगतिशील दृष्टिकी अभिव्यक्ति की गयी है। उनका **'बन्दूक और बीन'** (५८) विगत महायुद्ध तथा वर्तमान संघर्षकी समस्याको लेकर लिखा गया उपन्यास है। **'राई और पर्वत'** तथा **'छोटी-सी बातें'** सामाजिक उपन्यास हैं। **'हुजूर'** नामक उपन्यासमें सामाजिक विकृतियोंको अभिव्यक्त किया गया है। **'दायरे'** में जारज सन्तान तथा अविवाहित माताओंकी समस्याओंको लिया गया है। आत्म-कथात्मक शैलीमें लिखे गये उपन्यास **'कल्पना'** में सामाजिक यथार्थवादको अभिव्यक्ति दी गयी है। **'प्रोफेसर'** नामक उपन्यासमें रांगेय राघवने यथार्थके धरातलपर निम्न मध्यवर्गीय भावचेतनाको अभिव्यक्त किया है, जबकि 'काका' सामाजिक चेतनाके कैनवासपर चरित्र प्रधान उपन्यास है। **'आखिरी आवाज'** सचमुच डॉ० रांगेय राघवकी आखिरी आवाज बनकर रह गया। इसमें स्वातन्त्र्योत्तर ग्राम्य-बोधका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

अमृतलाल नागरके उपन्यासोंमें भी सामाजिक-राजनीतिक भाव-बोधका बहुविध अंकन किया गया है। उनका पहला उपन्यास 'महाकाल' (सन् १९४७ ई०) बंगालके अकालके आधारपर लिखा गया है। 'सेठ बाँकेमल' में उन्होंने पुरानी और नयी पीढ़ीके संघर्षको व्यक्त किया है। उनका **'बूँद और समुद्र'** सबसे विशिष्ट उपन्यास है, जिसमें मध्यवर्गीय चेतनाको आधुनिक परिप्रेक्ष्यमें उरेहनेका प्रयास किया गया है। इसमें 'बूँद' प्रतीक है व्यक्तिका तथा 'समुद्र' समाजका। बूँद और समुद्रके सह-अस्तित्वकी ही भाँति व्यक्ति और समाजका पारस्परिक सम्बन्धभी अन्योन्याश्रित है। उपन्यासमें नागर जीका प्रगतिशील दृष्टिकोण तथा सामाजिक भावबोधका प्राधान्य दिखायी पड़ता है। 'ये कोठेवालियाँ' (६१) उपन्यास वेश्या-जीवनपर आधारित है। उन्होंने लिखा है: "वेश्याओंके प्रति आकर्षण और वेश्यागामिताके प्रति संकोच-भाव दोनों साथ-ही-साथ मानव-सभ्यताके इतिहास में चलते रहे हैं।..... इस सामाजिक संकोचने वेश्याओंके प्रति मानव-आकर्षणको बढ़ावा दिया है।"

स्वतन्त्रताके बाद मोह-भंगकी जो स्थिति उत्पन्न हुई, उसका चित्रणभी आधुनिक उपन्यासोंमें सशक्त रूपमें हुआ। इस दृष्टिसे, राजेन्द्र यादवके उपन्यास **'उखड़े हुए लोग'** तथा नागार्जुनके ख्यातिप्राप्त उपन्यास **'बलचनमा'** और **'हीरक जयन्ती'** विशेष रूपसे ग्राह्य हैं। 'उखड़े हुए लोग' के देशबन्धुके रूपमें तथाकथित नेताओंके दुहरे-तीहरे व्यक्तित्व तथा छल-छद्मोंको सशक्त रूपमें अनावृत किया गया है। 'बलचनमा' में फूल बाबू और कांग्रेसके प्रति बलचनमाकी आस्था चरमराकर टूट-सी गयी है। 'हीरक जयन्ती' में कांग्रेसी शासनकी कुरूपताओं तथा मन्त्रियोंकी खुशामदपरस्तीको बड़े तल्ख रूपमें प्रस्तुत किया गया है।

भैरवप्रसाद गुप्तने कानपुरके मजदूर-आन्दोलनकी पृष्ठभूमिमें 'मशाल' नामक उपन्यास लिखा। **'सत्ती मैया का चौरा'** उनका विशिष्ट औपन्यासिक पड़ाव है, जहाँ उन्होंने तीन पीढ़ियोंकी कथाका प्रस्तुतीकरण किया है। उपन्यासमें सामने आती हैं—दो ही पीढ़ियाँ, किन्तु, 'फ्लैश बैक' अथवा 'प्रत्यक् दर्शन' शैलीके माध्यमसे तीसरी पीढ़ी के भीतरसे पहली पीढ़ीकी कहानीका संकेत और अनुबोधन हो जाता है।

धर्मवीर भारतीने अपने उपन्यास 'गुनाहोंका देवता' तथा 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' में सामाजिक चेतनाको अभिव्यक्ति दी है। पहले उपन्यासमें शिक्षित मध्यवर्गके बनते-बिगड़ते आदर्शोंका यथार्थ चित्र आकलित है। वर्तमान जीवनमें प्रेम, विशेषकर 'प्लेटोनिक-प्रेम' को नकार

कर संघर्षकी कटुताको पहचाना गया है। '**सूरजका सातवाँ घोड़ा**' में भारतीने निम्न-मध्यवर्गीय समस्याओंको यथार्थके धरातलपर नये सिरेसे उठाया है। अधुनातन जीवन-बोधकी अनेकशः परिवर्तनशीलताको आत्मसात् करते हुए उपन्यासकारने प्रगतिशीलताकी मूल्य-चेतनाको स्थापित करनेकी चेष्टा की है। मध्यवर्गीय जीवन-बोधकी यथार्थवादी अभिव्यक्तिमें भारतीने बड़ी साफगोईसे काम लिया है।

नरेश मेहताके 'यह पथ बन्धु था' में मध्यवर्गकी आधुनिक संवेदनाओं और प्रवृत्तियों जैसे, घुटन-टूटन, आदिको अभिव्यक्त करनेका प्रयास किया है। डॉ० रामदरश मिश्रने इसके सम्बन्धमें ठीक ही लिखा है कि "यह उपन्यास अनुभवोंका उपन्यास है— मध्यवर्गके एक ईमानदार व्यक्तिके अनुभवोंका इतिहास। लेकिन इस व्यक्तिका अनुभव केवल अपने भीतरसे नहीं गुजरता बल्कि विराट् परिवेशके बीचसे गुजरता है। इसलिए इसमें एक साथ बड़े प्रामाणिक रूपमें व्यक्तिका भी अनुभव गुजरता है और समाजका भी। सामाजिक जीवनके जिन सत्योंको लिया गया है, वे फारमूले नहीं मालूम पड़ते बल्कि अनुभव मालूम पड़ते है।"

अब सामाजिक-राजनीतिक समस्याएँ इतनी जटिल हो गयी हैं कि अधिकांश उपन्यासकारोंकी संवेदनाओं और वैचारिक मनोभावनाओंके रूपमें उनकी बहुविध अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास-साहित्यमें हुई।

स्वतन्त्रताके बादके कुछेक उपन्यासकारोंने इतिहासकी घटनाओं और वृत्तोंके आधारपर भी औपन्यासिक सृष्टि की। वृन्दावनलाल वर्माके उपन्यास ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनमें इतिहास-रसकी पुरजोर अभिव्यक्ति हुई है। रांगेय राघव तथा अमृतलाल नागरके भी कतिपय उपन्यास इसी श्रेणीमें पांक्तेय होते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका 'वाणभट्टकी आत्मकथा' भी इसी कोटिमें गिन लिया जाता है। वैचारिक धरातलपर ऐसे उपन्यासोंका कोई विशेष मूल्य-महत्त्व नहीं होता।

स्वतन्त्रताके बाद हिन्दी-उपन्यासकी अधुनातन प्रवृत्ति **आंचलिकता**की ओर अधिक उन्मुख और प्रवृत्त हुई। ऐसे उपन्यासोंमें किसी जनपद अथवा अंचल विशेषकी संवेदनाओं और मनोभावनाओंको व्यक्त करना उपन्यासकारका अभीष्ट होता है। इसमें एक ओर लोक-तत्त्वका आग्रह होता है तो दूसरी ओर, यथार्थका तीव्र स्वर। ऐसे उपन्यासोंका आधार-फलक छोटा और संकीर्ण होता है। पात्रोंके माध्यमसे उपन्यासकार आंचलिक जीवन-बोधको उपस्थापित करता है। ऐसे उपन्यासोंमें 'रेणु' के '**मैला आंचल**' '**परती परिकथा**', रांगेय राघवके '**कबतक पुकारूं**'; देवेन्द्र सत्यार्थीके '**ब्रह्मपुत्र**'; लक्ष्मीनारायणलालके '**बयाका घोंसला और सांप**', राजेन्द्र अवस्थीके '**जंगलके फूल**; सुरेन्द्रपालके '**लोकलाज खोयी**', रामदरश मिश्रके '**पानीके प्राचीर**' तथा '**सूखता हुआ तालाब**' आदि ऐसे ही विशिष्ट उपन्यास हैं। विवेकीरायकी कहानियोंमें भी औपन्यासिक गरिमा उत्कर्ष बिन्दु पर दिखायी पड़ती है। उनकी रचनाओंका रंग-ढंग बिल्कुल नया भीड़से अलग-ऊपर है। इनकी संवेदनाओंमें आंचलिकताकी एक ओर सोंधी गन्ध मिलती है तो दूसरी ओर नगर-बोधकी जटिलता। इनकी रचनाओंके कथ्य और शिल्प बिल्कुल नये हैं।

कतिपय ऐसे उपन्यासभी इस अवधिमें लिखे और प्रकाशित किये गये, जिन्हें किसी विशेष प्रवृत्तिगत् खेमेमें नहीं रखा जा सकता। ऐसे उपन्यासकार हैं: राजा राधिकारमणप्रसादसिंहके अनेक उपन्यास, लक्ष्मीनारायण लालके '**काले फूलका सौदा**', राजेन्द्रप्रसादसिंहका '**अमावस और जुगनू**' तथा आनन्दशंकर माधवनके 'अनामन्त्रित मेहमान' प्रभृति।

स्वतन्त्रताके बादकी नयी पीढ़ीमें पुरातन मूल्योंके प्रति अस्वीकृतिका भाव विकसित हुआ, आस्थाकी जगह अनास्थाने ले ली। फलतः विघटन और बिखरावकी स्थिति सर्वत्र पैदा हुई। नयी पीढ़ीके उपन्यासकारोंने कुण्ठा, अनास्था, सन्त्रास और बिखरावकी इन स्थितियोंको संवेदनाके स्तरपर पहचाना है। दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि स्वतन्त्रताके बादके ताजा उपन्यास विघटन और बिखरावकी राहसे गुजरते दीख पड़ते हैं। निर्मल वर्मा का 'वे दिन' इस कथनकी प्रामाणिकताके लिए पर्याप्त है। इस उपन्यासमें कुण्ठा, बिखराव, अकेलापन, घुटन-टूटन और सन्त्रास आदिकी अभिव्यक्ति संवेदनाके स्तरपर की गयी है। उपन्यासके पात्रोंमें रायना अकेली है, उसका पति तथा पुत्रभी इसका भोक्ता है। फ्रांज और मारियाभी, माँ तथा टी-टीभी। डॉ० इन्द्रनाथ मदानने इस उपन्यास का विवेचन करते हुए ठीक ही लिखा है कि "निर्मल वर्मा का 'वे दिन' (६४) एक नया मोड़ लेता है, एक नयी संवेदनाको कलात्मक अभिव्यक्ति देता है। यदि '**गोदान**' को हिन्दी-उपन्यासका पहला मोड़ मान लिया जाये तो (अज्ञेयका) 'शेखर' इसका दूसरा मोड़ है और 'वेदिन' तीसरा। पहलेमें आधुनिकताका अर्थ है, दूसरेमें इसका

विकास और तीसरेमें इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति। इसलिए यह कृति हिन्दी-उपन्यासको एक नये मोड़पर पटक देती है—संवेदनाकी दृष्टिसे और कथन-शैलीकी दृष्टिसे।"

मोहन राकेश नयी पीढ़ीके कथाकारोंमें प्रायः सबसे सशक्त तथा प्रातिभ उपन्यासकार रहे हैं। उनके उपन्यास हैं : **'अँधेरे बन्द कमरे'** (१९६१), **'काँपता हुआ दरिया'** तथा **'अन्तराल'** (१९७१)। 'अँधेरे बन्द कमरे' में उन्होंने राष्ट्रकी स्वातन्त्र्योत्तर सांस्कृतिक गतिविधियों तथा राजनीतिक दाँव-पेंचका, पारिवारिक जीवनके अँधेरे बन्द कोनोंका पर्दाफाश किया है। उपन्यासके कथानककी पृष्ठभूमि दिल्ली महानगरी है। यहाँके जन-जीवन, चमक-दमक तथा रंगीन परिवेशके आडम्बरोंके ऊपरी नकाबोंको हटा कर, आजके मनुष्यके जीवनकी कृत्रिमताको रूपायित किया है। आजके जीवन-बोधको मोहन राकेशने कई बिन्दुओंपर, कई कोणोंसे देखा-परखा है।

स्वतन्त्रताके बादकी ताजा संवेदनाओं और मानव-प्रवृत्तियोंको नयी पीढ़ीके उपन्यासकारोंने बड़ी ईमानदारीसे पहचाना, सहेजा और अभिव्यक्त किया है। प्रमुखतः ऐसे उपन्यासकार हैं : नरेश मेहता (नदी यशस्वी है), मोहन राकेश (सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'अन्तराल'), कमलेश्वर ('एक सड़क सतावन गलियाँ', 'डाक बँगला', 'लौटे हुए मुसाफिर' तथा 'तीसरा आदमी'), राजेन्द्र यादव ('प्रेत बोलते हैं' या 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग', 'कुलटा', 'शह और मात', 'अनदेखे अनजान पुल' तथा 'वसन्त-प्लावन)' राजेन्द्र अवस्थी ('बहता हुआ पानी'), हिमांशु जोशी ('महा सागर'), मनहर चौहान ('आखिरी सफा'), डॉ० सुरेश सिन्हा ('तुमने मुझे पुकारा तो नहीं, तथा 'एक और अजनबी') रमेश उपाध्याय ('स्वप्नजीवी'), गिरधर गोपाल ('चाँदनीके खण्डहर'), मार्कण्डेय ('सेमलके फूल') डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ('मन वृन्दावन'), उषा प्रियम्वदा ('पचपन खम्भे : लाल दीवारें' तथा 'कितना बड़ा झूठ'), शिवानी ('चौदह फेरे') तथा प्रमोद सिन्हा ('उसका शहर') आदि।

स्वतन्त्रताके बाद प्रयोगशीलताका आग्रह, हिन्दी-उपन्यासमें पुरजोर रूपमें दिखायी पड़ता है। 'प्रयोग' वैयक्तिक स्तरपर भी हुए और सामूहिक तौरपर भी। वैयक्तिक स्तरपर प्रयोग करनेवालोंमें तो अज्ञेय अग्रणी हैं ही, सामूहिक रूपमें भी उन्होंने सबसे पहले **'प्रतीक'** में **'बारह खम्भा'** शीर्षकसे लेखनका प्रयोग प्रारम्भ किया था। दूसरा प्रयोग 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित **'ग्यारह सपनों का देश'** के रूपमें। कथाकार-दम्पती **राजेन्द्र यादव** और **मन्नू भण्डारीने** समवेत् तौरपर **'एक इंच मुस्कान'** के लेखन-प्रकाशनके सह-प्रयोग किये। प्रयोगमूलक सहकारी योजनाके अन्तर्गत **राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, रमेश बक्षी** और **मुद्राराक्षसने** भी इसे 'लहर' में कार्यान्वित किया। इस प्रकारके सहयोगी लेखनमें सबसे बड़ा खतरा होता है—कथानक और उद्देश्यकी क्षीणता तथा असंगतिको लेकर। राजेन्द्र यादवने इसकी असंगतिपर विचार करते हुए ('ग्यारह सपनोंका देश' : पृ० २४५-२४६ पर) लिखा है : "इस प्रकारके प्रयोगकी सबसे बड़ी कमजोरी यही होती है कि उसके पात्रोंके आगे अपनेको लेकर कोई आकांक्षित स्वप्न नहीं होते—और वे निर्जीव लगते हैं। बिना किसी रूपरेखाके अलग-अलग लेखकोंद्वारा एक ही कहानीको बढ़ानेमें सबसे अधिक कठिनाई स्वयं लेखकोंके सामने आती है। हर लेखक पात्रोंके नाम और स्थितियाँ तो दूसरोंकी लेनेको मजबूर होता है, लेकिन हर चीजकी परिकल्पना ('कन्सेप्शन') उसकी अपनी होती है। साथही, चूँकि अपने प्रस्तावित भागके आरम्भ और अंत उसे स्वयं करने होते हैं, इसलिए वह अपने उस भागको एक इकाईके ही रूपमें सोचनेको भी मजबूर होता है। अर्थात् इस प्रकारके उपन्यासका हर अध्याय नये प्रारम्भ, नये अन्त और (सबसे आपत्तिजनक बात यह कि—) नये-नये क्लाइमेक्सोंवाला होता है। यही कारण है कि **'ग्यारह सपनों का देश'** में किन्हीं दो अध्यायोंकी मीनल एक नहीं है, शोभन और कुन्तल एक नहीं हैं। लगता है, 'नाम' और 'रूप' ओढ़े सैकड़ों अय्यार घुस आये हों।"

ऊपरके विवेचनसे इतनी बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वतन्त्रताके बाद मानवीय मूल्य बदले हैं, संवेदनाएँ बदली हैं, अनुभूति और प्रवृत्तियाँ बदली हैं। स्वतन्त्रताके बादका—पच्चीस वर्षीय हिन्दी उपन्यास यथार्थकी राहसे गुजरते हुए, अपने नये मुहावरेकी खोजकी दिशामें अग्रसर होता जा रहा है। इन उपन्यासोंमें आदर्श और पुराने मूल्योंके आगे प्रश्नचिह्न लगा हुआ है, आधुनिकताकी चुनौतीकी सशक्त स्वीकृति है, नये जीवन-मूल्योंके अन्वेषण तथा स्थापत्यका प्रयास है और सबसे बढ़कर है—आधुनिक परिवेशकी जटिल तथा संकुल संवेदनाओंको अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करनेवाली जानदार भाषाके सशक्त और नये प्रयोग। निष्कर्षतः 'वस्तु और 'शिल्प'–दोनों ही दृष्टियोंसे, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास सर्वथा 'नया' प्रतीत होता है। ××

ग. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी

--डॉ० लक्ष्मणदत्त गौतम

हिन्दी विभाग, ज्ञानदेवी सलवान
कॉलेज, राजेन्द्रनगर, नयी दिल्ली

स्वतन्त्रताके बाद अस्तित्व-संकटकी बड़ी दुहाई दी गयी—रचना स्तरपर कम, प्रचार स्तरपर अधिक। इस अस्तित्व-मोहने हिन्दी-कहानीकी जो दुर्गति की है वह इस बातसे जाहिर है कि स्वतन्त्रतासे पूर्व जो हिन्दी-कहानी मात्र कहानी नामसे जानी जाती थी वह आजादीके बाद दलबन्दियोंमें फँसकर कभी 'नयी कहानी' बनी तो कभी 'आंचलिक'; कभी उसे 'सचेतन' कहा गया तो कभी 'साहित्यिक'; कभी उसके पीछे 'लघु' का हलन्त लगाया गया तो कभी कहानीकी मृत्युके नामपर 'अ-कहानी' का जेहाद बोला गया। पिछले दिनों 'नयी कहानी' के सम्पादक अमृतरायने कथाकुमारीको नाम-व्यामोहसे बचानेके लिए उसकी सहजताके सन्दर्भमें 'सहज कहानी' शीर्षकसे लिखना शुरू किया था। झण्डाबरदारोंने इसे भी कहानी के एक नये नामकरणके साथ जोड़ना चाहा था। शुक्र हुआ कि आगत अहितको देखकर अमृतने इस शीर्षकसे लिखना ही बन्द कर दिया।

'यद्यपि वैदिक साहित्यमें गद्य-पद्यमें लिखी कहानियों की कमी नहीं है पर जिसे हम अलंकृत गद्य-काव्य कहते हैं, जिसका प्रधान उद्देश्य रस-सृष्टि है, निश्चित रूपसे उसका प्रचार गुप्त सम्राटोंकी छत्रछायामें ही हुआ।' (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'साहित्य-सहचर, पृष्ठ १६४) कहानी के 'कथा', 'आख्यायिका' और 'बृहत्कथा' नाम तभी प्रचलित हुए। 'कथाकी कहानी कल्पित हुआ करती थी और 'आख्यायिका की ऐतिहासिक।' ('साहित्य-सहचर', पृष्ठ १६५) कथा और आख्यायिकाका मूलउत्स 'बृहत्कथा' (वड्डकथा) माना गया है ('साहित्य-सहचर', पृष्ठ १६६) जिसमें कल्पना और इतिहास, दोनोंका योग होता था।

शताब्दियोंतक कहानी इन्हीं नामोंसे जानी जाती रही। आधुनिककालमें आकर इसका एक नाम और मुखर हुआ जिसे 'गल्प' कहते हैं। रवीन्द्रनाथकी तमाम कहानियोंका संग्रह 'गल्प गुच्छ' नामसे प्रकाशित हुआ है। सन् १९४३ में 'उग्रजी' की कहानियोंका संग्रह भी 'गल्पाञ्जलि' नामसे प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः प्रवृत्तियोंके आधारपर 'गल्प' 'फैन्टेसी' का पर्याय मानी जाती रही है। जासूसी, ऐय्यारी एवं सनसनीखेज कहानियाँ इसी श्रेणीमें आती हैं। असम्भवताके धरातलपर टिकी हुई ये कहानियाँ सिर्फ कहानियाँ हैं, 'आधुनिक' कहानियाँ नहीं। 'कुछ दिन पहलेतक उपन्यासों और कुछेक कहानियोंके पहले लिखा रहता था कि पात्रों और स्थानोंके नाम कल्पित हैं। दरअसल यह लिखना ही यथार्थवादी आत्म-बोधके आरम्भका सूचक है, साथही इससे गल्पके अन्तकी भी सूचना मिलती है।' (डॉ० नामवरसिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ९६)

'गल्प' के बादकी कड़ी 'कहानी' है। यद्यपि अपनी पूर्वावस्थामें यहभी गल्पकी तरह 'किस्सागोई' का पर्याय मानी जाती थी। कौतूहल, उत्सुकता या जिज्ञासा इसके मूल तत्त्व होते थे और समयकी शृङ्खलामें बँधी हुई घटनाओं का पूर्वापर वर्णन इसका गुण होता था लेकिन प्रेमचन्दके हाथोंमें आकर कहानी का कायाकल्प हुआ। 'यथार्थवादी आत्मबोध' का सम्बल लेकर वह आधुनिक कहानीके मंच पर उतरी। समयकी शृङ्खलामें बँधी हुई घटनाओंका पूर्वापर वर्णन 'कार्यकारण' के सम्बन्धमें बदल गया और कहानी किस्सागोई तथा कौतूहलका दामन छोड़ सतर्क होकर मानव-चरित्रके विकासकी संगिनी हो गयी। सन् १९५० तक साहित्यकी यह विधा इसी नामसे जानी मानी जाती रही।

सन् १९५० तक आते-आते देशकी परिस्थितियाँ बड़ी तेजीसे बदलने लगी थीं। एक तरफ दूसरे महायुद्धके परिणामोंने संवेदनशील व्यक्तिको झकझोर कर रख दिया था। ज्ञान-विज्ञान और यान्त्रिक प्रगतिने पुराने मूल्योंको तो

विघटित कर दिया था लेकिन नये मूल्योंकी सृष्टि नहीं की थी। दूसरी तरफ स्वतन्त्रताके साथही देशके 'विभाजन में कत्ल, बलात्कार और अत्याचारही नहीं हुए थे, बल्कि ऊपरसे साबित दिखायी पड़नेवाला आदमी भी भीतरसे पूरी तरह चटख गया था और उसके सारे विश्वास और मूल्य बर्बरताकी आँधीमें उड़ गये थे। अपंग, कटे-फटे और रक्त-स्नात आदमियोंके काफ़िले तो दोनों ओरसे आये और गये ही थे, पर एक भीषण और उससे भी ज्यादा भयानक रक्तपात आदमीके भीतर हुआ था।' (कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ७०)

'इसीके साथ जुड़ा हुआ है एक मोहभंगका अध्याय। वह 'त्यागी पीढ़ी' जो १४ अगस्तकी रातके ग्यारह बजकर उनसठ मिनट तक बहुत संयमी, आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी, सच्चरित्र और साधु थी, एक मिनट बादही स्वार्थ-लोलुप अत्याचारियोंमें बदल गयी। चारों तरफ एक नया राजनीतिक वर्ग पनपने लगा जो जोंककी तरह जनताका रस चूसने लगा और अपने लिए सुविधाएँ बटोरनेमें लग गया। स्वार्थपरता, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, कालाबाजारी, बेईमानी आदिका जो दौर चला उसने जनताको मोहभंग की स्थितिमें जबरदस्ती खड़ा कर दिया।'

स्वतन्त्रताके बाद इस प्रकार, 'कहानी' ने अपने अनगिनत मुखौटे बदले। साहित्यके मेलेमें अलग-अलग कहानीकार अपने-अपने खूँटे गाड़कर खेमोंके भीतर जा बैठे। कुछ बाहर खड़े होकर अपने बहुरंगी झण्डोंको मजबूतीसे पकड़कर उनकी 'पब्लिसिटी' में लग गये। उन्हें सम्भवतः इस बातका एहसास नहीं रहा कि मेला जल्दीही उठ जायेगा, खेमे यहीं गड़े रह जायेंगे, हवा और पानी के थपेड़े झण्डोंको झीर-झीर कर देंगे और हाथमें सिर्फ डण्डे रह जायेंगे। हुआ भी यही। 'नयी कहानी' के बाद नामकरणको आगे रखकर जो 'दलबन्दी' हुई, समयने एक-एक करके सबके चेहरोंका पानी धो दिया और उन्हें हू-ब-हू वैसाही पाठकोंके सामने लाकर खड़ा कर दिया जैसा उन्हें होना चाहिये था।

वस्तुतः कहानीके सन्दर्भमें नामों-आन्दोलनोंका कुछ महत्त्व नहीं है। महत्त्व कहानियोंका है। (डॉ० बच्चनसिंह : आलोचना, ६४, पृष्ठ ६७) और भला इसे कौन नकार सकता है कि आजादीके बाद युग और परिवेशके मुताबिक कहानीने अपने कथ्य और शिल्पमें प्रशंसनीय उपलब्धियाँ की हैं। युगोंसे उपेक्षित इस विधाको शीर्षस्थान प्रदान किया है, यथार्थकी एक जीवन्त भूमि प्रस्तुत की है, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक मूल्यों को परम्परावादसे परे हटाकर मौलिक एवं रचनात्मक रूप दिया है जो आगामी सामूहिक क्रान्तिमें अपना महत्त्वपूर्ण 'पार्ट' अदा करेगी। और सबसे बड़ी बात भाषाकी है जिसे आजके कहानीकारोंने मात्र भाषा न रहने देकर जीवनकी भाषा बना दिया है। लेकिन इन उपलब्धियोंके बावजूद आजकी कहानीमें सबल व्यक्तित्वका अभाव मुँह बाये खड़ा है। 'व्यक्तित्व बनता है साहस और दृढ़ता से। जो लोग अपनी प्रकृति और संस्कारके कारण संसारको, जीवनको, समाजको उनके मरते हुए तत्त्वोंको दृष्टिसे देखते है उन्हें सब कुछ विनाश की ओर जाता हुआ दिखायी देता है। सभी कुछ हारा हुआ, टूटा हुआ, कुत्सित और अन्धकारपूर्ण दिखायी देता है। लेकिन जो लोग जीवनको जीवनकी दृष्टिसे देखते हैं, उस जीवनन्त मानवताकी दृष्टि से देखते हैं जो मजबूत कदमोंसे अपने नये भोरकी ओर बढ़ रही है, उनको इस अँधेरेमें भी रोशनी नजर आती है। यह नहीं कि अँधेरेको वे देखते नहीं। देखते हैं, मगर जानते हैं कि यह पौ फटनेसे पहलेका अँधेरा है।' (अमृतराय : सहचिन्तन—साहित्यकारकी आस्था, पृष्ठ २३-२४) लेकिन इस मूल तथ्यको ताकमें रखकर आजका कहानीकार कथाकुमारीको नया नाम देनेके मोहमें अपनी सर्जनात्मक शक्तिका अपव्यय कर रहा है। वह झण्डेको तो कड़ाईसे पकड़े हुए है किन्तु उसके पाँव धरतीसे उखड़ते जा रहे हैं। वह कामू, सार्त्र तथा नीत्शेका हवाला देकर अपनेको 'नया' घोषित करना तो नहीं भूलता लेकिन उनके द्वारा कहे गये ठोस सन्दर्भोंका अनुकरण करनेका उसमें साहस नहीं है। 'नीत्शे' द्वारा कही गयी ईश्वरको मार डालनेकी बात तो उसके गलेके नीचे उतर गयी लेकिन क्या उसने कभी यह भी सोचा कि उसके बाद उसको क्या करणीय है। 'नीत्शे' कहता है : "यह सत्ता समाप्त हुई, इसे शरीरसे निकाल फेंको, नहीं तो शरीर गल जायेगा और स्वयंको इसके अभावमें भी जीवित रखनेका अभ्यास डालो। अपना विकास स्वतन्त्र रूपमें करो, अपनी ही इच्छाशक्तिके बलपर आकाशतक पहुँचो, अपने सत्को ईश्वरकी सत्ताके समक्ष पहुँचाओ, अतिमानव बनो। पर यह ध्यान रहे जमीनसे पाँव न उखड़ने देना। धरतीसे ऊपर रहनेका यही परिणाम होता है जो ईश्वरका हुआ है।" ईश्वरको मार दो, गम नहीं किन्तु उसके बाद वह अपना दायित्वभी समझे तभी वह सच्चे रूपमें नया है अन्यथा कहा जायेगा कि वह नयेपनका कोरा दम्भ करता है।

इस व्यर्थके वितण्डावादसे कहानीकी अखण्डता, स्थायित्व (रुके रहनेके अर्थमें नहीं) और पाठककी जागरूकतामें भारी व्यवधान पड़ा है, जिसका खमियाजा अन्ततः हम सबको मिलकर ही भुगतना पड़ेगा। यद्यपि ऐसी बात नहीं है कि आजके कहानीकारोंको इस सत्यकी प्रतीति नहीं हुई थी। राजेन्द्र यादव जैसे कहानीकारोंने यह कह कर इस दिशाकी ओर संकेतभी किया था कि "चूँकि हर युगकी कहानी 'नयी' होती है इसलिए पिछले दशककी कहानीको 'नयी कहानी' नाम देना आगे जाकर अध्येताओं के लिए गलतफ़हमी पैदा कर सकता है।"

लेकिन न जाने क्यों वे और उन जैसे अनेकों इस गलतफहमीका शिकार हो गये। साहित्य जबतक बहता नीर है तभीतक उसमें ताजगी है, उपयोगिता है। उसकी नाकेबन्दी कर दीजिये, उसमें सड़ाँध पैदा हो जायेगी।

बहरहाल, अब यह शोर काफी हदतक बन्द हो गया है, लिहाजा कहानीके बदलते प्रतिमानों, मूल्यों और सम्भावनाओंपर सहूलियतसे विचार किया जा सकता है।

बदले हुए प्रतिमानोंकी संगति

आजादीके बाद जिस कहानीका उदय हुआ उसने कहानीके परम्परागत ढाँचेको तोड़ डाला। विश्वविद्यालयोंमें, यद्यपि, पहले-पहल कहानीका पठन-पाठन तथाकथित ढर्रेपर ही होता था और प्रतिमानोंकी नयी संगति का मखौल उड़ाया जाता था किन्तु अब यह महसूस किया जाने लगा है कि प्रतिमानोंको कहानीके आधारपर ढालना ही होगा, अन्यथा संवेद्य कथ्यको सही धरातलपर नहीं समझा जा सकता। प्रतिमानोंमें क्या कुछ टूटा जुड़ा है, इसका संक्षिप्त भूगोल जान लेना चाहिये।

आज जब कथानकके लगातार ह्रास होनेकी बात कही जाती है तो उसका अभिप्राय मात्र कथा-विन्यासका टूटना होता है। इस टूटनेको ह्रासकी संज्ञा देनाभी शायद अनुचित है। वह, वास्तवमें, विन्यासका सूक्ष्मीकरण है। ह्रास, यदि है, तो कथानकका नहीं उसकी स्थूलताका हुआ है। कथानकमें निहित कार्य-कारण सम्बन्ध यदि वैज्ञानिक मतवादकी देन थी, तो स्थूलताका यह ह्रासभी वैज्ञानिक प्रक्रिया की देन है। आधुनिकताकी यही वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो सूक्ष्मको तलाशती जा रही है। 'ह्रास' की इस स्थितिको 'प्रकाश-यात्रा' की विभिन्न मान्यताओंकी तुलना द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। परिभाषाकी प्रथम स्थिति यह थी कि प्रकाश सरल रेखामें यात्रा करता है, द्वितीय स्थिति हो गयी कि प्रकाश तरंगोंके माध्यमसे यात्रा करता है और फिर सूक्ष्म अध्ययनसे यह मान्यता भी तरंकणों (तरंग-कण) अर्थात् वैविकल्स (वेव-पार्टिकल्स) के पक्ष में बदल गयी। कथा-विन्यासकी पद्धतियों का विकास (या ह्रास) भी इसी क्रममें है। घटनाका सीधा, सपाट वर्णन कथानककी रूढ़ मान्यता थी। मनोविश्लेषण आदिने उस सपाटताको तरंगोंमें परिणत कर दिया। कथानकके अस्तित्वके सम्बन्धमें संशय तभी पैदा हुआ था, क्योंकि कथानककी प्रकृति बदल गयी थी। फिर भी जब आधुनिक सूक्ष्म, वैज्ञानिक बोधने घटनाओंकी 'रेखा' को 'बिन्दुओं' के पीछे फेंक दिया तो संशय अनास्था में बदल जाना भी स्वाभाविक था। परन्तु यह अनास्था कुछ ऐसे आक्रोशसे घोषित हुई कि उसमें विवेकशीलता का सन्देहभी किया जा सकता था। यह सोचना कि कहानी से कथात्मकताको निष्कासित किया जा सकता है—एक भ्रान्ति ही है। बिन्दुओंने केवल 'रेखा' को फेंका है, 'रेखाविता' को नहीं। अन्तर इतना आया है कि 'रेखा' लक्षित नहीं रही, 'असंलक्ष्य' हो गयी है, अनुभूतिके स्तरतक गहरा गयी है। रेखा अबभी खिंचती है किन्तु उसे खींचने की जिम्मेदारी पाठकपर आ गयी है। इसीलिए आजके कहानी-पाठकसे वैसी ही अपेक्षाएँ भी की जाने लगी हैं, जो कभी कविताके पाठकसे की जाती थीं। वस्तुका उद्घाटन, बल्कि उसका पुनर्निर्माण कहानीकी अनिवार्यता है। इस वस्तुकी योजना कैसे हुई है—कहानी सम्बन्धी यह प्रश्न उसके शिल्प टैक्नोलोजीसे सम्बद्ध है। शायद यही कारण रहा हो कि सुरेश सिन्हाने तत्त्वोंकी आलोचना करते हुए कहानीकी पत्रात्मक, वर्णनात्मक आदि शैलियोंको कथानक के विवेचनके अन्तर्गत उठाया है। इस प्रकार कहानीकी संवेदना या वस्तु उसका प्रथम उपकरण है। यह उपकरण अनुभूतिपरक है। कथा-योजना या विन्यासकी बात उसी धरातलपर उठाना उसे उलझाकर खण्डित करना है।

यह कथा-योजना क्या है ? संवेदनासे कहानी कैसे सम्भव होती है ? या घटनासे ही कैसे बनती है ?—आखिर घटना संवेदनाका मूर्त्त, स्थूलरूप है और संवेदना घटनामें व्याप्त आत्मा। इन सब प्रश्नोंका उत्तर एक ही है--कहानी के शिल्पसे। पर उत्तर अधूरा है क्योंकि 'कहानीका शिल्प क्या है ?' प्रश्न अभी अनुत्तरित है। यों कहा जा सकता है कि 'प्लाट' का 'कैरेक्टराइजेशन' ही रचनामें कथात्मकता लाता है। कैरेक्टराइजेशन यानी चरित्रीकरण। अतः घटना या संवेदनाकी चरित्रमें परिणति कहानी-शिल्पकी अनिवार्य शर्त है। यहाँतक बात शिल्पकी है। कहानीके

प्रभावकी दृष्टिसे इस चरित्रीकरणका महत्त्व बिल्कुल दूसरा है। जो संवेदना कहानीमें अनुभूतिके धरातलपर प्रतिष्ठित होती है, चरित्रमें परिणत होतेही बोधके धरातलपर संदृष्टि कहानीकी समग्रतामें भी व्याप्त हो सकती है, या पुरानी कहानियोंकी तरह 'अन्तमें बड़े घरकी बेटियाँ ऐसी ही होती हैं,' जैसे सन्देशका पर्यायभी हो सकती है। बहरहाल, है वह संदृष्टिही और उभरती भी हमेशा चरित्रके माध्यमसे है। चरित्रकी अनुपस्थितिमें इस संदृष्टिकी कल्पना असम्भव है। शिवप्रसादसिंहके शब्दोंमें चरित्रही एक 'आइडिया' में बदल जाता है, उसका आभास दे जाता है। इस प्रकार परम्परागत उद्देश्यकी बात स्वतन्त्र रूपसे करना उसे कहानीपर आरोपित करना है। 'उद्देश्य' कहानीके 'चरित्र' से पृथक् नहीं है, तभी कहानीमें प्रभावान्विति सम्भव होती है। साथही 'पात्र' (चरित्र) के साथ चरित्र-चित्रणकी बात उठानाभी असंगत है। ठीक उसी तरह जैसे वस्तु या संवेदनाके साथ 'कथा-विन्यास'की बात। चरित्रजन्य संदृष्टि (विजन) कहानीके प्रभावका दूसरा उपकरण है, और चरित्रीकरण शिल्पका दूसरा समानान्तर उपकरण।

अश्क कहानीकी यही समझते हैं कि सबसे महत्त्वकी चीज वस्तु और देखनेवाली दृष्टि है। उसके बाद शिल्प का स्थान है। पर बात यहीं समाप्त नहीं होती। मोहन राकेशका कथन है कि "कहानी कविता या चित्रकलाके गुणसे कहानी नहीं बनती, अपने गुणसे कहानी बनती है-- सजीव और सशक्त भाषामें यथार्थके प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके माध्यमसे एक संकेत देकर।" संकेत की बात तो ऊपर हो चुकी है, यह 'संदृष्टि' का पर्याय है। 'चित्रकी प्रामाणिकता' की बात नयी है। राजेन्द्र यादव प्रामाणिकताकी खोज, उसका सम्पूर्ण स्वीकार और अप्रामाणिकताके अस्वीकारको ही नयी कहानीका धरातल कहते हैं। वह मात्र शिल्पगत नहीं है। कमलेश्वरने भी इस प्रामाणिकताकी बात की है। प्रामाणिकतामें दो गुण हैं : 'अथेंटिसिटी' और 'वैलिडिटी'। यानी 'प्रामाणिकता मात्र वास्तविकता या यथार्थकी सही-सही (अथेंटिसिटी) अभिव्यक्ति ही नहीं, यथार्थका सत्यपरक चुनाव (वैलिडिटी) भी है। प्रत्येक 'यथार्थ', कहानीका कथ्य बननेका हकदार नहीं है, जो वैलिड है, वही कहानीका -कथ्य बन पाया है।" यह वैलिडिटी परिवेश और समयकी संगति ही है और इसीके परिणामस्वरूप 'कहानी सन्देश नहीं, अनुभव देती है।' (सुरेन्द्र चौधरी)

परिवेशकी यह चेतना 'वातावरण' का आभ्यन्तर प्रयास ही है। वह स्थानीय रंग नहीं है, संगति है; वहभी आन्तरिक संगति। वातावरण मानवीय व्यवहारको प्रभावित और संचालित नहीं करता, वातावरण बोध कराता है। आजकी कहानीमें मानवीय व्यापार किसी 'वातावरण' का परिणाम नहीं है, बल्कि चरित्रके 'विशिष्ट वातावरण-बोध' का परिणाम है। आज कहानी परिवेशके माध्यम से व्यक्ति और व्यक्तिके माध्यमसे परिवेशको पानेकी एक प्रक्रिया है। यह परिवेश-चेतना कहानीके संश्लिष्ट प्रभाव का तीसरा उपकरण है। तथाकथित वातावरण-चित्रण अर्थात् प्रकृति अथवा स्थिति वर्णन तथा यथार्थकनकी शैली शिल्पका अंग है।

इस प्रकार कहानी सहजही दो धरातलोंपर जुड़ती है। ये दो धरातल उसके मूल तत्त्व हैं—'प्रभाव' और 'शिल्प'। दोनों परस्पर सापेक्ष हैं और यह सापेक्षिकता तीन स्तरोंपर है। प्रथम स्तर संवेदना या वस्तु का है, जहाँ कथाका विन्यास होता है, उसकी रूपाकृति बनती है। दूसरा स्तर 'संदृष्टि' का है जो चरित्रीकरणसे निर्मित होती है। तीसरा स्तर 'प्रामाणिकता' या 'परिवेश चेतना' का है, जो 'शैली की यथार्थपरकता' से सम्बद्ध है। निश्चित रूपसे कथोपकथन कहानीका तत्त्व नहीं है, वह शिल्पका अंग हो सकता है, वस्तुके चरित्रीकरणमें सहायक हो सकता है।

'प्रभाव' और 'शिल्प' को जोड़नेवाला माध्यम है कहानी की भाषा। वह एक ओर संवेदनाको वहन करके संदृष्टिको उजागर करती है, दूसरी ओर शिल्पको बाँधती है। क्योंकि "भाषाको जीवन सन्दर्भ ही पैदा करते हैं........क्षण अपने शब्द लाते हैं और बीचमें समाये शून्य नीरवताको मूक भाषा-संकेतोंमें रूपान्तरित कर देते हैं।" (कमलेश्वर) या श्रीराम तिवारीके शब्दोंमें "नयी कहानीकी भाषा अण्डर स्टेटमेण्टकी भाषा है जो इमिटेशनसे नहीं बनती, पूरे सिचुएशनको एक साथ देखनेसे बनती है।" अतः आजके सन्दर्भमें, सम्पूर्ण कहानी साहित्यके मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकनकी शुरूआत 'कहानियोंके पाठ' से ही की जा सकती है....धीरे-धीरे सभी आलोचक इस बिन्दुपर पहुँच रहे हैं।

धरतीकी सोंधी महक : रोमांससे यथार्थतक

शिल्प-संगति निरपेक्ष नहीं है; वह कहानीके बदलावके साथ बदली है और कहानीकी 'टोन' में आजादीके बाद भारी परिवर्तन आया है। स्वतन्त्रतासे प्राप्त तात्कालिक विघटनने मानवीय आस्थाको खण्डित कर दिया था लेकिन

शीघ्रही घोषित गणतन्त्रात्मक व्यवस्थाने जनमानसके भीतर व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी गरिमा प्रदान की और इस प्रकार भारतीयताकी तलाशका दौर शुरू हुआ। 'हिमालय की तरफसे, बोरीवली और बोरीबन्दरसे, मिथिलाके कछारोंसे, राजस्थानकी रेती से, मालवेकी झील-कंजर जातियोंसे, शिमलाकी ढलानोंसे सैकड़ों चरित्र स्त्री-पुरुष, बूढ़े और बच्चे हिन्दी-कहानीके मैदानमें चींटियोंकी तरह उतर आये; कहानीके साम्राज्यमें एक प्रकारका नया जनतन्त्र झनझना उठा।' (प्रभाकर माचवे) प्रामाणिकता की खोजकी यह एक सशक्त शुरूआत थी। इसे अन्ततः आंचलिक कहानीकी संज्ञा मिली।

'आंचलिक कहानी' नयी कहानीकी ही सगी बहिन है। 'जहाँ कुछ कहानीकारोंने अपने मध्यवर्गीय वास्तविकताओंके चित्रणमें ही अपनी कलाकी सार्थकता समझी, वहाँ दूसरे कहानीकारोंने इसमें सम्भवतः कोई रस न पाकर जीवनके प्रतीक गाँवोंकी ओर दृष्टि दौड़ायी। इसे अपनी वास्तविकताओंसे पलायन नहीं कहा जा सकता। अपने वातावरणसे लड़नेके लिए पहले भी मध्यवर्गने व्यापक जनशक्तिका सहारा लिया है। इसलिए नये कहानीकारोंकी यह निर्वैयक्तिकता सराहनीय है। सम्भवतः शहरोंके मध्यवर्गीय जीवनमें जीवन और सौन्दर्यको न पाकर ही महत्त्वाकांक्षी कहानीकारोंने गाँवोंकी राह ली।' (नयी कहानीकी भूमिका, पृष्ठ ३९) ग्रामीण जीवनपर कहानियाँ प्रेमचन्दने भी लिखी हैं। किन्तु नयी कहानीके पक्षधर आंचलिक कहानीको प्रेमचन्दकी कहानियोंका प्रस्तुतीकरण नहीं मानते। आंचलिक कहानियोंमें 'आजके उपेक्षितों और कलके अपेक्षितों को' स्वर मिला है। अपनी संवेदनशील प्रवृत्तिके कारण इन कहानीकारोंने कंजड़ों, नटों, मुसहरों, मीरासियों, हिजड़ों, रमन्तु नर्तकों आदि यायावरीय मनुष्योंका उद्धार किया है। इस प्रकारकी कहानियोंकी जीवन्तता मुख्यतः बिम्बों द्वारा निर्मित वातावरणसे ही मुखरित हुई है।

आंचलिक कहानी, इस प्रकार 'प्रामाणिकताकी खोज' का एक विशिष्ट सन्दर्भ है; अनुभूतिकी सच्चाई और अनुभूतकी प्रामाणिकताका एहसास करा देना इसका प्रमुख आकर्षण बना। नामवरसिंहके शब्दोंमें ये कहानियां 'रेहटारिकल' न होकर 'इमिटेटिव' हैं और इनका भावबोध आजादीके प्रथम आवेगकी मनोदशाके पूरे मेल में है। स्वतन्त्रताके पश्चात् नयी पीढ़ीने जैसे अँधेरेमें से जीता-जागता भारत निकलते देखा है और उसकी इच्छा हुई है कि हर चीजको अपने हाथोंसे छूकर देखे कि वह क्या है। इस संवेदनामें भावुकताका रंग अवश्य अधिक है, किन्तु जिन्दगीके गहरे सम्पर्कने आगे चलकर भावुकतासे उठनेवाली टीसको यथार्थकी आँचमें पकाकर गहरी तल्खीका रूप दे दिया। आंचलिक कहानीके तीन महत्त्वपूर्ण कथाकार रेणु, शिवप्रसाद और मार्कण्डेयमें धरतीकी सौंधके प्रति रागभावको क्रमशः तल्खीमें देखा जा सकता है। रेणु अपनी कहानियोंमें मूलतः आस्थावान हैं और उनकी यह आस्था 'मानस-सत्य' पर सर्वाधिक टिकी हुई है और यहीं उनका हिन्दुत्व, उनकी भारतीयता मुखर हो जाती है। कहानियोंके पात्र बदलते सन्दर्भोंको जीते जाते हैं और अचानक कहींसे वह खण्ड दस्तक दे जाता है जिसमें जीवनकी मनोरमता है, भव्यता है, हिन्दुत्वका उदार और विशिष्ट अर्थ पुनर्भासित है--वह चाहे 'तीर्थोदक' कहानीकी लल्लूकी माँमें हो अथवा 'लाल पानकी बेगम' की बिरजूकी माँमें। 'ठेस' के सिरचनके सृजनका धरातल भी यही है। मार्मिकताकी दृष्टिसे यह बेजोड़ है। आस्थाका यह स्वर कथाकार रेणुकी आत्मीयताका आधार है इसीलिए रेणुकी कहानियोंमें तनावकी व्याप्ति नहीं है। वे अपनी इसी आत्मीय आस्थामें रामकृष्ण परमहंसकी आध्यामिक आस्थाका पुट लेकर आदमीको आदमी बनते देखनेके लिए सजग हैं। 'आत्मसाक्षी' और 'जलवा' इस तरहकी उत्तम कहानियाँ हैं। अंचल विशेषकी सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियोंका विरोध रेणुकी कहानियोंमें है अवश्य किन्तु वह मुखर एवं वाचाल नहीं है। संकेत बहुत हैं, पर तीन बिन्दियोंकी भाँति व्याप्त; केवल अनुभूत होनेके लिए हैं ('नित्य-लीला', 'काव्य चरित', 'सिरपंचमीका सगुन')। यथार्थ दृष्टिसे रेणुने मूलतः गाँवको समेटनेका यत्न किया है। इस प्रयास में उन्होंने मस्ताना बाबाके आदर्शको निभाया है।—'सदा आँख-कान खोलकर रहो। .... धरती बोलती है' (आदिम रात्रिकी महक)। असलमें उनकी कहानियोंमें सर्वत्र धरतीकी गन्ध है और इस गन्धसे लेखककी आत्मीयता है और यह आत्मीयता शिशुकी-सी सहज, तरल अनुभूति लिये हुए है। शिवप्रसादसिंहमें आकर यह तरल अनुभूति जिजीविषा बन जाती है। जूझनेकी यह चेतना बड़ी कठिनाईसे मिलती है या जिन्हें मिली है वे सहजही लेखकको आकर्षित कर लेते हैं—'कर्मनाशाकी हार' के भैरों पांडेकी तरह। विद्रोहकी ऐसी मानवीय वाणी इतनी मुखर शायद किसी अन्य कहानीमें नहीं है, यद्यपि गूँज

उसकी बहुत कहानियोंमें हैं ('पापजीवी', 'उपहार')। 'धारा' और 'इन्हें भी इन्तजार है' शिवप्रसादसिंहकी ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें परम्परा और आधुनिकताको इस रूपमें जोड़नेकी जिजीविषा है जैसे वृक्षकी छतनार शाखें उसकी छतनार जड़से जुड़ी होती हैं। अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धोंकी टूटन गाँवोंमें ही है किन्तु उन टूटे हुए सम्बन्धों को जोड़नेकी ललक शिवप्रसादसिंहमें काफी हदतक है ('टूटे शीशेकी तस्वीर')। यों इस ललक अथवा जिजीविषामें उदासी अथवा अकेलेपनका दर्द भी घिर-घिरकर आता है किन्तु अन्ततः यह उदासी एक बहुत बड़े विश्वास को जन्म देती है, कष्टोंसे जूझनेकी ताकत देती है। 'नन्हों' का दर्द ऐसा ही है, तभीतो उसमें शक्ति है अकेलेपनसे जूझने की। मार्कण्डेयमें आकर यह जूझनेकी शक्ति पौरुष बन जाती है। 'प्रलय और मनुष्य' उस दृष्टिसे विशिष्ट कहानी है जिसमें इस पौरुषेय आस्थाका संकेत स्पष्ट है। 'मनुष्य अजेय है देवी ! उसकी चिन्ताग्रस्त आँखें यह बता रही हैं कि वह कुछ सोच रहा है। क्षणभरको वह हत्बुद्धि हो गया है, पर उसकी शक्तियाँतो अपनी जगह हैं हीं।' वैसे इस पौरुषेय आस्थाकी सीधी अभिव्यक्ति मार्कण्डेयकी कहानियोंमें अत्यल्प है—यह एक सत्य है, पर इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रायः हर कहानीमें परिवर्तनकी दिशाका एक निश्चित संकेत है और उन सब बाधाओं और विरोधोंपरसे नकाब उतारनेकी चेष्टा है जो मानवीय पौरुषको आच्छादित करते हैं--चाहे वह आर्थिक राजनीतिक स्तरपर हो ('हरामीके बच्चे') अथवा विकास-योजनाओंके शोषणको आधार बनाकर ('दोनेकी पत्तियाँ', 'आदर्श-कुक्कुट गृह')। साथही मार्कण्डेयने किसानोंके विकासमें बाधक एक महत्त्वपूर्ण तथ्यको रेखांकित किया है कि किसानके शोषणके लिए केवल महाजन ही जिम्मेदार नहीं है स्वयं किसान एक सीमातक जिम्मेदार है—उस 'घुन' कहानीकी तरह जिसमें घुन महाजन द्वारा जमा किये गये धनमें ही नहीं लगा है, नाथूके दिमाग में भी लगा है जो अकाल देखकरभी अनाज बाहर नहीं निकालता। मार्कण्डेयकी कहानियोंमें शोषणकी स्थितियाँ यथार्थके धरातलपर उभरी हैं।

असलमें उपेक्षितोंको अपेक्षित संवेदना—मानवी करुणा और सहानुभूतिका सहजोद्रेक—भावुकताका प्रथम संस्पर्श था, जिसने आंचलिकता द्वारा कहानीको जीवन्त बनाया। उपेक्षितोंको उभारनेके प्रयासमें कहानीका रूप भी कुछ बदला। उसमें चरित्रकी रेखाएँ प्रधान होने लगीं और कहानी रेखाचित्रके निकट खिसक आयी, जैसे महादेवी वर्माके हाथों रेखाचित्र कहानीके निकट खिसक आया था। यह विशेषता जितनी 'दादी माँ' या 'गुलराके बाबा' में स्पष्ट है, उतनी रांगेय राघव की 'गदल', धर्मवीर भारतीकी 'गुलकी बन्नो', शेखर जोशीकी 'कोसीका घटवार' या कृष्णा सोबतीकी 'मित्रो मरजानी' में भी है। मात्र रेखाचित्र ये इसलिए नहीं हैं कि कथात्मकता इन सभीमें है और अपनेबिल्कुल सहज रूपमें है। उनमें परम्परा प्राप्त कहानी-फार्मूलेके प्रति उदासीनता है, निजी अनुभव के सहारे 'पूरे सजीव आदमी' के चित्रणपर उनकी दृष्टि है। संवेदनाका क्षेत्र बिल्कुल नया है, अतः प्रारम्भिक कहानियोंमें कहीं-कहीं रचनकारको गढ़ना भी पड़ा है। 'गुलकी बन्नो' और 'मित्रो मरजानी' इसका प्रमाण है। 'कोसीका घटवार' कहानीके अन्तमें व्यंग्य अवश्य उभरता है, पर मूलतः उसकी रचना 'काव्यात्मक स्तर' पर ही हुई है।

निजी अनुभवके रूपमें आंचलिक कहानीकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन यह रही है कि उसमें स्वतन्त्र भारतके बदलते परिप्रेक्ष्यको संवेद्य बनाया गया है जिसके कारण जिन्दगीसे दूर छिटकी हुई कहानी जीवन और यथार्थके शुद्ध धरातल पर कदम रख सकी। जहाँ तक अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धोंके चित्रणका प्रश्न है—लेखकीय दृष्टिमें रागात्मकताका अंश महत्त्वपूर्ण रहा है। यह दृष्टि यथार्थ-बोधकी दिशामें तल्खीसे भरती गयी है—यह भी सच है। मूलतः यह तल्खी इसलिए है कि भारत प्रकृतिकी दिशामें आगे बढ़ना नहीं चाहता। जहाँ भी प्रगतिका विरोध है, उसके मार्गमें बाधा है, उसकी अस्वीकृति है— वहीं लेखकका राग-बोध व्यंग्य और तल्खीमें बदल जाता है। यह तल्खी शेखर जोशीकी 'आखिरी टुकड़ा' में भी है, और लक्ष्मीनारायणलालकी 'पशु-मेला' में भी। राजेन्द्र अवस्थीकी कहानियोंकी यह मूल संवेदना है। 'सारी दुनिया बदल रही है। हमेंभी बदलना चाहिये। छोटे-छोटे पहाड़ोंको लेकर क्यों झगड़ते हैं? देवी-देवता अबतक क्या काम आये? उन्हें कहीं और रख लो। पर काम मत रोको' ('लाल झण्डा')। यह काम, प्रगतिका तूफान, रुकभी नहीं सकता। संघर्ष प्रतिगामी शक्तियोंसे करना है, नयी पीढ़ी के उस अंशसे भी जो 'बूढ़ेके अधिक पास आ गया था। वह सिमिटता गया जैसे बूढ़ेमें समा जाना चाहता है ('काले और सफेद साये')। आंचलिक कहानीके आक्रोश, उसकी तल्खीका मूल कारण यही प्रतिगामिता है—और निस्सन्देह यह उसकी प्रगतिशीलताका प्रमाण है। प्रति-

गामी धार्मिक शक्तियोंको उन्होंने पूरी शक्तिसे झिंझोड़ा है, और यह प्रयास उनकी प्रगति चेतनाको भारतीय समाजके परिप्रेक्ष्यमें अधिक यथार्थपरक और मिट्टीसे सम्पृक्त बना देता है; जिसकी उपेक्षा तथाकथित नयी कहानीमें हुई है, पर जो भारतकी प्रगतिमें उपेक्षणीय किसीभी मूल्यपर नहीं रह सकती।

महानगरीय विडम्बनाओंके बीच जूझता निम्न मध्यवर्ग

तथाकथित नयी कहानीमें यह शायद सम्भवभी नहीं था। कारण, आजादीके बाद विभाजनसे उत्पन्न राष्ट्रीय संकट और दूसरे महायुद्धका अन्तर्राष्ट्रीय दुष्परिणाम महानगरोंमें अजगरी हदाकी तरह फैल गया, परिणामतः महानगरोंमें रचने-बसनेवाला बुद्धिजीवी वर्ग इस विषाक्त गन्धसे आतंकित हुए बिना कैसे रह सकता था? उसकी आँखोंके सामने रक्तपात हुआ। हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई तथा सत्य, अहिंसा और प्रेमका गान्धीवादी नारा खण्डित हुआ। भीड़की भीड़ नगरोंमें धँस गयी। अपच होना स्वाभाविक था। राजनीतिक स्तरपर इसका हल ढूँढ़नेकी अपेक्षा भाई-भतीजावाद और रिश्वतका बाजार गर्म हो गया। आर्थिक विवशताएँ कुछ ऐसा रूप ले गयीं कि परिवार टूटने लगे, संस्कार बिखरने लगे, अस्मतें बिकने लगीं और सम्बन्ध औपचारिक होने लगे। कहना-समझना मुश्किल हो गया कि कौन किसका है। महानगरीय जीवन जीवन न रहकर 'मास्क' अथवा मुखौटेका पर्याय बन गया—बाहर कुछ, भीतर कुछ। इस विडम्बनापूर्ण जीवनमें राष्ट्रीय हित मजाक बनकर रह गया और स्वार्थ एक मूल्य। भीड़की भीड़में सही चेहरे नकली और नकली असल नजर आने लगे। अस्तित्वको बचानेके चक्करमें अस्मिता रेहन रख दी गयी और तकलीफ इस बातकी है कि वह आजतक रेहन पड़ी है—अपवाद स्तरपर उसे मुक्त करानेकी अकुलाहटके बावजूद। ज्यादा-कम इस अकुलाहटको झेला-भोगा महानगर में रहनेवाले बुद्धिजीवी वर्गने और उसे तीसरी आँखसे अभिव्यक्त करनेका यथाशक्य प्रयास भी किया। आजादीके बादसे लेकर आजतककी हिन्दी कहानी न्यूनाधिक इस प्रयासका दस्तावेज है।

ऐसे संक्रमणकालमें जिस कहानीका उदय हुआ उसे नये कहानीकारोंने 'नयी कहानी' की संज्ञा दी तथा प्रेमचन्दके बाद और सन '५० से पहलेतककी कहानीको 'पुरानी कहानी' से अभिहित किया। नयी कहानीके प्रवक्ता नामवरसिंहके शब्दोंमें पुरानी कहानी 'यानी वह रूढ़ कहानी, जो एक साँचेमें ढलती थी, जो गहन मानवीय संकट और अपेक्षाओंको वाणी देनेमें असमर्थ थीं....जिसने किस्सागोईको तो कुछ-कुछ छोड़ दिया था, पर निष्कर्षवादी अन्तोंमें जुड़ी हुई थी ...उसका पात्र इकहरा होता था और झूठे आदर्शवादसे पीड़ित रहता था। वह ओढ़े हुए आरोपित विचारों तथा जीवनकी कहानी है।' (नयी कहानीकी भूमिका) पृष्ठ ११, २६, ४१, २११ डॉक्टर नामवरसिंहने इससे आगे एक बात और भी कह दी है कि पुरानी कहानी वह नहीं है जो पुराने युगमें लिखी गयी। पुरानी वह है जो आजभी पुराने युगकी लीक पीट रही है। (कहानी : नयी कहानी : पृष्ठ २०३)

पुरानी कहानीके सन्दर्भमें ही 'नयी कहानी' का उदय हुआ। नयी कहानीके दावेदारोंका विचार है कि नयी कहानी 'नयेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील और प्रयोगशील रहनेकी प्रक्रिया है।' इस नामकी घोषणा सबसे पहले, नयी कविताके कवि दुष्यन्तकुमारने की थी, इस सन्दर्भमें 'कल्पना' में उनका एक लेख छपा था। अपनी विरासतके रूपमें नयी कहानीने कबीरके विद्रोह, सामाजिक न्याय और बन्धुत्वका आग्रह, भारतेन्दुकी भारतीयता और आजादीका हक, प्रसादकी मानवतावादी मूल्योंके पुनर्निर्धारणकी आकांक्षा और उत्तरवर्ती प्रेमचन्द द्वारा यथार्थका ग्रहण और मानवीय संकटकी व्याख्या तथा यशपालकी कहानियोंको स्वीकार किया। शिल्पके क्षेत्रमें निराला, अमृतलाल नागर, नागार्जुन और अमृतराय इसके आदर्श बने। इस विरासतकी छायामें कथ्य और शिल्पमें नयी कहानीने नये मूल्योंकी खोज की। वैचारिक धरातलपर उसने सामाजिक दायको स्वीकार किया। परम्पराको माना लेकिन परम्परावादको दुत्कारा। इसने शाश्वत मूल्योंको साहित्यका अनिवार्य धर्म माननेसे इन्कार किया और अपने यथार्थमें जीनेको प्रतिबद्ध हुई। इसने साहित्यको जीवनसे नहीं वरन् जीवनको साहित्यसे सम्पर्कित रखनेकी माँगको दोहराया। यह जीकर मरनेकी नहीं वरन् मरकर जीनेकी कहानी है। नयी कहानीके प्रायः सभी लेखक मध्यमवर्गीय हैं जो पहले जीवनको 'झेलते' हैं (भोगते हैं) और फिर उसे हू-ब-हू (?) कागजपर उतार देते हैं। इस प्रकार नयी कहानी झेले हुए जीवनका चित्रांकन है।

इस प्रयासमें कहानीकी आन्तरिक लयमें विस्मयकारी विकास हुआ है। कहानी, जो कभी सुनने-सुनानेकी चीज थी, पढ़ने-पढ़ानेकी चीज बनी और अबतो वह उससे भी

आगे बढ़कर समझने-समझानेकी विधा बन गयी है। इसने अपनी भौगोलिक परिधिको ही नहीं तोड़ा, उसकी आन्तरिक दृष्टिमें भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। आजकी कहानी सामाजिक नैतिक उभरी सतहोंको उघाड़कर आन्तरिक हलचलको उजागर कर रही है। इसमें आन्तरिकीकरणकी प्रवृत्ति घर कर रही है। यह आन्तरिकीकरण व्यष्टि-मूलक नहीं है, अपितु भीड़मेंसे उठाये गये ऐसे व्यक्तिका है जो अपने वर्गकी भीतरी पहेलियोंको उजागर करता है। उसे कह देनेकी जितनी जिम्मेदारी लेखककी है, समझनेकी उतनीही सतर्कता पाठककी भी है, अतः आजकी कहानीको समझने-समझानेमें लेखक और पाठक बराबरके भागीदार हैं।

'मुक्तिबोध' में ऐसी कहानियोंकी सशक्त शुरूआत है। अपनी कहानियों--'काठका सपना', 'सतहसे उठता आदमी'—में उन्होंने ऐसी कलादृष्टिका विकास किया जो व्यापक जीवन-जगतकी व्याख्या करनेमें सक्षम और अर्न्तजगतके महत्त्वपूर्ण आन्दोलनोंका बोध करानेमें समर्थ है। उनमें 'क्लाड ईथरली' की तरह सहज युगबोधका दायित्व है; एक सचेत, जागरूक, संवेदनशील भारतीय आत्माका स्वर है--ऐसी आत्मा जो सच कह देनेमें कभी कोई झिझक महसूस नहीं करती और किसीभी मूल्यपर दबावमें आकर समझौतावादी पोशाक पहनने पर आमादा नहीं होती। मुक्तिबोध मूलतः अभिशप्त मध्यवर्गीय जीवनके प्रतिनिधि थे। अभावों-विवशताओंको झेलने-देखनेके बावजूद वे इस आस्थाको लेकर जीते रहे कि 'काठका सपना तोड़ना होगा; बालमूर्ति (आगामी सन्तति) की रक्षा करनी होगी।' तदर्थ कुछ करने-छोड़नेके लिए उन्होंने 'पक्षी और दीमक' जैसी सशक्त कहानी लिखी। 'विपात्र' तक आते-आते यद्यपि उसकी बेचैनी और अधिक बढ़ गयी थी जब उसने अपनी आँखोंके सामने बुद्धिजीवी वर्गको एबीलार्डकी जमातमें शामिल होते देखा था--नपुंसक बनकर अपना घर बसाने और सुविधा जुटानेके लिए। इस अजीव बेचैनीमें भी मुक्तिबोधकी संकल्पशक्ति मन्द नहीं होती--'हाँ, हमें इस दलदलको सुखाना होगा। लेकिन उसके लिए तो किसी ज्वालामुखीकी आग चाहिये!'

मुक्तिबोधके बाद, या कहिये उसके साथ-साथ आजकी कहानीमें राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादवका उदय हुआ। राकेशने जीवनकी जटिलताओंको अनुभूतिके स्तर पर सहा और लिखा। उसकी कहानियोंमें सांकेतिकताका स्वर मुखर था। जीवनके प्रति उनकी अगाध आस्था थी। संघर्षपर उनका विश्वास था लेकिन वह बिजलीकी कौंध बनकर रह गया, शक्ति नहीं बन सका। कमलेश्वरने 'राजा निरबंसिया', 'कस्बेका आदमी', 'खोई हुई दिशाएँ', 'एक थी विमला', 'पराया शहर', 'जो लिखा नहीं जाता' तथा 'माँसका दरिया' जैसी कुछ सशक्त कहानियाँ हिन्दी-कहानीको दीं जो रचनाकारकी सम्भावनाओंको रेखांकित करती हैं किन्तु परिमाणमें वे इतनी कम हैं कि पूरे कृतित्वका साम्प्रतिक प्रभाव कमलेश्वरको प्रामाणिक लेखकोंकी श्रेणीमें बैठानेमें सन्दिग्ध बनाता है। राजेन्द्र यादवमें अपेक्षाकृत सम्भावनाएँ अधिक थीं। वे निश्चय ही कहानीकारोंकी 'त्रयी' में सर्वाधिक सशक्त प्रगतिशील लेखक रहे हैं। बदलते परिवेशमें ही यादवने जीवनका मुहावरा खोजनेकी कोशिश की थी और अपनी भाषा संवेदनाको श्लिष्टता, सांकेतिकताके माध्यमसे अर्थगरिमा प्रदान की थी। उनके भीतर जिजीविषाकी एक अपूर्व आस्था थी जो उनकी कलाको जीवित बनाये हुए थी। 'खेल-खिलोने', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'तीन पत्र और आलपीन', 'छोटे-छोटे ताजमहल', 'प्रतीक्षा', 'टूटना' तथा 'अपने पार' यादवकी उपलब्धियाँ थीं जिनमें आगेके लिए सम्भावनाएँ निहित थीं लेकिन उनके सद्यः प्रकाशित कहानी-संग्रह 'ढोल' ने उनकी रचना सामर्थ्यको धुँधला दिया है।

निर्मल वर्मा आजकी हिन्दी कहानीमें मुक्तिबोधके बाद समर्थतम जागरूक कहानीकार हैं। संवेदना और शिल्पकी दृष्टिसे उनकी कहानियाँ अपवादकी सीमातक विशिष्ट हैं। वे अपनी कहानियोंमें समयको देखकर बदल जानेकी आवाज दे रहे हैं। आत्मगोपन निर्मलकी कहानियोंकी विशिष्टता है जो पाठकपर अतिरिक्त विश्वास सौंपता है। उनमें जीवनकी गहरी समझ और कलाका कठोर अनुशासन है। 'परिन्दे', 'माया दर्पण', 'लवर्स', 'जलती झाड़ी', 'लन्दनकी एक रात', 'एक शुरूआत', 'तीसरा गवाह' जैसी अनेक कहानियाँ हैं जो निर्मलके माध्यमसे आजकी कहानीकी उपलब्धियाँ हैं और आगेके लिए महत्त्व-पूर्ण सम्भावना है।

इन प्रतिनिधि कहानीकारोंके अतिरिक्त कहानी-कारोंका एक बहुत बड़ा वर्ग है जो महानगरीय विडम्ब-नाओंको अपने-अपने विशिष्ट बिन्दुओं और कोणोंसे रूपायित करनेको प्रयत्नशील है। इनमेंसे कुछ आजादी-पूर्व उपलब्धि-प्राप्त कहानीकार—यशपाल, अज्ञेय, अश्क,

जैनेन्द्र, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर—हैं तो कुछ स्वतन्त्रताके बाद उभरकर आये हैं। यद्यपि इनकी उपलब्धियोंको रेखांकित करना, फिलहाल, खतरेसे खाली नहीं है क्योंकि कुछ कहानीकारोंने तो करीब-करीब लिखना ही बन्द कर दिया है, कुछ भटक गये हैं और कुछ चूक गये हैं। बावजूद इसके जो छन-छनाकर सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं— यशपाल ('परदा', 'कलाकारकी आत्महत्या)', अज्ञेय (रोज), अश्क ('टेबल लैण्ड'), जैनेन्द्र ('नीलम द्वीपकी राज कन्या'), अमृतराय ('चित्रफलक', 'एक सांवली लड़की'), विष्णु प्रभाकर ('धरती अब घूम रही हैं'), धर्मवीर भारती ('गुलकी बन्नो', 'सावित्री नं० २', 'बन्द गलीका आखिरी मकान'), भीष्म साहनी ('चीफकी दावत', 'अपने-अपने बच्चे', 'खूनका रिश्ता', 'पास फेल', 'यादें'), अमरकान्त ('दोपहरका भोजन', 'डिप्टी कलक्ट्री' 'जिन्दगी और जोंक', उषा प्रियम्बदा ('जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'वापसी'), नरेश मेहता ('एक समर्पित महिला', 'तथापि',मन्नू भण्डारी ('तीन निगाहोंकीएक तस्वीर', 'यही सच है'), रघुवीर सहाय ('सेब', 'मेरे और नंगी औरतके बीच'), रमेश बक्षी ('एक अमूर्त तकलीफ'), रामकुमार ('रिश्तेदारी', 'प्रश्नचिह्न'),विजय चौहान ('रिक्ति', 'कीड़े', 'घोड़ा', 'अन्तके पहले', 'जिद', 'रिहाई', 'गवाह'), प्रबोध कुमार (गाँठ), दूधनाथसिंह ('रक्तपात'), रवीन्द्र कालिया ('नौ साल छोटी पत्नी'), प्रयाग शुक्ल ('भाषा'), श्रीकान्त वर्मा ('झाड़ी'), ममता कालिया ('बीतनेके बाद'), कृष्ण बलदेव वैद ('मेरा दुश्मन') तथा प्रणवकुमार वन्धोपाध्याय ('अथवा', 'अश्वमेध', 'रक्त', 'इडियट', 'ईश्वर बाबू अनुपस्थित थे', 'प्रेमिका'), कहना नहोगा, इस सबमें फिलहाल प्रणवका लेखनही सर्वाधिक क्रियाशील और जागरूक है। स्वाभावसे यह कहानीकार अपनी प्रत्येक कहानीमें भयभीत, शंकालु, दब्बू और भीड़से कटा हुआ नजर आता है लेकिन इस तरेह नहीं कि वह पाठकको हताश कर दे। यह जागरूकतासे पहलेकी स्थिति है और शायद स्वाभाविक भी। इस राजनीतिक दावपेंच, अवरुद्ध नीति, आर्थिक सिद्धान्तों और संस्कृतिहीनताके खिलाफ अकड़कर कलमी बगावत शायद अभी नहीं की जा सकती। जरूरी फिलहाल इतना है कि बड़ी सावधानीसे संकल्प लिये जायें और उन्हें बातचीतके जरिए, एक दूसरेतक पहुँचाया जाये—इसलिए कि 'कल जो जुलूस टूट गया, वह सिरेसे जोड़ना है उसे।' (इडियट)

कहानी आज जिस सीमातक जा पहुँची है उससे आगे की सम्भावनाओंपर विचार करना पहली दृष्टिमें असम्भवसा लगता है। आजकी कहानी रचना-प्रक्रियाके साथ पठन-प्रक्रियाको पहलेही कोष्ठित कर चुकी है और इस प्रक्रिया में स्वयं दुर्बोधताको भी वर लिया है। निश्चित रूपसे निर्मल वर्माकी जैसी कहानियोंमें चेतना और संवेदनाका जो आन्तरिकीकरण हुआ है, सहज कहानीपन उसे वहन कर सकेगा, यह सन्देहास्पद है। अतः लगता है कि कहानीको सहजता और आन्तरिकीकरणमेंसे किसी एक मार्गको चुनने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। कहानी किसे छोड़ेगी, इसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। यों गहरे सोचनेपर यह स्थिति इतनी विकट नहीं लगती। आजके युगमें जो ज्ञानकी राशि अपूर्व गतिसे बढ़ती जा रही है, एवं वर्तमान विज्ञान-चेतना तथा समाज-चेतना परस्पर पूरक बनकर जनशिक्षा के माध्यमसे व्यक्तिके ज्ञानके क्षितिजका विस्तार करनेको प्रतिबद्ध है तो यह सम्भावना निर्मूल नहीं होगी कि दुर्बोधताकी निकट सीमा कुछ आगे खिसकती रहे। परिणामतः जो आज दुर्बोध है वह कल दुर्बोध न रह जाये और कल का दुर्बोध आगे आनेवाले कलमें सुबोध हो जाये। पहलेभी ऐसे ही हुआ है। एक समय था जब पाठक जैनेन्द्रसे भी दुर्बोधताकी शिकायत करता था। जन-सामान्यके मानसिक स्तरका विकास होनेसे ये शिकायतें स्वयं गलती रहती हैं। इस सन्दर्भमें प्रगति-चेतनाके आन्तरिकीकरणको भी आत्मसात कर कहानी पाठकसे अपेक्षाएँ बढ़ाती रहे और रचना-प्रक्रियाको पठन-प्रक्रियासे पूर्णतः अन्वित कर दे तो आश्चर्य नहीं होगा। विकासके चरणमें यह स्वाभाविक है कि रचना-प्रक्रिया और पठन-प्रक्रिया, जो आज पूरक है, कल एकान्वित और एकरेखीय हो जायँ। कविताकी भाँति कहानी भी वहींसे आरम्भ होने लगे जहाँ रचना-प्रक्रिया और पठन-प्रक्रिया, दोनों समाप्त होती हैं। कहानी केवल सन्दर्भ दे और सजग पाठक चेतनाकी रचना करता चले। रघुवीरसहायकी कहानियाँ इसका प्रमाण हैं। सेब', 'खेल', 'लड़के' आदि कहानियोंने एक नयी परम्पराका सूत्रपात किया है, यह नामवरसिंह भी मानते हैं। 'अपने पार' जैसी कहानियोंमें राजेन्द्र यादवभी इसी दिशाका संकेत दे रहे हैं। इन कहानियोंमें केवल सन्दर्भ है, विवरण है, वर्णन नहीं और शेष सब कुछ पाठकसे अपेक्षित है। इससे संक्षिप्त सन्दर्भ मात्रको कहानी कैसे कहेंगे, इसपर रघुवीरसहायका कहना है कि मैं मानता हूँ कि 'ऐसे कोई कहानी नहीं कही जाती है कि यह हुआ फिर वह हुआ और अन्तमें यह हुआ, इति। मगर यह खूब जानता हूँ कि कहानी होती

ही ऐसी है; उसका आरम्भ भी होता है, मध्य भी और अन्त भी, परन्तु उसके बीच एक घटना होती है और मुझे तो केवल घटनाका वर्णन करना है, केवल यह बताना है कि जब दो व्यक्तियों, दो मानवोंके बीच एक सम्बन्ध टूटा और दूसरा बना तो उससे क्या कहानी पैदा हो गयी।'

कहानी इन सम्भावनाओंका भार-वहन करनेमें समर्थ होगी—यह प्रश्न वास्तवमें इस प्रश्नसे भिन्न नहीं है कि क्या कहानीमें कोई व्यक्तित्व 'मुक्ति-बोध' हो सकेगा।

कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ

'समकालीन कहानी' नयी कहानीसे सम्पृक्त आन्दोलन कहा जाता है। यह नयी कहानीकी विविधतामें सहायक हुई है। संयम, संक्षिप्तता तथा सामयिकता समकालीन कहानीकी विशेषताएँ कही गयी हैं। 'घटनात्मकता या नाटकीयतासे इसका सख्त विरोध है। इसमें एक अजीब तरहकी खामोशी, ठण्डापन और सहजता है। वैचारिक धरातलपर इसका सीधा सम्बन्ध गहन मानवीयता और जीवन सापेक्ष मूल्योंसे है...पर व्यक्ति या 'मैं' के माध्यमसे, यानी एक तरहकी संयत, सभ्य वैयक्तिक सामाजिकतासे।'

नयी कहानीकी प्रतिक्रियास्वरूप 'लघु कथा' का नामकरण-संस्कार हुआ। कलागत प्रवृत्तियोंके अनुसार आगे चलकर इसे 'साहित्यिक कहानी' से अभिहित किया गया। इस नामकी काफी छीछालेदर हुई। आलोचकोंका कहना था कि साहित्यिक कहानियोंकी संज्ञा बेमाने है, क्योंकि तबतो अन्य कहानियाँ असाहित्यिक हो जायेंगी।

'लघु कथा' के हामी भागते हुए विविध मूडों, क्षणों को पकड़ते हैं; ट्यूमरका चित्रण करते हैं या फिर उनकी कहानी 'मिथ' हो जाती है। 'उनके लिए कहानी 'अँधेरेमें एक चीख' है, . . .लघु कहानीका कथ्य जीवन नहीं, मात्र अपनी नैतिक बौद्धिक अभीप्साएँ हैं। यह कहानी 'पर्सनल डाक्यूमेंटेशन' की तरह नितान्त वैयक्तिक है।... (इसका) दर्शन स्वरतिका दर्शन है। . . . (यह) 'कहानी' को कहानी भी नहीं मानती बल्कि उसे निबन्ध कहना ज्यादा पसन्द करती है।'

वस्तुतः लघुकथा 'वास्तविक' कम 'साधित' अधिक है। 'और, इस शोरशराबेमें यह साधित लेखनभी अमरबेलकी तरह फैलनेकी कोशिशमें है, जिसके पास अपने कोई मान मूल नहीं हैं।' (नयी कहानीकी भूमिका : पृष्ठ ४३, ४४)

इधर कुछ दिन हुए तब 'सचेतन कहानी' का शोरभी कानोंमें पड़ा था। कैसी भौंड़ी बात है कि जैसे बस वही सचेतन कहानी है, बाकी सबतो अचेतन यानी मृतप्राय है। शुक्र है कि यह शोर जल्दी ही बन्द हो गया और इन्होंने समझदारीसे अपने झण्डे झुका लिये।

आजकल कुछ फैशनपरस्त अ-कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं। राकेश यादव, कमलेश्वर द्वारा विज्ञापित 'नयी कहानी' के विरुद्ध इस पीढ़ीके मनमें कितना अधिक विद्रोह है, यह इसीसे स्पष्ट है कि उन्होंने कहानी मानका अस्वीकार करके हिन्दीमें 'अ-कहानी' की आवाज उठा दी। कहानीमें इतनी दलबन्दी देखकर अब जाकर आजके कहानीकारोंको समझमें आया है कि 'कहानीकी मृत्युसे चर्चा आरम्भ करनी चाहिये।' (निर्मल वर्मा) अथवा रवीन्द्र कालियाके शब्दोंमें 'मुझे कहानीके उस स्वीकृत रूपसे घोर वितृष्णा है, जिस अर्थमें वह आज कहानीके नामसे जानी जाती है।'

वस्तुतः "हमारी प्रतिभा 'अ' से जुड़कर गिद्धोंको इंसानियतकी लाशोंपर निमन्त्रण देने लगी, आदर्शोंका मांस खाने लगी, शिष्टता व सभ्यताको ठोकरोंसे उछालने लगी, भव्यताको नंगा करने लगी, गीतोंका गला घोंटने लगी, कथानककी हत्या करने लगी, अनजाने सन्त्रस्त पात्रोंका आविष्कार करने लगी, रचनाको मशीनवत जड़ बनाने लगी और यौनको स्वच्छन्द रूपमें भोगने लगी। अ-रचनाकारने नारा दिया—'अश्लीलता शब्द-कोशसे हटाया जाये।' अब यदि शरद देवड़ा या मुद्राराक्षस इस 'अ' को युगान्तरवादी घटना समझें, तो यह उन्हें ही मुबारिक हो, हमारी मंगलकामना तो यह है कि यह संक्रामक रोग प्रसार न पा सके।' (आचार्य रामदेव : बिन्दु : अक्टूबर, १९६७; पृष्ठ, ७७)

यथार्थके नामपर यह तमाम गलाजत देखकर सर्जनात्मकता एवं कला मूल्योंको तो कफन ही उढ़ाना पड़ेगा क्योंकि यह किसी समझदार व्यक्तिकी उपज नहीं है क्योंकि 'यथार्थके नामपर इतनी अराजकता और नग्नताका प्रदर्शन केवल पागल कर सकता है।' (डॉ० सावित्री सिन्हा : नये साहित्यकारका मूल्य : साप्ताहिक हिन्दुस्तान, २८ जन०, ६८, पृष्ठ २५)

घ. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक

--नेमिचन्द्र जैन,

आई-४७, जंगपुरा एक्सटेंशन,

नयी दिल्ली-१४

एक तरहसे नाटक हिन्दीमें सबसे कमजोर और पिछड़ी हुई विधा है। १९४७ से पहले आधुनिक नाटकके प्रायः सौ बरसके दौरमें भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकरप्रसादको छोड़कर कोई ऐसा नाटककार नहीं हुआ जिसके कृतित्वको गम्भीरतापूर्वक उल्लेखनीय माना जा सके। अधिकांश नाटक या तो सतही ढंगसे मनोरंजन, या अधिकसे अधिक थोड़े-बहुत समाज सुधारके उद्देश्यसे प्रेरित रहे या पाठ्यक्रमोंको ध्यानमें रखकर लिखे गये। उनके लिखे जानेके पीछे यातो एक अजनबी रंगमंचीय कार्यकलाप का तात्कालिक दबाव रहा या शुद्ध साहित्यिक आन्दोलनों अथवा अन्य प्रकारकी उपयोगिताओंका। दोनोंही हालतोंमें किसी सार्थक मानवीय अनुभवका अथवा नाटकके रूपका कोई सर्जनात्मक अन्वेषण नहीं हो पाया।

इस स्थितिके कई कारण थे। एकतो यही कि इस देश में नाटक-रंगमंचका आधुनिक दौर पूरी तरह विदेशी प्रेरणा से शुरू हुआ और हमारी अपनी रंगदृष्टि और नाट्य परम्पराओंसे कटा हुआ ही नहीं, प्रायः विपरीत था। इसलिए उसका नगरोंके नव-शिक्षितोंके भी एक छोटे अंश तक सीमित रह जाना अनिवार्य था। वह एक नये ढंगका तमाशा तो फौरन बन सकता था, पर देशकी सांस्कृतिक चेतनाकी अभिव्यक्ति आसानीसे नहीं। हिन्दीभाषी प्रदेश में पश्चिमी शिक्षाका प्रभाव औरभी देरसे आया। साथ ही इस प्रदेशमें यूरोपके साथ व्यापारका कोई बड़ा केन्द्र न बन सकनेके कारण, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास जैसा कोई महानगरभी यहाँ विकसित हो पाया जहाँ रंगमंच स्थायी रूपमें स्थापित होकर पनप सके। नतीजा यह हुआ कि हिन्दी नाटक बहुतही अटकता-अटकता और कमजोर ढंग से बढ़ा और कभी उतनी सक्षमताभी नहीं हासिल कर सका जैसी कलकत्ता, बम्बई आदिमें बँगला, मराठी, गुजराती नाटकोंमें आ सकी।

हिन्दी नाटककी अपनी एक औरभी आन्तरिक कठिनाई थी—भाषाकी। खड़ीबोली हिन्दीमें साहित्यिक रचना ने जो भाषायी रूप लिया वह राजनीतिक-सांस्कृतिक दबावोंके कारण उर्दूके विरोधमें या कमसे कम उससे भिन्न होनेके लिए मजबूर हुआ। इससे एक बनावटी भाषाका निर्माण हुआ जिसका बोली जानेवाली भाषासे बहुत कम सरोकार था। यह भाषा किसी हदतक कविता, उपन्यास, कहानी आदिमें तो थोड़ी दूरतक चल भी गयी, पर नाटक तो इस बनावटीपनके कारण ठीकसे रूपही न ले सका। नाटकमें बोली जानेवाली भाषा चाहिये या कमसे कम उसकी गहरी छाया एकदम अनिवार्य है। मगर मंचपर बोली जानेवाली भाषाकी तलाशमें हिन्दी नाटक उर्दू के समीप पहुँचने लगता था जिससे हिन्दीका लेखक बचना चाहता था। नतीजा यह हुआ कि यातो हिन्दीमें अच्छे नाटक लिखे ही नहीं गये या ऐसी भाषामें लिखे गये जो अभिनयके लिए एकदम अनुपयुक्त है। समर्थ नाटक-रचना के लिए सही नाट्यभाषाको खोज निकालना या तैयार करना बहुत जरूरी था।

अपने सही विकासके रास्तेमें इन कठिनाइयोंसे जूझने और उसकी जरूरतोंको जुटानेमें बड़ा लम्बा समय लगा और १९४७ के बादही, विशेषकर छठे दशकमें जाकर, इन शर्तोंके किसी हदतक पूरा होनेके आसार नजर आ सके। दरअसल, पिछले पच्चीस वर्षके हिन्दी नाटककी सफलता या असफलताको इस परिप्रेक्ष्यके बिना समझना सम्भव नहीं। उसकी उपलब्धियाँ नाटककी इन्हीं जरूरतोंके पूरा होनेके साथही जुड़ी हैं। यही नहीं, इन उपलब्धियोंको नाटकके नामसे चलनेवाली, या ऊपरसे नाटक जैसे रूपमें लिखी गयीं, रचनाओंसे अलग कर सकना भी इस परिप्रेक्ष्य के बिना नहीं हो सकता।

इस दृष्टिसे देखें तो इस दौरमें हिन्दी नाटककी विशे-

षता यह है कि वह सर्जनात्मक मूल्योंसे कटे बिना ही रंगमंचसे जुड़ सका। उसमें समसामयिक जीवनके अनुभवको ऐसा रूप देनेकी कोशिश हुई जो रंगमंचपर सजीव होकर प्रदर्शनमें सामने उपस्थित दर्शकोंको तत्काल सम्प्रेषित हो सके। एक ओर इन नाटकोंमें जिन्दगीके ऐसे पक्ष प्रस्तुत होने लगे जो अधिक प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण थे, दूसरी ओर उसके बाहरी और भीतरी आयामोंको अलग-अलग और एक-दूसरेके साथ जोड़कर देखनेकी, उसकी जटिलताओंको पहचाननेकी, और गहराईमें जाकर प्रस्तुत करने की तरफ ध्यान गया। और सबसे बड़ी बात यह है कि ऐसी नाट्यभाषाकी तलाश शुरू हुई जिसमें बोलचालके मुहावरेकी घुलावट और सहजता भी हो, और साथही अनुभवके, स्थितियोंके, काव्यको व्यक्त करने योग्य संवेदनशीलता, सूक्ष्मता और तराश हो। कई दृष्टियोंसे यही पिछले पच्चीस वर्षोंके हिन्दीके नाटक साहित्यकी सबसे बड़ी उपलब्धि है जिसके कारण आज हिन्दीके नाटक देशकी दूसरी भाषाओंके नाटकोंके समकक्ष होनेकी स्थितिमें हैं। इस दौरके नाटकोंमें इस बदलावकी दिशा और मंजिलोंको देखा जा सकता है।

साहित्यिक चेतनाके साथ रंगमंचीय नाटक लिखनेके लिए आगे आनेवालोंमें शायद सबसे पहला नाम उपेन्द्रनाथ अश्कका है। यद्यपि वे चौथे दशकके अन्तसेही नाटक लिख रहे थे पर उनका अधिकांश नाटक लेखन पाँचवें दशकके उत्तरार्द्धके बादही हुआ। उनके नाटकोंमें वैयक्तिक कुण्ठा अथवा सामाजिक समस्याओं या स्थितियोंका यथार्थवादी ढंगका प्रस्तुतीकरण है। 'कैद' में आदर्श और त्यागकी भावनासे प्रेरित होकर अनुपयुक्त व्यक्तिसे विवाह कर लेने वाली युवतीके जीवनकी नीरसता और व्यर्थताको प्रस्तुत किया गया है। 'उड़ान' में पुरुष द्वारा स्त्रीको देवी, दासी या खिलौना माननेकी तीन प्रवृत्तियोंका समक्षीकरण है। 'पैंतरे' में फिल्मी दुनियाकी बनावटी जिन्दगी और मारधाड़ पर व्यंग्य है। 'भँवर' में उच्च वर्गकी शिक्षित युवतीकी कुण्ठाको पेश किया गया है। 'अलग-अलग रास्ते' में दो बहिनोंके विवाह असफल होनेपर उनके अलग-अलग रास्ते अपनानेकी स्थिति है। 'अंजो दीदी' में यान्त्रिक ढंगसे नियम माननेसे विद्रोह है। 'बड़े खिलाड़ी' में विवाहके मामलेमें मध्यमवर्गीय क्षुद्रता और ओछेपनपर टिप्पणी है।

ये सब कृतियाँ नाटककी नयी यात्रामें पहली मंजिल की सूचक हैं। वे लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण प्रेमी जैसे लेखकोंकी खोखली बनावटी साहित्यिकतासे बहुत कुछ मुक्त हैं और नाटकके सही और असली यानी रंगानुकूल रूपमें जिन्दगीके अनुभवको पेश करते हैं। पर इस रंगमंचीय आयामके साथ जीवनकी कोई गहरी समझ या तलाश उनमें नहीं है। उनमें प्रस्तुत बाहरी तथा भीतरी संघर्ष सतही और चरित्रोंकी परिकल्पना, शायद किसी हदतक, 'भँवर' को छोड़कर, प्रायः आरोपित अथवा एक-आयामी हैं। इसीलिए न तो उनकी बुनावटमें सूक्ष्मता है न कार्य-व्यापारकी गति और परिणतिमें अनिवार्यता। नतीजा यह है कि वे किसी समर्थ या सार्थक रंगसृष्टिमें भी योग नहीं देते। उनका सीधा यथार्थवादी रूप प्रस्तुतीकरणमें भी किसी प्रकारकी सर्जनात्मक कल्पनाशीलता अथवा नवीनताकी गुंजाइश नहीं पैदा करता। दरअसल, अश्कके नाटकोंकी देन नाटकके लिए भाषा तलाश करने की शुरूआतमें तथा स्वयं किसी हदतक उस तरफ बढ़नेमें है। उनकी भाषामें बिना शक बोलचाल की रवानी और नाटकीयता है। कथ्य सतही अधिक होनेके कारण भावमें भी काव्यात्मक व्यंजना नहीं है, फिरभी उन्होंने नाटकके लिए ऐसी भाषा तैयार की जिसमें रोमाण्टिक युगकी अस्पष्टता, धुँधलापन, ओजप्रियता और भाषणात्मकता बहुत कम है।

इस यात्रामें जगदीशचन्द्र माथुरके नाटक कुछ और आगे बढ़े हैं। पिछले बीस वर्षोंमें उनके तीन पूर्णाकार नाटक प्रकाशित हुए हैं: 'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा'। इन तीनोंमें ही किसी-न-किसी प्रकारका आन्तरिक संघर्ष विषयवस्तुके केन्द्रमें है। 'कोणार्क' और 'शारदीया' में कलाकार और राज्यके बीच तथा कलाकार की अपनी प्रेरणाके विभिन्न स्रोतों और स्थितियोंके बीच सम्बन्ध या संघर्षकी खोजबीन है। 'पहला राजा' समाज और राज्य के बीच सम्बन्ध, राजसत्ताके स्वरूप, और उससे जुड़े व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वको परिभाषित करनेकी कोशिश करता है। इसमें वैदिक युगमें सबसे पहले राजाके उदय और उससे उत्पन्न समस्याओंके द्वारा आजके अन्तर्विरोधों और उलझनों को देखा-समझा गया है। इस प्रकार अश्कके नाटकोंकी तुलनामें इन नाटकोंके कथ्यमें ज्यादा गहराई और सार्थकता है। साथही उनमें रंगमंचीय दृष्टिभी अश्कके नाटकोंसे ज्यादा स्पष्ट और ठोस है। स्थितियों तथा चरित्रोंके समक्षीकरणमें, दृश्य-योजनामें, उत्कर्ष-बिन्दुओंके निर्वहणमें अधिक नाटकीयता है। बल्कि 'पहला राजा' में तो लोक-

नाट्य परम्पराकी अनेक रूढ़ियों, युक्तियों और व्यवहारों का प्रयोग है जो हिन्दी नाट्य लेखनके लिए बहुत ही नया है।

मगर इन नाटकोंमें भी सर्जनात्मक दृष्टि बहुत सूक्ष्म अथवा प्रखर नहीं है और रूप तथा कथ्यका संयोजन अनिवार्य नहीं हो पाया है। जैसे, 'कोणार्क' का उत्कर्ष बिन्दु अतिनाटकीयतापूर्ण है और प्रमुख चरित्र विशुके आत्म-चिन्तनमेंभी भावुकता अतिरिक्त होनेके कारण अतिरंजना जान पड़ती है। 'शारदीया' में पात्रोंकी परिकल्पनामें विविधता और संयम अधिक है, अपने आपमें वे विश्वसनीयभी अधिक हैं और ठोसभी। विभिन्न दृश्योंमें नाटकीय गति अधिक सूक्ष्मता और कसावटके साथ निभायी गयी है। पर कथ्यके स्तरपर मुख्य भाववस्तु और उसकी पृष्ठभूमिके बीच संयोजन ठीक नहीं। पृष्ठभूमि इतनी प्रबल और नाटकीय हो गयी है कि मुख्य कथ्य पीछे पड़ गया लगता है। 'पहला राजा' इस दृष्टिसे सबसे कमजोर है। उसमें बहुत-सी बातों और नाटकीय युक्तियोंकी भीड़-भाड़ अधिक है, महत्त्वपूर्ण सर्जनात्मक उपलब्धि कम।

दरअसल, जगदीशचन्द्र माथुरके नाटक हिन्दी नाटक की सर्जनात्मकता और रंगमंचीय सार्थकताकी ओर दुहरी यात्राको कुछ कदम आगे बढ़ानेका काम तो करते हैं, और नाट्य भाषाको भी बोलचालके समीप लानेके साथ-साथ काव्यात्मक गहराई देनेकी कोशिश करते हैं। पर अपने आपमें वे किसी बड़ी सफलतातक नहीं पहुँचते। यह काम वास्तवमें मोहन राकेशके नाटकोंमें ही किसी कदर पूरा हुआ। मगर उनकी विस्तारसे चर्चाके पहले एक अन्य नाटकका जिक्र जरूरी है जो नाटककी मुख्यधारासे अलग होनेपर भी कई दृष्टियोंसे हिन्दीही नहीं सारी भारतीय भाषाओंमें एक श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण नाट्य-उपलब्धि है।

यह नाटक है धर्मवीर भारतीका 'अन्धायुग' जो छठे दशकके शुरूमें लिखा गया, पर जिसे नाटकके रूपमें प्रतिष्ठा सन् साठके बाद बम्बई और दिल्लीमें दो प्रतिभाशाली निर्देशकों द्वारा उसके प्रस्तुतीकरणके बादही मिली। 'अन्धायुग' युद्धकी विभीषिका और उसके कारण पूरे समुदाय और व्यक्तिके बाहरी और आन्तरिक विघटनको प्रस्तुत करता है और यह प्रश्न उठाता है कि ऐसे सर्वव्यापी और सर्वग्रासी संकटके क्षणमें मनुष्यके आचरणकी जिम्मेदारी क्या है और वह कैसे उसे निभाता या निभा सकता है। इन प्रश्नोंकी पूरी तीव्रता, यातना और साथ ही समकालीन प्रासंगिकता और सार्थकता दिखानेके लिए नाटककार महाभारतकी पृष्ठभूमिपर अपने निर्वहण कौशल द्वारा आजके युद्धोंसे उत्पन्न विसंगतियों, वंचनाओं और सन्त्रासकी अनुगूंजें पैदा करता है।

'अन्धायुग' काव्य नाटक है और वह यह प्रमाणित करता है कि सही अर्थमें नाटक उत्कृष्ट कोटिके काव्यसे बहुत दूर नहीं हो सकता। काव्यकी भाँतिही यह नाटक जीवनके बुनियादी नैतिक तथा अस्तित्व-सम्बन्धी सवालों को छूता है, और यद्यपि उसके रचनाकारकी दृष्टि रूमानियत, भावुकता तथा कई प्रकारके सरलीकरणोंसे मुक्त नहीं है, फिरभी जिस हदतक वह जाती है वह हिन्दी नाटक के लिए एकदम अभूतपूर्व है। उसमें महत्त्वपूर्ण विचारों और बेरहमीसे उधेड़ देनेवाली स्थितियों और आवेगोंका बड़ा तीखा सम्मिश्रण है जो नाटकको रंगमंचपर अत्यन्त प्रभावी बनानेके साथ उसे साहित्यकी सामान्य धारामें खींच लाता है।

कथ्यके अनुरूपही 'अन्धायुग' का नाट्यरूपभी हिन्दी के लिए नया और उत्तेजक है जिसमें संस्कृत तथा पारम्परिक नाट्यों और यूनानी नाट्य-शैलियोंकी रूढ़ियों और व्यवहारों को एक नये सर्जनात्मक संयोजनमें गूँथा गया है। उसमें यथार्थवादी नाटककी सतही और सपाट पद्धतियोंसे छूटकर कार्य-व्यापारका कल्पनाशील प्रस्तुतीकरण है। 'अन्धायुग' के रूपबन्ध और चरित्र संयोजनमें भी शिल्पगत कुशलता और नवीनता है। खासकर नाटकीय काव्यभाषाकी तलाश की दृष्टिसे तो वह एकदम बेजोड़ है। उसमें खड़ीबोलीकी रोमैण्टिक अनुगूँजोंमें डूबी गतिहीन भाषाको बोलचाल और कई परतोंवाली अर्थव्यञ्जनाके सक्षम समन्वय द्वारा नाटकीय अभिव्यक्तिके उपयुक्त बनाया जा सका है। अपने आपमें यह एक बड़ी भारी उपलब्धि और देन है।

मगर 'अन्धायुग' अपने ढंगका एक अकेला नाटक है। उसका हिन्दीमें सामान्य नाटक-लेखनकी दिशा या उसके स्तरपर कोई खास असर नहीं पड़ा, भलेही उसके कारण भारतीय रंगजगतमें हिन्दी रंगमंचका दर्जा एकाएक बहुत ऊँचा उठ गया। हिन्दी नाटककी मुख्य धाराके लिए जो नाटक मानक बना वह था १९५८ में प्रकाशित मोहन राकेशका 'आषाढ़का एक दिन'। इसमें समकालीन नाटक लेखनकी कई विशेषताएँ एक साथ मौजूद हैं और उनका रूपगत निर्वहण पर्याप्त कुशलता तथा संवेदनशीलताके साथ हुआ है।

'आषाढ़का एक दिन' की कथावस्तुका आधार संस्कृत के विख्यात कवि कालिदासके जीवनके कुछ प्रसंग हैं जो

सम्भवतः काल्पनिक हैं। मगर अतीतकी पृष्ठभूमिके बावजूद यह नाटक वास्तवमें एक सर्जनशील व्यक्तिके अन्तर्विरोधों के सन्दर्भमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्धोंका अन्वेषण करता है और इस प्रकार समकालीन प्रश्नको दूरस्थ ऐतिहासिक स्थिति से जोड़कर देखता है। उसमें विचारों और दृष्टियोंको चरित्रोंकी जीवनस्थितियोंसे इसप्रकार मिला दिया गया है, और उनका एक दूसरेसे ऐसा नाटकीय समक्षीकरण है कि एक साथ कई स्तरोंपर अर्थ-सम्प्रेषण होता है। हिन्दीके ढेरों तथाकथित ऐतिहासिक नाटकोंसे 'आषाढ़का एक दिन' इसलिए मौलिक रूपमें भिन्न है कि उसमें न तो अतीतका तथ्यात्मक विवरण है, न पुनरुत्थानवादी गौरव-गान। और न वह द्विजेन्द्रलाल रायके नाटकोंकी शैलीमें कोई भावुकतापूर्ण अतिनाटकीय स्थितियाँ रचनेकी कोशिश करता है। उसकी दृष्टि कहीं ज्यादा आधुनिक तथा सूक्ष्म है जिसके कारण वह सही अर्थमें आधुनिक हिन्दी नाटककी शुरूआतका सूचक है।

मगर इस नाटककी शायद सबसे बड़ी खूबी है उसकी भाषा जो एक क्लासिकी युगका हलका-सा आभास बनाये रखकरभी बोलचालके बहुत समीप है। साथही उसमें व्यंजना, विडम्बना, बिम्बपरकता, एकाधिक सन्दर्भोंकी अनुगूंजको बड़े संयम और नियन्त्रणके साथ सँजोया गया है, जिससे पहली बार आधुनिक नाटकीय गद्यका रूप निखर सका है। हिन्दी नाटकके विकासकी यह एक ऐसी शर्त और जरूरत थी जिसे पूरा किये बिना किसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धिकी ओर बढ़ना कठिन था।

राकेशके अगले नाटक 'लहरोंके राजहंस' की पृष्ठभूमि भी अतीतसे बुद्धके भाई नन्द और उसकी परम रूपवती पत्नी सुन्दरीके जीवनसे, ली गयी है। इसमें अपनी मुक्ति की राह अपने-आप चुननेमें बल्कि व्यक्तिकी स्वतन्त्रता और अधिकारके सन्दर्भमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्धोंकी पड़ताल है। मगर कई बातोंमें 'आषाढ़का एक दिन' से अधिक प्रौढ़ और अपने आपमें इस दौरका उल्लेखनीय नाटक होनेपर भी कुल मिलाकर यह कथ्य और रूपकी उसकी जैसी समन्वितितक नहीं पहुँच पाता।

अपने तीसरे नाटक 'आधे अधूरे' में राकेशने अतीत का सहारा छोड़कर सीधे आजके परिवेशमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्धोंकी एक और पर्तको कुरेदा। यह मध्यवर्गीय नौकरीपेशा स्त्री और उसके अपने पति तथा सम्पर्कमें आने वाले अन्य पुरुषोंके साथ सम्बन्ध—खिंचाव और कशम-कश—के कई स्तरोंको खोलता है। साथही आजके जीवन में परिवारके विघटन और आपसी रिश्तोंके मशीनी, एक-जैसे, तथा अलग निजी पहचानरहित होते जानेकी स्थिति को भी उसमें छुआ गया है। इस अन्वेषणमें सूक्ष्मता या व्यापकता ज्यादा नहीं है और न उसमें आजके जमानेमें स्त्री-पुरुषके आम सम्बन्धोंकी गहरी अनिवार्य स्थितियों अथवा परिणतियोंकी ही कोई पकड़ मिलती है। पर अपने सीमित दायरेमें वह बहुतही विश्वसनीय और हिन्दी नाटक के लिए एकदम नया है। कुछेक अयथार्थवादी नाटकीय तथा रंगमंचीय युक्तियोंके बावजूद इसके रूपमें नवीनता तो नहीं है पर यथार्थवादी नाटकको अधिक सक्षम और सार्थक स्तरतक यह जरूर ले जाता है। शिल्पमें कुल मिलाकर बहुत कसावट है, और रंगमंचके लिए उपयुक्त तथा दृश्य रूपमें प्रभावी आचरणों, रंग-चर्चाओं तथा बिम्बों का सधा हुआ उपयोग भी है। इसके भाषायी मुहावरेमें 'आषाढ़का एक दिन' की-सी ताजगी और चमक तो नहीं है, पर बनावटी साहित्यिकतासे मुक्त समकालीनताकी असरदार चुस्ती और तीखापन है।

'आधे-अधूरे' ने उचितही राकेशके नाटक लेखनको सर्जनात्मक सार्थकताके साथ-साथ सीधे समकालीन प्रासंगिकतासे जोड़ दिया जो अन्ततः रंगमंच जैसे माध्यमके लिए, और इसी कारण नाटक विधाके ही लिए, बड़ी जरूरी शर्त है। पहले दो नाटक, मूल कथ्य समकालीन होते हुए भी पृष्ठभूमि अतीतपरक होनेके कारण, हिन्दीके नाटक और रंगमंचको पूरी क्षमतासे प्रभावित नहीं कर सके थे। 'आधे-अधूरे' न केवल हिन्दीभाषी दर्शक समुदाय में, बल्कि अनूदित होकर देशके अन्य अनेक क्षेत्रोंमें भी लोकप्रिय हुआ। उससे आधुनिक भारतीय नाटक साहित्य में हिन्दी नाटकको प्रतिष्ठित और महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। हिन्दी नाटककी अपनी यात्रामें एक बड़ी और अबतककी सबसे आगेकी मंजिल तो वह है ही।

यह हिन्दी नाटकका दुर्भाग्य है कि राकेशकी असमय ही मृत्यु हो गयी और वे अपने चौथे नाटकको भी अन्तिम रूप नहीं दे पाये। पर पिछले दिनों कथ्य और विशेषकर शिल्प और भाषाके स्तरपर वे जिस प्रकारकी तलाशमें लगे थे, उससे हिन्दी नाटकके औरभी आगे बढ़नेमें जरूर मदद मिलती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'अन्धायुग' को छोड़ दें तो राकेशके तीन नाटक आधुनिक हिन्दी नाटकके सबसे अग्रसर और समक्ष रूपको प्रस्तुत करते हैं। १६५८

में 'आषाढ़का एक दिन' और १९६९ में 'आधे-अधूरे' के प्रकाशनके बीच दस-ग्यारह वर्षकी अवधिमें, और शायद इन नाटकोंके कारण ही, हिन्दी नाटक जैसे वयस्क हो गया। एक ओर वह इस योग्य हो सका कि समकालीन साहित्यिक मुख्यधाराका एक अंग माना जा सके और दूसरी ओर वह अटूट और प्रभावी रूपसे रंगमंचसे जुड़ गया।

जाहिर है, इसी बीच कई अन्य नाटककार भी अपने-अपने ढंगसे हिन्दी नाटककी अपनी अस्मिताकी तलाशमें हाथ बँटा रहे थे। इनमें लक्ष्मीनारायणलाल इस दौरके सबसे उपजाऊ नाटककार हैं। १९५५ में 'अन्धा कुआँ' से लगाकर १९७२ तक उनके भले-बुरे बारह-तेरह नाटक प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'मादा कैक्टस', 'दर्पन', 'रातरानी', 'कलंकी', 'सूर्यमुख', 'मि० अभिमन्यु' और 'करफ्यू' का नाम लिया जा सकता है। उनके हर नाटकमें मूल नाटकीय विचार बड़ा दिलचस्प और सम्भावनापूर्ण होता है और कई बार उनके चरित्रोंकी परिकल्पनाओंमें भी नाटकीयता और उपज दीख पड़ती है। पर दुर्भाग्यवश उन विचारों और चरित्रोंको वे किसी गहरे अथवा सार्थक जीवन अनुभव के रूपमें नहीं रख पाते। उनके चरित्रों मेंकोई आन्तरिक अथवा बाहरी संगति अक्सर नहीं होती जिससे वे समग्र जीवित व्यक्तित्व नहीं, अलग-अलग रंग-बिरंगे काँचके टुकड़ों से बनाये गये सजावटीपर निर्जीव खिलौने जैसे लगते हैं। स्थितियाँभी मनमानी और बड़ी अराजकतापूर्ण होनेके कारण उनके नाटकोंका कार्य-व्यापार काल्पनिक और इच्छित लगता है, उनमें विश्वसनीयता तथा नाटकीय अनिवार्यता पैदा नहीं होती।

मगर सबसे अराजकतापूर्ण है उनकी संवाद योजना और भाषा। वह एकके बाद एक वाक्य बिना उसके नाटकीय प्रभावको सोचे-विचारे, यातो केवल शाब्दिक अनुषंगोंके कारण, अथवा चमत्कारिकताके लिए, अथवा दूर की कौड़ी लानेकी कल्पनामें, रखते चले जाते हैं। नतीजा यह है कि कोई भी प्रभाव टिकता ही नहीं, पैदा होनेके पहले ही ढह जाता है। उनकी भाषामें कभी-कभी चमक और उक्तिकी नाटकीयता अवश्य दिखायी पड़ती है। पर वह बहुतही असम है। उसमें हिन्दी मुहावरेकी पकड़ बड़ी कमजोर है इसलिए वह कोई गहरी व्यञ्जना तो नहीं ही करती, ठीक शाब्दिक अर्थको भी अक्सर अस्पष्ट कर देती है। उनके नये नाटकों, विशेषकर 'सूर्यमुख' तथा अप्रकाशित 'अब्दुल्ला दीवाना' में, भाषा बेहद ग़लत-सलत, भ्रष्ट और निकम्मीभी हो गयी है।

यह एक विडम्बनाही है कि लक्ष्मीनारायणलालने नाटक-लेखन रंगमंचसे लगावके साथही शुरू किया और वे रंगकार्यके अनेक पक्षोंसे सम्बद्ध रहे हैं और हैं। इसीलिए उनके अधिकांश नाटकोंका प्रदर्शन भी हुआ है। पर पूरी सफलता उनमेंसे किसीको भी कभी नहीं मिली। उनके नाटकका शायद सबसे प्रभावशाली प्रदर्शन इब्राहिम अल्काजीके निर्देशनमें राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा 'सूर्य-मुख' का है। पर उसकी प्रभावशीलता दृश्यसज्जा और प्रदर्शन-योजनाकी तड़क-भड़कके कारण अधिक थी, नाटक तो उसमें और भी गौण पड़ गया था। इस दृष्टिसे 'करफ्यू' ही शायद अबतक सबसे सफल कहा जा सकता है। पर कुल मिलाकर उनके नाटक रचना अथवा प्रदर्शन, किसीभी स्तर पर किसी उल्लेखनीय उपलब्धिको सूचित नहीं करते।

इनकी तुलनामें मुद्राराक्षस और सुरेन्द्र वर्मा सर्जनात्मक विवेक और क्षमताकी दृष्टिसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने कम लिखा है पर जोभी है उसमें दृष्टिकी बारीकी तथा तराश और रूपबन्धका कसाव तथा निभाव बेहतर दर्जेका है। मुद्राराक्षसके चार नाटक प्रकाशित या प्रदर्शित हुए हैं: 'मरजीवा', 'योर्स फेथफुली', 'तिलचट्टा' और 'तेन्दुआ'। इनमें 'मरजीवा' में आजके सामाजिक-राजनीतिक जीवनमें ढोंग, बेईमानी और हर तरहकी मिलावटको और 'योर्स फेथफुली' में सरकारी दफ्तरोंके मशीनी और अमानवीय कायदे-कानूनों तथा भ्रष्टाचारको बड़ी बेरहमी और तीखेपनसे उधेड़ा गया है। 'तिलचट्टा' और 'तेंदुआ' में किसी हदतक स्त्री-पुरुषके निजी रिश्तों, खासकर काम-सम्बन्धोंको परिभाषित करनेकी कोशिश है।

मुद्राराक्षसकी दृष्टिमें लाग-लपेट या भावुकता नहीं है। बल्कि वह इस हदतक ठण्डी है कि इकहरी हो जाती है, और स्थितियों अथवा चरित्रोंके निजी भीतरी अन्तर्विरोष, और उनकी मानवीय ऊष्मा गायब होने लगती है। इसका एक नतीजा यहभी है कि उनके नाटक-गठनमें भी कुछ बनावटी या बेजान-से लग उठते हैं। मगर संवेदनाके नयेपन, गठनके संयम और भाषाके तीखेपनके कारण वे निस्सन्देह उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण हैं।

सुरेन्द्र वर्माकी संवेदनामें ज्यादा फैलाव है। उनके दो प्रकाशित ('सेतुबन्ध' और 'नायक खलनायक विदूषक') तथा एक अप्रकाशित ('सुबहकी पहली किरणतक') नाटककी पृष्ठभूमि अतीतपर आधारित है, जिसमें रखकर समकालीन वैयक्तिक उलझावोंको समझनेकी कोशिश है।

प्रकाशित 'द्रौपदी' और अप्रकाशित 'एडिथ डोल' समकालीन जीवनकी परिस्थितियोंके दबाव से व्यक्तिके कई टुकड़ोंमें बँटकर एक साथ कई जिन्दगियाँ जीने या कुण्ठित होनेकी स्थितियोंको पेश करते हैं। इनमेंसे 'द्रौपदी' ने बहुत ध्यान आकर्षित किया और वह हिन्दीके अलावा मराठी और कन्नड़में भी अनूदित होकर खेला गया। उसमें स्थितियोंको बेझिझक खुलेपनसे और अक्सर तीखी नाटकीय व्यंजनाके साथ रखा गया है। कुछ रंगमंचीय युक्तियोंका भी दिलचस्प उपयोग है। पर उसका दूसरा अंक वर्णनात्मक अधिक हो गया है। साथही पाँच पतियोंके साथ जीवन बितानेवाली द्रौपदीका केन्द्रीय बिम्बभी बहुत ठीक तरहसे सँयोजित नहीं है। इसलिए सम्भावनाओंका पूरा प्रतिफलन नहीं हो पाता। मगर सुरेन्द्र वर्माके पास नाटकीय और रंगमंचीय बोध तथा पैनी सक्षम भाषा मौजूद है, और यदि उनमें जीवनके अनुभव और उसको समझनेकी दृष्टिमें कोई रुकावट या उलझन नहीं पैदा हुई तो उनसे और अधिक उत्तेजक नाटकोंकी उम्मीद की जा सकती है।

यहाँ इस बातपर कुछ जोर देना जरूरी है कि इन ज्यादातर नाटकोंमें स्त्री-पुरुषमें काम-सम्बन्धोंपर किसी-न-किसी रूपमें बहुत बल है। सर्जनात्मक लेखनकी अन्य विधाओंकी भाँति नाटकोंमें भी काम-जीवनका परोक्ष या सीधे-खुले प्रस्तुतीकरण बढ़ता जा रहा है। रमेश बक्षीका 'देवयानीका कहना है' विवाह संस्थापर ही प्रश्नचिह्न लगाकर केवल कामेच्छाकी पूर्तिके लिए स्त्री-पुरुषके एक साथ रहनेकी स्थिति तथा उसकी परिणति पेश करता है। उसमें एक ऐसाभी दृश्य है जो मंच पर सम्भोग का संकेत करता है। इस नाटकमें संवेदना और भाषाकी उग्रता तो है पर स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी भी कोई विश्वसनीय या अर्थवान पकड़ नहीं है। स्थितियाँ इतनी बनावटी और काल्पनिक हैं कि वे कुछभी सिद्ध या असिद्ध नहीं करतीं। बहरहाल, आजके युवा मनकी एक गाँठ को इतने बेझिझक ढंगसे पेश कर सकनेके कारण और बड़े संवेदनशील अभिनयके कारण नाटकको मंचपर बहुत लोकप्रियता मिली। रमेश बक्षीके दूसरे और अप्रकाशित नाटक 'तीसरा हाथी' में भी संवेदनाका कोई नया विस्तार नहीं है।

कहानी लेखिका मृदुला गर्ग का नाटक 'एक और अजनबी' स्त्री-पुरुष-सम्बन्धोंको स्त्रीकी निगाहसे पेश करता है। उसमें दृष्टि अधिक संवेदनशील और नाटकीय संयोजन में स्थितियोंका समक्षीकरण दिलचस्प है, यद्यपि अन्तका उत्कर्ष-बिन्दु पूरी तीव्रता और अनिवार्यतासे नहीं उभर पाता। पर मृदुला गर्गकी भाषामें नाटकीयता और आत्मीय घरेलूपनका बड़ा सम्भावनापूर्ण मिश्रण है। असम्भव नहीं कि आगे वे और अधिक कारगर साबित हों।

यह कहना पूरी तरह ठीक न होगा कि सभी नाटककार केवल स्त्री-पुरुषके काम-सम्बन्धोंकी जाँच-पड़तालमें ही उलझे रहे हैं। मुद्राराक्षसके दो नाटकोंका जिक्र ऊपर किया गया। कई एक अन्य नाटककारोंने भी इस दौरके राजनीतिक-सामाजिक जीवनकी विसंगतियों और कुण्ठाओं की तसवीरें बड़े तीखेपनके साथ पेश करनेकी कोशिश की है। ललित सहगलका 'हत्या एक आकारकी' गान्धीजीके हत्यारोंकी मानसिक स्थितियाँ दिखानेके सिलसिलेमें गान्धी जी के विचारोंकी मानवीयता और रूपान्तरकारी शक्तिको उजागर करता है। नाटक बहुत इतिवृत्तात्मक और तर्क-वितर्कसे भरा है और उसमें स्थितियों तथा चरित्रोंके मानवीय पक्ष बहुत गहराईसे नहीं उभर सके हैं। पर हत्यारोंमें एक शंकित युवक है जो गान्धीजीका पक्ष लेकर क्रमशः उनके विचारों और व्यक्तित्वसे एकाकार होता जाता है। इसे जिस तरहसे ललित सहगलने निभाया है, उसमें सच्ची नाटकीय संवेदना जाहिर होती है।

ज्ञानदेव अग्निहोत्रीका 'शुतुरमुर्ग' नेहरू युगकी राजनीतिक स्थितियों पर तीखा और सटीक व्यंग्य करता है। इसमें शुतुरमुर्गको दिलचस्प नाटकीय तथा रंगमंचीय बिम्ब के रूपमें इस्तेमाल किया गया है जो एक पूरे दौरमें दृष्टि की तथा आचरणकी अयथार्थता और विडम्बनाको मूर्त कर देता है। इसमें यदि नाटकीय स्थितियोंके सँयोजनमें अधिक सूक्ष्मता, संवेदनशीलता और संयम होता, तथा भाषामें अधिक सहजता, तो यह बहुत ही सशक्त नाटक बन जाता। यह नाटक इस बातका प्रमाण है कि सिर्फ रंगीय कल्पनाशीलता श्रेष्ठ नाटकके लिए काफी नहीं, अन्ततः जीवनके गहरे बोध और उसे रूप देनेके लिए सूक्ष्म भाषा एकदम अनिवार्य है। फिरभी दृश्यपटलकी भिन्नता और व्यापकता तथा रंगमंचीय सूझ-बूझके समावेशके कारण 'शुतुरमुर्ग' इस दौरका उल्लेखनीय नाटक है।

इसी प्रकार बृजमोहन शाहका अप्रकाशित पर मंचपर अनेक बार प्रस्तुत और प्रभावी नाटक 'त्रिशंकु' आजके भ्रष्ट समाजमें युवा वर्गकी निराशा, बेचैनी और उग्रताको बड़े तीखे ढंगसे पेश करता है। उसकी गठनमें कुछ

अराजकता है पर उसके रूपकी उन्मुक्तता और संवेदनाकी तात्कालिकता बड़ा असर डालती है।

इस बीच अमृतरायने भी दो नाटक लिखे हैं। एक प्रकाशित—'चिन्दियोंकी एक झालर' जो एक पुराने क्रान्तिकारीके आदर्शवाद, मोहभंग और नयी पीढ़ीके सुविधावादको पेश करता है। दूसरा अप्रकाशित, पर प्रदर्शित—'हम लोग उर्फ यहीं कहीं होगा' जो आजके जीवनमें चारों तरफ छाये हर तरहके अँधेरे और उसके बीच सिर टकराकर रोशनी तलाश करनेवाले लोगोंकी दास्तान है। इन नाटकोंके कथ्यमें जीवनके अनुभवकी सचाई और प्रासंगिकता तो है, पर एक ओर तो उसमें किसी हदतक सतहीपन और सरलीकरण है, दूसरे उसे सँजोनेवाली दृष्टि वर्णनात्मक अधिक है नाटकीय कम। इसलिए स्थितियाँ गतिहीन हैं और रंगमंचीय दृष्टिसे विश्वसनीय बिम्ब नहीं पैदा करतीं और न ऐसी विडम्बना-पूर्ण परिणतिकी ओर बढ़ती हैं जिससे नाटक पैदा हो। दूसरे, इनकी भाषामें मुहावरासाजी तो बहुत है, पर नाट-कीय संक्षेप, चुस्ती और बहुस्तरीय व्यञ्जना कम है। इसलिए वह मंचपर अक्सर बनावटी और बेअसर हो जाती है, कमसे कम कोई गहरी रंग-अनुभूति नहीं दे पाती।

पिछले दो-ढाई दशकमें हिन्दी नाटककी यात्राकी महत्त्वपूर्ण मंजिलोंका इतिवृत्त यही है। जाहिर है इसमें वैसे सब नाटक लेखनकी चर्चा छोड़ दी गयी है जो प्रायः हाशियेपर है या पुरानी पाठ्यक्रमीय अथवा बनावटी साहित्यिक परिपाटीकी लकीर पीटते जाना मात्र है। जो नाटक रंगमंचपर सार्थकता न पा सकें या उससे निर्धारित न होता हो, या किसी-न-किसी रूपमें रंगमंचको ही बदल देनेके लिए न लिखा गया हो, उसकी चर्चा बेकार ही है। दूसरी ओर, नाटकोंका पुस्तकाकार प्रकाशन उपन्यास, कहानी, कविता आदिसे भी अधिक दुर्लभ और कठिन है। इसलिए बहुत बार मंचपर उनका प्रदर्शन ही सबसे बड़ा प्रकाशन है और वह उन्हें विचारके योग्य बना देता है। यहाँ कई अप्रकाशित नाटकोंकी चर्चा करना इसी बातको ध्यानमें रखकर जरूरी समझा गया है।

इसके अलावा इस वृत्तान्तको समाप्त करनेसे पहले दो-तीन तथ्यकी बातें और कही जा सकती हैं। एक, हिन्दीमें सुखान्तक नाटकोंकी बहुत कमी है। दुनियाभरमें बहुत-सा श्रेष्ठतम समकालीन नाटक वह है जो देखनेमें हास्यो-त्पादक होकरभी जीवनकी बड़ी गहरी करुणा और यातनाकी व्यञ्जित करता है। भारतीय रंगमंचका ही बहुचर्चित और पुरस्कृत मराठी नाटक विजय तेंदुलकर का 'खामोश, अदालत जारी है', ऐसा ही है। यों भी सुखान्तक समकालीन ढोंग, पाखण्ड, भ्रष्टाचार आदि अनेक स्थितियोंकी बड़ी असरदार आलोचना पेश कर सकते हैं। पर हिन्दीमें, हास्य-व्यंग्यकी आम हालतकी तरह, सुखान्तक भी बड़े हलके और सतही हैं। दूसरोंके तथा अपने ऊपर हँस सकनेकी क्षमताकी यह कमी किसी हदतक समकालीन यथार्थको उसकी सम्पूर्ण हास्यास्पदता और विसंगतिमें पहचान सकनेकी कमीभी सूचित करती है।

दूसरे, इस दौरमें हिन्दीभाषी केन्द्रोंमें समर्थ और कल्पनाशील निर्देशकों और मण्डलियोंके उदय और उनके दबावके कारण भारतीय भाषाओंके अनेक श्रेष्ठ नाटकोंका अनुवाद हिन्दीमें हुआ है। एक तरहसे ये नाटकभी हिन्दी नाटक साहित्यका अंग ही बन गये हैं। साथही इन्होंने, विशेषकर इनके प्रदर्शनोंने, हिन्दी नाटक लेखनको बहुत प्रभावित किया है। गिरीश कारनाडके 'तुगलक' और 'हयवदन', विजय तेंदुलकरके 'खामोश, अदालत जारी है' और 'पंछी ऐसे आते हैं', बादल सरकारके 'एवं इन्द्रजित', 'बाकी इतिहास' जैसे नाटकोंने अन्य भारतीय भाषाओंके साथ हिन्दी नाटक लेखनके लिए भी नये मानक तैयार करनेका बड़ा जरूरी काम पूरा किया है। हिन्दी नाटकका मौजूदा परिदृश्य इन नाटकोंकी उपस्थिति और प्रभावके बिना न तो पूरा होता है और न ठीकसे समझा जा सकता है।

इस बीच एक और महत्त्वपूर्ण स्थिति पैदा हुई है जिसका हिन्दी नाटक लेखनपर असर पड़ना अनिवार्य है। वह है देश के पारस्परिक नाट्यरूपोंसे बढ़ता हुआ परिचय और उसके फलस्वरूप नाट्यलेखन और रंगमच सम्बन्धी विचारोंमें व्यापक परिवर्तनोंकी सम्भावना। यथार्थवादकी जकड़ ढीली पड़नेके साथ नाटकके रूपमें अधिक खुलापन, कल्पनाशीलता और पारम्परिक युक्तियों और रूढ़ियोंका प्रयोग बढ़ेगा। संगीत और नृत्य तथा अन्य कल्पनाप्रधान उपाय नाटक लेखकको सुलभ हो जायेंगे, जिससे असम्भव नहीं कि नाटककार अपने विशाल दर्शक समुदायसे अपना सीधा-रिश्ता कायम करनेमें काम-याब हो जाये और नाटकको नयी शक्ति मिले।

वह जोभी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वाधीनताके

[शेष पृष्ठ ७५ पर]

ङ. स्वातन्त्र्योत्तर रेडियो नाटक

— चिरंजीत

चीफ प्रोड्यूसर (नाटक), आकाशवाणी,

नयी दिल्ली-१

सन् १९४७ के बादके भारतीय रेडियो-नाटक-साहित्य का विवेचन करनेसे पहले यह आवश्यक है कि उसके साहित्यिक एवं शिल्पिक स्वरूप और उसके प्रारम्भिक विकास-क्रमपर दृष्टिपात कर लिया जाये।

रंगमंचीय नाटक और रेडियो-नाटकमें मुख्य भेद दृश्य और श्रव्य माध्यमोंका है। श्रव्य होते हुए भी रेडियो-नाटकका मूलाधार, रंगमंचीय नाटकके समान ही, लिखित पाण्डु-लिपि ही होता है, इसीलिए विश्वभरमें रेडियो-नाटक को साहित्यकी एक स्वतन्त्र विधा मान लिया गया है। सन् १९७३ में विश्वभरमें रेडियो-प्रसारणके आविष्कारकी पचासवीं वर्षगाँठ मनायी जा रही है। इतनी अल्पावधिमें रेडियो-नाटकने एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधाके रूपमें जो विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त की है, उसे चमत्कार ही कहना चाहिये। भारतके सन्दर्भमें यह चमत्कार औरभी उल्लेख-नीय है, क्योंकि यहाँ सर्वथा मौलिक रेडियो-नाटककी आयु ३२-३३ वर्षसे अधिक नहीं।

भारतमें आल इण्डिया रेडियोकी विधिवत स्थापना सन् १९३६ में हो गयी थी, परन्तु मौलिक रेडियो-धर्मी नाटकोंके प्रसारणका प्रारम्भ सन् १९३९-४० से ही मानना चाहिये। उससे पहले शुरू-शुरूमें आल इण्डिया रेडियोके विभिन्न केन्द्रोंसे रेडियो-नाटकके नामपर अधिकतर पुराने साहित्यिक अथवा व्यावसायिक रंगमंचके लम्बे नाटकोंके अंश प्रसारित होते थे। बादमें भारतीय विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जानेवाले अल्पावधिके अंग्रेजी एकांकी नाटकों और ब्रिटेनके प्रसारण-संस्थान बी० बी० सी० से प्राप्त रेडियो-नाटकों एवं छोटे-छोटे प्रहसनोंके भाषानुवाद अथवा छायानुवाद प्रसारित होने लगे। बी० बी० सी० के नाटकोंसे विभिन्न भारतीय भाषाओंके युवा-लेखकोंको रेडियो-नाटक के ध्वनिगत शिल्पका थोड़ा-बहुत ज्ञान हुआ। कुछ युवा-निर्देशक भी आगे आये। शुरूमें उन्होंने व्यवसायी रंगमंच पर प्रयुक्त होने वाले स्थूल किस्मके ध्वनि-प्रभावों, जैसे बादलकी गरज, बिजलीकी कड़क, हवाकी साँय-साँय, घोड़े की टापोंकी आवाज़ आदिसे काम लिया। बादमें जब बी० बी० सी० द्वारा तैयार किये गये विविध ध्वनि-प्रभावोंके रिकार्ड उपलब्ध हुए, तो रेडियो-नाटकोंकी प्रस्तुतिमें रेडियो धर्मी कलात्मकता आने लगी। उस कलात्मकताके आग्रहने मौलिक रेडियो-धर्मी नाटकोंके लेखनको प्रोत्साहित किया।

भारतीय रेडियो-नाटकके विकासमें बी० बी० सी० के योगदानका जो उल्लेख हुआ है, वह असंगत नहीं। १९३६ में जब आल इण्डिया रेडियोकी स्थापना हुई, तब भारत पराधीन था और आल इण्डिया रेडियो ब्रिटिश सरकारका एक ऐसा विभाग था, जिसका संगठन विदेशी शासकोंने मुख्यतः अपने प्रचारके लिए किया था। तब भारतकी अधिकांश जनता एकदम निरक्षर थी। उसतक अपनी बात पहुँचानेके लिए अंग्रेजोंने आल इण्डिया रेडियोको अपना सर्वाधिक शक्तिशाली प्रचार-माध्यम बनाया, साथही बनाया इसे अपने लन्दन-स्थित रेडियो-संस्थान बी० बी० सी० का पिछलग्गू। पराधीनताकी स्थितिमें जहाँ बी० बी० सी० के समाचार आदि अनेक प्रचारात्मक-सूचनात्मक कार्यक्रम सीधे आल इण्डिया रेडियोसे रिले होते थे, वहाँ नाटक आदि मनोरंजनप्रधान कार्यक्रमोंके आलेख विभिन्न भारतीय भाषाओंमें अनूदित होकर आल इण्डिया रेडियोसे प्रसारित होते थे और भारतीय रेडियो-लेखकोंके लिए मॉडल-कृतियोंका भी काम करते थे।

सन् १९३९ से शुरू हुए द्वितीय विश्वयुद्धके छह वर्षोंमें भारतीय रेडियो-नाटकका तीव्र गतिसे विकास हुआ; परन्तु यह विकास अधिकतर शिल्पके क्षेत्रमें था, कथ्यके क्षेत्रमें नहीं। ब्रिटिश शासनकालमें आल इण्डिया रेडियोसे राष्ट्रीय चेतना अथवा समसामयिक यथार्थ सम्बन्धी नाटकोंके प्रसारणका सवाल ही पैदा नहीं होता था,। हाँ, रोमाण्टिक एवं मनोवैज्ञानिक रेडियो-नाटकोंकी परम्पराका अवश्य सूत्रपात हुआ। उस परम्पराका उस कालके भारतीय

भाषाओंके नाटक-साहित्यपर गहरा प्रभाव पड़ा और अल्पावधिके एकांकी नाटकोंकी विधाका विकास हुआ ।

प्रायः यह माना जाता है कि हिन्दी आदि भारतीय भाषाओंकी एकांकी-नाट्य-विधा पश्चिमकी देन है। इस कथनमें आंशिक सच्चाई है। उन दिनों हर रेडियो स्टेशनको आध-पौन घण्टेके मौलिक नाटकोंकी जरूरत थी। रेडियोकी उस जरूरतके कारण लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओंके कई युवा-नाटककारोंने ऐसे अल्पावधिके नाटक लिखने शुरू किये, जो इधर रेडियोपर प्रसारित होते थे और उधर रंग-निर्देशोंके साथ पत्र-पत्रिकाओंमें एकांकीके नामसे छप जाते थे। याद रहे, उस कालके एकांकियोंमें एकसे अधिक दृश्य रखनेका रिवाज था। उन एकांकियोंको रेडियो-नाट्य-शिल्पकी दृष्टिसे आज सही किस्मके रडियो-नाटक मानना तो मुश्किल है, लेकिन एक बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि जहाँ एक ओर रेडियोको अल्पावधिके मौलिक भारतीय नाटक मिलने लगे, वहाँ दूसरी ओर रेडियोके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभावसे लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओंका एकांकी-नाटक-साहित्य विकसित और समृद्ध हुआ। एक बात और। हिन्दी आदि जिन भारतीय भाषाओंका अपना व्यवसायी रंगमंच नहीं था, रेडियोने उन्हें अदृश्य रंगमंच प्रदान किया, नाट्य-लेखनको अधिकाधिक प्रोत्साहित किया, और इस तरह उनके नाट्य-साहित्यको पत्र-पत्रिकाओं एवं पाठ्य-पुस्तकोंके सीमित क्षेत्रसे निकालकर जनतातक पहुँचाया।

आल इण्डिया रेडियोने विभिन्न भारतीय भाषाओंके एकांकी-साहित्यके विकासमें जो योगदान दिया, उससे भारतीय नाट्य-साहित्यके कतिपय इतिहासोंमें एक ऐसे गलत तथ्यकी स्थापना हुई, जो आजभी कुछ नाटक-सम्बन्धी ग्रन्थोंमें दृष्टिगोचर होता है। यह मान लिया गया कि एकांकी और रेडियो-नाटक, दोनों एकही चीज हैं। इसी मान्यताके कारण रेडियो-नाटकको रेडियो-एकांकी अथवा ध्वनि-एकांकीकी संज्ञा दी गयी। विद्वानोंके इस मतके कारण सामान्य पाठकों एवं विद्यार्थियोंमें यह भ्रान्ति फैल गयी—जो कहीं-कहीं आजभी विद्यमान है – कि रेडियोसे प्रसारित होनेवाला प्रत्येक नाटक एकांकी होता है। यदि रेडियो-नाटकके शिल्पिक स्वरूपको ध्यानमें रखा जाये, तो उक्त भ्रान्तिके निराकरणके लिए यह अधिकृत रूपसे कहा जा सकता है कि एकांकी और रेडियो-नाटक शिल्प एवं माध्यमकी दृष्टिसे साहित्यकी दो अलग-अलग स्वतन्त्र विधाएँ हैं। मोटे तौर पर यह समझ लेना चाहिये कि नतो स्थान और कालकी अन्वितियोंसे मुक्त सही किस्मका रेडियो-नाटक एक दृश्यबन्ध (सेट) वाले रंगमंचपर अभिनीत हो सकता है और नही सही किस्मका दृश्य-तत्त्व-प्रधान रंगमंचीय एकांकी ज्योंका त्यों रेडियोपर प्रस्तुत हो सकता है। इसके साथही यहभी माना जा सकता है कि रेडियो-नाटक और रंगमंचीय एकांकीमें तन्त्र एवं संरचनागत कुछ समानताएँ अवश्य हैं। पहली समानता तो यह है कि दोनों की अभिनयावधि पूर्णाकार रंगमंचीय नाटककी तुलनामें बहुत कम होती है. दूसरी समानता यह है कि दोनोंमें ही नतो अनावश्यक विस्तार होता है, न अधिक पात्र संख्या होती है और नही चरमोत्कर्षके पश्चात् लम्बा उपसंहार होता है। और सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनोंही आजके उस मानवकी मनोरंजनकी इच्छा-पूर्ति करते हैं, जो जीवनकी तेज़ गति और बढ़ती हुई व्यस्तताके कारण लम्बे नाटकोंके लिए समय नहीं निकाल पाता।

आज भारतीय भाषाओंमें बहुत-से ऐसे छोटे-छोटे एकांकी मिलते हैं, जिनमें केवल हास्य-रसकी प्रधानता होती है। उन छोटे प्रहसनोंका विषय मुख्यतः समसामयिक सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन होता है। इन आधुनिक प्रहसनोंके उद्भव एवं विकासका श्रेय पूर्णतः आल इण्डिया रेडियोको है। प्राचीन नाटकोंमें ऐसे प्रहसनोंकी एक आनुषंगिक परम्परा थी, जो बादमें गम्भीर कथानकोंके बोझके नीचे दबकर मिट गयी थी। उस परम्पराको रेडियोने ही सन् १९३६ के बादसे स्वतन्त्र प्रहसनोंके रूपमें पुनरुज्जीवित किया। उत्तर भारतके रेडियो स्टेशनोंपर छोटे प्रहसनोंको प्रारम्भसे ही 'झलकी' की संज्ञा दी गयी, क्योंकि इनमें सम्पूर्ण घटनाकी बजाय किसी एक हास्यजनक स्थितिकी १०-१५ मिनटकी एक झलकही प्रस्तुत की जाती है। कहना न होगा, इस विधाके छोटे रेडियो-नाटकोंसे प्रत्येक भारतीय-भाषाके हास्य-व्यंग्य-साहित्यको गति मिली है।

विशुद्ध भारतीय रेडियो-नाटकका विकास वस्तुतः सन् १९४७ अर्थात् स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादसे ही मानना चाहिये। राजनीतिक स्वतन्त्रताके युगके साथही सांस्कृतिक पुनर्जागरणकी जो बेला आयी, उसमें रेडियो-नाटकको बी० बी० सी० के अन्धानुकरणसे मुक्त होकर राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक क्रान्ति और जन-जीवनके सुख-दुखकी अभिव्यक्तिका सशक्त माध्यम बननेका सुअवसर मिला। मतलब यह

कि रेडियो नाटकको भारतीय भाषाका सच्चा स्वर मिला और मिली नयी आत्मा, नयी सार्थकता और नयी सामाजिक दृष्टि । यह सर्वविदित है कि पराधीनता कालमें भारतीय भाषाओंमें ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकोंका ही बाहुल्य था । सन् १९४७ के बाद रेडियोके माध्यमसे ही नाटक आधुनिकता, समसामयिकता और सामाजिक यथार्थबोधका वाहन बना ।

स्वाधीनताके पहले दशकमें विषय-वस्तुके साथ-साथ शिल्पकेभी कई नये प्रयोग हुए । रेडियो-नाटकका एक दूसरा ऐसा स्वरूप विकसित हुआ जो मूलतः सूचनात्मक और तथ्यात्मक था । वही आगे चलकर अलग विधाके रूपमें 'रूपक' कहलाया । इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओंमें छपनेवाले धारावाहिक उपन्यासोंकी तरह धारावाहिक नाटकोंकी परम्परा शुरू हुई, बहुतसे छोटे प्रहसनोंको जोड़कर रंगारंग कार्यक्रमका एक नया रूप सामने आया और उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रेडियो-नाट्य-रूपान्तरोंकी एक बहुतही उपयोगी और सशक्त परम्पराका नये दृष्टिकोणसे सूत्रपात हुआ ।

भारतकी समस्त भाषाओंमें प्राचीन-अर्वाचीन कथा एवं नाटक-साहित्यका ऐसा अमूल्य और गौरवपूर्ण भण्डार विद्यमान था, जो पुस्तकालयों और क्लास-रूमोंकीही शोभा बढ़ा रहा था । देशकी बहुसंख्यक निरक्षर तथा कम पढ़ी-लिखी जनताको उसकी कोई जानकारी नहीं थी । आकाशवाणीके देशव्यापी केन्द्रोंने अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओंकी उन साहित्यिक कृतियोंको रेडियो-नाटकोंका रूप देकर प्रसारित करना शुरू किया । उन रेडियो नाट्य-रूपान्तरोंसे भारतीय भाषाओंके नाटक-साहित्यकी श्रीवृद्धि तो हुई ही, साथही वे गौरव-ग्रन्थ रेडियोके श्रव्य-माध्यमसे शहरोंके अलावा सुदूर गाँवों और बस्तियोंमें पहुँचकर जन-साधारणकी नवजाग्रत सांस्कृतिक चेतनाका सजीव एवं स्थायी अंग बने ।

स्वाधीनताके पहले दशकमें रेडियो-नाटककी ये प्रवृत्तियाँ एवं उपलब्धियाँ किसी एक भारतीय भाषातकही सीमित नहीं थीं । जैसाकि सर्वविदित है, सन् १९४७ के बाद से भारतकी तमाम प्रमुख भाषाओं और प्रादेशिक बोलियों में रेडियो-नाटकोंका लेखन और प्रसारण बड़ी तीव्र गतिसे बढ़ा । अतः उस काल-खण्डके किसी एक समर्थ रेडियो-नाटक-लेखकका नामोल्लेख ठीक नहीं होगा, क्योंकि उस काल-खण्डकी नयी राष्ट्रीय चेतनाकी लहरमें बहकर प्रत्येक भारतीय भाषाके नये-पुराने लेखकोंने रेडियो-नाटक की विधाको अपनाया, अपनी प्रतिभाकी तूलिकासे उसका रंग-रूप सँवारा और अपने चिन्तनकी सुधासे उसे समृद्ध एवं सशक्त बनाया । हाँ, अलग-अलग कृतियों और कृतिकारोंका सही मूल्यांकन सन् १९५६ से किया जा सकता है, जब भारतीय भाषाओंके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि नाटकोंके अखिल भारतीय प्रसारणके लिए आकाशवाणीने नाटकोंका अखिल भारतीय कार्यक्रम शुरू किया । उस अखिल भारतीय कार्यक्रमसे भारतीय रेडियो-नाटकके इतिहासमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण युगका सूत्रपात हुआ ।

इस नये मासिक कार्यक्रमके अन्तर्गत किसी एक भारतीय भाषाका सर्वश्रेष्ठ नाटक अन्य तमाम भारतीय भाषाओंमें अनूदित होकर एकही रातको एकही समय आकाशवाणीके सभी केन्द्रोंसे प्रसारित होने लगा और इस तरह पूरे देशके श्रोताओंतक पहुँचकर 'अनेकतामें एकता' का स्वप्न पूरा करने लगा । इस कार्यक्रम द्वारा जहाँ भारतीय भाषाओंके श्रेष्ठ नाटक-साहित्यके आदान-प्रदानके लिए एक सुगम एवं व्यावहारिक योजना बनी, वहाँ सांस्कृतिक समन्वयके माध्यमके रूपमें रेडियो-नाटकको राष्ट्रीय महत्त्वभी मिला ।

नाटकोंके अखिल भारतीय कार्यक्रमके प्रारम्भिक वर्षों में मौलिक रेडियो नाटकोंके साथ-साथ भारतीय भाषाओंके सुविख्यात प्राचीन तथा अर्वाचीन रंगमंचीय नाटकोंके रेडियो-रूपान्तर प्रसारित किये गये । बादमें इस क्रममें सुविख्यात उपन्यासों एवं कहानियोंके रेडियो-नाट्य-रूपान्तर भी सम्मिलित किये गये । अब पिछले कई वर्षोंसे अधिकतर विभिन्न भारतीय भाषाओंके सर्वश्रेष्ठ मौलिक रेडियो-नाटकही प्रसारित होते हैं ।

जब १९५६ में नाटकोंके इस अखिल भारतीय कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ, तो इसमें रेडियो-नाटकका वह परिपक्व रूप उद्भासित हुआ, जो रेडियो-लेखनके क्षेत्रमें राष्ट्रीय स्वाधीनतासे उत्पन्न सांस्कृतिक चेतना, साधना और निष्ठा का उत्कृष्टतम नमूना था । इस दृष्टिसे अनेक नाटकोंमेंसे निम्नलिखित मौलिक रेडियो-नाटक गत २५ वर्षोंके सर्वश्रेष्ठ रेडियो-नाटक-साहित्यमें उल्लेखनीय हैं —

असमिया : 'कठफुला' — लेखक : सैयद अब्दुल मलिक और 'तलाश' — लेखक : श्री भवेन्द्रनाथ सेकिया ।

उड़िया : 'वात्या' — लेखक : श्री मनोरंजनदास और 'एक गीतकी मौत' — मूल लेखक : श्री कालिन्दीचरण पाणिग्रही, रूपान्तरकार : श्री चिरंजीत ।

उर्दू : 'पैसा और परछाईं'—लेखक : डॉ० मुहम्मद हसन, 'इन्सान'—लेखक : श्री रेवतीसरन शर्मा, 'गर्मकोट'—लेखक : श्री राजेन्द्रसिंह बेदी और 'कांसके फूल'—लेखक : श्री इकबाल मजीद ।

कन्नड़ : 'कली कलमी हृदयकी'—लेखक : श्री एन० के० कुलकर्णी, 'ग्राण्ड सलाम'—लेखक : श्री एस० एन० शिवस्वामी और 'बाबाकी बेटी'—लेखक : डॉ० मास्ती ।

कश्मीरी : 'बुलरकी आँधी' (विजिवाव)—लेखक : श्री सोमनाथ जुत्शी, 'पतझर'—लेखक : डॉ० शंकर रैना और 'इन्सान भी अजीब है'—लेखक : श्री अख्तर मुहीउद्दीन ।

गुजराती : 'जोगीदास'—लेखक : श्री चन्द्रवदन मेहता, 'मंथन'—लेखिका : श्रीमती रमणा बहन गान्धी और 'मधुकर पुष्प विलासम'—लेखक : श्री शिवकुमार जोशी ।

तामिल : 'पुनर्जीवन'—लेखक : श्री टी० एन० विश्वानाथन, 'मुनिपानि'—लेखक : श्री के० पी० रंगाचारी, 'सन्धि'—लेखक : श्री के० एस० श्रीनिवासन और 'कुमुदा'—लेखक : श्री टी० एन० सुखी सुब्रह्मण्यम् ।

तेलुगु : 'रामप्पा'—लेखक : श्री सी० नारायण रेड्डी, 'आत्मवंचना'—लेखक : बुची बाबू और 'सफर'—लेखक : श्री रंगम ।

पंजाबी : 'कब्र और चाँदनीकी किरण'—लेखक : श्री करतारसिंह दुग्गल और 'अतीतकी परछाईयाँ'—लेखक : श्री कपूरसिंह घुम्मन ।

बँगला : 'काल सन्ध्या'—लेखक : श्री बुद्धदेव बोस, 'अमःनुपिक'—लेखक : श्री अनिलकुमार चट्टोपाध्याय और 'चन्द्रलोकमें अग्निकाण्ड'—लेखक : श्री मोहित चट्टोपाध्याय ।

मलयालम : 'कुंजाली मरक्कार'—लेखक : श्री के० पद्मनाभन, 'टैक्सी'—लेखक : श्री के० टी० मुहम्मद और 'मारीच'—लेखक : श्री जी० शंकर कुरुप्प ।

मराठी : 'घर'—लेखिका : श्रीमती वसुन्धरा पटवर्धन, 'सात अवस्थाएँ'—लेखक : श्री मामा बरेरकर और 'समर्पिता'—लेखिका : श्रीमती मृणालिनी जोशी ।

हिन्दी : 'डॉक्टर'—लेखक : श्री विष्णु प्रभाकर, 'थके पाँव'—लेखक : श्री भगवतीचरण वर्मा, 'अवान्तर ग्रह'—लेखक : श्री गिरिजाकुमार माथुर, 'पियानो और सोनेका पिंजरा'—लेखक : श्री भैरवप्रसाद गुप्त, 'बर्फकी मीनार'—लेखक : श्री विनोद रस्तोगी, 'उनका भाई'—लेखक : श्री गोपालदास, 'लाइहरोबा'—लेखक : श्री मुद्राराक्षस, 'ऊँचा पर्वत, ऊँचे लोग'—लेखक : श्री चिरंजीत, 'परदेसी'—लेखक : ख्वाजा बदीउज्जुमां और 'लड़ाई'—लेखक : श्री सर्वेश्वरदयाल सेक्सेना ।

उपर्युक्त रेडियो-नाटकोंमेंसे कई एक रंगमंचीय रूपान्तर अथवा मूल रूपमें प्रकाशित हो चुके हैं । कुछेक नाटक भारत सरकारके प्रकाशन-विभाग द्वारा शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले रेडियो-नाटक-प्रतिनिधि-संग्रहमें सम्मिलित किये गये हैं । हिन्दीमें यह अपनी किस्मका पहला नाट्य-संग्रह होगा, जिसमें समस्त भारतीय भाषाओंके उत्कृष्ट रेडियो-नाटक-साहित्यकी एक झलक मिल सकेगी । इसके अलावा समस्त भारतीय भाषाओंमें अनेक ऐसे गौरव-ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिनका प्रादुर्भाव सन् १९४७ के बाद सर्वप्रथम रेडियो-नाटकके रूपमें ही हुआ था । उदाहरणस्वरूप हिन्दीमें श्री रामधारीसिंह दिनकरका महाकाव्य 'उर्वशी', श्री सुमित्रानन्दन पन्तके काव्यरूपक 'रजत शिखर' और 'शिल्पी', श्री जैनेन्द्रकुमारके उपन्यास 'व्यतीत' और 'मुक्तिबोध', स्व० श्री उदयशंकर भट्टके नाटक 'कालिदास' और 'विक्रमोर्वशी', श्री मोहन राकेशका नाटक 'आषाढ़का एक दिन' और श्री धर्मवीर भारतीका पद्य नाटक 'अन्धायुग' ।

इन पंक्तियोंके लेखकके तो समस्त नाटक एवं कथा साहित्यका प्रादुर्भाव सर्वप्रथम रेडियो नाटकके रूपमें ही हुआ, जिसमें 'ढोलकी पोल' (रेडियो झूठिस्तान) जैसे राजनीतिक व्यंग्य-रूपक और मास्टर सिलबिल सम्बन्धी हास्य-कथाएँभी शामिल हैं । औरभी अनेक लेखकोंके रेडियो-नाटक विविध रूपोंमें प्रकाशित होकर अपनी-अपनी भाषाके स्थायी साहित्यका अंग बन चुके हैं ।

इस विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय रेडियो-नाटकने सन् १९४७ के बादसे विदेशी प्रभाव

[शेष पृष्ठ ८३ पर]

च. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता

—डॉ० शीतला मिश्र,

६, लाजपत भवन, हरणी रोड,
वड़ौदा—६,

स्वतन्त्र भारतके इन पच्चीस वर्षोंमें हिन्दी-कविताने तमाम-तमाम तेवर बदले हैं और उसने तीव्र गतिसे विकास किया है। इस कालकी कविताके सम्बन्धमें विचार करते समय एक क्षणके लिए कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि उसकी सही पहचानका काम आलोचकों और कवियोंके सामूहिक चिन्तनों और रसज्ञ पाठकोंकी प्रतिक्रियाओंके संचित सारके प्रकाशमें ही सम्भव हो सकता है—समर्थसे समर्थ कोई भी अकेला समीक्षक इस युगकी कविताके विशेषज्ञ व्याख्याकारके रूपमें वह प्रतिष्ठा नहीं पा सकता जो आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी या पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्रको कभी मिली थी। समकालीन हिन्दी-कविताका जनतंत्र संसदीय समीक्षाका अँगुलि-निर्देश भले स्वीकार कर ले; वह एकाकी समीक्षकको इस या उस छलावेमें डालकर उससे बच निकलती है।

इन वर्षोंमें ज्ञान-विज्ञानकी दुनियामें विस्फोट-जैसी प्रगति हुई है। फलस्वरूप लोगोंके सोचने-विचारनेके ढंगमें तेजीसे परिवर्तन आया है। तस्वीरका दूसरा पहलू यह है कि चन्द्रग्रहणके अवसरपर दान न देनेपर अनिष्टकी आशंकासे पीड़ित हो उठनेवाले लोग आजभी हैं और ऐसेभी लोग हैं जो अभीभी विश्वास करनेको तैयार नहीं कि आदमी चाँदपर पहुँच गया है। हालत यह है कि कुछ लोग हैं जो बचपनकी आँखोंसे जवानीके रंगको पहचाननेमें परेशान हैं कि वह भोली क्यों नहीं है तो दूसरे प्रकार के अतिवादी जवान आँखोंसे बचपनमें मादक लालित्य खोजते हैं। मानवीय चेतनाकी त्रासदी उन लोगोंके कारण औरभी गहरा उठती है जो दोनों प्रकारके अतिवादोंको एकसाथ जीते हुए प्रबुद्ध या आधुनिक होनेका दावा भी करने लगते हैं। हिन्दी-कविताके सृजन और मूल्यांकनके दोनोंही क्षेत्रोंमें ऐसे लोग सक्रिय हैं। (यह स्थिति वस्तु-स्थिति है। वह अप्रिय हो तो हो। यह स्वाभाविक है। इसके लिए किसीको दोषी नहीं ठहराया जासकता।)

इसके साथही इस स्थितिपर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि कविताके सृजन और मूल्यांकनके दोनोंही क्षेत्र सहज और स्वस्थ परिस्थितियोंवाले नहीं हैं। प्रतिष्ठाके लिए गुटबाजी, उसके लिए शैतानसे समझौता, समझौतेकी गुप्त शर्तोंके अनुरूप बौद्धिक षड्यन्त्र और कला-साधनाके नामपर व्यावसायिक कीमियागिरीकी उपासना आदिने परिस्थितिकी सहजताको ग्रस रखा है। परिणाम? कवि और समीक्षक अपने द्वारा बनाये दायरोंमें कैद हैं। दरबेसे बाहर निकलकर औरोंसे आमने-सामने होने का साहस उनमें नहीं। संयोग यदि उन्हें आमने-सामने करभी देता है तो सह-चिन्तनके बजाय परिणिति वाक्-युद्धकी सामने आती है। इससे उनकी खरी पहचानमें बड़ी देर लगती है और इस देरीका लाभ उठाकर विज्ञापनबाजी उन्हें गढ़ा हुआ व्यक्तित्व पहनाती जाती है। और सामयिक कविताकी पहचान दलदलमें फँसती जाती है। नतीजा यह है कि इस कालकी कविताकी खरी और पूरी पहचानका काम टेढ़ी खीर बनकर रह गया है।

(२)

आलोच्यकालमें हिन्दी-कविताने अनेक 'लेबल' बदले हैं याकि 'लेबल'-प्रेमी कवि-समीक्षकोंने कवितापर कम किन्तु नये-नये लेबलोंपर अधिक श्रम किया है। प्रगतिशील, प्रयोगशील, नयी कविता, भूखी पीढ़ीकी कविता, ताजी कविता, ठोस कविता, पोस्टर कविता, दिगम्बर कविता, सूर्योदयी कविता, अकविता, साठोत्तरी कविता, सतहत्तरोत्तरी कविता, सहज कविता आदि। कविताकी ये हलचलें युगकी त्रासदीको विधायक या विघातक रूपमें प्रकट करती हैं। गुटबाज समीक्षक और कैरियरिस्ट किस्मके कवि इनके बारेमें चाहे जो कहें, किन्तु इस कालकी कविताकी सही पहचान के लिए इन सभीको सहानुभूति पूर्ण तटस्थताके कानोंसे सुनना आवश्यक है। अन्यथा होगा यह कि शान्ता सिन्हाके संकलन 'समानान्तर सुनें' और ऐसी अन्य रचनाओंमें

महज अश्लीलता खोजकर बड़े शरीफाना ढंगसे उन्हें तिरस्कृत कर दिया जायेगा। आवश्यकता इस बात की है कि गहरे उतरकर आजकी कविताकी छानबीन की जाये। पता लगाया जाये कि ये जैसी हैं, वैसी क्यों हैं? उनके अस्तित्वके प्रेरक कारण कौन से हैं? इन कारणोंका उत्स कहाँ है? क्या कारण है कि युवा कवियोंने कभी गिंसवर्गसे प्रेरणा ली, भले थोड़ीही देरके लिए सही? भारतके किसी सिंह, वर्मा या शर्मासे नहीं? इस कारणको केवल फैशन या नवीनतामें सीमित कर देना बड़ाही सतही समाधान है। इन सवालोंके लिए हमारे पास जितना ही बेलाग उत्तर होगा, उतनाही यह विश्वास प्रबल होगा कि हम इस कालकी कविताको समझनेके लिए ईमानदारीसे तैयार हैं।

माना जाता है कि सन् ४० के आसपास छायावादी कविताका पतन हो गया और उसकी प्रतिक्रियामें प्रगतिशील काव्य आया। आगे फिर प्रतिक्रिया हुई तो प्रयोगशील काव्य और इसकी प्रतिक्रियामें नयी कविता आयी। आगेभी कविताकी नवीन प्रवृत्तियाँ प्रतिक्रियामेंसे ही जन्मी हैं। हिन्दी कविताके विकासकी यह व्याख्या बड़ी विलक्षण है—'प्रतिक्रिया'-वाद की यह व्याख्या उस प्रवृत्तिका परिणाम है, जिसके शिकार हिन्दी-समीक्षक बिना पढ़े ही, उलट-पुलटकी टेक्नीकसे सिर्फ देखकर कवियों और उनकी रचनाओंपर स्वयं-सिद्ध-से फतवे दिया करते थे—हैं।

वास्तवमें छायावाद मरा नहीं, वह अभीभी जिन्दा है। हुआ सिर्फ इतना है कि वह अब टकसाली प्रवृत्ति नहीं है। उसके प्रति नाम सादगीकी शुरूआत सन् ४० के आसपास हुई। निराला और पन्तने इसकी पहल की। "अपने व्यक्तिवादी स्वरोंकी झनकार बन्द करके छायावादी काव्यके गायक 'निराला' ने 'जुहीकी कलियोंसे निठुराई' कर 'बादल राग' का उद्घोष किया और 'अँगना अंगसे लिपटे' 'पर्यंक अंकपर' काँपने वाले धनिकोंकी ओर से आँखें फेरकर 'कृषक अधीर' की ओर बादल मुड़ गये। पन्तका पौरुष सन् ४० में अपनी कोमल कान्त पदावलीको छोड़कर ओजभरे शब्दोंमें शतृशत् विनाशका आयोजन करनेवाले साम्राज्यवादको धिक्कारने लगा और उन्होंने हमारा ध्यान उन नंगे, शोषित भूखे किसानोंकी ओर खींचा, जहाँ मानवता बे-मौत मर रही थी।' (डॉ० शिवप्रसाद सिंह, आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ० २१४-१५)

सन् ४० के आसपासके प्रतिष्ठित कवियोंकी कविताओंमें वे तमाम प्रवृत्तियाँ वट-बीजकी तरह विकीर्ण मिलती हैं जो आगे चलकर हिन्दी-कविताकी विविध धाराओं में विकसित हुईं।

प्रगतिशील काव्यका उत्कर्ष आजादी मिल जानेके बादके वर्षोंकी घटना है। इसका प्रधान स्वर युगकी त्रासदी को घटित करनेवाले कारकोंके प्रति विक्षोभका भाव रहा है, चाहे वे सामन्त और पूँजीपति हों, चाहे विदेशी शासक या देशी नेता और चाहे वह सड़ी-गली रूढ़ियों और विकृत परम्पराओंका कीचड़ हो।

स्वतन्त्रता-संग्रामकी तीव्रता जैसे-जैसे बढ़ती गयी है, राजनीति और साहित्यके कार्यगत लक्ष्योंमें फासला भी बढ़ता गया है। (आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी) राजनीति नये राष्ट्रकी रचनामें लगी थी और साहित्य नये समाजकी रचनामें। राष्ट्र-रचनाका परिणाम तत्काल सामने आया। इसलिए आम जनताने राजनीतिके वर्चस्वको स्वीकार कर लिया। स्वतन्त्र राष्ट्रकी रचना करके राजनीति राष्ट्रकी समग्रताको भूलकर राज्यके केवल एक अंग—शासन—में सीमित हो गयी: उसने संस्कृतिका स्पर्श केवल मुँह दिखाने भरतक किया बल्कि यह कहना सच होगा कि उसने देशपर एक प्रशासनिक संस्कृति थोपी जो उसके निहित हितोंके अनुरूप थी। इसके साथही उसने अपने वर्चस्वकी पकड़को दृढ़तर बनाये रखनेके लिए अपनी दुनियामें यथास्थितिको बढ़ावा दिया, इसके विरोधमें आने वाले राजनीतिज्ञोंका व्यक्तित्व हनन किया और जीवनके अन्यान्य क्षेत्रोंकोभी प्रशसनिक व्यवस्थाओंके द्वारा इस कदर अपनी पकड़में जकड़ दिया और इस जकड़नको बनाये रखनेके लिए दुरभिसन्धिपूर्ण ऐसा दुष्टचक्र खड़ा किया कि जन-राज्यकी अर्थवत्ता शंकास्पद हो गयी और राजनीति सर्वग्रासी बन गयी। इसलिए हमारे नये राष्ट्रके

[शेष पृष्ठ ६९ का]

बादका हिन्दी नाटक हिन्दीभाषी क्षेत्रकी अभिव्यक्तिके रूपमें ही नहीं बल्कि सारे भारतीय नाटककी जीवित परम्परामें अपने आपको प्रतिष्ठित करनेमें सफल हो सका है। उसके राहकी ज्यादातर रुकावटें दूर हो गयी हैं और अब हिन्दी नाटककारके पास वे सब औजार मौजूद हैं जिनका ठीक इस्तेमाल करके प्रतिभाशाली रचनाकार सचमुच सार्थक और उत्कृष्ट नाटककी सृष्टि कर सके।

●

पुराणपन्थी समाजकी विसंगतियाँ और भी प्रखर होकर सामने आयीं।

प्रगतिशील आन्दोलनका मुख्य लक्ष्य समाजका सांस्कृतिक पुर्नानिर्माण था, लेकिन आजादी मिलनेके बादसे ही यह आन्दोलन अपने लक्ष्यपर स्थिर नहीं रहने पाया। कांग्रेस विरोधी राजनीतिके बाजीगरोंने इसे भ्रष्ट किया। कांग्रेसी राजनीतिने इसे उपेक्षित और दलित किया। कांग्रेस विरोधी राजनीतिके कठमुल्लेपनसे तंग आये प्रगतिशील कवियोंकी जमात लड़खड़ाने लगी और उनमेंसे बहुतेरे शासकीय राजनीतिके प्रलोभनोंके आगे आत्मसमर्पण करके सुख-सुविधा भोगने चले गये। यही वह समय है, जब कविगण और अन्य साहित्यकार राजनीतिक बाजीगरोंके जम्हूरे बनने लगे थे। जो दोनों प्रकारकी राजनीतियोंसे अलग रहकर शुद्ध प्रगतिशील लक्ष्योंके प्रति समर्पित रहकर साहित्यकी अपनी भूमिपर अप्रतिहत रहना चाहते थे, उन्हें सभी ओरसे उपेक्षा, तिरस्कार, दमन और व्यक्तित्व हत्याका शिकार होना पड़ा। इस तरह प्रगतिशील आन्दोलन एक प्रकारकी अग्नि-परीक्षाके संकटमें फँस गया। इस संकटमें प्रगतिशीलताको बनाये रखना आत्म-बलिदान जैसा कठिन काम था। इसकी तुलनामें कविता की किन्हीं नयी राहोंका अन्वेषण हो जाना कहीं आसान और अधिक लाभदायक था। अतः प्रगतिवादी कठमुल्लेपनके विरोधके नामपर प्रगतिशील तत्त्वोंका प्रच्छन्न विरोध और कविताके नये शिल्प और उसके लिए नयी भाषा गढ़नेके नामपर एक ऐसे सौन्दर्यशास्त्रकी परिकल्पनाका षड्यन्त्र चला जो हमारी त्रासदीको गलत सन्दर्भोंसे जोड़ता है।

फिरभी प्रगतिशील कविताने हमें अपनी कुरूपताओंके प्रति सचेत किया और हमें अहसास कराया कि सांस्कृतिक-आर्थिक स्वतन्त्रताके बिना राजनीतिक स्वतन्त्रता केवल एक धोखा है। इसने कविताकी भाषाको जन भाषाके आंगनमें पहुँचाया। इसने शुद्ध प्रगतिशीलताके तत्त्वोंकी पहचान हमें दी। अत्यन्त अल्पकालमें इतनी उपलब्धि भी कम नहीं है।

इसका सबसे बड़ा दोष यह बताया जाता है कि इसने हमारी त्रासदीके हमारे अपने सन्दर्भोंको तथा उसके रंग-रूप और प्रकृतिको पहचाननेमें गलती की है और हमारी त्रासदीको विजातीय सन्दर्भोंसे जोड़ दिया। इसलिए त्रासदी की सांघातिक भीषणताके अनुरूप काव्यकी मार्मिक प्रचण्डता नहीं उभर पायी। यह कविताका दोष उतना नहीं लगता जितना कि शीत-युद्धकी दुर्गन्ध उड़ाता हुआ उसपर एक आरोप।

कहीं ऐसा तो नहीं है कि सुविधाओंके लाभके लोभवश प्रगतिशील आन्दोलनको पीठ दिखाकर भागनेवाले, इस आन्दोलनपर उठी हुई तलवारोंके डरके मारे कविता की नयी राहें खोजनेवाले और शासकीय राजनीतिके बाजीगरोंने साँठगाँठकर इस आरोपका प्रचार इसलिए करा दिया कि प्रगतिशील कविताको 'एकेडमिक' स्तरपर बदनामी हो ताकि प्रतिभासम्पन्न कोई कवि उधर न जाये और भारतीय जनता अपनी त्रासदीके प्रति सचेत होकर उसे मिटानेके लिए सरकारपर दबाव डालनेकी स्थितिमें न आये। राजनीतिको फायदा हुआ कि वह भोग-यज्ञ में आकण्ठ डूबी रह सकी। भगोड़े कवियोंको तो फायदा ही फायदा था। इनमें जो कवि बीत चुके-से थे, उन्हें इतिहासके पन्नोंमें अमरता मिली, वैभव मिला। जो नये थे, उन्हें नयी धरती—नयी राहके अन्वेषक और उसके निर्माता होनेका गौरव मिला। अन्य सुविधाएँ तो मुख्य या छद्म द्वारसे मिलनी ही थीं—मिलीं भी।

जैसाकि प्रत्येक आन्दोलनके साथ होता है, आरम्भमें इस आन्दोलनके तमाम कवियोंके लिए प्रगतिशीलता केवल आरोपित धर्म थी; वह उनमें बद्धमूल नहीं हो पायी थी। होतीभी कहाँसे ? हमारी समाज-व्यवस्था और उसका परिवार सामन्ती-साम्राज्यवादी मूल्यों-संस्कारोंका गढ़ था। ये कविगण इन्हींमेंसे आये थे। और वह जमाना ऐसा था जब प्रतिपक्षकी आवाज देनेवाला देशद्रोही नहीं तो पागल तो समझा ही जाता था। ऐसे माहौलमें सामान्य व्यक्ति अवसरवादी मूल्योंका शिकार आसानीसे हो जाता है। इस धाराके तमाम कवियों-समीक्षकोंको ऐसा ही शिकार होना पड़ा। सत्ता-प्रश्रयके लाभोंके लोभसे प्रगतिशील कवि यदि अपनेको बचा पाये होते, तो प्रगतिशील काव्यके रंग और उसका तेज कुछ और ही होता। लेकिन अधिकांश कवि उस लोभसे बच न सके। इसलिए इस काव्य-धारा का सत्यानाश हुआ सो हुआ, इससे भी अधिक दुःखकी बात यह हुई कि इन्होंने आचरणका एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया कि उसका अनुसरण करके 'कैरियरिस्ट' किस्मका कवि बननेका दौर शुरू हुआ, जो आजभी पूरे उभारपर है।

यह ठीक है कि यह दोष केवल कवियोंमेंही नहीं था। हमारे देशके हर बुद्धिजीवीने ऐसाही आचरण इस दौरमें प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने आपको अवसरवादी, अहंवादी और नपुंसक सिद्ध किया है।

प्रयोगशील कविता और नयी कविता (और नयी

कविताके बाद नये-नये नामोंसे [illegible] कविता) के अधिकांश कवियोंकी रचनाओंमें प्रगतिशीलताके तत्त्व मौजूद हैं लेकिन उसकी स्वीकृति और चर्चा नहीं होती। यह सच है कि कविताका प्रगतिवादी आन्दोलन अपनी मौत मर चुका है लेकिन इससे इस बातपर कोई असर नहीं पड़ता कि इन पच्चीस वर्षोंके महत्त्वपूर्ण कवियोंके सृजनका वही अंश महत्त्वपूर्ण समझा जा रहा है, जो प्रगतिशील तत्त्वोंसे अनुप्रेरित-अनुप्राणित है।

निराला, पन्त, दिनकर, रांगेय राघव, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, अंचल, बच्चन, त्रिलोचन शास्त्री, मुक्तिबोध, शिवमंगलसिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, हरिनारायण व्यास, नरेश मेहता, शमशेर, नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल और सैकड़ों लोक-कवियोंकी रचनाओंसे प्रगतिशील काव्य समृद्ध हुआ है। इनमें त्रिलोचन शास्त्री, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, हरिनारायण व्यास, शमशेर और प्रभाकर माचवे प्रयोगशील और नयी कविताके दौरमेंभी प्रगतिशील चेतनाके धनी बने रहे। और अब स्पष्ट हो चुका है कि इन सबमें मुक्तिबोधकी काव्य-चेतना सबसे अधिक तेजस्वी और अपनी भूमिपर ठेठ तथा अप्रतिहत रही है। इस धाराको जीवन्त बनाये रखने वाले अनेक कवि और आ जुड़े हैं—घनश्याम अस्थाना, सिद्धनाथ कुमार, दूधनाथसिंह, गोपालकृष्ण कौल, विजयचौहान, धूमिल, मणि मधुकर, वीरेन्द्र मिश्र, नीरज, शम्भूनाथसिंह, रामदरश मिश्र, देवराज दिनेश, भवानीप्रसाद मिश्र, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, रामकुमार चतुर्वेदी और बालस्वरूप राही।

सन् ५० के आसपाससे नये पढ़े-लिखे, विशेषकर गाँवों से लोगोंकी बहुत बड़ी संख्या प्रतिवर्ष कविके रूपमें शामिल होती गयी। प्रयोगशील और नयी कविताके दौरतक आते-आते कवियोंकी संख्यामें बहुत बड़ी वृद्धि हुई है।

[३]

पिछले कुछ वर्षोंमें यह बात खूब प्रचारित हुई कि 'तार-सप्तक' (१९४३) के प्रकाशनसे प्रयोगवादका आरम्भ हुआ, और 'अज्ञेय' प्रयोगवादी काव्य-धारा [अज्ञेयजी प्रयोगशील शब्दको पसन्द करते हैं।] के प्रवर्त्तक हैं। इस प्रचारसे विचलित होकर नेमिचन्द्र जैन और गिरजाकुमार माथुरने प्रतिवादका पक्ष प्रस्तुत किया। अब, 'नयी कविता सीमा और सम्भावनाएँ', 'कविताके नये प्रतिमान' तथा 'अकविता और कला सन्दर्भ' ग्रन्थोंमें वह सारी सामग्री उपलब्ध है जिससे मुद्देकी अनेक बातें स्पष्ट होकर सामने आयी हैं।

सन् [illegible] से लेकर ५४-५५ तकके समय में प्रगतिशील, प्रयोगशील और नव छायावादी काव्य-प्रवृत्तियाँ एक साथ, एक दूसरेमें घुली-मिली, विकसित हो रही थीं इसलिए प्रगतिशील और प्रयोगशील युग (और एक हदतक प्रवृत्तियाँ भी) अलग-अलग माननेमें कोई तुक नहीं। इसे प्रगति-प्रयोगशील युग कहना अधिक उपयुक्त माना गया है।

अज्ञेयको प्रयोगशील कविताका प्रवर्त्तक मानने-कहने को एक व्यर्थका प्रपंच माना गया है। सप्तकोंके प्रकाशन से पहले और इनसे बाहर भी अनेक कवि रहे हैं, जिन्होंने कवितामें प्रयोगशीलताको अजमाया है। यह अवश्य है कि काव्यगत प्रयोगशीलता को सैद्धान्तिक कवच पहनानेमें अज्ञेय अग्रणी रहे हैं।

जब प्रयोगशीलताका दौर सचेतन रूपमें तेज होने लगा और उस पर भी वाद-बद्धताका कुहरा छाने लगा, अज्ञेयने ही प्रयोगशील कविता-धारा को नयी कविता नाम दिया। प्रयोगशील और नयी कविताके कवियोंको अलग-अलग सूचीबद्ध करना न केवल कठिन काम है वरन् निरर्थक भी।

यह कविता आचरण और विवेककी पतनकारी पराङ्मुखताके संकटसे सन्त्रस्त व्यक्तिके द्वारा अपनी मुक्तिके लिए राहोंकी खोजकी कविताका आरम्भ है। इसमें समकालीन मनुष्यकी जटिलसे जटिलतर होती परिस्थितियोंमें उसकी त्रासदीके असली रूपको उसके अपने सन्दर्भमें ग्रहण करनेकी कोशिश पहली बार की गयी। किन्तु क्योंकि मुक्तिके मार्गकी खोज अकेले-अकेले करनेकी प्रवृत्ति प्रबल थी, इसलिए बहुत-से कवि अपनी काव्यानुभूतिको प्रासंगिकता देनेमें असफल रहे। यहाँतक कि इस धाराके तथाकथित 'शलाका पुरुष' अज्ञेय अपने भीतर डुबके हुए 'नितान्त ऐश्वर्यशील, सत्य-मुग्ध, सौन्दर्य-लुब्ध प्रतीक पुरुष' की प्रदक्षिणा करते-करते, किसी और ओर जाकर 'चक्रान्त-शिला' पर टिक गये—श्रद्धा अपनी! क्षमता अपनी!

वैसे इस धाराने अपनी उठानेमें कुछ अच्छी बातोंको उजागर किया—दृष्टिकोणकी वैज्ञानिक निस्संगत स्वचेतनता, परिवेशके प्रति गहरी जागरूकता, जनतान्त्रिक सामाजिकता और रचनाके रूप-विन्यासके सम्बन्धमें प्रयोगशीलता आदि विशिष्टताएँ इस धाराके कवियोंमें दृष्टिगोचर होती हैं। शब्दके सही और संगत प्रयोगपर बल देना इस धारा की बहुत बड़ी उपलब्धि है और इसका सबसे बड़ा दोष प्रयोगको सर्वस्व मान लेना है। शब्दोंकी तलाशमें ग्रामांचलोंकी ओर प्रस्थानकी प्रवृत्ति बलवती हुई लेकिन

गवँई-गाँवके शब्दों तथा तद्भव शब्दोंकी अधिकता या उनके सुष्ठु प्रयोगके आधारपर कविकी काव्य-भाषा फलतः उसकी काव्य-क्षमताकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेका चक्कर (डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी) वैसा ही है जैसे हर खद्दर धारीको सच्चरित्र या राष्ट्र-प्रेमी सिद्ध करना।

इस दौरमें छायावादी प्रबल संस्कारोंके शिकार और अन्धविश्वासी किस्मके कठमुल्ले प्रगतिवादी दोनों प्रकारके कवि शामिल थे। इसलिए इन दोनोंने अपने-अपने ढंगसे प्रगतिशील तत्त्वोंको कवितासे बाहर धकेलनेका काम किया। और कविता को गलत भूमिकामें खींचकर 'जड़ सौन्दर्यशास्त्र' की रचाईमें योगदान किया।

प्रयोगशीलताके पूरने जो नयी मिट्टी तैयार की उसमें नयी कविता की खेती शुरू हुई। नयी कविताके सौन्दर्यशास्त्रका आरम्भिक इतिहास शीत-युद्धोंका इतिहास है। इसमें "सब सच झूठ में और सारा झूठ सचका रूप ग्रहण कर लेता है।" आधुनिकता, आधुनिक भावबोध, धुरीहीनता, नये मानव-मूल्य, व्यक्ति-स्वतन्त्र्य, लघुमानव, क्षणवाद, प्रतिबद्धता, सांकेतिक शिल्प, मोहभंग, समसामयिकता, विसंगति, अस्तित्व बोध, अस्मिताकी खोज आदि धारणाओंके इर्द-गिर्द ऐसा शब्द-संगर हुआ कि नयी कविताका सत्य एक धुन्धमें खो-सा गया कि उसमें उसको पहचानना कठिन होने लगा। इस काव्य-धाराको नवलेखनके रूपमें परिभाषित करते हुए विश्वकी समसामयिक काव्या-धारा से इसकी समानान्तरता सिद्ध करनेकी कोशिश की गयी। 'नयी कविता' और इसी प्रकारकी अनेक कविता-पत्रिकाओंका प्रकाशन हुआ। पुरानी पीढ़ीके कविभी नयी कविताकी तर्जपर लिखनेके मोहको रोक न पाये। देशी-विदेशी काव्यशास्त्रका भीषण मन्थन हुआ।

वैसेतो नयी कविताकी धारामें विभिन्न संस्कारोंवाले कवियोंने योगदान किया है किन्तु नयी कविता अपनी मूल प्रकृतिमें हर प्रकारकी जकड़बन्दियोंको अस्वीकार करती है; वह उन्मुक्त रूपमें प्रयोगशील प्रगतिशीलताकी हामी है, भले इसकी चर्चा सामाजिक सरोकारके रूपमें की जाये या इसी प्रकारकी किसी और शब्दावलीके रूपमें इसके फैलावमें कथ्य और शिल्पके नये-नये तेवर उभरते और अपनी-अपनी क्षमताके अनुसार उसे प्रभावित करते हुए मरते जा रहे हैं या नये तेवरके लिए राहें बनाते जा रहे हैं। इसीलिए कभी ठोस कविता, कभी पोस्टर कविता, कभी अकविता, तो कभी सामायिक कविताके नाम सुनायी पड़ते रहते हैं। इन हलचलोंको भटकाव, विकास, या विकृतिमेंसे कोईभी नाम और एकसाथ सभी नाम दिये जा सकते हैं। नयी कविताके जनतन्त्रमें काव्य-फैशनोंके अनेक गुट बनते-बिगड़ते रहते हैं। इन सबकी घोषणाओंकी गुप्त-आकांक्षाओं और सबके पारस्परिक सम्बन्धोंसे निर्मित समग्र आकांक्षाका विश्लेषण करनेपर यह नहीं लगता कि विभिन्न गुटोंके कवि ऐसा कुछ कर रहे हों जो नयी कविताकी प्रकृतिसे भिन्न हो। इनसे सिर्फ इतना अवश्य प्रकट होता है कि कविताके जनतन्त्र में अपने-अपने व्यक्तित्वके साग्रह प्रस्थापनका जोश उनमें आसाधारण है। जनतन्त्रकी चेतना और विज्ञापन तथाबिक्री-कलाके बढ़ते ज्ञानके कारण ऐसा होना स्वाभाविक ही हैं।

कथ्यका वैविध्य, स्वानुभूतिका आग्रह, वाद-मुक्ति, मनुष्यकी समग्रताका चित्रण, कथ्य और शिल्प दोनोंमें तटस्थ प्रयोगशीलता और दोनोंकी अविच्छिन्नताका आग्रह, भाषागत चाकचिक्यके प्रति विद्रोह नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओंके साथ वह जनतान्त्रिक जीवन-रचनामें उसके आधारभूत सामाजिक यथार्थको तथा उसमें व्यक्तिकी भूमिकाको परखनेका प्रयास करती है और देखनेको प्रयासशील है कि क्या सचमुच ये जनतान्त्रिक तत्त्वोंसे निर्मित और इनकी पोषाक है?

मतवादोंके चुभनेवाले दुराग्रहोंसे मुक्त रहनेकी चेष्टा करते हुए नये कविने जब उस सामाजिक यथार्थका विश्लेषण किया जिसे वह सह-भोग रहा था, तब उसने पाया कि वह आडम्बर-पाखण्ड, स्वार्थपरता-अवसरवाद, शोषण-वैषम्य, भ्रष्टाचार-अनाचार, दलगत शीत-उष्ण युद्ध, सामन्ती कामुकता और अंह, न्यायके नामपर साम्राज्य-वादी सौदेबाजी, व्यवस्थाके नामपर दुरभिसन्धिपूर्ण यथा-स्थितिवाद, आदर्शोंके नामपर हाथी दाँत, जागृत बौद्धिक वर्गके नामपर भूख और खूनके उपासक निखट्टू बुद्धि-व्यापारी—इन सबके अकाण्ड-ताण्डवका ऐसा भीषण दृष्य है जिससे निपटनेके लिए युयुत्सु बनना—उसे बनाना—अनिवार्य हो गया है।

नयी कविताका कवि नये उपमानों, प्रतीकों और चित्रोंकी खोजमें उन सभी क्षेत्रोंकी यात्राएँ करता है, जो पहले अछूते रह गये थे। लोक जीवन, दैनिक नागरिक जीवन, परिवार और गली-दूकान, या चौराहेसे भी बोली, भंगी, धुन और लय प्राप्त करता है। लोकगीत, फिल्म-संगीत और कारखानेका यन्त्र-संगीत सभीको वह टटोलता है। ताजगी और नवीनताकी तलाशमें वह नये क्षेत्रोंमें भटकता है और पुरानी सामग्रीको नया संस्कार प्रदान

करता है। इससे नये युगकी आधुनिकताभी प्रकट होती है और आधुनिक युगकी वर्ज्य या गोपन स्थितियोंका भी प्रकाशन होता है।

मानवका अचेतन मन मानो सामाजिक दस्तावेजोंकी तिरस्कृत पाण्डुलिपियोंका अपार भण्डार है। नयी कविता इस भाण्डारकी टोह लेती है। वहाँसे मूल्यवान् सामग्री उठाकर वह समाजके सामने लाती है। इससे सामाजिक परिस्थितियोंका असली चेहरा सामने आता है। अचेतन मनकी गुफासे उठाये गये तत्त्वोंको संवेद्य बना पाना कठिन काम है। इसीलिए इन तत्त्वोंसे युक्त बहुत-सी कविताएँ बड़ी दुरूह लगती हैं। अभीतक हम कविताके अनुभव को उपेक्षित करके कविताकी व्याख्या करनेके अभ्यासी रहे हैं। दुरूह लगनेवाली इन कविताओंके अनुभवकी व्याख्या की जाये तो ये दुरूह नहीं लगतीं।

नयी कवितामें लम्बी कविताएँ भी लिखी जा रही हैं। ये न पुराने प्रबन्ध काव्यका समानान्तर हैं और न कथा-काव्यका। उनमें खण्ड चित्र हैं, भाव चित्र हैं, चित्र मालाएँ हैं, बिखरे हुए बिम्ब हैं, अनुभवकी नाट्यात्मकता है—ऊपरसे सब अलग-थलग किन्तु भीतर-भीतर किसी एक स्फुलिंगमेंसे विकीर्ण रश्मियोंकी तरह सुसूचित भी।

नयी कविता कथ्य और शिल्प, दोनोंही दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ दे चुकी है और अधिककी सम्भावना अभीभी उसमें शेष है।

नयी कविताने भी शिविर बनाये हैं। इनका विरोध हुआ है। नये नामोंसे नये आन्दोलनके रूपमें। विरोधके लिए और अप्रकाशित न रह जानेके लिए लघु-पत्रिकाएँ निकाली गयीं। पचासों लघु-पत्रिकाएँ जनमती-मरती रहती हैं। इन पत्रिकाओंने शिविरोंको हिलाया है और साधन हीनोंको प्रकाशित किया है। कवियोंके संयुक्त काव्य-संकलन सामने आये। सम्पादित काव्य-संकलनभी खूब आ रहे हैं। हिन्दीतर भारतीय भाषाओं और विदेशी कवियोंकी कविताएँ अनुदित होकर प्रकाशित हो रही हैं। प्रतिष्ठित कवियोंकी चुनी हुई कविताओंके काव्य-संकलन भी उपलब्ध हुए हैं।

इन पच्चीस वर्षोंमें कवियोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी हैं। प्रयोगशील नयी कविताके कवियोंकी सूची बनाना बड़ा कठिन काम है—कुछ-न-कुछ नाम जरूर छूट जायेंगे, इसलिए इस कालकी कुछ प्रमुख रचनाओंके नाम गिनाऊँगा, (भूलसे कोई रह जाये तो क्षमाप्रार्थी हूँ)—। नयी कविता का अध्ययन करनेवालोंको ये रचनाएँ अवश्य पढ़नी ही होंगी—पूर्वा और आँगनके पार द्वार (अज्ञेय), चाँदका मुँह टेढ़ा है (गजानन माधव मुक्तिबोध), ठण्डा लोहा तथा अन्य कविताएँ, सात गीत वर्ष और अन्धायुग (भारती), गीत फरोश, चकित है दुख और अँधेरी कविताएँ (भवानीप्रसाद मिश्र), काठकी घण्टियाँ, बाँसका पुल, एक सूनी नाव, गर्म हवाएँ (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), सीढ़ियोंपर धूपमें तथा आत्महत्याके विरुद्ध (रघुवीर सहाय), मछली घर (विजयदेव नारायण साही), चक्रव्यूह और आत्मजयी (कुँवरनारायण), मायादर्पण (श्रीकान्त वर्मा), कविता संभव (प्रयाग शुक्ल), पक गयी है धूप (रामदरश मिश्र), गारुड़ मंत्र (अनिलकुमार), धूपके धान, शिला पंख चमकीले और जो बँध नहीं सका (गिरिजाकुमार माथुर), अतुकान्त (लक्ष्मीकान्त वर्मा), शहर अबभी सम्भावना है (अशोक वाजपेयी), खण्ड खण्ड पाखण्ड पर्व (मणिमधुकर), आवाजोंके घेरे (दुष्यन्तकुमार), संक्रान्त (कैलाश वाजपेयी), अर्द्धशती (बालकृष्ण राव), नावके पाँव, शब्द-दंश और हिम बद्ध (जगदीश गुप्त), कविताएँ (कीर्त्ति चौधरी), कटती प्रतिभाओंकी आवाज और उभरते प्रतिमानोंके रूप (बच्चन), 'सूरज सब देखता है' (जुग मन्दिर तायल), युग धारा, सतरंगे पंखोंवाली और प्यासी पथराई आँखें (नागार्जुन), संसदसे सड़कतक (धूमिल), दुखान्त समारोह (जयसिंह नीरज), गीतम और लेखनी बेला (वीरेन्द्र मिश्र), स्वप्न भंग और अनुक्षण (प्रभाकर माचवे), बूँद नेहकी दीप हृदयका और संतरण (महेन्द्र भटनागर), कविताएँ...कविता के बाहर (श्याम परमार), इतिहासहन्ता (जगदीश चतुर्वेदी), मैं जानता हूँ कि बहुतसे नाम मैं भूल रहा हूँ और बहुतोंको जानबूझकर मैंने छोड़ दिया है। उक्त संकलनके पीछे दृष्टि श्रेष्ठताकी नहीं है (यद्यपि इनमें श्रेष्ठ रचनाएँ भी हैं)—इतिहास-दृष्टि प्रधान है।

बहुतसे कवि हैं जिनके संकलन अभीतक प्रकाशित नहीं हुए हैं। वे या तो पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए हैं या सम्पादित काव्य-संकलनोंमें। उनमें अनेक हैं जिनमें उज्ज्वल सम्भावना है। रामदेव आचार्य, चन्द्रकान्त देवताले, नईम, ओम प्रभाकर, ऋतुराज, देवेन्द्रकुमार, लीलाधर जगूड़ी, सूर्यभानु गुप्त, मलयज, विष्णुखरे, रमेशचन्द्र शाह, शलभ श्रीराम सिंह, विजेन्द्र, वेणु गोपाल, नीलम श्रीवास्तव, रामकुमार कुम्भज, जुगमन्दिर तायल, ताराप्रकाश जोशी, हेमन्त शेष, विनोदकुमार भारद्वाज, हरीश पाठक, राजकमल चौधरी, छविनाथ मिश्र, हरिशंकर अग्रवाल, तेजसिंह जोधा, वीर सक्सेना, कुन्तलकुमार जैन, सुरेन्द्रकुमार काले, जितेन्द्र-

नाथपाठक, गोपालकृष्ण कौल, विश्वनाथप्रसाद तिवारी, वंशी माहेश्वरी, तारादत्त 'निर्विरोध', खलील तनवीर, कृपाशंकर कश्यप, मालती शर्मा, अचला शर्मा, राजेन्द्र किशोर, अक्षय उपाध्याय, ओमप्रकाश निर्मल, प्रमोद सिनहा, श्याम विमल, बालकवि वैरागी, विट्ठलभाई पटेल, राजकुमार सैनी, चंचल मनोज सोनकर, परदेशी, सत्यकुमार चन्देल, श्रीराम अग्रवाल, अनिता महाजन, कृष्णकुमार 'सुमन', जितेन्द्र खन्ना, जयनारायण वर्मा 'सन्तोषी', कृष्णकुमार 'सौरभ', वीरेन्द्र नाथ मिश्र, ओमप्रकाश शर्मा, सुन्दरलाल कथूरिया, प्रेम प्रकाश गौतम, तथा और भी अनेक। पुराने कवियोंमें पन्त, दिनकर, बच्चन अपनी प्रतिष्ठाके कारण अभी भी छप रहे हैं।

अनेक अहिन्दीभाषी कविभी हिन्दीमें कविताएँ लिख रहे हैं और अच्छी लिख रहे हैं। कृष्ण मोहन, डॉ० राही मासूमरजा, अप्पा साहब सनदी 'शैल', सदाशिवहिरेमठ, डॉ० कर्णसिंह, सुमतीन्द्र, डॉ० चावलि सूर्यनारायण मूर्त्ति, डॉ० पी० आदेश्वरराव, भारती चौरसिया, वाराणसि राममूर्त्ति रेणु, वैरागी, डॉ० सरगु रगप्पा कृष्णमूर्ति, अचल राजपूत, चिरंजीत, ज्ञानसिंह 'मान', देवराज दिनेश, भगवानदास निर्मोही, राकेश वत्स, श्रीमती विजय चौहान, डॉ० विद्यानाथ गुप्त, डॉ० सत्यपाल चुघ, प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय, आनन्दवर्धन रामछन्द्र रत्नपारखी, आनन्द शंकर माधवन, एन. चन्द्रशेखरन नायर, कृष्णन कुट्टि, ड० दामोदर प्रसाद, पं० नारायणदेव, 'देव' करलीय, बलदेव वंशी और मोतीलाल जोतवाणी। इनमेंसे अनेककी रचनाओंकी समीक्षा 'प्रकर' अपने 'अहिन्दी भाषीभाषियोंका साहित्य' विशेषांकमें प्रकाशित कर चुका है।

[४]

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके दिनोंसे लेकर सन् ५४-५५ तक कवि-सम्मेलनोंकी बड़ी धूम रही। इनके साथ गीतकार कवियोंने भी खूब नाम कमाया। लेकिन इसके साथही फैशनके तौरपर सस्ते गीतोंकी ऐसी बाढ़ आयी कि गीतका अवमूल्यन हो गया। जब नयी कविता भीषण शास्त्रार्थके साथही साथ कुछ प्रतिष्ठा पाने लगी तो गीतकारोंकी ओर से 'नवगीत' का नारा उठा लिया गया। नवगीतका 'नव' विशेषण "एक तरफ सन्निकट अतीत एवं वर्तमानके सस्ते रोमानी गीतोंसे अपनी पृथकता और दूसरी तरफ नवीन साहित्य चेतनासे अपनी सम्पृक्तता द्योतित करता है।" (प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री) नवगीतवालोंने निराला, अज्ञेय, गिरजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती आदिको अपने प्रत्यक्ष प्रेरणा-स्रोतके रूपमें स्वीकारा है। नवगीतका लक्ष्य है—'गीतकी आधारभूत विशेषताओंको कायम रखते हुएउसे चेतना, शिल्प और अभिव्यंजनाके स्तरपर आधुनिक बनाना (प्रो० शास्त्री) केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', ठाकुरप्रसादसिंह, वीरेन्द्र मिश्र, रामदरश मिश्र, केदारनाथ सिंह, शम्भूनाथ सिंह, नीरज आदि गीतकारोंने इस विधाको समृद्ध बनाया है। नवगीतकारोंने अहंप्रेरित होकर अपनेको नयी कविता से अलगभी घोषित किया है। प्रो० विष्णुकान्त शास्त्रीका यह मत सर्वथा उचित है कि गीत कविताकी एक विधा है और यदि कविता नयी है, तो उसकी सभी विधाएँ नयी होंगी....होनी चाहिये। उन्हें अलगसे नवगीत, नवमुक्तक, नवप्रबन्ध आदि कहना उचित नहीं होगा।

इन पच्चीस वर्षोंमें लिखे गये प्रबन्ध काव्योंका भी सर्वेक्षण कर लेना आवश्यक है। समीक्षकोंका निष्कर्ष है कि 'प्रबन्ध-काव्य-रचना आजकी सर्जक रुचिके अनुकूल नहीं पड़ती। यदि प्रबन्ध काव्य लिखा ही जाये तो उसे शिल्प और भाव-बोधमें आजके अनुकूल होना पड़ेगा। यानी वह स्थूल मांसल कथा, सम्पूर्ण व्यक्तित्व और विराट समय प्रवाहकी शृंखलासे एकसूत्रित न होकर मनःसत्यों की सूक्ष्म रेखाओं, चिन्तनके द्वन्द्वों, विघटित व्यक्तित्वों और क्षणानुभूतियोंकी प्रतीति लेकर मुक्त साहचर्यके सूत्रोंसे अनुस्यूत होगी। स्वाभावतः ऐसा प्रबन्धकाव्य आकारमें छोटा ही होगा। दूसरे, उसमें आजके मूल्यों, बोधों, संवेदनाओं, प्रश्नों और आकांक्षाओंकी आँच होगी।" (डॉ० राम दरश मिश्र)

आलोच्य कालमें संख्याकी दृष्टिसे प्रबन्धकाव्य कम नहीं लिखे गये हैं। लेकिन वे आधुनिक प्रबन्धकाव्यकी कसौटियोंपर बहुत ठीक नहीं उतरते। फिरभी, कुछ प्रबन्ध काव्य महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। मैथिलीशरण गुप्तका 'जय भारत' और 'विष्णुप्रिया', दिनकरका 'उर्वशी और 'रश्मिरथी' सुमित्रानन्दन पन्तका 'लोकायतन' धर्मवीरभारती का 'कनुप्रिया', ठाकुरप्रसादसिंहका 'महामानव' नरेन्द्र शर्मा का 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' और रामकुमार वर्माका 'उत्तरायण'। इन सभी प्रबन्धकाव्योंमें अतीतको वर्तमान के दर्पणमें देखते हुए वर्तमानको उपस्थित करनेकी कोशिश की गयी है। इनमें 'उर्वशी' और 'कनुप्रिया' ने साहित्य जगत्का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट किया है। 'उर्वशी' ऐतिहासिक विवादका कारण बनकर भुलाया जा चुका है। 'कनुप्रिया' इन प्रबन्धकाव्योंमें अभीभी श्रेष्ठ बना हुआ है।

[शेष पृष्ठ ८२ पर]

छ. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी हास्य-व्यंग्य

—श्रीमती विश्ववारा,

६२, लालबहादुर सदन गोल,
मार्केट, नई दिल्ली-१

परतन्त्र भारतका साहित्यकार साहित्यमें हास्यको प्राधान्य न दे यह स्वाभाविकही था। फिरभी भातेन्दु-युगमें हास्यकी कई उत्कृष्ट कृतियोंके उदाहरण मिलते हैं। स्वतन्त्रताके साथ हास्यकी समृद्धिकी अपेक्षा करना अनुचित न होगा। २५ वर्षोंके हास्य-व्यंग्य साहित्यपर विहंगम दृष्टिपात करनेसे कुछ सन्तोषभी होता है, कुछ असन्तोषभी। जितना साहित्य लिखा गया है वह मात्रामें भी कम नहीं है और कुछ कृतियोंमें उच्चस्तरीय हास्य एवं व्यंग्यके दर्शन भी होते हैं। किन्तु फिरभी व्यंग्यमें जिस गहनता, मार्मिक व्यंजना शक्ति और 'नाविकके तीर' की-सी अन्तर्भेदिता चाहिये उसके दर्शन कमही होते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर युगमें कवि सम्मेलनोंकी भरमारने हास्यरस को विशेष प्रश्रय दिया है।

योंतो अनेक विषयोंपर हास्य-व्यंग्यपूर्ण कविताएँ लिखी जाती हैं परन्तु नयी सभ्यताके उपासकों, नेता, अभिनेता, सिनेमा, कवि, पत्रकार, अफसर, व्यापारी, मिलावट, प्रकाशक आदिपर हास्य-रसके कवियोंकी विशेष कृपा-दृष्टि है। इसके साथही प्राचीन कवियों एवं प्रसिद्ध-प्रचलित कविताओंके परिहासात्मक अनुकरणकी तो परि-पाटीही चल पड़ी है। यह कहना कठिन है कि आजके हास्य-कवियोंमें कौन प्रथम तथा द्वितीय स्थानका अधिकारी है, क्योंकि प्रत्येककी अपनी अलग विशेषता है। विविध विषयोंको छूनेवाले हास्य-व्यंग्यात्मक काव्यके प्रमुख रचयिताओंकी चर्चा पहले की जा रही है।

काव्य—

स्वर्गीय पं० हरिशंकर शर्माका हास्यपर अच्छा अधिकार था। इनका पद्य-संग्रह 'पिंजरापोल' नामसे उपलब्ध है। परिहासात्मक काव्य इन्होंने अधिक लिखा है। जैसे—'नलदेव' की आरती उतारना—"ओम् जय नलदेव हरे। पानी खूब पियायो तुमने मटका-माट भरे।" इसीप्रकार 'झण्डा गान' पर 'धन्धागान' की रचना की है। इसके अतिरिक्त कविने चन्दा इकट्ठा करके पेट भरनेवालों पर व्यंग्यभी किया है।

चन्द्रभूषण त्रिवेदी (रमई काका नामसे प्रसिद्ध) के 'बौछार', 'भिनसार' तथा 'फुहार' कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनकी भाषा अवधी है। इनकी 'धोखा' शीर्षक कविता प्रसिद्ध है। इसमें नयी-नयी चीजोंको देखकर धोखा खानेका हास्यात्मक वर्णन है। 'अन्धकारके राजा (चन्द्रमा)' पर एक कवित्त भी उल्लेखनीय है।

कान्तानाथ पाण्डेय चोंचभी अत्यन्त प्रसिद्ध कवि रहे हैं। इनका 'चूनाघाटी' नामक काव्य श्यामनारायण पाण्डेय-की 'हल्दी घाटी' रचनाकी शुद्ध पैरोडी है। इन्होंने अधिक-तर काव्य-परिहासही लिखा है। सूरदासके पद 'मधुकर' इतनी कहियहु जाय' के आधारपर इनका काव्य-परिहास चर्चायोग्य है। 'मंसलन' कविता संग्रहमें कविकी ५, कवि-ताएँ हैं। कविने पवित्र परिहासको ही अपना लक्ष्य माना है। 'आह' तथा 'आत्मग्लानि' नामसे क्रमशः कविवर प्रसादकी 'आह वेदना मिली विदाई' तथा बच्चनकी 'जीवनमें कुछ कर न सका' पर पैरोडी हैं।

बेढब बनारसी शिष्ट हास्यके कवि माने जाते हैं। 'बेढबकी बहक', 'बेढबकी बानी' तथा 'बिजली' इनके संकलन हैं। 'बेढबकी बानी' कविता-संग्रह में १०० रचनाएँ हैं। 'बिजली' में ४७ कविताएँ हैं। कुछ प्रसिद्ध कवियोंकी पैरोडियाँ भी हैं जिनमें बच्चनकी 'जीवनमें कुछ कर न सका' पर 'बेकार जीवन' शीर्षकसे तथा प्रसादकी 'बीती विभावरी जाग रे' पर पूर्णतः सफल रचनाएँ हैं। 'बाइ-सिकल' कवितामें जहाँ साइकिल सीखनेवाले व्यक्तिका हास्यपूर्ण चित्रण है वहाँ 'जीवनभरका मजदूर' में जीवनकी विडम्बनाओंपर कुछ हास्यात्मक व्यंग्य हैं। एक कवितामें आधुनिक कृष्णको भी चुनौती दी है, जो सामयिक परिस्थितियोंका व्यंग्य-चित्र प्रस्तुत करनेमें समर्थ है।

काशीनाथ उपाध्याय 'बेधड़क बनारसी' की बेधड़क कविताओंके दर्शन प्रायः पत्र-पत्रिकाओंमें होते रहते हैं। अंग्रेजीके शब्दोंके प्रयोगसे हास्योद्रेक करना इनकी कविताओंकी विशेषता है। इनकी प्रकाशित रचना 'सुन्दर और असुन्दर' नामसे है। नरोत्तमदास रचित 'सुदामाचरित' पर काव्य-परिहासकी रचनाभी इन्होंने की है। 'कृष्ण' को इन्होंने 'सप्लाई आफिसर' बनाया है।

बनारसी 'स्कूल' के ही एक कवि 'भैयाजी बनारसी' का संग्रह 'राम झरोखा' नामसे है। इन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक—सब प्रकारकी हास्य-व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं। इन कविताओंमें हास्य कम और व्यंग्य अधिक है। साहित्य राजनीतिकी धोखा-धड़ी, बेईमानी, आडम्बर और समाजके फोड़ोंपर कविने व्यंग्यके नश्तर चुभाये हैं।

कवि सम्मेलनोंके संयोजक 'महामन्त्री' श्री गोपालप्रसाद व्यास काव्य-जगत्में पत्नीवादके प्रवर्तक बनकर आये। इनकी कुछ प्रकाशित काव्य-पुस्तकें हैं : 'अजी सुनो', 'चले आ रहे हैं', 'कहास' तथा 'अनारी-नर' जोकि खण्ड-काव्य है। इस काव्यमें शब्दजालसे हास्य-स्थिति उत्पन्न की गयी है। दाढ़ी और चोटी पुरुष रखते हैं। धोती-कमीज भी जोकि स्त्रीलिंगवाची शब्द हैं, पुरुषही पहनते हैं जबकि नारियोंसे सम्बन्धित वस्तुएँ पुल्लिगवाची हैं। पत्नीके अतिरिक्त साला, साली, मामाको भी नहीं छोड़ा गया। 'गधे' को भी अपनी कविताका शीर्षक बनानेसे नहीं चूके। और इसी गधेके व्याजसे कहीं छायावादी और कहीं रीति-कालीन कवियोंकी शैली और शब्द ले आये हैं।

इसी वर्गमें ऐसे बहुतसे कवि सम्मेलनी कवि हैं जिनका मंचपाठ तो हँसानेमें समर्थ है, पर कभी अकेलेमें बैठकर पढ़ी जायें तो गुदगुदायेंगी तक नहीं, हँसानेकी बात तो दूर रही।

'काका हाथरसी' हास्यके समर्थ कवियोंमेंसे हैं। इन्होंने लिखा भी पर्याप्त है, लोकप्रिय भी हैं। इनकी प्रसिद्ध रचनाओंमें 'काकाके कारतूस', 'दुलत्ती' काका की कचहरी', 'काका के कहकहे', 'काकाके प्रहसन' आदि हैं। इन्होंने अधिकांशतः कुण्डलियाँ लिखी हैं, इसके अतिरिक्त फिल्मी गीतोंपर पैरोडियाँ। काकाकी रुचि राजनीतिक विषयोंपर अधिक रही है। वे अपनी कविताओंमें व्यंग्य को हास्यकी चाशनीमें लपेटकर प्रस्तुत करते हैं। 'मौनं स्वीकृति लक्षणम्' में कवि भगवानको भी रिश्वत लेनेके लिए मजबूर करता है और उसके मौनको स्वीकृतिका लक्षण समझ लेता है। 'काकदूत' कविका खण्ड-काव्य है। मेघदूत, हन्सदूत आदिकी परम्परामें ही 'काका' भी नये 'दूत' बनकर आये हैं।

'जज्बाते ऊँट' के रचयिता 'ऊँट बिरहलवी' हैं। इसमें संकलित कविताएँ सामयिक विषयोंपर हैं। कविताएँ चमत्कार प्रधान अधिक हैं। हास्यपूर्ण कविताओंका संग्रह 'छेड़छाड़' हृषिकेश चतुर्वेदीकृत है जिसका स्थायी हास्यमें अपना विशेष योगदान है। 'खिचड़ी' तथा 'दिल्ली के दंगलमें निर्भय हाथरसीके काव्य-संग्रह हैं। 'दिल्लीका दंगल' हो, 'नेतागिरीका चंगुल', 'दलकी राजनीति' हो या 'समाजकी खलरीति', 'यू० पी० की मिनिस्ट्री' हो 'या 'हूरदासकी हिस्ट्री', 'ब्याह-सगाईकी रात' हो या 'महँगाईकी बात' 'पत्नीका चुनाव' हो या 'इलैक्शनका भाव-ताव' सबके बारेमें कविका 'बेलाग' रहनेका दावा है। उदाहरणार्थ—'नई रामधुन', 'भिक्षाम् देहि', 'बातकी बात', 'दिल्लीके दंगलमें', 'आज देशमें होरी रे रसिया' आदि अनेक कविताओंमें स्पष्ट रूपसे प्रधानमन्त्री इन्दिरा-गान्धीपर फबतियाँ कसी गयी हैं, और सचमुच ही अपने 'निर्भय' नामको सार्थक करते हुए। कहीं-कहीं इनकी कविताओंमें अश्लीलताका समावेश होता है।

ओमप्रकाश 'आदित्य' की प्रकाशित पुस्तकोंमें उल्लेखनीय 'थर्ड डिवीजन', 'इधरभी गधे हैं उधरभी गधे हैं', 'सितारोंकी पाठशाला', 'तोता एण्ड मैना' और 'उड़ गई चिड़िया' हैं। इनके विनोदमें ताजगी और साहित्यकताका पुट विद्यमान है। 'कविपंचायत' में कविने मीरा, सूर, तुलसी, केशव, कबीर, जायसी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रसाद, मै० श० गुप्त, निराला, महादेवी, बच्चन, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गोपालप्रसाद व्यास आदि सभी कवियोंकी प्रसिद्ध रचनाओं, उक्तियोंको आधार बनाकर आपसमें नोंकझोंक करायी है। शुद्ध हास्योद्रेकमें अच्छी क्षमता प्रदर्शित की गयी है।

[शेष पृष्ठ ८० का]

अन्तमें केवल इतना कहना है कि यद्यपि आलोच्यकाल में हिन्दी-कविताने बड़ी तीव्र गतिसे विकास किया है किन्तु समीक्षा उसका संश्लिष्ट और समग्र स्वरूप उजागर करनेमें असमर्थ रही है। पूर्वाग्रहमुक्त रहकर समग्र काव्य-सृष्टिका वस्तुपरक मूल्यांकन होना अभीभी शेष हैं।

श्री 'कुल्हड़' की 'कुण्डलियाँ' तथा 'साइकिल-एक्सीडेण्ट' प्रकाशित हो चुकी हैं। 'रहता हूँ कुछ पिये हुए' तथा 'सोशल सर्विस' इनकी ख्यातिप्राप्त कविताएँ हैं। कविने अपने-आपको भी 'हास्य' का लक्ष्य बनाया है तथा अपनी अक्लकी ही खिल्ली उड़ायी है।

श्री चिरंजीतका 'कहे पैकंडीदास' शीर्षकका एक कविता संग्रह दृष्टिगत हुआ है जिसमें उन्होंने नयी दिल्लीकी मध्यवर्गीय बाबू संस्कृतिको लक्ष्य बनाया है। यह बाबू-संस्कृति भारतीय उच्च वर्ग तथा अंग्रेजोंके जीवनका उपहास है। वैसेभी कविने परिहासात्मक शैली ही प्रायः अपनायी है अतः 'पैरुडीदास' शीर्षक एकदम उपयुक्त है। इनकी रचनाएँ प्रायः रेडियोसे भी प्रसारि होती रहती हैं।

'तेलकी पकौड़ियाँ' श्री प्रभाकर माचवेका हास्य-व्यंग्य संकलन है। इसमें हास्यकी अपेक्षा व्यंग्य अधिक तीव्र है। व्यंग्यभी गम्भीर और शिष्ट है। इसलिए इनकी रचनाएँ बौद्धिक अधिक हैं। 'स्वप्नभंगमें भी कई व्यंग्यमय सानेट हैं।

भारतभूषण अग्रवाल आजके बहुचर्चित कवियोंमेंसे हैं। यों तो ये गम्भीर-प्रकृतिके ही कवि कहे जाते हैं पर मनोरंजनार्थ 'कागजके फूल' में इनके ९८ तुक्तक संगृहीत हैं जो हँसानेके साथ-साथ कुछ सोचनेपरभी विवश कर देते हैं।

डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदीने अपनी पुस्तक 'रंग और व्यंग्य' में हास्यके अनेक प्रकारोंपर अपनी कलमको सधाया है। उनमें दोहे, तुक्तक, पैरोडियाँ, मुकरियाँ आदि हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तकी 'यशोधरा' की 'सखि वे मुझसे कहकर जाते', तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'दिवसका अवसान समीप था' आदि प्रसिद्ध कविताओं पर पैरोडी लिखी हैं, जो विषयकी दृष्टिसे तो हास्यपरक हैं ही, उनमें मूल की भाषा-शैलीसे भी अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। डा० रामविलास शर्माने चतुर्वेदीजीके साहित्य के बारेमें लिखा है : "हिन्दी पद्यकी हास्य-रस सम्बन्धी परम्परासे, विशेष रूपसे लोक साहित्य—जनतामें प्रचलित मौखिक साहित्य—की परम्परासे लेखकने पूरा लाभ उठाया है। श्रीमतीजी से लेकर काँग्रेसी नेतातक हास्यके सभी आलम्बन इस पुस्तकमें उपलब्ध हैं। कहीं संक्षिप्त रेखाचित्र हैं, कहीं सुदामाको लेकर पूरी कहानी कह दी गयी है।

नागार्जुन हास्य-व्यंग्यके अन्यतम कवि हैं। उनके व्यंग्य सशक्त होते हैं। उनकी कविताएँ 'प्रेतका बयान' में संगृहीत हैं। निरालाकी व्यंग्य-परम्परामें इनको सम्मिलित किया जा सकता है। इनके आलम्बन मध्यवर्गीय बाबू वर्ग, एम० एल० ए० नेता आदि रहे हैं। अधिकांशतः राजनीतिक व्यंग्य लिखते हैं और इनका व्यंग्य तीखा होता है।

केशवचन्द्र वर्मा आधुनिक व्यंग्यकारोंमें सशक्त कवि है। 'वीणापाणिके कम्पाउन्ड' में इनके गम्भीर व्यंग्यके दर्शन होते हैं। इन्होंने हास्य-काव्यको नयी दिशा और गति प्रदान की है। विजयदेवनारायणसिंहने 'गाँड', चमगादड़ और मैं' प्रसिद्ध कविताके माध्यमसे विभिन्न काव्य रूपोंकी पैरोडी की है।

एक व्यंग्यप्रधान कविता संग्रह दिनकर सोनवलकर का 'अ से असभ्यता' है। इसमें ८० कविताएँ हैं। विभिन्न सामयिक समस्याओंपर व्यंग्य करते हुए अनेक स्थितियोंके विद्रूपका सशक्त चित्रण हुआ है। सोनवलकरने समाजके जिसभी दुर्बल पक्षको लिया है उसीपर गहरे, और तीखे

[शेष पृष्ठ ७३ का]

अथवा अन्धानुकरणसे बचकर देशके उपलब्ध तकनीकी साधनों, कलात्मक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं और राष्ट्रीय प्रतिभाके अनुसार सतत प्रगति की है। आज रेडियो-नाटक प्रयोग और विकासकी कई मंजिलें तय करके प्रौढ़ता प्राप्त कर चुका है। एक स्वतन्त्र और सशक्त साहित्यिक विधाके रूपमें आज इसकी निजी परम्परा और शैली है, शिल्पगत नियम और व्यवहार हैं, और अपना एक निश्चित राष्ट्रीय स्वरूप है। इसके कारण समूचे देशमें प्रत्येक स्तरपर राष्ट्रीयताके साथ-साथ गहरी नाट्य-चेतनाभी जाग्रत हुई है। सन् १९६२, १९६५ और १९७१ की आपत्कालीन स्थितियोंमें रेडियो-नाटकने देशभरमें राष्ट्रीय चेतना जगाने और जनताका मनोबल बढ़ानेमें जो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, वह सर्वविदित है। इस दृष्टिसे इसने रंगमंचीय नाटक और फिलमकी तुलनामें अपनेको कहीं अधिक प्रभावी और शक्तिशाली सिद्ध किया है। यही नहीं, आजके नये प्रयोगशील रंगमंचीय नाटकपर भी भाव, भाषा, विषय-वस्तु एवं शिल्पगत सौष्ठवकी दृष्टिसे इसका प्रभाव स्पष्ट दिखायी दे रहा है। इन सब तथ्योंके आधारपर यह मानना ग़लत नहीं होगा कि रेडियो-नाटक सही मानोंमें भारतकी जीवन्त एवं प्रतिनिधि नाट्य-विधा है।

व्यंग्य बाण छोड़े हैं। 'चमचा पुराण' में 'चमचा' शब्दकी नूतन व्याख्याके साथ कविने करारा व्यंग्य किया है।

विश्वनाथ शर्मा 'विमलेश' राजस्थानीमें सुन्दर हास्य-कविताएँ करते हैं। 'पशुमेलेमें कवि सम्मेलन', 'जर्देको पान', 'दावत', 'उद्घाटन मिनिस्टर' आदि इनकी प्रसिद्ध हास्य कविताएँ हैं जिनमें व्यंग्यका भी किंचित् छींटा कहीं-कहीं उछलता है।

इस क्षेत्रमें कवियित्रियोंका योगदानभी सराहनीय है। सुश्री रमासिंह, श्रीमती सरला भटनागर, शान्ति मेहरोत्रा तथा सावित्री रस्तोगी विशेष उल्लेखनीय हैं। सात देवरोंकी भाभी' सरला भटनागरकी काव्य पुस्तिका है। इन कविताओंकी भावमधुरताके साथ भाषा सरल और हास्योत्पादनमें सक्षम है। शान्ति मेहरोत्राने सामाजिक कुरीतियोंपर अधिक व्यंग्य किया है।

काव्यके क्षेत्रमें स्वतन्त्र रचनाओंके अतिरिक्त कुछ संकलित काव्य-संग्रहभी हैं। इनमें प्रमुख हैं: बेढब बनारसीका 'हासपरिहास', काका हाथरसीका 'म्याऊँ' और 'पिल्ला' तथा गोपालप्रसाद व्यासका 'हिन्दी-व्यंग्य-विनोद' तथा 'हास्य रसके हल्ले' आदि। इन सभी संग्रहोंमें लगभग उत्कृष्ट रचनाओंकोही सम्मिलित किया गया है। 'हिन्दी-व्यंग्य-विनोद' तथा 'हास्य रसके हल्ले' में क्रमशः २६ तथा ४२ विभिन्न कवियोंकी भिन्न-भिन्न कविताएँ संकलित हैं। इनमें पुराने और प्रतिष्ठित व्यंग्य-विनोद लिखनेवालोंके अतिरिक्त नये तथा प्रतिभाशाली कवियोंका हास्य-व्यंग्यभी सम्मिलित किया गया है। हिन्दीका हास्य-व्यंग्य किन-किन विधाओं और धाराओंमें बह रहा है, इसका प्रमाण ये संग्रह हैं। केवल हिन्दीही नहीं ब्रज, अवधी, राजस्थानी, मालवी, भोजपुरीके हास्य-विनोदकी झाँकीभी इसमें है।

कहानी

हास्य-रसकी कहानियाँ सबसे पहले जी० पी० श्रीवास्तवने कहानी लिखी। बरसानेलाल चतुर्वेदी इन्हें हास्य-रसकी कहानियोंका जन्मदाता मानते हैं। इनकी पुस्तक 'लम्बी दाढ़ी' तथा 'श्रीमान् गप्पीलाल' हास्य कहानियोंका संग्रह है। जनसाधारणमें ये लोकप्रिय हुईं। अधिकांशतः शिक्षा-जगत्की समस्याएँ ही इनकी कहानियोंका विषय है। संस्कृतके पण्डितोंको इन्होंने अपना लक्ष्य बनाया तथा इनकी अध्यापन-विधिभी दोषपूर्ण बतायी 'कालिज-मैच' में विद्यार्थी वर्गमें बढ़ रहे फैशनको चित्रित किया है। गप्पीलालके माध्यमसे मंगल-ग्रहकी सुन्दरी, जलपरी, चरागाहका मिनिस्टर, सुभान तेरी कुदरत तथा बैकुण्ठपुरीका मेंढकका चित्रण किया गया है। इनका महत्त्व इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि इन्होंने हास्य-रसके लेखनमें वृद्धि की। इनके पात्र अधिकतर कार्टून हैं जो अपने ऊटपटाँग करतबोंसे हास्य उत्पन्न करते हैं। गम्भीर व्यक्तित्व, तथा सुलझी बुद्धिको खीझ ही होती है।

अपून्नर्णानन्द वर्माकी कहानियोंके संग्रह हैं—'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला', 'मंगलमोद', 'मनमयूर' तथा 'मिसिरजी' महाकवि चच्चा तथा पं० बिलवासी मिश्र जैसे अनुपम पात्रोंकी सृष्टि की है। इनकी बुद्धि नित नवीन कुलाचें मारती रहती है और नयी-नयी बातें उगलती रहती है। समाज सुधारकी भावनासे प्रेरित होकर इन्होंने तत्कालीन समाजमें प्रचलित विधवा-विवाह विरोध, फैशनपरस्ती, जीहजूरी आदि कुप्रथाओंपर कड़ी चोट करके उनके निवारणका प्रयत्न किया। सामाजिक कुरीतियोंपर व्यंग्य हास्यमय है। घटनाओंका संयोजन उत्कृष्ट है। इनकी वर्णनशैली रोचक है। 'मिसिरजी' पुस्तकके 'माखन चोर' शीर्षक लेखकी दो पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं "भाई साहब हैंभी बड़े हथछुट। मस्तक प्रदेशमें ठीक ब्रह्म-रन्ध्रके ऊपर प्रहार करनेकी उनकी एक बड़ी बुरी आदत है।" इनकी कहानियोंमें कहींभी अस्वाभाविकता एवं अश्लीलता नहीं है।

बेढब बनारसीने कविताओंके अतिरिक्त कहानियाँभी लिखी हैं। 'गाँधीजीका भूत' तथा 'मसूरीवाली' इनके कहानी संग्रह हैं। 'गान्धीजीका भूत' में १४ कहानियाँ हैं जो मनोवैज्ञानिक हैं। अधिकांशतः शुद्ध मनोरंजनके लिए ही इन कहानियोंका निर्माण हुआ है। कहीं-कहीं व्यंग्यका पुट भी आ गया है। इनकी व्यंग्यात्मक कहानियोंमें 'बकरी' प्रसिद्ध है जो मनुष्यकी यन्त्रवत् स्थितिपर प्रहार करती है। 'मसूरीवाली' में 'छड़ी' को अपनी कहानीका पात्र बनाया है। एक सुन्दर स्त्रीके रूपमें ही इसका चित्रण हुआ है। पाठकका कौतूहल बना रहता है। अन्तमें जाकर भेद खुलता है कि यह तो छड़ी थी तब हँसीका फव्वारा छूट पड़ता है। इनकी भाषा तथा वर्णनशैली परिष्कृत और सुरुचिपूर्ण है, पर कहीं-कहीं अश्लीलता-दोष आ गया है।

'बिल्लोका नकछेदन' जगन्नाथप्रसाद मिलिन्दका कहानी संग्रह है। इस संग्रहमें कहानियों के साथ-साथ शब्दचित्र तथा लेखभी संग्रहीत हैं। इनकी कहानियोंके आलम्बन ख्याति-प्राप्त नेता, ढोंगी समाजसेवी, कवि, वैद्य और पेट्र हैं।

हास्य-रसके कथा-साहित्यमें मोहनलाल गुप्त 'भैयाजी बनारसी' का संकलन 'मखमली जूता' उल्लेखनीय हैं। कहानियोंकी विषय-वस्तु सामाजिक एवं राजनीतिक विषमताएँ हैं। भाषा विषयके अनुकूल है तथा कहानियाँ शिल्प की दृष्टिसे उत्कृष्ट हैं। बलदेवप्रसाद मिश्रके दो कहानी-संग्रह प्रकाशमें आये हैं। 'उलूक तन्त्र'; इसमें सात कहानियाँ हैं। दूसरी पुस्तक 'मौलिकताका मूल्य' है। इनका हास्य शिष्ट एवं परिष्कृत है। 'लेखककी बीबी' श्री सरयू पण्डा गौड़ और 'प्रतिभा' श्री सन्तोषनारायण नौटियालके कथा-संग्रह हैं। श्री झपटसराय बनारसीका कथा संग्रह है 'आइसक्रीम'। इसमें हास्य-रसकी अठारह कहानियाँ संगृहीत हैं। भाषामें पूर्वीपन अधिक है। इस संग्रहमें जुटायी गयी हास्य-रसकी सामग्री आधुनिक युगकी मनोवृत्तियोंपर तीखे व्यंग्य के रूपमें हैं।

'जैसे उनके दिन फिरे' हरिशंकर परसाईका कहानी संग्रह है। इसमें उन्नीस कहानियाँ हैं। कहानियोंमें राजनीतिक व्यंग्य है। इन व्यंग्योंमें गहनता है। भाषा सरल और सुबोध होते हुए भी साहित्यिकता लिये हुए तथा सुरुचिपूर्ण है।

'कालिदासके समधी' अलबर्ट कृष्णअली (डॉ० शिवनन्दनप्रसाद) की पुस्तक है। ये निबन्धभी हो सकते हैं पर इनमें कहानीका-सा आनन्द अधिक है। आधुनिक राजनीति साहित्य, समाज, गुरुभक्ति सभीपर करारे व्यंग्य हैं। नरेन्द्र कोहलीकी सत्ताइस चुनी हुई सशक्त व्यंग्य रचनाओं का संग्रह 'एक और लाल तिकोन' है। ये व्यंग्यात्मक रचनाएँ कथाका आस्वाद करानेके साथ-साथ सामाजिक परिवेशकी तर्कहीनता तथा बेहूदेपनके प्रतिभी पाठकको सजग करती हैं। सामाजिक असंगतियोंपर सोद्देश्य व्यंग्य इन कहानियोंमें मिलता है। ये कथाएँ व्यंग्यात्मक अधिक हैं। हास्य इनमें कम है।

जयनाथ 'नलिन' के तीनसंग्रह प्रकाशित हुए हैं : 'शतरंजके मोहरे', 'सभाईलाल' तथा 'बिखरते साये'। इन्हें लेखकने 'व्यंग्य शब्द-चित्र' का नाम दिया है। हिन्दीमें यह नयी चीज है। व्यंग्यात्मक कहानियाँ तो मिलती हैं, किन्तु व्यंग्यात्मक शब्द-चित्र नहीं। इन शब्द-चित्रोंको रेखा-चित्रोंके समीप माना जा सकता है जो कहानीका निकट सम्बन्धी कहा जा सकता है अतः इसे कहानीके अन्तर्गतही लिया जा रहा है। 'शतरंजके मोहरे' में राजनीतिक नेताओं तथा कुछ साहित्यिकोंके 'व्यंग्य' शब्द चित्रों' का संकलन है। 'सभाईलाल' में सभाईलालके पन्द्रह चित्र चित्रित किये गये हैं। शिल्प और कलाकी दृष्टिसे इन चित्रोंमें कहानी और नाटकका सम्मिश्रण परिलक्षित होता है। एक-एक चित्रके भीतर उनके अनेक रंग, रूप, कारनामे, करतूतें, हथकण्डे, उपलब्धियाँ, सिद्धियाँ आदि झाँकती हैं। 'बिखरते साये' में भी व्यंग्यात्मक शब्द-चित्र ही हैं। 'कलाकान्त' में कोईभी तिकड़मी लेखक अपनेको फिट कर सकता है। इन चित्रोंमें व्यंग्यकी अपेक्षा हास्यकी मात्रा अधिक है। ये कहानी तथा निबन्ध दोनोंका आनन्द देते हैं। इन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र कहा जा सकता है। ये काव्यमयी भाषामें निबद्ध नितान्त साहित्यिक रचनाएँ हैं।

उपन्यास

'लफ्टंट पिगसनकी डायरी' बेढब बनारसीका हास्य-रससे परिपूर्ण उपन्यास है। लैफ्टिनैण्ट पिगसन एक मिलिटरी ऑफीसर हैं। वे हिन्दुस्तानके विभिन्न उत्सवोंमें जाते हैं, कवि-सम्मेलन, ब्याह-शादियाँ आदि देखकर उनका हास्यमय रोचक वर्णन करते हैं। सामाजिक एवं साहित्यिक विद्रूपताओंपर मृदुल व्यंग्य किया गया है।

उर्दू लेखक कृष्णचन्दरका 'एक गधेकी आत्मकथा' राजनीतिक व्यंग्य प्रधान उपन्यास है। लेखकने आधुनिक समाज एवं राजनीतिके विकृत अंगोंपर करारी चोटकी है। समाज एवं राजनीतिमें फैला भ्रष्टाचार एवं अराजकता पर गहरे व्यंग्य किये गये हैं। फैशनके मोहसे ग्रस्त नारी समाजकी धन-लोलुपता, दफ्तरोंकी लालफीताशाहीका भी लेखकने अत्यन्त सफलतापूर्वक पर्दाफाश किया है। भाषा मुहावरेदार एवं प्रसादगुणयुक्त है। कहीं-कहींपर हास्य अशिष्ट हो गया है।

स्व० श्री मोहनसिंह सेंगरका हास्य-उपन्यास 'खगेन बाबू' है। 'खगेन बाबू' के माध्यमसे प्रकाशकोंका एवं तथाकथित साहित्यिकोंके विकृत आचरणको उद्घाटित किया गया है। आधुनिककालकी सामाजिक एवं राजनीतिक विकृतियोंपर यह एक सशक्त व्यंग्य है। पद्मा शर्माका 'मिनिस्टरका बेटा' भी व्यंग्यात्मक उपन्यासोंकी कोटिमें ही आता है। मिनिस्टरके बेटे होनेके कारण चोरबाजारी, जालसाजी, रिश्वतखोरी आदि कुरीतियोंको फैलानेमें सहयोगीही नहीं बल्कि उनमें आकण्ठ डूबे हुए हैं और तुर्रा यह कि यदि कोई मुँह खोले तो उसे अपने मिनिस्टर पिताके नामसे डराते धमकाते हैं।

श्री लाल शुक्लका 'राग दरबारी' अकादमी पुरस्कार प्राप्त व्यंग्य-उपन्यास है। गाँवकी राजनीतिमें जो विकृ-

तियाँ हैं उसपर मार्मिक व्यंग्य किया गया है। पात्रोंका चरित्र-चित्रण स्वाभाविक हुआ। कालेजोंमें अशिक्षित प्रबन्धक कितना गोलमाल करते हैं इसका पर्दाफाश किया गया है। ग्रामीण जीवनपर आधृत होनेके कारण इसमें ग्राम्य दोषभी समाविष्ट हो गया है।

'सबहिं नचावत राम गोंसाई' भगवतीचरण वर्माकी एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इस उपन्यासमें राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचारपर तीखा प्रहार किया गया है। राधेश्याम, रामलोचन, जबरसिंह इस उपन्यासके प्रमुख पात्र हैं। नेता लोग चन्दा चयनके चक्करमें किस प्रकार असामाजिक तत्त्वोंको बढ़ावा देते हैं इसका बखूबी अंकन हुआ है। ". . . . . वैसे त्याग और बलिदानकी भावना कांग्रेस के हरेक सदस्य और स्वयंसेवकमें है, लेकिन इनमेंसे हरेक आदमीको रुपयोंकी जरूरत है। और उसे जुगतके साथ खरीदा जासकता है।" भगवतीचरण वर्माका व्यंग्य सशक्त एवं सोद्देश्य है। आधुनिक राजनीतिक नेताके दोहरे व्यक्तित्वपर मार्मिक व्यंग्य कसे गये हैं। चोरबाजारी, भ्रष्टाचार तथा इनके बनाये रखनेमें नेताओंका सहयोग ही इस उपन्यासका मुख्य विषय है।

'एक उलूक कथा' डॉ० श्यामसुन्दर घोषका व्यंग्य उपन्यास है। डॉ० घोषने इसमें समाजके श्याम पक्षको प्रस्तुत करनेकी घोषणा की है। दुनियाका उल्लूकी दृष्टिसे अवलोकन किया गया है। हमारा समाज उजालेमें खुल कर जीनेकी अपेक्षा अँधेरेका शौकीन होता जा रहा है। टेढ़े रास्तेसे वह अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। उल्लू अँधेरेमें ही देखता है और वह मूर्खताका भी प्रतीक है। इस प्रकार यह उल्लूका बहुपक्षीय व्यंग्य-उपन्यास है। बात स्वर्गसे प्रारम्भ होती है जिसमें ईश्वरका मजाक उड़ाया गया है। पूरे समाजकी बुराइयों, विकृतियोंपर लेखकने उल्लूके माध्यमसे झुँझलाहट उतारी है।

जी० पी० श्रीवास्तवका उपन्यास 'मिस्टर अकिल बहादुर' हास्य और शृङ्गारका अजीब सम्मिश्रण है। अमरीकातककी यात्राके दौरान जिन परेशानियों, स्थानों, अनुभवों आदिका वर्णन है वह जन-सामान्यको हँसानेमें समर्थ है। यद्यपि स्थितियोंमें नावीन्य है तथापि कई विसंगत ऊलजलूल बातोंसे पुरानेपनकी गन्धभी आती है। जहाँ कहीं शृंगारिक वर्णन है वहाँ लेखकने हास्योत्पादनके लिए ही ऐसे प्रसंगोंकी सृष्टिकी लगती है। कहा भी है— 'शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो'। प्राइवेट सेक्रेटरीके रूपमें अपने-अपने पतियोंके साथ जानेवाली पत्नियोंने पतियोंकी पर्याप्त छीछालेदर की है। इसी भाँति इस उपन्यासके साथ दी गयी लेखककी हास्य कहानी 'लेखक महोदय' में भी लेखिकाइन महोदयाने लेखकजीको खूब आड़े हाथों लिया है। पर यह सब अवास्तविक चित्रण है। इस कहानीके व्यंग्यका आलम्बन सम्पादकगण हैं। इस उपन्यासके प्रत्येक अध्यायको स्वतन्त्र कहानीके रूपमें भी पढ़ा जा सकता है। उपन्यासके अन्तर्गत शीर्षक तथा भाषा दोनोंमें ही, मुहावरोंकी प्रचुरता है।

'पाँच एब्सर्ड उपन्यास' में नरेन्द्र कोहलीने आधुनिक जीवनपर चढ़ी अन्तर्विरोधोंकी परतोंको व्यंग्यके शस्त्रसे उघाड़ा है। लेखक इन्हें एब्सर्ड उपन्यास मानता है, साथ ही यहभी कहा है कि इनकी रचना पश्चिमी एब्सर्ड दर्शन की परिभाषाको ध्यानमें रखकर नहीं हुई है। कोहलीके ये एब्सर्ड उपन्यास आजके जीवनपर घिरे प्रपंचोंका पर्दाफाश करते हैं। यही अन्दाज इन रचनाओंको साधारण व्यंग्य रचनाओंसे अलग करता है। व्यंग्यका तीखापन कहींभी हलका नहीं होता और न कहनेके अन्दाजमें ही कहीं ढिलाई आती है।

श्री गुरुदत्तका उपन्यास 'डाल-डालके पंछी' में उन मन्त्रियोंपर करारा व्यंग्य है जिनको सुधारनेके लिए एक 'कामराज योजना' बनायी गयी थी। उस कामराज योजना से बहुतसे मन्त्री बच गये थे जिन्होंने दल-बदल नीति अपना कर अपना जीवन-यापन किया था। वास्तविकताका यथार्थ अंकन इस उपन्यासकी विशेषता है।

नाटक

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का हास्य-एकांकी, प्रहसन, नाटक आदि लिखनेमें अन्यतम स्थान है। 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ' अश्कके सात प्रहसनोंका संग्रह है। इसमें अव्यवसायिक नाटक करनेवालोंकी परेशानियोंका दिग्दर्शन कराया गया है। सदस्योंका फ्री पासोंके प्राप्त करनेकी सकुचित मनोवृत्तिकी व्यंग्यात्मक आलोचना की गयी है। 'कइसा साहब कइसी आया' में बम्बइया हिन्दीके साथ मध्यवर्गीय लोगोंकी कामुक प्रवृत्तियों एवं आयायोंके साथ दुर्व्यवहार का खाका खींचा गया है। 'सयाना मालिक' में ऐसे सयाने मालिकको नौकर बनाया जाता है जो नौकर रखनेसे पूर्व बहुत छानबीन करता है फिरभी उसका तथाकथित विश्वसनीय नौकर उसकी चोरी करके भाग जाता है और पड़ौसी उसके सयानेपनका उपहास उड़ाते हैं। 'तौलिये' प्रहसनमें फैशनपरस्तीपर व्यंग है। पाश्चात्य एवं पौरस्त्य संस्कृतियोंका संघर्ष है। 'अधिकारका रक्षक' अश्कका

दूसरा नाटक है जो अत्यन्त लोकप्रिय व्यंग्य नाटक है। इसमें लेखकने चुनावके अवसरपर झूठे वचन देने वाले ऐसे नेताओंकी पोल खोली है, जिनकी कथनी और करनी में आकाश-पातालका अन्तर रहता है। 'पैंतरे' तथा 'छठा बेटा' क्रमशः व्यंग्य नाटक और प्रहसन है। 'साहबको जुकाम है' में एकांकी संगृहीत है जिनमें कुछ प्रहसन तथा एक व्यंग्य लघु नाटिका है। अश्कके प्रत्येक प्रहसनमें नयी सूझ है। नाटकोंके पात्र सजीव हैं। प्रहसन सूक्ष्म संयत एवं मार्मिक हैं। उनकी पैनी दृष्टि दैनिक जीवनमें ही अट्टहासकी सामग्री खोज निकालती है।

स्व० उदयशंकर भट्ट प्रतिभा-सम्पन्न लेखक थे। गम्भीर नाटकों एवं एकांकियोंके सृजनके साथ-साथ उन्होंने हास्य-प्रधान नाटक-नाटिकाएँ भी लिखीं जो उत्कृष्ट हास्यमें योगदान देती हैं। 'दस हजार', 'गिरती दीवारें', 'दो अतिथि', 'नये मेहमान' एवं 'वर-निर्वाचन' में सामाजिक विद्रूपताओंपर मृदुल व्यंग्य कसे गये हैं। शिष्ट एवं परिष्कृत हास्यके सृजनमें भट्टजीकी हिन्दी साहित्यको अमूल्य देन है।

विष्णु प्रभाकर हिन्दीके यशस्वी नाटककार हैं। इनके हास्य प्रधान नाटकोंका प्रसारण आकाशवाणीके विभिन्न केन्द्रोंसे प्रायः हुआ करता है। 'कांग्रेसमैन बनो', 'व्यग्य' 'भूख' तथा 'जीतके बोल' इनके प्रसिद्ध हास्य-रेडियो-रूपक हैं। स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, सरल भाषा एवं स्थायी प्रभाव डालनेमें इनके एकांकी उच्चकोटिके हैं।

प्रभाकर माचवेने भी इस क्षेत्रमें यथेष्ठ यश अर्जित किया है। 'अदालतके पास होटल', 'गलीके मोड़पर' तथा 'यदि हम वे होते' उनके श्रेष्ठ हास्य-नाटक हैं। श्री कणाद ऋषि भटनाग के हास्य एकांकियोंका संग्रह 'सफरके साथी' उल्लेखनीय है। दृश्य एवं श्रव्य दोनोंही दृष्टियोंसे यह संग्रह महत्त्वपूर्ण है। 'चाय पार्टियों' तथा 'बड़े साहब' सन्तोषनारायण नौटियालके हास्य-एकांकियोंके संग्रह हैं जिनमें आधुनिक समाजकी रीति-रिवाजों, क्रिया-कलापों को अपने हास्यका आलम्बन बनाया गया है। एन० आर० टण्डनका 'दिमागका बीमा' आकाशवाणीके विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हास्य-व्यंग्यसे परिपूर्ण अभिनेय एकांकियोंका सरस संग्रह है। 'लक्कड़बग्घा' में जी० पी० श्रीवास्तवके तीन देश सुधार परक हास्यपूर्ण प्रहसन हैं। स्वदेशकुमार का 'मेरे इक्कीस हास्य एकांकी' के अधिकांश नाटकोंमें समाज तथा राजनीतिक वातावरणको आलम्बन बनाकर, हास्य एवं व्यंग्यकी सृष्टिकी गयी है। 'चक्कर और चक्कर, एक और आठ हास्य-एकांकियोंका संग्रह है। इसमें संगृहीत एकांकी रोचक हैं।

'गधे' हबीब तनवीरका बालोपयोगी प्रहसन है जिसका प्रत्येक संवाद हास्यपूर्ण हैं। गोपाल शर्माका व्यंग्यात्मक नाटक 'सौन्दर्य-प्रतियोगिता' है। इसमें एक ऐसे नेतापर व्यंग्य है जो उपदेश देनेमें तो बड़े उदार विचारोंके प्रतिनिधि हैं किन्तु घरमें बड़े रूढ़िवादी प्रकृतिके परिचायक हैं। स्वयं सौन्दर्य प्रतियोगिता-आयोजन के जज बने हैं किन्तु पुत्रीको प्रतियोगितामें भाग लेनेकी आज्ञा नहीं देते। 'रंग' शचीन्द्र पँवार 'इन्द्र' का हास्य-एकांकी संग्रह है। इसमें तीन एकांकी संगृहीत हैं। 'परवाने', 'सतफेरे' तथा 'बिंदिया' इनकी भाषापर उर्दू का स्पष्ट-प्रभाव परिलक्षित होता है। ये एकांकी रंगमंचपर भी अभिनीत हो चुके हैं। 'दामादका चुनाव' सत्यप्रकाश संगरका पूर्णतः व्यंग्य नाटक है। इसमें तीन नाटक सम्मिलित हैं, जो रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार तथा भाई भतीजवादपर तीव्र आघात करते हैं।

श्री देवराज 'दिनेश' के हास्य एकांकियोंका संग्रह 'बिना बुलाए पंच' है। एकांकी रोचक एवं रंगमंचके उपयुक्त हैं।

यों डॉ० रामकुमार वर्मा ऐतिहासिक तथा सामाजिक कथा-वस्तुको लेकर,ही नाट्य-रचनामें प्रवृत्त होते हैं, किन्तु हास्य-रसात्मक एकांकी निर्मम में भी वे पीछे नहीं रहे। इनके दो हास्य एकांकी संग्रह पर्याप्त ख्यातिप्राप्त हैं। 'जुहीके फूल' तथा 'रिमझिम'। 'जुहीके फूल' में चार हास्य एकांकी हैं। 'हीरेके झुमके' नारी मनोविज्ञानपर आधारित व्यंग्य है जबकि 'मैं बोर हूँ' में प्रौढ़ोंकी मनस्थितिपर हास्य है। 'महाभारतमें रामायण' युवकोंपर परिहास है तथा 'मेंढ़कके बीज' में बच्चोंके मनोविज्ञान पर केन्द्रित हास्य है। 'रिमझिम' में सोलह एकांकी गुम्फित हैं जो वर्माजीके हास्य-विवेचनकी किसी-न-किसी कोटिमें फिट बैठते हैं। वर्माजीका एक अन्य प्रहसन 'घरका मकान' शुद्ध हास्यकी दृष्टिसे यह प्रहसन उल्लेखनीय है।

'ढोलकी पोल' श्री चिरंजीतका झलकी संग्रह है। ये झलकियाँ रेडियो-रूपकमें भी समा सकती हैं क्योंकि ये पहले रेडियो पर ही प्रसारित हुई हैं। पुस्तकाकार बादमें हुई। सन् १९६५ के भारत-पाक युद्धके दौरान पाकिस्तानी खबरची और ढिंढोरचीकी नकलपर इनका निर्माण हुआ। सामयिक दृष्टिसे ही इनका महत्त्व रहा है। अब १९७१ में पुनः भारत-पाक युद्धके दौरान इनका प्रसारण हुआ था जो अत्यन्त लोकप्रिय रहा।

श्री राजकुमार के 'तिकड़म' नाटकमें राजनीतिक दलों के नेताओंकी बैठकबाजीका चित्रण है। अब यह रहस्य-

पूर्ण नहीं है कि राजनीतिक नेताओंसे नये रईस जमकर लाभ उठाते हैं। दिनको रात बतानेमें तनिकभी हिचक न दिखानेवाले ये पूँजीपति लोग स्वार्थको खटाईमें पड़ता देखकर जिस तरह रंग बदलते हैं, उसका चित्रांकन बहुतही व्यंग्यात्मक शैलीमें हुआ है।

निबन्ध

हास्य-व्यंग्यके लिए अन्य सब विधाओंकी अपेक्षा निबन्ध विधाही सबसे सशक्त है जो परिमाण और परिणाम, दोनोंही दृष्टियोंसे समृद्ध हैं।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने विजयानन्द दुबे नाम से कुछ हास्यरसात्मक पत्र लिखे हैं जो 'दुबेजी की डायरी' तथा 'दुबेजीकी चिट्ठियाँ' में संकलित हैं। 'डायरी' में समाज या राजनीतिके किसी अंग-विशेषपर गहरी चोट है, उसकी तीव्रतम आलोचना है तथा उसका परिहास है। चिट्ठियोंमें विनोद और शिक्षा का अपूर्व सम्मिश्रण है। विधवा-विवाह, जातिप्रथा, पर्दा प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किये गये हैं। कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं जो व्यक्ति यह आशा करते हैं कि विधवाश्रमके कार्यकर्ताओंको सदाचारी, ब्रह्मचारी, त्यागी, निर्लोभी होना चाहिये, वे पागल हैं, घास खा गये हैं। उन्हें चाहिये कि वे पहाड़ोंकी कन्दराओंमें जाकर निवास करें, बस्तीमें न रहें, या फिर संसारका और मनुष्य स्वभावका अध्ययन करके अपने भेजेमें थोड़ी अक्ल पैदा करें।

हरिशंकर शर्माके दो निबन्ध-संग्रह उपलब्ध हुए है। 'मनकी मौज', इसमें ग्यारह निबन्ध हैं जो कवित्व शक्तिसे परिपूर्ण हैं। 'गड़बड़-गोष्ठी'। इस 'गोष्ठी' में अनेक नये-पुराने प्रसंगोंपर ढंग-बेढंगके विविधव्यंग्य पढ़नेको मिलेंगे। इनकी संख्या तेईस है। 'सड़ियल-सम्पादक', 'अड़ियल'-'उपदेशक', 'बौड़म-वैद्य', 'चुङ्गी', महात्म्य, आदि स्फुट रचनाओंमें चुटकुलोंको आनन्द है। 'हुक्का-पानी' बेढब बनारसीके हास्य-व्यंग्य प्रधान तीस आत्म-व्यंजक निबन्धोंका संग्रह है। इनकी भाषा प्रसाद-गुण युक्त है तथा व्यर्थका शब्दाडम्बर नहीं है। कविताओंकी अपेक्षा निबन्ध-निर्माणमें ये अधिक सफल कहे जा सकते हैं। पं० कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' का 'महाकवि साँड' विविध निबन्धोंका संग्रह है। इनके निबन्ध वर्णनात्मक कोटिके हैं। अतिरंजित घटनाओंका समावेश करके हास्यका सृजन किया गया है किन्तु वह कुरुचिपूर्ण नहीं है।

'कलमकी कमाई' तथा 'कलम' कुल्हाड़ा' श्री कौतुक बनारसीके व्यंग्य-प्रधान निबन्ध-संग्रह हैं। इन्होंने साहित्यिक विषयोंपर मधुर व्यंग्य लिखे हैं। 'साहित्यिक ढंग', अखिल स्वर्गीय कवि सम्मेलन, सरपटवादी साहित्य सम्मेलन, भावी कवियोंके पत्र इनके निबन्धोंके शीर्षक हैं जो स्वयं अपने विषयको स्पष्ट करते हैं। इनकी भाषा साफ-सुथरी है। निबन्धोंमें सजीवता, रोचकता तथा मनोरंजकता यथेष्ट मात्रामें है। मोहनलाल गुप्त 'भैयाजी बनारसी' के विनोदपूर्ण लेखोंका संग्रह 'बनारसी रईस' है। इसमें इक्कीस लेख लिखे गये हैं। 'बनारसी रईस' 'असत्यके प्रयोग', 'खुशामद करिए', 'बीबियाँ' शीर्षक लेखोंमें उत्कृष्ट हास्यका सृजन हुआ है। शैली विषयके सर्वथा अनुकूल है तथा हास्य स्वाभाविक है।

'व्यक्तिगत' शीर्षकसे पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने व्यंग्य और हास्यकी मीठी चुटकियाँ लेते हुए अपने सम्पर्कमें आनेवाले महानुभावोंके संस्मरण दिये हैं तथा बम्बई जैसी विशाल नगरीका व्यंग्यात्मक खाका खींचा है वह अनुपम है। डॉ० ओमप्रकाशकी 'बिल्टू-साहब' में व्यंग्य-विनोद के चौदह काल्पनिक चित्र हैं। जो वैयक्तिक जीवनसे भी सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। पं० बिलवासी मिश्र, महाकवि चच्चा, सभाईलालकीही श्रेणीमें 'बिल्टू साहब' का निर्माण हुआ है। बिल्टू-साहबके चरित्र-चित्रणमें लेखकने अधिक सजीवता तथा वास्तविकताका अंकन किया है जो विश्व-विद्यालयी परिवेशमें नितान्त उपयुक्त है।

श्री वासुदेव गोस्वामी कृत 'बुद्धिके ठेकेदार' में उनके विनोदपूर्ण निबन्धोंका संग्रह है। लेखोंकी भाषा दुरूह है। हास्य शब्द-जन्य है। यत्नपूर्वक हास्योत्पन्न करनेकी चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। 'बीबीके लेक्चर', 'तिलक खानाबदोश' का हास्य-व्यंग्य पूर्ण निबन्धोंका संकलन है। इन निबन्धोंमें लेखकने राजनीतिसे रोमांसतक जन-जीवनके अनेक पहलू चित्रित किये हैं। ये खाके जहाँ आजकी सामाजिक विषमताओं, आर्थिक संघर्षों और राजनीतिक उखाड़पछाड़के परिचायक हैं, वहीं वर्तमान Status quo के विरुद्ध संघर्ष करनेकी प्रेरणा भी देते हैं। लेखक उर्दू शायरी एवं शैलीसे अधिक प्रभावित है।

'उलटी-गंगा' मिश्रीमल जैन तरंगितका व्यंग्य-प्रधान निबन्ध संग्रह है। 'सुनहला-पक्षी' एक ऐसा व्यंग्य है जो आजके जीवनको साक्षात् प्रस्तुत करता है। 'बेकार-बन्धु-सम्मेलन' समाजकी पंगुतापर प्रहार करता है। 'विज्ञापन' लेख तो जैसे आजके नकलीपनकी एक-एक परत खोलता है फिर जिस निबन्धके आधारपर इस संग्रहका नाम 'उलटी-गंगा' रखा गया है वहतो अपने आपमें एक विलक्षण रचना है।

'जब मैंने मूँछ रखी' श्री बाल [illegible]
निबन्धोंका संग्रह है । सभी लेखोंमें समाज तथा राजनीतिके किसी-न-किसी अंगपर सटीक चोट की गयी है । लेखकने सहज बोल-चालवाली आकर्षक शैलीमें नये जमानेकी बखिया उधेड़ी है । डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदीका व्यंग्यात्मक निबन्ध-संग्रह 'जॉन पांडे' है ।

कन्हैयालाल कपूरकी 'हास्य बत्तीसी' है । इस संग्रह का नाम 'हास्य बत्तीसी' इसलिए रखा गया है कि इसे पढ़ते समय अपनी बत्तीसीका प्रयोग कई बार किया जाता है, ऐसा लेखकका दावा है । इस संकलनमें विविध सामग्री है । हास्य पात्रोंके रूपमें 'सर्वज्ञ जी', 'मिर्जा नुक्ता', 'हातम साहब' और 'महाबोर'; साहित्यिक व्यंग्यके रूपमें 'शीर्षककी समस्या', 'साहित्यकारोंके बीचमें', 'इक शेर याद आया'; सामाजिक व्यंग्य चित्र जैसे—'साप्ताहिक कटाक्ष', 'पानखोर' और विशुद्ध हास्यके उदाहरण—'घर बनाया', 'कॉल बैल लगवाई', 'कम खर्चीकी बात' आदि हैं ।

हरिदत्त शर्माका हास्य-व्यंग्यके निबन्धोंका संग्रह 'हम भी गए मेलेमें' है । फिक्र तौंसवीने 'डींग-डींग असेम्बली' में तेरह हास्यपूर्ण निबन्धोंको निबद्ध किया है । ये उर्दूके अत्यन्त प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार हैं । 'मॉडर्न मेघदूत' उनका एक अन्य परिष्कृत हास्य-निबन्ध संग्रह है ।

'रिश्वतके अनेक ढंग' तथा 'काठकी हाँडियाँ' देवराज दिनेशके व्यंग्य-लेखों व कहानियोंका संग्रह है । इनमें हास्यभी है, पर कहीं-कहीं । समाज और जीवनकी विभिन्न विद्रूपताओंका चित्रण इन लेखोंमें हुआ है । इन संग्रहोंके सभी निबन्ध दैनिक जीवनसे सम्बन्धित हैं और इनका विषयभी प्रायः नया नहीं है, पर लेखककी नपी-तुली शैली रोचक और प्रस्तुतीकरणका प्रकार सीधा, स्पष्ट एवं सपाट है । 'टेलीफोन', 'व्यस्त पत्नी—आलसी पति' आदि निबन्ध लेखककी आपबीती-सी लगते हैं । सभी प्रवाहमयी भाषामें रचित निबन्ध हैं ।

मार्कण्डेय वाजपेयीके संकलन 'चलचित्र' की रचनाएँ नित्य-प्रतिके साधारण जीवनके विषयोंसे सम्बद्ध हैं । उनका ध्येय गम्भीर साहित्यके अध्ययनसे आयी हुई थकानको हटाना है । इसी कारण उनकी भाषा नित्य-प्रतिकी बोलचालकी भाषा है । इसमें उन्नीस निबन्ध संगृहीत हैं । आधुनिक सशक्त व्यंग्यकार केशवचन्द्र वर्माकी 'मुर्ग-छाप हीरो' तथा 'लोमड़ीका मांस' दो निबन्ध पुस्तकें हैं । इन पुस्तकोंके प्रत्येक निबन्धमें आजके जीवनके किसीभी रूपके भीतर छिपी हुई गन्दगीपर ऐसे कलात्मक ढंगसे चोट कीगयी है कि आलम्बन तिलमिलाकर रह जाये ।

प्रभाकर माचवेके हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धोंका संग्रह 'खरगोशके सींग' नामसे प्रकाशित है । इस संग्रहके लेख माचवेजीके हास्य-रसका निचोड़ हैं । हँसी-हँसीमें माचवेजीने बड़े तीखे नश्तर लगाये हैं । 'आटोग्राफ बटोरक' निबन्धके कुछ अंश दर्शनीय हैं—"हस्ताक्षर बटोरक यूनिवर्सिटी पहुँचे । सर्वत्र सुनसान । श्मशान शान्त । एक लाइब्रेरी । बगीचा । पेन्शनरोंके सवेरे फुटबौल खेलनेके लॉन । यह है 'सा विद्या या विमुक्तये' का विमुक्त दृश्य ।" इनकी भाषामें वक्रता तथा निबन्धोंमें बौद्धिकताका आधिक्य है ।

'जुलूसोंका शहर' मानिक बच्छावतका निबन्ध संग्रह है । लेखकने कलकत्ता महानगर में रोज होनेवाली परेशानियोंका वर्णन बड़ीही रोचक शैलीमें किया है । ये वर्णन हास्यमयभी हैं और व्यंग्यमयभी ।

रोशनलाल सुरीरवालाके तीन संग्रह 'शंख और मूर्ख', 'लँगड़ी-भिन्न' तथा 'खाटपर हजामत' नामसे हैं । इन पुस्तकोंमें संकलित 'नाम माहात्म्य', 'साहित्य सर्जन' तथा 'हमने खाटपर हजामत बनाई', 'विद्वांसः मूर्खाः भवन्ति', 'यादरामः एक चंचल छात्र', 'हिन्दी साहित्य : सामान्य ज्ञान परीक्षा' आदि लेख विशेष रोचक हैं । इनमें उन्मुक्त हास्यकी छटा है ।

'गणितके गणेश' में भुवनेश्वरीप्रसाद 'भुवन' ने कार्यालयोंमें काम किस ढंगसे होते हैं, उनका हास्यात्मक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है ।' अंगदका पाँव' तथा 'ह्याँसे वहाँ' संग्रह श्रीलाल शुक्लके हैं । 'अंगदका पाँव' में साहित्यिक कलाबाजियाँ अधिक हैं । 'ह्याँसे वहाँ' में निबन्ध, कहानी, रेखाचित्र सभी हैं । 'लखनऊ', 'हारे हुए नेतासे इण्टरव्यू', 'खलनायककी कहानी', 'भविष्य-निर्माणका कारखाना', 'शरीफ दोस्तके नाम चार पत्र' आदि विनोदपूर्ण गद्यके उत्तम उदाहरण हैं । शुक्लजीका व्यंग्य मार्मिक तथा गहरा है । रामनारायण उपाध्यायके भी व्यंग्य-निबन्धोंके दो संग्रह हैं : 'धुंधले काँचकी दीवार' तथा 'गरीब और अमीर' पुस्तकें ।' चमक-दमक तथा भड़कीले आवरण-पृष्ठोंपर लोग अधिक आर्कषिक होते हैं चाहे उनके अन्दर कुछ उपयोगी ज्ञानवर्धक बातें हों, न हों । पर साधारण प्रकाशक द्वारा प्रकाशित कम मूल्यवाली, सीधी-सादी पुस्तक का कोई ग्राहक नहीं है । समाजकी दूषित मनोवृत्तिपर लेखकने आघात किया है । श्री युधिष्ठिर भार्गव रचित

'नजूमिस्तान' हास्यसे भरपूर है। इसमें आठ निबन्ध संक-लित हैं। ज्योतिषमें विश्वास रखनेवालोंकी एक अलगही नगरी है 'नजूमिस्तान' तथा अन्धविश्वासोंके खोखलेपन को ही इसमें उजागर किया गया है।

बरसानेलाल चतुर्वेदीने हास्यपूर्ण सुन्दर निबन्ध लिखे हैं। इनमें 'चाचा चौधरी', 'मूंछ पुराण', 'चकल्लस', 'महामति चाणक्य राजदूत बने' तथा 'हाथीके पंख' प्रमुख हैं। इन निबन्धोंमें हास्यके सभी भेद उपलब्ध हैं। खुशा-मदी, मुफ्तखोर, बारातियोंकी बेढंगी बातें इनके आल-म्बन हैं। 'राजभवनकी सिगरेट दानी' में श्रीनारायण चतुर्वेदीने देशमें व्याप्त आपाधापी, झूठे प्रदर्शन और गर्व-की बढ़ती हुई भावनापर मीठे व्यंग्य किये हैं। प्रत्येक शीर्षक कार्टून-चित्रोंसे सुशोभित है। चतुर्वेदीजीने साहि-त्यिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि कुछ उल्लेखनीय घटनाओं या समस्याओंको चुनकर बड़ी सरस और व्यंग्य-पूर्ण शैलीमें उन्हें अभिव्यक्त किया है। साप्ताहिक पत्र 'दिनमान' ने इस पुस्तककी समीक्षामें लिखा था: "निबन्धों के व्यंग्यमें ओछापन नहीं है, नही इतना तीखापन है कि पाठक तिलमिला जाये। निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि इधर कुछ-एक वर्षोंमें प्रकाशित हास्य-व्यंग्यके संग्रहोंमें यह सबसे अधिक पठनीय है।"

श्री गोपालप्रसाद व्यासने हास्य-रसपूर्ण निबन्धोंकी कई पुस्तकें लिखी हैं: 'मैंने कहा', 'तो क्या होता', 'कुछ सच कुछ झूठ', 'हलो-हलो', आदि। इन पुस्तकोंके अति-रिक्त दैनिक हिन्दुस्तानमें 'यत्र तत्र सर्वत्र' तथा 'नारदजी खबर लाये हैं' शीर्षकसे नियमित रूपसे लिखते हैं जिनमें इनकी हास्योत्पादन शक्तिका पूर्ण परिचय मिलता है। पर कहीं-कहीं शिष्टताका उल्लंघन हो जाता है। तुकें मिलानेका प्रयासमात्र लगता है कई बार। सार्थक बातें प्रायः कम होती हैं। पर 'तो क्या होता' तथा 'हलो-हलो' में हास्यका सुन्दर नियोजन हुआ है। "अगर शूर्पनखाँकी नाक न कटी होती? तो क्या राम-रावण युद्ध होता? यदि राम-रावण युद्ध न होता तो वाल्मीकि रामायण, तुलसीका मानस तथा गुप्तजी की 'साकेत'—किसीका भी निर्माण होना असम्भव था।" अगर कविकी कवितामें अर्थ न हो, तो बहुतसे अनर्थ होनेसे बच जायें। "जैसे भँवरोंको रातभर कमलोंमें बन्द न होना पड़े, बेचारे राजहंसोंको दूध और पानी अलग-अलग करनेकी परेशानी न उठानी पड़े।" ....आदि-आदि। इस प्रकार लेखक की मौलिक उद्भावना है। 'हलो-हलो' संग्रहके निबन्धोंमें कहानीकारस है, नाटकों जैसा संवाद-कौशल है और समालोचकों जैसी शोध संलग्नता है। इसमें पन्द्रह निबन्ध संकलित हैं। 'मैं तुलसीदास बोल रहा हूँ', 'शुक्लजीकी मूँछोंका रहस्य', 'बिहारीके ससुर बोले', आदि ऐसी रचनाएँ हैं जिनके शीर्षक पढ़ने से पूरी रचनाको आद्यन्त पढ़नेका कौतूहल जगता है। 'नये साहित्यका नवीनतम काल विभाजन' में शुक्लजी ने स्वर्गमें जाकरभी साहित्यका इतिहास लिखना प्रारम्भ किया है, और उसे भी चार भागोंमें विभाजित किया है, जैसे—'राज्याश्रयी शाखा', 'विश्वविद्यालयी शाखा', 'अखबारी शाखा' और 'निराश्रयी शाखा। ये चारों विभाजनही आधुनिकसाहित्यिक प्रवृत्तिपर व्यंग्य हैं।

'उलझे-सुलझे तार' स्वामी शिवलखनदासजीकी रचना है। विषय-चयनको देखते हुए लेखककी पैनी नजर की सराहना किये बिना नहीं रहा जाता। एकभी लेखतो ऐसा नहीं जो आजकी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर न लिखा गया हो। इसमें राजनीतिक नेताओं, उनके चाटुकारों आदिपर बहुतही संयत भाषामें करारा व्यंग्य है। लेखकने विद्यार्थियोंकी समस्याओंपर व्यंग्यात्मक सहानुभूति दर्शायी है।

डॉ० सुदर्शन मजीठियाकी 'इण्डिकेट-बनाम-सिण्डीकेट' रचनामें राजनीतिक, सामाजिक आदि विषयोंपर व्यंग्या-त्मक ढंगसे बुराइयोंके उन्मूलनका प्रयास किया गया है। कांग्रेसके विभाजनके पश्चात् सत्ताधारी नयी कांग्रेसके प्रतिनिधि 'इण्डिकेट' तथा पुरानी कांग्रेसके हाईकमाण्डको 'सिन्डीकेट' नाम देनाभी हास्यमूलकही है।

'सब रंग और कुछ राग' सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेयकी बहुचर्चित पुस्तक है। आजके समयमें पुस्तकके प्रारम्भमें 'भूमिका' भी लिखनेकी प्रथा-सी चल पड़ी है। इसी सम्बन्धमें 'भूमिका तो रह ही गई' लेखमें लेखकने भूमिका लिखनेवालोंपर मधुमिश्रित कटाक्ष किया है। इस पुस्तकमें अठारह विचारपूर्ण हास्य-व्यंग्यात्मक लेख संकलित हैं।

बनारसके साहित्यकारोंने मिलकर एक क्लब बनाया था जिसका नाम 'ठलुआ-क्लब' रखा था। 'ठलुआ' की परिभाषा इस प्रकार की गयी है: "वस्तुतः बाह्य और अन्तरसे चमचमाते हुए कलेवरको ही ठलुआ कहा जा सकता है। कर्त्तव्यको कर्त्तव्य रूपमें करता हुआभी जो जीवनको निरपेक्ष रख सके, वही 'ठलुआ' है।" ठलुआ-क्लबकी स्थापना वेढब बनारसीने की थी। क्लबकी

गोष्ठियाँ साहित्यिक मनोरंजनके लिए होती रही हैं और इन गोष्ठियोंके विवरणही 'एक कोड़ी एक', 'दो कोड़ी दो' तथा 'तीन कोड़ी तीन' में संकलित हैं जो निश्चयही हास्योत्पादनमें सक्षम हैं। 'भारतपुत्र नौरंगीलाल' आंचलिक भाषामें लिखे पन्द्रह निबन्धोंका संकलन है। इसके लेखक श्री अमृतलाल नागर हैं। प्रायः सामाजिक कुरीतियाँही लेखकका लक्ष्य रही हैं।

हरिमोहन झाने 'खट्टर काका' जैसे अद्भुत चरित्रका निर्माणकर हास्य-रसके चरित्रोंमें श्रीवृद्धि की है। 'खट्टर काका' ने काव्य-शास्त्र जैसे गम्भीर विषयको भी विनोदपूर्ण बना दिया है। उनका सिद्धान्त है: 'रसं पीत्वा रसं वदेत्'। और इसी सिद्धान्त कथनको उन्होंने अपनी कथनी और करनीमें चरितार्थकर देवी-देवता, स्वर्ग-नरक, धर्म-कर्म, पाप-पुण्यको हास्य-लहरी में बहा दिया है। लेखक पटना विश्वविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यक्ष रह चुके हैं और दर्शन जैसे गम्भीर और गहन विषयके अध्येता, अध्यापक रहनेके बाद हास्य सृजनमें प्रवृत्ति वास्तवमें विलक्षण है।

'सोनेके दाँत' निबन्ध-संग्रहमें डॉ० संसारचन्द्रके सोद्देश्य निबन्ध हैं। इन निबन्धोंमें लेखककी वाणी किसी-न-किसी बनावटीपन, मिथ्याचार या ढोंगपर कसके चोट करती है। 'नौकर', 'रेशमी रजाई', 'नीमका पेड़' आदि निबन्धोंमें व्यंग्यके साथ-ही-साथ वैयक्तिक निर्बन्ध निबन्धों का रसभी मिलता है। भाषा प्रवाहशील और मुहावरेदार है। जीवनके सामान्य विषय एवं घटनाएँ इस पुस्तक की सामग्री हैं। 'सटक सीताराम' टूटे-उखड़े शरणार्थी मनकी उपज है जिसमें खण्डित होनेकी पीड़ाको भुलानेकी कोशिश की गयी है। इसमें व्यंग्यकी अपेक्षा हास्यकी मात्रा अधिक है। 'अपनी डालीके काँटे' में चिन्ताहीन तथा सन्तुलित मनका उन्मुक्त हास्य है। व्यंग्यका तीखापन भी हास्यकी चाशनीमें पगा हुआ है।

कृश्नचन्दरकी हास्य-व्यंग्यात्मक चार-पाँच पुस्तकें हैं: 'फूल और पत्थर', 'सरगम', 'नींद क्यों नहीं आती', 'कांच के टुकड़े' तथा 'स्वराज्य' के पचास वर्ष बाद'। 'सरगम' में व्यंग्यात्मक निबन्धों एवं संस्मरणोंका संग्रह है। 'ऊँचे स्वर', 'धीमे स्वर', 'अपने स्वर', इन तीन खण्डोंमें सामग्री विभाजित की गयी है। नेहरू, कैनेडी, मण्टो, अश्क तथा स्वयं लेखकको लेखकने व्यंग्यात्मक संस्मरणोंमें ग्रथित किया है। 'नींद क्यों नहीं आती' में ग्यारह निबन्ध और अनेक चुटकुले हैं जो व्यंग्यकारकी मौलिक सूझ-बूझके परिचायक हैं। इन निबन्धोंमें समाज, राजनीति, युवक और युवतियोंके आपसी सम्बन्धोंपर व्यंग्यमें काफी तीखापन है। लेखकने 'काँचके टुकड़ों' (ऐनक) को आँखोंपर रखकर समाजकी उन बुराइयोंको उद्घाटित किया है जो साधारणतया लोगोंकी दृष्टिमें नहीं आतीं। इन निबन्धोंमें कहीं मधुकी मिठास है, कहीं नीमकी-सी कड़वाहट, 'अकाल उगाओ' में राजनीतिक दुरवस्था एवं दुर्व्यवस्थापर आक्षेप है तो 'रिश्तेकी जरूरत' में गलतफहमीपर टिका हास्य है। 'गन्दा दान' में नैतिकताके तथाकथित ठेकेदारोंपर हास्यमय व्यंग्य किया है। 'कुत्ता-प्लानिंग' में भाई-भतीजावादपर कटाक्ष है। इन निबन्धोंमें कदम-कदमपर ढोंग, दिखावा, छल, सामाजिक शोषण आदिपर हास्यसे 'शुगरकोटेड' व्यंग्य है।

'जो है सो', 'बे बातकी बात' तथा 'बातका बतंगड़' में आत्मानन्द मिश्रके शुद्ध हास्यकी दृष्टिसे निर्मित निबन्ध हैं। हिन्दी साहित्यमें व्यंग्य तो मिलते हैं पर शुद्ध हास्यकी कृतियाँ कठिनतासे प्राप्त होती हैं। पर 'बे बातकी बात' में विशुद्ध हास्य अपनी समस्त शुभ्रताके साथ विद्यमान है। 'रेडियोका घरमें आनाभी मुसीबत है। हवाई जहाज पर प्रथम सैरके क्या अनुभव होते हैं? डॉक्टरोंका चक्कर भुक्तभोगी जानते हैं पर लेखकने सभीका विनोदात्मक रोचक वर्णन किया है। मिश्रजीके सभी निबन्धोंमें संयम, शिष्टता और दृष्टिकी व्यापकता है। वे सर्वत्र उन विसंगतियोंको खोल देते हैं जो सामाजिक जीवनको पंगु और निष्क्रिय बना रही हैं। साधारणसे प्रसंगोंमें भी चुहलका मौका मुहावरों, लोकोक्तियों और रूढ़ शब्दोंके भीतरसे भी निकाल लेते हैं। भाषाकी सजीवता और रसवत्ता इन लेखोंका प्राण है।

शरद जोशीने व्यंग्यका वरण किया है। राजनीति, समाज, फिल्म या साहित्य कोईभी क्षेत्र हो, उनकी पैनी और प्रखर दृष्टि विकृतियोंको खोज निकालनेमें माहिर है। 'किसी बहाने' तथा 'जीपपर सवार इल्लियाँ' दोनोंही पुस्तकोंमें इक्कीस-इक्कीस लेख संकलित हैं। 'गोशालाके प्रबन्धक' में तीखी ताजगीसे लेखक लिखता: 'पशुओंमें कहावत है —'जहाँ चारा वहाँ मुँह मारा' अवसरवाद कहाँ नहीं है?'' 'जीपपर सवार इल्लियाँ' शीर्षक निबन्ध आजकी शासन-व्यवस्थापर करारी चोट करता है। 'एक मिनी भ्रष्टाचार' में व्यक्तिकी नैतिकता व्यंग्यका लक्ष्य है। 'सरकारका जादू' रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावादका जीता-जागता नमूना पेश करता है।

"बिना दच्छिनाके आप्लीकेशन नई होयगा। भ्रष्टाचार कभी खतम नई होयेंगा साहेबा।" जोशीजीने लगभग राजनीतिको लक्ष्यमें रखकर अपनी कलम उठायी है। इनके व्यंग्यमें 'तिलमिला देनेवाली चोट' सच्चाई और स्वाभाविकता है। सत्य कटु तो होता ही है इसलिए उसका आघात भी तीव्र होता है।

रवीन्द्रनाथ त्यागीके निबन्ध संग्रह 'बैठे-ठाले', 'भिति चित्र', 'खुली धूपमें नागपर', 'मल्लिनाथकी परम्परा' तथा 'कृष्णवाहनकी कथा' हैं। इनके लेखोंकी विशेषता यह है कि विषय घिसा-पिटा या उथला नहीं है और न ही राजनीतिक विषयोंके प्रति उनका लगाव है। विषय चाहे साहित्य या संस्कृतिसे सम्बद्ध हो, व्यक्तिपरक हो या समाजपरक अथवा रहस्य रोमांच से पूर्ण हो या प्रपंच-वंचनासे परिपूर्ण, सभी पर लेखक निर्द्वन्द्व कुशलता और आत्मीयतासे लिखता है। इनके व्यंग्य सहज और सरल हैं तथा बीच-बीचमें बहुत शिष्टताके साथ चुटकी लेते चलते हैं। त्यागीजीकी आस्था व्यंग्यको घातक हथियार बनानेकी अपेक्षा उससे 'कान्ता-सम्मत उपदेश' देनेमें है। हास्योत्पादनमें पुनरावृत्ति तथा पिष्टपेषणकी प्रवृत्ति इनमें नहीं है। लेखक हास्यसे प्रारम्भकर परतोंपर परतें खोलता हुआ उन्मुक्त हास्यका सृजन करता है और चुपकेसे व्यंग्यकी हल्की-सी चिकोटी भी काट लेता है। जैसे 'राष्ट्रीय कीड़ेका चुनाव' में जमकर हंसानेके बाद सरकारी लाल फीताशाहीपर एकही झटकेमें अपना आक्रोश भी प्रकट कर जाता है। जब बातमेंसे बात निकलती है तो वह पाठकके अनुमानसे परे होती है। उछलता-कूदता लेखक कब किस आलम्बनसे जा टकरायेगा? कौन सोच सकता है कि 'प्राप्ते तु षोडषे वर्षे' में लड़की न होनेके संयोगपर हंसते-हंसाते लेखक हिन्दी कविता और शासकीय आश्वासनोंके गीतकी विशेषतापर व्यंग्य करने लगेगा?

हरिशंकर परसाई आजके जाने-माने हास्य-व्यंग्यकार हैं। 'निठल्लेकी डायरी' तथा 'पैगम्बरकी डायरी' पैने और तीखे व्यंग्योंका संग्रह हैं। परसाई केवल मनोरंजनके लिए व्यंग्य नहीं लिखते। 'और अन्तमें उनके चौंतीस पत्र संकलित हैं जो उन्होंने किसी पत्रके सम्पादकको लिखे थे। इनमें मुख्यत: साहित्यिक और साधारणतः सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रोंकी गतिविधियोंपर व्यंग्य है। विस्तार इनमें पर्याप्त है। 'पगडण्डियोंका जमाना' में वाक्य-वाक्य व्यंग्यसे त्रस्त है। कबीर जैसी निस्संग, बेलौस शैलीमें वे विकृतियोंके सच्चे रूपको उघाड़कर रख देते हैं। तभी उन्होंने कबीरके प्रिय साधो शब्दपर अपने एक संग्रहका नामकरण 'सुनो भई साधो' किया है। सामाजिक, राजनीतिक पथा सामयिक घटनाओंको आधार बनाकर व्यंग्यकी रचना हुई है। 'नया खून पुराना खून' में सत्तारूढ़ व्यक्तियोंपर नयी पीढ़ी पद लोलुपताका आरोप लगाती है उसीके उत्तरमें लेखकका नम्र निवेदन है कि "साधो, नये खूनको सोचना चाहिए कि उसके सामने तो पूरी जिन्दगी पड़ी है कभी भी पदपर बैठ सकेंगे। पर पुराने खूनके दिन गिने-गिनाये हैं, उन्हें कुछ दिन और रह लेने दो।" भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक है। इसीकी दुहाई देकर 'मिलावटकी सभ्यता' में लेखक कहता है: जो विदेशी हमारे मालमें 'मिलावट' की शिकायत करते हैं, वे नहीं जानते कि यह मिलावट नहीं है 'समन्वय' है जो हमारी संस्कृतिकी आत्मा है।" 'शिकायत मुझे भी है' तथा 'ठिठुरता हुआ गणतन्त्र' अन्य नवीन निबन्ध संग्रह हैं। परसाईजीका सारा लेखन सोद्देश्य है और सभी रचनाओंके पीछे एक साफ सुलझी हुई वैज्ञानिक दृष्टि है जो समाजमें फैले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग, अवसरवादिता, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि कुप्रवृत्तियोंपर तेज रोशनी डालनेके लिए हर समय सतर्क रहती है।

डॉ० संसारचन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी हास्य-व्यंग्य निबन्ध: रूपयात्रा' निबन्ध संकलन है। संकलनका सम्पादन हिन्दी हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धोंकी ऐतिहासिक परम्परा, शक्ति, क्षमता और स्वरूपका प्रतिनिधि रूप प्रस्तुत करनेके उद्देश्यसे किया गया है। इसमें निबन्धकारको सामने न रखकर निबन्ध उत्कृष्टताको ही चयनका आधार स्वीकार किया गया है। यथासम्भव यह प्रयत्नभी किया गया है कि प्रस्तुत संकलन अपनी मूल चेतनामें अधिकाधिक प्रतिनिधि बनकर हास्य-व्यंग्यात्मक साहित्यके बारेमें प्रचलित भ्रामक धारणाओंका सुगमतासे निराकरण कर सके। इस संग्रहमें ३० लेखोंके विभिन्न निबन्ध संगृहीत हैं। और इसे स्थायी तथा शिष्ट हास्यकी उपलब्धि कहा जा सकता है। श्री केशवचन्द्र वर्माके सम्पादनमें 'आधुनिक हास्य-व्यंग्य' एक संकलन तैयार हुआ है जिसमें विविध लेखकोंकी प्रतिनिधि रचनाएँ संकलित हैं।

स्फुट संकलन—

साहित्यकी विभिन्न विधाओं—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्धके अतिरिक्त भी हास्य-व्यंग्य के कुछ ऐसे संकलन हैं जिनमें या तो साहित्यिक विधाओं के सभी रूप इकट्ठे दृष्टिगोचर होते हैं या चुटकुले आदि हैं जिन्हें एक अलग शीर्षक—'स्फुट' में रखा जा सकता

है। जैमिनी कौशिक 'बरुआ' के सम्पादकत्वमें 'बैंगनदेव नमोनमः' पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसमें बैंगनकी स्तुतिमें अनेक किस्से सुनाये गये हैं। देवराज दिनेश, गोपालप्रसाद व्यास, विमलेश, काका हाथरसी आदिकी हास्य-कविताओंके साथ-साथ कुछ लेख भी संकलित हैं। इसीप्रकार 'बरुआ' जीके ही सम्पादनमें काका हाथरसीकी षष्टि पूर्तिपर उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया गया था। 'तुक्तम् शरणम् गच्छामि'। यह तुकोंका बेजोड़ संग्रह है। इसकी तुकोंसे कोई तुकान्त कविता सहज ही कर सकता है। शब्दकोशों की भाँतिही इसमें तुकोंका कोश अकरादि क्रमसे संगृहीत है। पर अधिकांश तुकें निरर्थक शब्दोंके आधारपर रची गयी हैं।

अनुवाद

कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक पुस्तकें अनूदित रूपमें उपलब्ध हैं। फ्रांसके प्रसिद्ध प्रहसन-लेखक मौलियरकृत नाटकों एवं प्रहसनोंकी सर्वत्र बड़ी चर्चा रही है। उन्हींके प्रहसनोंको जी० पी० श्रीवास्तवने अनूदित किया है। ये हैं : 'नाकमें दम', 'जवानी बनाम बुढ़ापा', 'मार-मारकर हकीम', 'आँखोंमें धूल' और 'हवाई डॉक्टर' भी श्रीवास्तवजी द्वारा अनूदित प्रहसन हैं। इन अनूदित नाटकोंमें श्रीवास्तवजीने मूल नाटकोंको भारतीय वातावरणमें ढालनेका प्रयास किया है। बँगलासे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'नाट्य कौतुक' का अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेयने 'हास्य-कौतुक' के नामसे किया है। ठाकुरकीही एक पुस्तक 'व्यंग कौतुक' के अनुवादक महादेव साहा हैं। कुछ छोटे-छोटे एकांकियोंमें समसामयिक नवीन हिन्दू धर्म आन्दोलनके बारेमें कविका मनोभाव व्यंग-विद्रूपके रूपमें व्यक्त हुआ है। तीन हास्य नाटिकाओं की पुस्तक 'बैकुण्ठका खाता' के अनुवादक श्रीराजेश दीक्षित हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसके मूल लेखकहैं। संकलित नाटिकाएँ हैं : 'मुक्तिका उपाय', 'बैकुण्ठका खाता' तथा 'स्वर्गीय प्रहसन'। 'मुक्तिका उपाय' का लक्ष्य वे ढोंगी साधु हैं, जो अपनी लच्छेदार बातोंसे भोले-भाले अशिक्षित लोगोंको बहकाकर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। 'स्वर्गीय प्रहसन' में पौराणिक देवताओंके अतिरिक्त अन्य जो सैकड़ों कल्पित देवी-देवता और पैदा हो गये हैं — मनसा, शीतला, ओला आदि — उनके द्वारा असली देवताओंके पीड़ित होनेका सुन्दर चित्रण है।

बंकिमकी पुस्तक 'लोक-रहस्य' का पं० रूपनारायण पाण्डेयने अनुवाद किया है। बंकिम बाबूने जहाँ प्रगतिशीलता और सभ्यताकी ओटमें बढ़ती हुई कृत्रिमता, चाटुकारिता, आत्मपतन और अश्लील विलासितापर 'बाबू', 'गर्दभ', 'अंग्रेज स्त्रोत', 'काले गोरे', 'दाम्पत्य दण्डविधि' आदि लेखों द्वारा चोटकी है, वहीं सभी निबन्धोंमें स्थान-स्थानपर पुराने रूढ़िवादी घरोंमें फैले मनोदैन्य तथा संस्कृत पाठशालाओंके पण्डितों, विद्यार्थियों तथा पाश्चात्य संस्कृतिके उपासकोंपरभी करारा व्यंग्य किया है।

सैमुअल बैकेटके बहुचर्चित नाटक 'Waiting for God' का कृष्ण बलदेव 'वैद' ने 'गॉडोंके इन्तजारमें' नामसे रूपान्तर किया है। यह नाटक आजकी यान्त्रिकता, बेकारी, शून्यतापर कटु प्रहार करता है।

मराठी लेखक र० श० केलकरकी पुस्तक हिन्दीमें 'कुत्तेकी दुम' नामसे प्राप्त है। इस संकलनके सभी लेख व्यंग्य-प्रधान और विनोद-प्रधान हैं।

उर्दू लेखक कृश्नचन्दरकी पुस्तक 'स्वराज्यके पचास वर्ष बाद' (अनुवादक : बालकृष्ण) के उन्नीस निबन्ध हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली के हैं। 'मेरा मन पसन्द पृष्ठ', 'स्वराज्यके पचास वर्ष बाद', 'विटामिन', 'बैचलर आफ आर्ट्स' ऐसे निबन्ध हैं जिनमें हास्यकी अधिकता है। उर्दू लेखक कन्हैयालाल कपूरकी पुस्तक 'मीठा खट्टा कड़वा' (अनुवादक : डॉ० जयभगवान गोयल) के हास्य तथा व्यंग्य लेखोंसे लेखककी जिन्दादिली प्रकट होती है। इन सभी अनुवादोंमें मूल रचनाका ही भास होता है। इसी अनुवाद-परम्परामें फिक्र तौंसवीके सम्पादनमें 'स्वतन्त्रता के बादका सर्वश्रेष्ठ उर्दू हास्य-व्यंग्य' (अनुवाद : शेरजंग गर्ग) प्रकाशित हुआ है। इसमें निबन्ध, एकांकी, जीवनी, पत्र, डायरी, भाषण, समीक्षा, कॉलम — सभीपर उर्दूके प्रतिष्ठित लेखकों की उत्कृष्ट रचनाएँ ही संकलितकी गयी हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल सभी पत्र-पत्रिकाओंमें हास्य-व्यंग्यके स्तम्भ विद्यमान हैं। साप्ताहिक हिन्दुस्तानमें 'ताल-बेताल' तथा धर्मयुगमें 'बैठे-ठाले' स्तम्भके अन्तर्गत निबन्धात्मक हास्य-व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। 'हाशिये पर' तथा 'रंग और व्यंग्य' स्तम्भके अन्तर्गत लघु-कविताएँ, कुण्डलियाँ, पद और चुटकुले आदि प्रकाशित होते हैं, जिनसे समसामयिक हास्य-व्यंग्यकी प्रवृत्तिका परिचय मिलता रहता है। इसी प्रकार सरिता, कादम्बिनी, नवनीत आदि मासिक पत्रिकाओंमें भी हास्य-व्यंग्यात्मक लेखोंके अतिरिक्त कार्टून चित्र होते हैं जो मनोरंजनके साथ-साथ कभी-कभी विचा-

"बिना दच्छिनाके आप्लीकेशन नई होयगा । भ्रष्टाचार कभी खतम नई होयेंगा साहेबा।" जोशीजीने लगभग राजनीतिको लक्ष्यमें रखकर अपनी कलम उठायी है। इनके व्यंग्यमें 'तिलमिला देनेवाली चोट' सच्चाई और स्वाभाविकता है। सत्य कटु तो होता ही है इसलिए उसका आघात भी तीव्र होता है।

रवीन्द्रनाथ त्यागीके निबन्ध संग्रह 'बैठे-ठाले', 'भिति चित्र', 'खुली धूपमें नागपर', 'मल्लिनाथकी परम्परा' तथा 'कृष्णवाहनकी कथा' हैं। इनके लेखोंकी विशेषता यह है कि विषय घिसा-पिटा या उथला नहीं है और न ही राजनीतिक विषयोंके प्रति उनका लगाव है। विषय चाहे साहित्य या संस्कृतिसे सम्बद्ध हो, व्यक्तिपरक हो या समाजपरक अथवा रहस्य रोमांच से पूर्ण हो या प्रपंच-वंचनासे परिपूर्ण, सभी पर लेखक निर्द्वन्द्व कुशलता और आत्मीयतासे लिखता है। इनके व्यंग्य सहज और सरल हैं तथा बीच-बीचमें बहुत शिष्टताके साथ चुटकी लेते चलते हैं। त्यागीजीकी आस्था व्यंग्यको घातक हथियार बनानेकी अपेक्षा उससे 'कान्ता-सम्मत उपदेश' देनेमें है। हास्योत्पादनमें पुनरावृत्ति तथा पिष्टपेषणकी प्रवृत्ति इनमें नहीं है। लेखक हास्यसे प्रारम्भकर परतोंपर परतें खोलता हुआ उन्मुक्त हास्यका सृजन करता है और चुपकेसे व्यंग्यकी हल्की-सी चिकोटी भी काट लेता है। जैसे 'राष्ट्रीय कीड़ेका चुनाव' में जमकर हंसानेके बाद सरकारी लाल फीताशाहीपर एकही झटकेमें अपना आक्रोश भी प्रकट कर जाता है। जब बातमेंसे बात निकलती है तो वह पाठकके अनुमानसे परे होती है। उछलता-कूदता लेखक कब किस आलम्बनसे जा टकरायेगा? कौन सोच सकता है कि 'प्राप्ते तु षोडषे वर्षे' में लड़की न होनेके संयोगपर हंसते-हंसाते लेखक हिन्दी कविता और शासकीय आश्वासनोंके गीतकी विशेषतापर व्यंग्य करने लगेगा?

हरिशंकर परसाई आजके जाने-माने हास्य-व्यंग्यकार हैं। 'निठल्लेकी डायरी' तथा 'पैगम्बरकी डायरी' पैने और तीखे व्यंग्योंका संग्रह हैं। परसाई केवल मनोरंजनके लिए व्यंग्य नहीं लिखते। 'और अन्तमें उनके चौंतीस पत्र संकलित हैं जो उन्होंने किसी पत्रके सम्पादकको लिखे थे। इनमें मुख्यतः साहित्यिक और साधारणतः सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रोंकी गतिविधियोंपर व्यंग्य है। विस्तार इनमें पर्याप्त है। 'पगडण्डियोंका जमाना' में वाक्य-वाक्य व्यंग्यसे त्रस्त है। कबीर जैसी निस्संग, बेलौस शैलीमें वे विकृतियोंके सच्चे रूपको उघाड़कर रख देते हैं। तभी उन्होंने कबीरके प्रिय साधो शब्दपर अपने एक संग्रहका नामकरण 'सुनो भई साधो' किया है। सामाजिक, राजनीतिक पथा सामयिक घटनाओंको आधार बनाकर व्यंग्यकी रचना हुई है। 'नया खून पुराना खून' में सत्तारूढ़ व्यक्तियोंपर नयी पीढ़ी पद लोलुपताका आरोप लगाती है उसीके उत्तरमें लेखकका नम्र निवेदन है कि "साधो, नये खूनको सोचना चाहिए कि उसके सामने तो पूरी जिन्दगी पड़ी है कभी भी पदपर बैठ सकेंगे। पर पुराने खूनके दिन गिने-गिनाये हैं, उन्हें कुछ दिन और रह लेने दो।" भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक है। इसीकी दुहाई देकर 'मिलावटकी सभ्यता' में लेखक कहता है: जो विदेशी हमारे मालमें 'मिलावट' की शिकायत करते हैं, वे नहीं जानते कि यह मिलावट नहीं है 'समन्वय' है जो हमारी संस्कृतिकी आत्मा है।" 'शिकायत मुझे भी है' तथा 'ठिठुरता हुआ गणतन्त्र' अन्य नवीन निबन्ध संग्रह हैं। परसाईजीका सारा लेखन सोद्देश्य है और सभी रचनाओंके पीछे एक साफ सुलझी हुई वैज्ञानिक दृष्टि है जो समाजमें फैले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग, अवसरवादिता, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि कुप्रवृत्तियोंपर तेज रोशनी डालनेके लिए हर समय सतर्क रहती है।

डॉ० संसारचन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी हास्य-व्यंग्य निबन्धः रूपयात्रा' निबन्ध संकलन है। संकलनका सम्पादन हिन्दी हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धोंकी ऐतिहासिक परम्परा, शक्ति, क्षमता और स्वरूपका प्रतिनिधि रूप प्रस्तुत करनेके उद्देश्यसे किया गया है। इसमें निबन्धकारको सामने न रखकर निबन्ध उत्कृष्टताको ही चयनका आधार स्वीकार किया गया है। यथासम्भव यह प्रयत्नभी किया गया है कि प्रस्तुत संकलन अपनी मूल चेतनामें अधिकाधिक प्रतिनिधि बनकर हास्य-व्यंग्यात्मक साहित्यके बारेमें प्रचलित भ्रामक धारणाओंका सुगमतासे निराकरण कर सके। इस संग्रहमें ३० लेखोंके विभिन्न निबन्ध संग्रहीत हैं। और इसे स्थायी तथा शिष्ट हास्यकी उपलब्धि कहा जा सकता है। श्री केशवचन्द्र वर्माके सम्पादनमें भी आधुनिक हास्य-व्यंग्य' एक संकलन तैयार हुआ है जिसमें विविध लेखकोंकी प्रतिनिधि रचनाएँ संकलित हैं।

स्फुट संकलन—

साहित्यकी विभिन्न विधाओं—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्धके अतिरिक्त भी हास्य-व्यंग्य के कुछ ऐसे संकलन हैं जिनमें या तो साहित्यिक विधाओं के सभी रूप इकट्ठे दृष्टिगोचर होते हैं या चुटकुले आदि हैं जिन्हें एक अलग शीर्षक—'स्फुट' में रखा जा सकता

है। जैमिनी कौशिक 'बरुआ' के सम्पादकत्वमें 'बैंगनदेव नमोनमः' पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसमें बैंगनकी स्तुतिमें अनेक किस्से सुनाये गये हैं। देवराज दिनेश, गोपालप्रसाद व्यास, विमलेश, काका हाथरसी आदिकी हास्य-कविताओंके साथ-साथ कुछ लेख भी संकलित हैं। इसीप्रकार 'बरुआ' जीके ही सम्पादनमें काका हाथरसीकी षष्टि पूर्तिपर उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया गया था। 'तुक्तम् शरणम् गच्छामि'। यह तुकोंका बेजोड़ संग्रह है। इसकी तुकोंसे कोई तुकान्त कविता सहज ही कर सकता है। शब्दकोशों की भाँतिही इसमें तुकोंका कोश अकरादि क्रमसे संगृहीत है। पर अधिकांश तुकें निरर्थक शब्दोंके आधारपर रची गयी हैं।

अनुवाद

कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक पुस्तकें अनूदित रूपमें उपलब्ध हैं। फ्रांसके प्रसिद्ध प्रहसन-लेखक मौलियरकृत नाटकों एवं प्रहसनोंकी सर्वत्र बड़ी चर्चा रही है। उन्हींके प्रहसनोंको जी० पी० श्रीवास्तवने अनूदित किया है। ये हैं : 'नाकमें दम', 'जवानी बनाम बुढ़ापा', 'मार-मारकर हकीम', 'आँखोंमें धूल' और 'हवाई डॉक्टर' भी श्रीवास्तवजी द्वारा अनूदित प्रहसन हैं। इन अनूदित नाटकोंमें श्रीवास्तवजीने मूल नाटकोंको भारतीय वातावरणमें ढालनेका प्रयास किया है। बँगलासे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'नाट्य कौतुक' का अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेयने 'हास्य-कौतुक' के नामसे किया है। ठाकुरकीही एक पुस्तक 'व्यंग कौतुक' के अनुवादक महादेव साहा हैं। कुछ छोटे-छोटे एकांकियोंमें समसामयिक नवीन हिन्दू धर्म आन्दोलनके बारेमें कविका मनोभाव व्यंग-विद्रूपके रूपमें व्यक्त हुआ है। तीन हास्य नाटिकाओं की पुस्तक 'बैकुण्ठका खाता' के अनुवादक श्रीराजेश दीक्षित हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसके मूल लेखकहैं। संकलित नाटिकाएँ हैं : 'मुक्तिका उपाय', 'बैकुण्ठका खाता' तथा 'स्वर्गीय प्रहसन'। 'मुक्तिका उपाय' का लक्ष्य वे ढोंगी साधु हैं, जो अपनी लच्छेदार बातोंसे भोले-भाले अशिक्षित लोगोंको बहकाकर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। 'स्वर्गीय प्रहसन' में पौराणिक देवताओंके अतिरिक्त अन्य जो सैकड़ों कल्पित देवी-देवता और पैदा हो गये हैं—मनसा, शीतला, ओला आदि—उनके द्वारा असली देवताओंके पीड़ित होनेका सुन्दर चित्रण है।

बंकिमकी पुस्तक 'लोक-रहस्य' का पं० रूपनारायण पाण्डेयने अनुवाद किया है। बंकिम बाबूने जहाँ प्रगतिशीलता और सभ्यताकी ओटमें बढ़ती हुई कृत्रिमता, चाटुकारिता, आत्मपतन और अश्लील विलासितापर 'बाबू', 'गर्दभ', 'अंग्रेज स्त्रोत', 'काले गोरे', 'दाम्पत्य दण्डविधि' आदि लेखों द्वारा चोटकी है, वहीं सभी निबन्धोंमें स्थान-स्थानपर पुराने रूढ़िवादी घरोंमें फैले मनोदैन्य तथा संस्कृत पाठशालाओंके पण्डितों, विद्यार्थियों तथा पाश्चात्य संस्कृतिके उपासकोंपरभी करारा व्यंग्य किया है।

सैमुअल बैकेटके बहुचर्चित नाटक 'Waiting for God' का कृष्ण बलदेव 'वैद' ने 'गॉडोंके इन्तजारमें' नामसे रूपान्तर किया है। यह नाटक आजकी यान्त्रिकता, बेकारी, शून्यतापर कटु प्रहार करता है।

मराठी लेखक र० श० केलकरकी पुस्तक हिन्दीमें 'कुत्तेकी दुम' नामसे प्राप्त है। इस संकलनके सभी लेख व्यंग्य-प्रधान और विनोद-प्रधान हैं।

उर्दू लेखक कृशनचन्दरकी पुस्तक 'स्वराज्यके पचास वर्ष बाद' (अनुवादक : बालकृष्ण) के उन्नीस निबन्ध हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली के हैं। 'मेरा मन पसन्द पृष्ठ', 'स्वराज्यके पचास वर्ष बाद', 'विटामिन', 'बैचलर आफ आर्ट्स' ऐसे निबन्ध हैं जिनमें हास्यकी अधिकता है। उर्दू लेखक कन्हैयालाल कपूरकी पुस्तक 'मीठा खट्टा कड़वा' (अनुवादक : डॉ० जयभगवान गोयल) के हास्य तथा व्यंग्य लेखोंसे लेखककी जिन्दादिली प्रकट होती है। इन सभी अनुवादोंमें मूल रचनाका ही भास होता है। इसी अनुवाद-परम्परामें फिक्र तौंसवीके सम्पादनमें 'स्वतन्त्रता के बादका सर्वश्रेष्ठ उर्दू हास्य-व्यंग्य' (अनुवाद : शेरजंग गर्ग) प्रकाशित हुआ है। इसमें निबन्ध, एकांकी, जीवनी, पत्र, डायरी, भाषण, समीक्षा, कॉलम—सभीपर उर्दूके प्रतिष्ठित लेखकों की उत्कृष्ट रचनाएँ ही संकलितकी गयी हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल सभी पत्र-पत्रिकाओंमें हास्य-व्यंग्यके स्तम्भ विद्यमान हैं। साप्ताहिक हिन्दुस्तानमें 'ताल-बेताल' तथा धर्मयुगमें 'बैठे-ठाले' स्तम्भके अन्तर्गत निबन्धात्मक हास्य-व्यंग्य रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। 'हाशिये पर' तथा 'रंग और व्यंग्य' स्तम्भके अन्तर्गत लघु-कविताएँ, कुण्डलियाँ, पद और चुटकुले आदि प्रकाशित होते हैं, जिनसे समसामयिक हास्य-व्यंग्यकी प्रवृत्तिका परिचय मिलता रहता है। इसी प्रकार सरिता, कादम्बिनी, नवनीत आदि मासिक पत्रिकाओंमें भी हास्य-व्यंग्यात्मक लेखोंके अतिरिक्त कार्टून चित्र होते हैं जो मनोरंजनके साथ-साथ कभी-कभी विचा-

उद्रेक भी करते हैं। इन पत्रिकाओंमें उच्च स्तरका हास्य-व्यंग्यही अधिक प्रकाशित होता है जिनमें निबन्ध अथवा एकांकी विधाही प्रमुख होती हैं।

हिन्दीकी इन पत्रिकाओंके अतिरिक्त समग्रतः हास्यकी पत्रिकाएँ भी निकलती हैं जिनमें 'चुलबुला' तथा 'नोंक-झोंक' मासिक पत्र हैं। 'ठिठोली' हास्य-व्यंग्यकी वार्षिक पत्रिका है। यह दिल्लीसे प्रकाशित होती है। इस पत्रिका में हिन्दीकी प्रायः सभी उपलब्ध विधाओंका आकलन हुआ है। 'हास्य-कलश' भी वार्षिक पत्रिका है। यह बरेलीसे प्रकाशित होती है। इस पत्रिकाको जी०पी० श्रीवास्तव, काका हाथरसी, देवराज दिनेश, रमई काका आदि का सहयोग प्राप्त है। नये लेखकोंकी कृतियाँभी इसमें प्रकाशित होती हैं।

अखिल भारतीय हास्य-रस कवि-सम्मेलन प्रायः होलीके अवसर पर होता है। उसीमें पढ़ी जानेवाली कविताओंको संयोजक पुस्तिका रूपमें 'हास्य और हास्य' नामसे प्रस्तुत करते हैं। पहली अप्रैलको मूर्ख बनानेकी अंग्रेजी परम्पराके अन्तर्गत '१ अप्रैल' नामसे एक छोटी-सी पत्रिका प्रकाशित होती है जिसके लेख हास्योत्पादन में समर्थ हैं। होलीके अवसरपर 'अखिल भारतीय मूर्ख महासम्मेलन' की रपट तैयार होती है जो अपनी ऊल-जलूल, मूर्खताभरी बातोंसे जन साधारणका मनोरंजन करती हैं। होलीके ही अवसरपर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तानका प्रतिवर्ष 'व्यंग्य-विनोद' विशेषांक निकलता है जिसकी सामग्री वस्तुतः साहित्यिक कोटिके अन्तर्गत स्वीकार की जा सकती है।

इन पत्रिकाओंमें अधिकांश पत्रिकाएँ यद्यपि उच्च कोटिके हास्यकी नहीं हैं तथापि हमारे पत्रकार हास्य की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। इन पत्रिकाओंके व्यंग्य चित्रोंका भी हास्यकी दृष्टिसे योगदान है। सामाजिक एवं राजनीतिक विषयोंको लेकर विविध हास्य-व्यंग्य चित्र पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं। इन व्यंग्य-चित्रोंका भी हास्यके सृजनमें अधिकाधिक महत्त्व आँका जा रहा है।

समीक्षात्मक ग्रन्थ

हिन्दीके आधुनिक साहित्यके आरम्भसे ही लेखक हास्यकी ओर उन्मुख रहे हैं। इसलिए आलोचनाकी दिशा भी हास्य-व्यंग्यका क्षेत्र पिछड़ा हुआ नहीं है। पी० ० की उपाधिके लिए किये गये शोध कार्यमें डॉ० [illegible]सानेलाल चतुर्वेदीका 'हिन्दी साहित्यमें हास्य-रस' शोध-ग्रन्थ उपलब्ध है। इस ग्रन्थ द्वारा चतुर्वेदीजी ने हास्यकी सैद्धान्तिक विवेचना कर अपनी आलोचनात्मक प्रतिभाका परिचय दिया है। भारतीय काव्य-शास्त्रके अनुसार हास्यके जितने भेदोपभेद प्राप्त हैं उनका विवेचन तथा कहीं-कहीं पाश्चात्य काव्य-शास्त्रके प्रचलित भेदोंसे साम्य भी दिखाया है। उन्होंने पैरोडी एवं कॉमेडी के भिन्न रूपोंकी परिभाषा देकरही सन्तोष नहीं किया वरन् इनके भेदों, उपभेदोंका भी वर्णन कर विषयको अधिक पूर्ण बनाया है। इन्होंने अपने ग्रन्थोंमें भारतेन्दु कालसे लेकर आधुनिक कालतकके हास्य-प्रवृत्तियोंका वर्णन किया है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें बिखरे हुए हास्य साहित्यका संकलन एवं विश्लेषण प्रस्तुत कर शोधकर्ताने हास्य-सम्बन्धी सामग्रीको एक स्थानपर लानेका प्रयत्न किया है। संक्षेपमें यह प्रबन्ध हास्य-साहित्यमें महत्त्वपूर्ण योग है।

'हिन्दी नाटकोंमें हास्य तत्त्व' डॉ० शान्तारानी का इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधिके लिए लिखा शोध-प्रबन्ध है। इसकी भूमिकाके रूपमें विषयका महत्त्व प्रतिपादित है। प्रथम अध्यायमें हिन्दी नाटकका उद्भव और विकास, भारतेन्दु युगसे लेकर प्रसाद युगतक के नाटकोंका उनकी-शिल्पविधि आदिके माध्यमसे विवेचन किया गया है। दूसरे अध्यायमें भारतीय तथा पाश्चात्य दोनोंही दृष्टिकोणोंसे हास्यका सैद्धान्तिक विवेचन किया है। विदूषक, लोकनाट्य तथा प्रहसनपर लेखिकाके माध्यम से पृथक् अध्याय हैं। छठे तथा अन्तिम अध्यायमें हास्यके माध्यम से सुधार तथा उपसंहारमें उपलब्धियों, निष्कर्ष एवं हास्यकी सम्भावनाओंपर प्रकाश डाला गया है।

'हिन्दी कवितामें हास्य रस' श्रीमती सरोज खन्नाका शोध-प्रबन्ध है। इसमें लेखिकाने 'संस्कृत साहित्य औरहास्य-रस', 'काव्य-शास्त्र और हास्य', 'हास्य सम्बन्धी पाश्चात्य दृष्टिकोण', 'हास्यकी अभिव्यक्तिके रूप', 'प्राचीन हिन्दीमें हास्य रस', आधुनिक हिन्दी कवितामें हास्य रस' आदि विभिन्न विषयोंका अत्यन्त विश्लेषणात्मक विवेचन किया है। इस प्रबन्धका विषय-क्षेत्र १९५४ ई० तकही है, लेकिन हिन्दी हास्यकी नवीनतम प्रवृत्तियोंका संकेतभी इस कृतिमें उपलब्ध है।

डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदीका 'हास्य-साहित्य' कुमारी वीणाका लघु प्रबन्ध है जिसमें शोधकर्त्रीने चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्वके परिचय एवं मूल्यांकनके साथ-साथ

[शेष पृष्ठ ९६ पर]

ज. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी भाषा विज्ञान

—डॉ० महेन्द्र

हिन्दी विभाग, पी०जी०डी०ए०वी०
कॉलेज, नयी दिल्ली

सन् १९४७ के पश्चात् ज्ञान-विज्ञानके अन्य क्षेत्रोंकी भाँति भाषाविज्ञानके क्षेत्रमें भी प्रकाशनोंकी संख्या पर्याप्त रही। प्रतिवर्ष भाषाविज्ञानके विभिन्न क्षेत्रोंसे सम्बद्ध ग्रन्थ निरन्तर प्रकाशित होते रहे हैं। बहुत-सी पुस्तकें तो केवल छात्रोपयोगी हैं। ये पुस्तकें विभिन्नविश्व-विद्यालयोंमें छात्रोंके पाठ्यक्रमको ध्यानमें रखकर लिखी गयी हैं। इस प्रकारके ग्रन्थोंने न तो हिन्दी-भाषा-विश्लेषणकी परम्पराको आगे बढ़ाया है और न भाषावैज्ञानिक चिन्तनकी स्वस्थ दिशाका विकास ही किया है। सन्' ४७ से पूर्व हिन्दीमें बहुत-से व्याकरण-ग्रन्थ लिखे गये थे जिनमें भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो जाती है। पं० कामताप्रसाद गुरुका 'हिन्दी व्याकरण (१९२०), डॉ० धीरेन्द्र वर्माका 'ब्रजभाषा व्याकरण' (१९३७) तथा पं० किशोरीदास वाजपेयी लिखित 'ब्रजभाषाका व्याकरण' (१९४३ दूसरा सं०) इस प्रकारके उल्लेखनीय व्याकरण हैं। भाषा विज्ञानके सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बद्ध डॉ० श्यामसुन्दरदासका 'भाषाविज्ञान'(१९२४), डॉ० मंगलदेव शास्त्री कृत 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' (१९२५), तथा डॉ० बाबूराम सक्सेनाका 'सामान्य भाषाविज्ञान' (१९४३) ग्रन्थ प्रकाशित हुए। पं० दुनीचन्दकी 'पंजाबी और हिन्दीका भाषाविज्ञान' (१९२६) तथा भाषाके इतिहास ग्रन्थ रूपमें लिखित डॉ० धीरेन्द्र वर्माकी 'हिन्दी भाषाका इतिहास' (१९३३) पुस्तकें स्वतन्त्रता-पूर्व प्रकाशित ग्रन्थोंमें महत्त्वपूर्ण हैं। भाषाविज्ञानके ये सभी ग्रन्थ छात्रोंको ध्यानमें रखकर लिखे गये थे, फिरभी इनका ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण है।

सन् १९५० के पश्चात् भाषाविज्ञानके सैद्धान्तिक पक्षके अतिरिक्त अन्य दिशाओंमें भी विपुल कार्य हुआ है। इनमें कुछ प्रकाशित ग्रन्थ ऐसे भी हैं जो शीर्षकसे व्याकरण ग्रन्थ हैं किन्तु उनमें प्रस्तुत विवेचन मूलतः भाषावैज्ञानिक है। इसी प्रकार विभिन्न व्याकरण-ग्रन्थोंमें भी भाषावैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध हो जाती है। इस दृष्टिसे पं०दुनीचन्द कृत, 'हिन्दी व्याकरण', पं० किशोरीदास वाजपेयी कृत 'हिन्दी शब्दानुशासन' तथा डॉ० ज० म० दीमशित्स का 'हिन्दी व्याकरणकी रूपरेखा' महत्त्वपूर्ण हैं। पिछले २५ वर्षोंके भाषाविज्ञानसम्बन्धी प्रकाशन विवेचन-सुविधाको ध्यानमें रखते हुए निम्न छ वर्गोंमें विभक्त करके प्रस्तुत किये जा रहे हैं:—

१. सैद्धान्तिक ग्रन्थ;
२. भाषाके इतिहास-ग्रन्थ;
३. हिन्दी भाषाके किसी एक अंग-विशेष अथवा प्रवृत्तिसे सम्बद्ध ग्रन्थ;
४. हिन्दी भाषाकी एक बोली-विशेषसे सम्बन्ध ग्रन्थ;
५. किसी कवि अथवा ग्रन्थकी भाषाके अध्ययनसे सम्बद्ध ग्रन्थ;
६. अभिनन्दन ग्रन्थ, भूमिकाएँ तथा निबन्ध-संग्रह।

१ सैद्धान्तिक ग्रन्थ

भाषाविज्ञानके सैद्धान्तिक पक्षसे सम्बन्धित ग्रन्थ निम्नलिखित तीन वर्गोंमें रखकर प्रस्तुत किये जा सकतेहैं—

(क) मौलिक—स्वतन्त्रताप्राप्तिके पश्चात् इस वर्गकी सबसे पहली पुस्तक सन् १९५० में बाबू श्यामसुन्दर दासकी प्रकाशित हुई। इसका नाम 'भाषा रहस्य' है। इसके एक वर्ष पश्चात् डॉ० भोलानाथ तिवारी कृत 'भाषा विज्ञान' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। तबसे लेकर आजतक इसके अनेक संस्करण हो चुके हैं। इस ग्रन्थका वैशिष्ट्य इस बात में है कि प्रत्येक संस्करणमें लेखक द्वारा भाषाविज्ञानकी नवीनतम सामग्री जोड़ दी जाती है। इस रूपमें यह ग्रन्थ विद्यार्थियोंके लिए बहुत उपयोगी रहा है। सन् १९५३ में पं० सीताराम चतुर्वेदीका 'भाषालोचन' छपा। सन्

१९५८ में 'भाषाविज्ञान' की एक शाखा 'ध्वनिविज्ञान' को लेकर इसी नामसे गोलोकबिहारी पालने एक लघु पुस्तक प्रकाशित करायी। हिन्दीमें भाषाविज्ञानके किसी विशिष्ट अंगसे सम्बद्ध यह प्रथम व्यवस्थित सैद्धान्तिक अध्ययन कहा जा सकता है। सन् १९५९ में पं० किशोरी दास वाजपेयीका ग्रन्थ 'भारतीय भाषाविज्ञान' प्रकाशित हुआ। ग्रन्थके लेखकका ध्यान विषयकी महत्तापर अधिक केन्द्रित रहा है। सैद्धान्तिक विवेचनके साथ भारतीय पद्धतिपर भारतीय भाषाओंका संक्षेपमें विश्लेषण-विवेचन भी है। तत्पश्चात् पिछले १०-१२ वर्षोमें लगभग १५ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें रामस्वरूप अग्निहोत्री—'भाषाविज्ञान', जयवंशी झा—'भाषाविज्ञान', पद्मनारायण—'आधुनिक भाषाविज्ञान', जयकुमार जलज—'भाषाशास्त्र', अमरबहादुरसिंह—'भाषाशास्त्र प्रवेशिका', मनमोहन गौतम—'सरल भाषा विज्ञान', जे० सुमन—'भाषा विज्ञानके सिद्धान्त', राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी—'भाषा विज्ञान', हरीश शर्मा—'भाषाविज्ञानकी रूपरेखा', अम्बा प्रसाद सुमन—'भाषाज्ञविान: सिद्धान्त और प्रयोग' तथा रामेश्वरदयाल अग्रवाल—'भाषाविज्ञानके सिद्धान्त' सामान्य स्तरकी पुस्तकें हैं। इनमें कुछ विद्वान् तो ऐसे भी

[शेष पृष्ठ ९४ का]

हास्य रसका शास्त्रीय विवेचन तथा हास्य रसके रसराजत्वपर भी विचार किया है।

इन शोध-प्रबन्धोंके अतिरिक्त भी हास्य रसपर आलोचनात्मक ग्रन्थ प्राप्य हैं। जी० पी० श्रीवास्तवकी 'हास्य-रस' पुस्तकमें हास्यके सिद्धान्तविषयक लेखों तथा भाषणोंका संग्रह है। उनकी आलोचनामें मूल रचनाकी अपेक्षा अधिक व्यापकता है। पाश्चात्य विचारकोंके आदर्शोंपर आधारित डॉ० एस० पी० खत्रीका 'हास्यकी रूपरेखा' उच्चकोटिका ग्रन्थ है। खत्रीजीने हास्यका सैद्धान्तिक विवेचन पाण्डित्यपूर्ण, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणका आधार लेकर हास्यके आलम्बनों तथा भेदोंके विश्लेषण रूपमें किया है। यह एक सन्दर्भ ग्रन्थके रूपमें प्रयुक्त हो सकती है।

श्री प्रेमनारायण दीक्षित तथा त्रिलोकीनारायण दीक्षित लिखित पुस्तक 'हास्यके सिद्धान्त तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य' भी इस क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण है। सिद्धान्तोंके प्रतिपादन और विवेचनके साथ-साथ भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तोंमें सामञ्जस्य स्थापित करना भी लेखकका उद्देश्य रहा है। मराठीके विद्वान् केलकरकी 'हास्य आणि विनोद' का अनुवाद श्री रामचन्द्र वर्माने 'हास्य रस' के नामसे किया है। इस पुस्तकमें हास्यका विवेचन स्पष्टता और गहराईके साथ हुआ है। जगदीश पाण्डेका ग्रन्थ 'हास्यके सिद्धान्त तथा मानसमें हास्य' भी एक सफल ग्रन्थ है। रामकुमार वर्माने भी अपने हास्य-एकांकी संग्रह 'जुहीके फूल' में हास्यकी भारतीय और पाश्चात्य, दोनों दृष्टियोंसे सैद्धान्तिक विवेचना की है।

'हिन्दी साहित्यमें हास्य और व्यंग्य' का सम्पादन प्रेमनारायण टण्डनने किया है। हिन्दी साहित्यके प्रतिष्ठित कवियों और लेखकोंकी रचनाओंमें हास्य-विनोद और व्यंग्य पूर्ण स्थलोंको लेकर लिखे गये लेखोंका संकलन इस पुस्तकमें है। हास्यके विवेचनपर भी दो लेख हैं। डॉ०बरसानेलाल चतुर्वेदीकी हास्य परएक और आलोचनात्मक पुस्तक 'हास्यकी प्रवृत्तियाँ' हैं। पुस्तक चार खण्डोंमें विभाजित है: 'हास्य काव्य और कवि', 'हास्य लेखक', 'हास्यके आलम्बन' तथा 'हास्य विवेचन'।

इस प्रकार इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि सामान्यतः हिन्दी साहित्यके प्रत्येक अंग कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, पत्र-पत्रिका, अनुवाद, आलोचना आदि सभी क्षेत्रोंमें हास्य-व्यंग्यका विकास हुआ है। कविता और निबन्धमें हास्यका लेखन अन्य विधाओंसे अधिक हुआ है। जैसा कहा जाता है कि हिन्दीमें अन्य रसोंकी अपेक्षा हास्यरसात्मक साहित्य अल्पमात्रामें है, पर कुछ भी साहित्य हमें प्राप्त है उसमें जीवनकी विविधता, प्रेरणा और गतिशीलता विद्यमान है। हिन्दीकी अपेक्षा उर्दू के हास्यमें अधिक चुटीलापन, सम्भवतः उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमिकी देन है। स्वतन्त्रताके बाद हिन्दी पर उर्दू के प्रभावमें हिन्दीके निबन्धोंमें निखार, अधिक उजले, निखरे और पैने रूपमें आ रहा है। अंग्रेजी साहित्यके हास्यसे हिन्दी साहित्यके हास्यकी तुलना करना अभी युक्तिसंगत न होगा क्योंकि दोनोंके ही सामाजिक, राजनीतिक, मानसिक परिस्थितियों एवं परिवेशमें पर्याप्त अन्तर रहा है। कविताके क्षेत्रमें कहीं-कहीं अश्लीलत्वभी आ गया है। पर आज हिन्दीका हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध साहित्य पर्याप्त सशक्त एवं प्रभावपूर्ण कहा जा सकता है। × ×

हैं जिनका भाषाविज्ञानके अध्ययनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी नहीं है। इनके अतिरिक्त सन् १९६३ में डॉ० उदयनारायण तिवारी कृत 'भाषाशास्त्रकी रूपरेखा' ग्रन्थ छपा। इस ग्रन्थमें 'वर्णनात्मक भाषाविज्ञान' की अनेक नयी दिशाओंका विस्तारसे विवेचन किया गया है। सन् १९६४ में प्रकाशित डॉ० देवीशंकर द्विवेदीकी पुस्तके 'भाषा और भाषिकी' भी महत्त्वपूर्ण है। सन् १९६६ में डॉ० देवेन्द्र नाथ शर्मा की 'भाषा विज्ञानकी भूमिका' पुस्तक छपी। सन् १९६९ में डॉ० भोलानाथ तिवारीका ग्रन्थ शब्दोंका अध्ययन' छपा। इस ग्रन्थमें अनेक सैद्धान्तिक विषयोंपर विस्तारसे विचार किया गया है। सर्वत्र लेखककी निर्भ्रान्त दृष्टि तथा विवेचनकी स्पष्टता दृष्टिगत होती है। सन् १९७२ में डॉ० रवीन्द्र श्रीवास्तवकी लघु पुस्तिका 'शैली विज्ञान' पर प्रकाशित हुई तथा 'अनुवाद विज्ञान' नाम से डॉ० भोलानाथ तिवारीकी पुस्तक इसी वर्ष छपी। ये दोनों ही ग्रन्थ भाषाविज्ञानके अछूते सैद्धान्तिक पक्षोंका विवेचन करते हैं।

इधर भाषा शिक्षणसे सम्बद्ध दो सैद्धान्तिक ग्रन्थ भी छपे हैं—एक 'भाषा शिक्षणकी रूपरेखा'—लक्ष्मीनारायण गुप्त और दूसरा 'अन्य भाषा शिक्षण'—डॉ० महावीरशरण जैन। इनमें दूसरा ग्रन्थ अधिक उपयोगी है।

(ख) अनूदित—सन् १९६३ से भाषाविज्ञानके कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके अनुवादकी परम्परा भी प्रारम्भ हुई है। यद्यपि इस दिशामें अभी बहुतसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका अनुवाद होना शेष है। इधर जो ग्रन्थ अनूदित हुए हैं वे इस प्रकार हैं: डॉ० गुणेका ग्रन्थ 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' नामसे डॉ० भोलानाथ तिवारी द्वारा अनूदित (१९६३ई०) मैक्समूलर द्वारा दिये गये भाषणका हिन्दी अनुवाद 'भाषाविज्ञानपर भाषण' नामसे सन् १९६४ में छपा। अनुवादक डॉ० हेमचन्द्र जोशी हैं। जगवंशकिशोर बलवीरने जो वान्द्रियेजके ग्रन्थका 'भाषा' शीर्षकसे सन् १९६६ में अनुवाद किया। रूसी विद्वान् एफ०ए० फॉर्तुनातोवके ग्रन्थका डॉ० केसरीनारायण शुक्लने 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' नामसे अनुवाद प्रस्तुत किया। सन् १९६८ में 'भाषा' नामसे ब्लूमफील्डके ग्रन्थका अनुवादभी प्रकाशित हुआ, अनुवादक हैं डॉ० विश्वनाथप्रसाद। सैद्धान्तिक विषयसे सम्बद्ध न होते हुए भी दो अन्य अनुवाद ग्रन्थोंका उल्लेख करना अनुचित न होगा—डॉ० हेमचन्द्र जोशी द्वारा पिशेश के ग्रन्थका 'प्राकृत भाषाओंका व्याकरण' नामसे तथा टी० बर्रो के ग्रन्थका 'संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन' शीर्षकसे। दूसरेग्रन्थके अनुवादक डॉ०भोलाशंकर व्यास हैं।

(ग) संस्कृत भाषामें विवेचित भाषा वैज्ञानिक अध्ययनसे सम्बद्ध—इस वर्गके ४ ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० कपिलदेव द्विवेदी—'अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन', युधिष्ठर मीमांसक 'वैदिक स्वर मीमांशा', डॉ० सत्यकाम वर्मा—'भाषातत्त्व और वाक्यप्रदीप' श्री शिवनारायण शास्त्री 'निरुक्त मीमांशा'। वस्तुतः इस दिशामें अभी बहुत कार्य होना शेष है।

२. भाषाके इतिहास ग्रन्थ

सन् १९४७ से पूर्व डॉ० धीरेन्द्र वर्माने 'हिन्दी भाषा का इतिहास' लिखकर इस परम्पराका प्रारम्भ किया था। यह ग्रन्थ विद्यार्थिओंकी आवश्यकताको ध्यानमें रखकर लिखा गया था। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् इस वर्गमें कमही ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। वैसे बहुतसे सैद्धान्तिक ग्रन्थों में भाषाके इतिहाससे सम्बद्ध सामग्री प्रकाशित हुई है। सन् १९५८ में डॉ० सुनीतकुमार चाटुर्ज्याने अपने ग्रन्थका 'भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी' नामसे अनुवाद करके प्रकाशित कराया। इस पुस्तकमें लेखकका ध्यान भाषाके क्रमिक इतिहासपर अधिक रहा है। इसी वर्ष डॉ० उदय नारायण तिवारी द्वारा अनूदित 'भारतका भाषा सर्वेक्षण' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यह प्रसिद्ध विद्वान् ग्रियर्सनके भाषा सर्वेक्षणके प्रथम खण्ड, प्रथम भागका ही अनुवाद है। सन् १९६१ में बाबू श्यामसुन्दरदासका 'हिन्दी भाषा' लघु ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। डॉ० उदयनारायण तिवारीने सन् १९६२ में 'हिन्दी भाषाका उद्गम और विकास' ग्रन्थ प्रस्तुत किया। तबसे लेकर सन् १९७२ तक लगभग दो दर्जन पुस्तकें इस वर्गमें प्रकाशित हो चुकी हैं, इनमें महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं—'हन्दी भाषा और लिपिका ऐतिहासिक विकास'—सत्यनारायण त्रिपाठी, 'हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान'—डॉ० नामवरसिंह, 'हिन्दी साहित्यका वृहत् इतिहास (द्वितीय भाग)'·सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी और उसकी उपभाषाओंका स्वरूप'—डॉ० अम्बाप्रसाद सुमन, 'हिन्दी शब्दानुशासन'—पं० किशोरीदास वाजपेयी, 'हिन्दी भाषा'—डॉ० भोलानाथ तिवारी, 'भारतीय आर्य भाषाओंका इतिहास'—जगदीशप्रसाद कौशिक, 'हिन्दी भाषाकी भूमिका'—डॉ० शिवशंकरप्रसाद वर्मा, 'हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण'—डॉ० चन्द्रभान रावत तथा 'हिन्दी भाषाका विकास'—डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा तथा रामदेव त्रिपाठी। वस्तुतः इस वर्गके ग्रन्थोंमें पुनरावृत्ति अधिक हुई है। इधर सन् १९७२ में 'भारतीय भाषाविज्ञानकी भूमिका',

नामसे एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक डॉ० भोलानाथ तिवारी, डॉ० माणिकलाल चतुर्वेदी तथा डॉ० भगतसिंह हैं। इस ग्रन्थमें भारतीय भाषाचिन्तन पर पहली बार व्यवस्थितरूपसे विचार किया गया है। वैदिक वाङ्मयसे लेकर हिन्दीतक तथा मराठी, पंजाबी, कश्मीरी, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि विभिन्न भाषाओं में किये गये भाषा-अध्ययनका व्यवस्थित इतिहास इस एक ग्रन्थमें प्रस्तुत किया गया है। भाषाविज्ञान सम्बन्धी स्वातन्त्र्योत्तर प्रकाशनोंमें इस ग्रन्थका विशिष्ट महत्त्व है।

३. हिन्दी भाषाके किसी एक अंग विशेष अथवा प्रवृत्ति से सम्बद्ध ग्रन्थ

हिन्दीमें प्रकाशित सबसे अधिक ग्रन्थ इसी विषयसे सम्बद्ध हैं। सन् १९५० के पश्चात् ५० से ऊपर ग्रन्थ छपे हैं। यह अध्ययन भाषा-विश्लेषणकी सूक्ष्मताका परिचायक है। फिरभी 'हिन्दी विशेषण', 'अव्यय', 'उपवाक्य' आदि ऐसे अनेक अंग हैं जिनपर कार्य होना शेष है। निबन्धकी सीमा को देखते हुए यह सम्भव नहीं है कि इस वर्गमें प्रकाशित सभी ग्रन्थोंका उल्लेख किया जाये। वैसेभी नामोल्लेखमात्र अधिक उपयोगी नहीं होता वरन् उपलब्ध प्रकाशनोंमेंसे उपयोगी ग्रन्थोंका चयनभी आवश्यक होता है। इसी बात को ध्यानमें रखते हुए इस क्षेत्रमें उपलब्ध महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहेहैं—'हिन्दी प्रयोग'—पं० रामचन्द्र वर्मा, 'मुहावरा मीमांसा'—डॉ० ओमप्रकाश गुप्त, 'हिन्दीमें प्रत्यय विचार'—डॉ० मुरारीलाल उप्रेति, 'हिन्दी समास रचनाका अध्ययन'—डॉ० रमेशचन्द्र जैन, 'हिन्दी शब्दरचना'—माईदयाल जैन, 'हिन्दी कारकोंका विकास'—शिवनाथ, 'हिन्दी तद्भव शास्त्र'—मुरलीधर श्रीवास्तव, 'हिन्दीभाषा का अर्थ तात्विक विकास'—डॉ० शिवनाथ, 'खड़ीबोलीका स्वरूप'—ओंकारनाथ वर्मा, 'हिन्दीकी आधारभूत शब्दावली', 'हिन्दीकी क्रियाएँ, 'हिन्दी परसर्ग' केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, 'हिन्दीमें अंग्रेजीके आगत शब्दोंका भाषातात्विक अध्ययन'—डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, 'हिन्दी शब्द मीमांसा', 'अच्छी हिन्दी', 'हिन्दीकी वर्तनी तथा शब्द-विश्लेषण'—पं० किशोरीदास वाजपेयी, 'हिन्दी भाषापर फारसी और अंग्रेजीका प्रभाव'—डॉ० मोहनलाल तिवारी, 'हिन्दी अक्षरी'—डॉ० बदरीनाथ कपूर, 'हिन्दी ध्वनि और ध्वनि भी'—डॉ०रमेशचन्द्र महरोत्रा, 'हिन्दी क्रिया-स्वरूप और विवेचन'—डॉ० बालमुकुन्द, 'हिन्दी भाषा और नागरीलिपि'—सं० लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'हिन्दीकी उपभाषाएँ और ध्वनियाँ'—डॉ०रामचन्द्र मिश्र, 'हिन्दी भाषामें अक्षर तथा शब्दकीसीमा'—डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, 'हिन्दीकी शब्द सम्पदा'—डॉ० विद्यानिवास मिश्र, 'हिन्दी वाक्य विन्यास'—डॉ० सुधा कालरा, 'देशी शब्दोंका भाषावैज्ञानिक अध्ययन'—डॉ० चन्द्रप्रकाश त्यागी तथा 'हिन्दीमें देशज शब्द'—डॉ० पूर्णसिंह डबास। वस्तुतः हिन्दी भाषाके ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ और शब्द इन पाँचों अंगोंमें अभीभी बहुतसे विषय ऐसे हैं जिनमें गहराईसे कार्य किया जाना चाहिये। इस दिशा में योजनाबद्ध कार्य जबतक नहीं किया जायेगा, तब तक अपेक्षित सफलताकी सम्भावना कम ही है।

४. हिन्दी भाषाकी बोली-विशेषसे सम्बद्ध ग्रन्थ

इस अध्ययनकी दिशाका प्रारम्भ हिन्दीमें डॉ० बाबूराम सक्सेनाके ग्रन्थ 'दक्खिनी हिन्दी' से मानना होगा। यह ग्रन्थ सन् १९५२ ई० में प्रकाशित हुआ। सन् १९५४ में डॉ० धीरेन्द्र वर्माके फ्रेंच भाषामें प्रकाशित शोध प्रबन्ध का हिन्दी रूपान्तर 'ब्रजभाषा' नामसे छपा। इसी वर्ष डॉ० उदयनारायण तिवारीका 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। सन् १९५५ में डॉ० तेस्सितोरीके ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद 'पुरानी राजस्थानी' शीर्षक से छपा। इसके अनुवादक डॉ० नामवारसिंह हैं। तत्पश्चात् पिछले १५-१७ वर्षोंमें लगभग ३० से ऊपर ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें उल्लेखनीय ग्रन्थ इस प्रकार हैं—'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य'—डॉ० शिवप्रसादसिंह, 'राजस्थानी भाषा और साहित्य'—डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, 'मालवी एक भाषा शास्त्रीय अध्ययन'—डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, 'आगरा जिलेकी बोली'-डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'ब्रजभाषा और खड़ीबोलीका तुलनात्मक अध्ययन'—डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, 'बुन्देलीका भाषाशास्त्रीय अध्ययन'—डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल, 'शेखावटी बोलीका वर्णनात्मक अध्ययन'—डॉ० कैलाशचन्द्र अग्रवाल, 'मथुरा जिलेकी बोली'—डॉ० चन्द्रभान रावत, 'राजस्थानी भाषा'—डॉ० चाटुर्ज्या, 'मगही भाषा'—डॉ० योगेश्वर, 'मध्य पहाड़ी भाषाका अनुशीलन और उसका हिन्दीसे सम्बन्ध'—डॉ० गुणानन्द जुआल, मगही व्याकरण कोश'—सम्पत्ति अर्याणी, 'बुलन्दशहर एवं खुरजा तहसीलोंकी बोलियोंका संकालिक अध्ययन'—डॉ० महावीरशरण जैन, 'छत्तीसगढ़ी बोली, व्याकरण और कोश'—डॉ० कान्ति कुमार, 'Linguistic Survey of Manbhumi Dalbhumi'—डॉ० विश्वनाथप्रसाद, 'ताज्जुज्वे की'—डॉ०भोलानाथ तिवारी, तथा 'भाषाविज्ञान और भोजपुरी'—

डॉ० कृपाशंकर सिंह। इनमें बहुत कम ग्रन्थ ऐसे हैं जो भाषा-भूगोलकी वैज्ञानिक पद्धतिके आधारपर तैयार किये गये हैं। इस दिशामें सैद्धान्तिक ग्रन्थकी आवश्यकता अभी बनी हुई है।

इस दिशामें दो अन्य ग्रन्थोंका उल्लेख करनाभी आवश्यक है। एक ग्रन्थ अंग्रेजीमें है तथा दूसरा हिन्दीमें। डॉ० सुभद्र झाने मैथिली भाषापर विस्तारसे कार्य किया है। यह ग्रन्थ अंग्रेजीमें प्रकाशित है। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्यके Original Development of Bengali Language की परम्परामें लिखा गया यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी प्रकार नलिनीमोहन सान्यालने बिहारी भाषाओंपर विस्तारसे कार्य किया है। इसी वर्गकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तक Exolution of Awadhi है। इसके लेखक डॉ० बाबूराम सक्सेना हैं। 'अवधीका विकास' नामसे यह अत्यधिक उपयोगी ग्रन्थ हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

५. किसी कवि अथवा ग्रन्थकी भाषाके अध्ययनसे सम्बद्ध ग्रन्थ

इस प्रकारके अध्ययनका प्रारम्भ सन् १९५५ में प्रकाशित 'कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा' से मानना होगा। यह अध्ययन डॉ० शिवप्रसादसिंह द्वारा किया गया था। तत्पश्चात् सन् १९५६ में डॉ० नामवरसिंह लिखित ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासोकी भाषा' प्रकाशित हुआ। ग्रन्थमें रासोके मुख्य भाग 'कनवज्ज समय' को आधार बनाया गया है, इस आधारपर ग्रन्थका नाम भ्रामक है। फिरभी सम्पूर्ण ग्रन्थ वैज्ञानिक विश्लेषण-पद्धतिके अनुसरणका संकेत देता है। सन् १९५७ में डॉ० प्रेमनारायण टंडनका वृहदाकार ग्रन्थ 'सूरकी भाषा' प्रकाशित हुआ। इसमें अनेक सैद्धान्तिक भ्रान्तियाँ हैं। फिरभी विवेचन महत्त्वपूर्ण है। इसी वर्ष डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव का 'तुलसीदासकी भाषा' ग्रन्थभी छपा। भाषाके आधारपर तुलसीकी रचनाओंका वर्गीकरणका अंश उपयोगी है। सन् १९६२ में डॉ० माता प्रसाद गुप्तने 'राउलवेल और उसकी भाषा' ग्रन्थ प्रकाशित कराया। शिलांकित राउलवेलको पुस्तकाकार रूपमें प्रस्तुतकर तथा उसकी भाषाका विवेचनकर विद्वान् लेखकने साहित्य और भाषाविज्ञान, दोनों क्षेत्रोंमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसी वर्ष डॉ० निर्मला सक्सेनाका 'सूरसागर शब्दावली (एक सांस्कृतिक अध्ययन)' प्रकाशित हुआ। ग्रन्थ तथ्यात्मक अधिक है। सूर द्वारा प्रयुक्त संज्ञा शब्दोंको एकत्र करके लेखिकाने उपादेय कार्य किया है। सन् १९६५ में डॉ० माताबदल जायसवालका 'कबीरकी भाषा' ग्रन्थ छपा। कबीरकी भाषाको तत्कालीन हिन्दी माननेमें लेखकका प्रबल आग्रह ही प्रकट होता है। इसी वर्ष 'जायसीकीभाषा' नामक डॉ० प्रभाकर शुक्लका ग्रन्थभीप्रकाशित हुआ। सन् १९६९ में डॉ० भगवतप्रसाद दुबेकृत 'कबीर काव्यका भाषाशास्त्रीय अध्ययन' छपा। ग्रन्थके अन्तमें सापेक्षिक प्रयोग्य वृत्तियोंकी तालिकाएँ दी गयी हैं। इन तालिकाओंसे निकाले गये निष्कर्षोंसे सहमत होना सम्भव नहीं है क्योंकि उस पद्धतिका आधार पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं है। सन् १९६९ में ही डॉ० महेन्द्र (प्रस्तुत लेखका लेखक) का 'कबीरकी भाषा' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। ग्रन्थके खण्डमें भाषावैज्ञानिक अध्ययन दिया गया है। सन् १९७१ में डॉ० रामकुमारी मिश्रका 'बिहारी सतसईका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन' सामने आया। सन् १९७२ में डॉ० बिन्दुमाधव मिश्र कृत 'कबीर ग्रन्थ वालीकी भाषा' छपा। ग्रन्थमें वर्णनात्मक विवेचनके साथ ऐतिहासिक विवेचनको मिला दिया गया है। इसी वर्षके अन्तमें डॉ० शशि प्रभाका 'मीरांकी भाषा' ग्रन्थभी प्रकाशित हुआ है।

६. अभिनन्दन ग्रन्थ, भूमिकाएँ तथा निबन्ध संग्रह

(i) **अभिनन्दन ग्रन्थ**—भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे दो अभिनन्दन ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दी अनुशीलनका 'धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक' सन् १९६० में प्रकाशित हुआ। इसमें अनेक देशी विदेशी विद्वानोंके लेख संगृहीत हैं। इसका 'प्रथम खण्ड' भाषावैज्ञानिक विवेचनसे सम्बद्ध है जिसमें अधिकारी विद्वानोंके २८ लेख दिये गये हैं। यह ग्रन्थ भारतमें भाषाविज्ञानकी स्वस्थ परम्पराके प्रति आश्वस्त करता है। सन् १९६० में ही श्री पुरुषोत्तमदास टंडन अभिनन्दन ग्रन्थभी प्रकाशित हुआ। इसके 'भाषाविज्ञान' खण्डमें १५ लेख हैं। इस खण्डके सम्पादक डॉ० बाबूराम सक्सेना तथा डॉ० भोलानाथ तिवारी हैं। डॉ० सिद्धेश्वर वर्माका 'भाषा ध्वनि विज्ञानका मूल तत्त्व' शीर्षक लेख सैद्धान्तिक भाषाविज्ञानसे सम्बन्धित अध्ययन है, शेष लेख हिन्दी भाषा अथवा उसकी विभिन्न बोलियोंसे सम्बन्धित अध्ययन प्रस्तुत करते हैं।

(ii) **भूमिकाएँ**—सन् १९५४ ई० में 'ढोलामारूरा दूहा' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक हैं—श्री रामसिह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तम

स्वामी। ग्रन्थकी प्रस्तावनाके उत्तरार्द्ध भागमें 'भाषा और व्याकरण' का विवेचन है। इसमें अपभ्रंश और उससे आधुनिक राजस्थानीतक भाषा विकास विवेचित है। उत्तरार्द्धमें ग्रन्थकी भाषाके व्याकरणपर भी विचार किया गया है। यह अंश भाषाविज्ञानके अध्येताओंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह दूसरी बात है कि उसमें वर्णित सभी मतोंसे सहमत होना कठिन है फिरभी इस अंशका अपना वैशिष्ट्य है। सन् १९५७ में 'बुद्धचरित' का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'Light of Asia' का काव्य-रूपान्तर है। मूल ग्रन्थसे पूर्व 'काव्य-भाषा' शीर्षकके अन्तर्गत ब्रजभाषा, अवधी और खड़ीबोली, तीनों बोलियोंका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह अंश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(ii) **निबन्ध-संग्रह** —इधर पिछले पच्चीस वर्षोंमें भाषाविज्ञानके विभिन्न विषयोंसे सम्बद्ध अनेक निबन्ध संग्रहभी प्रकाशित हुए हैं जिनमें ८ विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। सन् १९५७ में डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याका 'भारत की भाषाएँ तथा भाषासम्बन्धी समस्याएँ, ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक महादेव साहा हैं। संग्रहमें विचारों की मौलिकता पूर्वाग्रह-पोषित रही है। बंगला भाषामें लिखे गये मूल ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद अच्छा है। डॉ० चार्टुज्याका ही दूसरा निबन्ध संग्रह 'ऋतम्भरा' संशोधित रूपमें सन् १९५८ में छपा। इसके सभी निबन्धोंमें विद्वान लेखकका वैज्ञानिक दृष्टिकोण दृष्टिगत होता है। सन् १९६५ में डॉ० रामचन्द्र वर्माके निबन्धोंका संग्रह 'शब्द और अर्थ' नामसे प्रकाशित हुआ। प्रायोगिक स्तर पर शब्द अध्ययनसे सम्बन्धित विभिन्न लेख इसमें महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० रामगोपालशर्मा तथा श्री प्रतापचन्द जैसवाल द्वारा सम्पादित निबन्ध संग्रह 'भाषाविज्ञान : रूप और तथ्य' शीर्षकसे सन् १९६८ में छपा। ग्रन्थमें विभिन्न विद्वानोंके लेख संगृहीत हैं। लेखोंके विषयोंमें अव्यवस्था है फिरभी कुछ महत्त्वपूर्ण लेख इस ग्रन्थमें विद्यमान हैं। डॉ० रमेशचन्द्र महरोत्रा तथा डॉ० हीरालाल शुक्ल द्वारा सम्पादित संग्रह 'भाषिकी के दस लेख' नामसे सन् १९६८ में प्रकाशित हुए। इसमें ६ लेख हिन्दी तथा ८ लेख अंग्रेजीमें हैं। पुस्तकमें संगृहीत लेखोंमें शोधकर्ताओंकी जिज्ञासु दृष्टिका परिचय मिलता है। सन् १९७० में डॉ० रमेशचन्द्र महरोत्रा का 'भावैषण' नामसे ११ लेखोंका संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक, दोनों प्रकारके निबन्ध हैं। 'ध्वनिविज्ञान' और 'रूप-विज्ञान' दोनोंसे सम्बद्ध लेख उपयोगी हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी द्वारा लिखे गये विभिन्न लेखों तथा समय-समय पर दिये गये विभिन्न भाषणोंका संग्रह 'भाषा-चिन्तन' नामसे सन् १९७१ में प्रकाशित हुआ। संग्रहमें सैद्धान्तिक लेख कम हैं तथा व्यावहारिक अधिक हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ लेखकके चिन्तन-गांभीर्यका परिचायक है। सन् १९७२ में डॉ० मोतीलाल गुप्त द्वारा लिखित निबन्ध संग्रह 'आधुनिक भाषाविज्ञान' प्रकाशित हुआ है। ११ लेखोंके इस संग्रहमें भाषाविज्ञानके कई अछूते विषयोंको हिन्दीके माध्यमसे उपस्थित करनेका प्रयास किया गया है। अधिकांश लेख भाषाविज्ञानके सैद्धान्तिक पक्षसे सम्बद्ध हैं।

इन ६ ग्रन्थोंके वर्गोंके विवेचनके पश्चात् कुछ अन्य बातों का उल्लेख करनाभी आवश्यक है। इधर भाषा-विश्लेषण से सम्बन्धित सामग्रीकी तीन पत्रिकाएँ हिन्दीमें प्रकाशित हो रही हैं। 'भाषा' सं० श्रीमती तारा तिक्कू, 'अनुवाद' सं० डॉ० भोलानाथ तिवारी तथा श्री महेन्द्र चतुर्वेदी और 'भाषिकी' सं० डॉ० भोलानाथ तिवारी तथा डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, 'भाषा' तथा 'अनुवाद' पिछले कई वर्षोंसे प्रकाशित हो रही हैं जबकि 'भाषिकी' का प्रकाशन हालमें ही प्रारम्भ हुआ है। 'भाषिकी' के प्रथम अंकमें ८ अंग्रेजी भाषामें लिखे गये लेखोंके अतिरिक्त ४ हिन्दी भाषामें लिखे गये महत्त्वपूर्ण लेख भी हैं। सम्पादकोंकी योजना 'भाषिकी' के चार विशेषांक निकालनेकी है जो क्रमशः 'ध्वनि', 'हिन्दी भाषाका इतिहास', 'हिन्दीकी बोलियाँ' तथा 'हिन्दी भाषाकी संरचना' नामसे होंगे। 'अनुवाद' पत्रिकामें अनुवाद सम्बन्धी लेखों और अनूदित रचनाओंके अतिरिक्त भाषाविज्ञानके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक, दोनों पक्षोंसे सम्बद्ध लेख प्रकाशित हुए हैं। 'भाषा' अपेक्षाकृत प्राचीन पत्रिका है जिसमें हिन्दीके अतिरिक्त अन्य भाषाओंके विषयमें भी लेख छपे हैं। 'भाषा' का हिन्दी भाषाविज्ञानसे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण विशेषांक शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

अधुनातन दृष्टिसे पश्चात्य विद्वान् पाइक और नाइडा की परम्पराको अपनाते हुए टैग्मीमिक सिद्धान्त (Tagmemics) के आधारपर भारतमें डॉ० रमानाथसहाय तथा डॉ० विश्वजीतने हिन्दी भाषापर कार्य किया है। ध्वनिसे सम्बन्धित कार्य करने वालोंमें लन्दन स्कूलके फर्थका नाम विशेष उल्लेखनीय है। भारतमें डॉ० विश्वनाथप्रसाद

[शेष पृष्ठ १०२ पर]

ञ. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कोश-साहित्य

—डॉ० भोलानाथ तिवारी

रीडर, भाषाविज्ञान, दिल्ली
विश्वविद्यालय : दिल्ली,

भारतमें कोशोंकी परम्परा काफी प्राचीन है। मेरा अनुमान है कि प्राचीन 'निघण्टु १००० ई० पू० के आस-पास सम्पादित हुए थे। संस्कृत 'अमर कोश', पालिकी 'अभिधानदीपिका 'प्राकृतकी लच्छिनाम माला' अपभ्रंश(मुख्यतः) की देशी नाममाला' आदिसे होतेयह परम्परा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओंमें आयी। स्वतन्त्रताके पूर्व हिन्दीमें और हिन्दीसे सम्बद्ध कोश सौसे ऊपर सम्पादित हुए किन्तु उनमें अधिक महत्त्वपूर्ण 'खालिकबारी' (इसका रचनाकाल तथा रचयिता दोनों विवादास्पद हैं), 'लुगतए हिन्दी' (१६७५ ई०; यह आधुनिक अर्थोमें हिन्दीका प्रथम शब्दकोश है), 'गरायबुल लुगात' (औरंगजेबके शासनकाल में सम्पादित), प्लाट्सका उर्दू-हिन्दी-अंग्रेजी कोश (१८८४ ई०), नागरी प्रचारिणी सभाका हिन्दी शब्द-सागर (१९१९-२८) हैं।[1]

स्वतन्त्रताके बाद हिन्दीमें अन्य क्षेत्रोंकी भाँति कोशके क्षेत्रमें भी काफी काम हुआ है। इनके मुख्य वर्ग इस प्रकार हैं :

हिन्दी-हिन्दी कोश

स्वतन्त्रताके बाद छोटे-बड़े लगभग बीस हिन्दी-हिन्दी कोश प्रकाशित हुए हैं जिनमें मुख्य 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' (रामचन्द्र वर्मा, १९४९), 'नालन्दा विशाल शब्द सागर' (नवलजी, १९५०), बृहद् हिन्दीकोश (कालिका, प्रसाद तथा अन्य, १९५२), भारतीय हिन्दी कोश (दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास १९५६) मुख्य हैं। वस्तुतः इनमें विशेष महत्त्व 'प्रामाणिक हिन्दी कोष' का ही है जो कोशकलाकी दृष्टिसे अन्य सभीसे अच्छा है। 'बृहद् हिन्दी कोष' में और अनेक अन्य कमियोंके अतिरिक्त सबसे बड़ी कमी यह है कि कोशको 'बृहद्' बनानेके प्रयासमें संस्कृत तथा अरबी-फारसीके अनेक ऐसे शब्द भी उसमें सम्मिलित कर लिये गये हैं जो हिन्दीके शब्द-भण्डारमें कमी नहीं रहे, दूसरी तरफ ऐसे अनेक शब्द उसमें नहीं आ पाये हैं, जो हिन्दीमें प्रयुक्त होते हैं, या होते रहे हैं। स्वतन्त्रताके बाद हिन्दीके शब्द-भण्डारमें काफी वृद्धि हुई है, किन्तु इन कोशोंमें उन्हें लेनेका प्रयास प्रायः नहींके बराबर किया गया है। वस्तुतः हिन्दीमें प्रायः कोशोंके आधारपर ही कोश बनाये जाते रहे हैं। नागरी प्रचारिणी सभाने 'हिन्दी शब्दसागर' हिन्दी वाङ्मय और हिन्दी बोलचालसे शब्द-संग्रह करके सम्पादित कराया था। बादके प्रायः अधिकांश कोश इसी कोशके आधारपर बनते रहे हैं।

विशालताकी दृष्टिसे स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कोशोंमें सबसे बड़ा 'मानक हिन्दी कोश' है जो पाँच भागोंमें (१९६२, १९६२, १९६३, १९६४, १९६५) प्रकाशित हुआ है। सम्मेलनने एक अच्छा कोश प्रकाशित करानेके उद्देश्यसे इस सदीके तीसरे चरणमें एक कोश-विभागकी स्थापना की थी। प्रारम्भमें ८-९ महीनोंतक प्रस्तुत पंक्तियोंका लेखक उस विभागका प्रधान था। उस बीच हिन्दी वाङ्मय से कई हजार ऐसे शब्द छाँटे गये थे जो सभाके 'हिन्दी शब्द सागर' में नहीं थे। बादमें रामचन्द्र वर्माने कुछ अन्य लोगोंकी सहायतासे उस सामग्री तथा प्रकाशित अन्य कोशोंके आधारपर 'मानक हिन्दी कोश' सम्पादित किया। इस कोशकी भी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह न तो वर्णनात्मक कोश बन सका है और न ऐतिहासिक। इसकी विशालताको देखते इसमें हिन्दीमें प्रयुक्त काफी मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी आ जानी चाहिये थीं, मुहावरे तो फिरभी कुछ आ गये है किन्तु लोकोक्तियाँ प्रायः नहीं है। कोशविज्ञान और कोशकला

---

१. विस्तृत सूचनाके लिए देखिये 'भाषा-चिन्तन' (भोलानाथ तिवारी, १९७१ में 'हिन्दी कोशोंकी परम्परा' शीर्षक लेख।

की दृष्टिसे यह कोश 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' से आगे नहीं

बढ़ सका है। व्युत्पत्तियाँ प्रायः भ्रामक और गलत हैं, एकही शब्दकी व्युत्पत्ति एक स्थान पर कुछ दी गई है तो दूसरे स्थानपर कुछ[1]। और भी गड़बड़ियाँ हैं।

'हिन्दी शब्द सागर' का दूसरा परिवर्तित-परिवर्द्धित संस्करण १९६५ से प्रकाशित होना शुरू हुआ है। किन्तु उसमें उल्लेख्य परिवर्तन शब्द-संख्या बढ़ानेकी दिशामें ही हुआ है, व्युत्पत्ति, अर्थ-क्रम या अर्थ-निर्धारण आदि की दिशामें नहीं।

अच्छा था। स्वतन्त्रताके पूर्व इस सदीमें रामचन्द्र पाठक का भार्गव-हिन्दी अंग्रेजी कोश (१९४६) प्रकाशित हुआ जो सभी दृष्टियोंसे काफी त्रुटिपूर्ण था। उदाहरणके लिए कोशकारने मोनियर विलियम्सके कोशसे अनेकानेक शब्द और उनके अंग्रेजी पर्याय इस कोशमें ऐसे रख दिये थे जो उस अर्थमें हिन्दीमें कभी प्रयुक्त ही नहीं हुए। इस तरह इसके अनेक शब्द अर्थकी दृष्टिसे हिन्दीके न होकर संस्कृतके हैं। स्वतन्त्रताके बाद जो प्रयास हुए हैं उनमें विशेष उल्लेख्य दो हैं। पहला तो छोटा-सा कोश है:

[शेष पृष्ठ १०० का]

इन्हींके शिष्य थे जिन्होंने भोजपुरी और हिन्दी ध्वनियों पर कार्य किया था। फर्थके ही शिष्य हैलिडेने अपने मौलिक चिन्तनके आधारपर भाषा-विश्लेषणकी नयी व्यवस्थाको जन्म दिया है जिसे Systemic Grammar कहते हैं। भारतमें इनके एकमात्र अनुयायी डॉ० शिवेन्द्र किशोर वर्मा हैं जिन्होंने हिन्दी तथा हिन्दी-अंग्रेजी क्रिया-वर्णोंकी तुलनापर कार्य किया है। अमरीकी विद्वान् नाम चाम्स्की (Noam Chomsky) ने रूपान्तरण (Transformational) पद्धतिका विकास किया है। इस क्षेत्रमें डॉ० मनेन्द्रकिशोर वर्मा और डॉ० यमुना काचरूके नाम उल्लेखनीय हैं। लेनिनग्राद स्कूलमें प्रशिक्षित डॉ० रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तवने लेनिनग्राद स्कूल, रूपान्तरण पद्धति, शैलीविज्ञान तथा केस ग्रामर आदिकी दृष्टिसे हिन्दी भाषा पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वस्तुतः डॉ० श्रीवास्तवको छोड़कर ये सभी विद्वान् अंग्रेजीमें ही लिख रहे हैं।

भाषाविज्ञानके अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें हिन्दी भाषाको आधार बनाकर हिन्दीमें अभी कार्य प्रारम्भ ही नहीं हुआ है। बोली भूगोल ऐसाही क्षेत्र है जिसमें बहुत कुछ कार्य होना चाहिये। बाबू श्यामसुन्दरदास, डॉ०धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ० बाबूराम सक्सेनाने भाषाविज्ञानकी जिस स्वस्थ परम्पराका स्वतन्त्रता प्राप्तिसे पूर्व विकास किया था, उसी परम्परामें सन् १९४७ के श्चात् डॉ०विश्वनाथप्रसाद, डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० हरदेव बाहरी, डॉ० भोलानाथ तिवारी, डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया, डॉ० रमेशचन्द्र महरोत्रा तथा डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के नाम अधिक उभरकर आगे आये हैं। डॉ० विश्वनाथ प्रसाद आज जीवित नहीं हैं, शेष अन्य विद्वान् निरन्तर कार्यरत हैं।

आज अमरीका, लन्दन, रूस आदि विभिन्न देशोंमें विकसित होनेवाली भाषा-विश्लेषणकी नयी दिशाओंसे परिचित होना तो आवश्यक है किन्तु उनके अन्धानुकरणसे विशेष लाभ नहीं होगा, क्योंकि जो विद्वान् उन विभिन्न पद्धतियोंका विकास कर रहे हैं वे स्वयं भी उन पद्धतियोंसे पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हैं। इसी कारण दो-चार वर्षोंमें वे उनमें परिवर्तन कर देते हैं। सन् ६४, ६५ तक जिस 'रूपान्तरण' (Transformation) की धूम मची हुई थी आज वह भाषाविज्ञानके क्षेत्रमें पुरानी पड़ गयी है। बादमें सन् १९६९तक आते-आते फिलमों द्वारा प्रस्तुत 'केस ग्रामर' ने विद्वानोंका ध्यान अत्यधिक आकृष्ट किया। इधर वे स्वयं संशोधनके नामपर प्रतिवर्ष उसमें परिवर्तन करते जा रहे हैं। अस्तु, हिन्दी भाषाविज्ञानके क्षेत्रमें कार्यरत विद्वानोंको अपने देशमें प्रचलित प्राचीन विश्लेषण-व्यवस्थाओंका समुचित लाभ उठाना चाहिये तथा हिन्दी भाषाकी आवश्यकतानुसार अपनी पृथक् विश्लेषण-पद्धतिका विकास करना चाहिये।

हिन्दी – अन्य भाषा कोश

जहाँतक हिन्दी-अंग्रेजीके बड़े कोशोंका प्रश्न है, पिछली सदीमें प्लाट्सका कोश निकला था, जो बहुत ही

Hindi-English Dictionary of Common Words, जो केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयने प्रकाशित किया था। अपनी सीमाओंके बावजूद यह अच्छा कोश था। दूसरा है महेन्द्र चतुर्वेदी और भोलानाथ तिवारीका व्यावहारिक हिन्दी-अंग्रेजी कोश (१९७०)। इस कोशकी कुछ विशेषताएँ हैं : अर्थोंका प्रयोगाधिक्यके आधारपर क्रमण विशिष्ट चिह्नों द्वारा शुद्ध उच्चारणका संकेत तथा हिन्दी

1. दे० 'मानक हिन्दी कोशकी व्युत्पत्तियों पर पुनर्विचार' अनुवाद २८ में प्रकाशित डॉ० पूर्णसिंह डबास का लेख।

की बहुप्रयुक्त सारी व्यावहारिक शब्दावली, मुहावरों तथा लोकोक्तियोंका समावेशन। प्रयोगमें आये नये शब्दों तथा पुराने शब्दोंके नवविकसित अर्थों आदि कई दृष्टियोंसे इसमें सुधारकी काफी गुंजाइश है। हिन्दी—अन्य भाषा कोशोंमें एक उल्लेख्य कोश बेस्क्रोव्नीका हिन्दी-रूसी कोश (१९५३) भी है जो आधुनिक कोशकलाकी दृष्टिसे अच्छा है। रूसमें एक हिन्दी-रूसी बड़ा कोश भी बन रहा था, पता नहीं अभीतक वह छपा या नहीं। रामस्वरूप शास्त्री का आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश (१९५७) भी अच्छा है।

गुजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित एवं मगनभाई प्रभूदास देशाई द्वारा सम्पादित हिन्दी-गुजराती कोश (१९५६, मूलतः पूर्वप्रकाशित), पंजाबी विभाग पटियालाका हिन्दी-पजाबी कोश (१९५३), कृष्णलाल वर्मा तथा पेणकरका राष्ट्रभाषा हिन्दी मराठी कोश (१९५१), नीहार पात्रका हिन्दी–ओड़िया शब्दकोश (१९५१), दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के-हिन्दी-तमिल कोश (१९५९), हिन्दी तेलुगुकोश (१९५०; मूलतः पहलेका) तथा हिन्दी-कन्नड़ कोश (१९५०) एवं राघवन नायरका हिन्दी-मलयालम कोश (१९५०) भी इस दिशामें उल्लेख्य हैं।

अन्य –भाषा हिन्दी

इस क्षेत्रमें प्रयास तो काफी हुए हैं किन्तु उल्लेख्य केवल निम्नांकित हैं : संस्कृत-हिन्दीकोष (१९६६, आप्टेके प्रसिद्ध संस्कृत-अंग्रेजी कोशका हिन्दी अनुवाद), हरगोविन्द दास त्रिकमचन्द शेठका पाइअसद्द महण्णवो (मूलकोश पुराना है पर परिवर्धित संस्करण १९६४ का है), मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ 'मद्दाह' का उर्दू-हिन्दी शब्दकोश (१९५९), हरिहर शर्माका तमिल-हिन्दी कोश (१९६२), आँध्र हिन्दी प्रचार सभा हैदराबादका 'आंध्र-हिन्दी कोश' (१९५६). पी० कृष्णन् नायरका 'त्रिभाषा कोश' (मलयालम-हिन्दी अंग्रेजी कोश, १९६९), बेस्क्रोवनीका 'रूसी-हिन्दी शब्द-कोश' (१९५७) वीर राजेन्द्र ऋषिका 'रूसी-हिन्दी शब्द-कोश (१९५७), अंग्रेजी-हिन्दी कोश लगभग ११ प्रकाशित हुए हैं जिनमें सबसे अच्छा कामिल बुल्केका अंग्रेजी-हिन्दी कोश (१९६८) है। यह कोश बहुत बड़ा नहीं है किन्तु द्विभाषिक कोशोंके लिए अपेक्षित कोशकलाका इसमें बहुत अच्छा निर्वाह हुआ है। अच्छा हो हिन्दीके कोशकार कुछ दृष्टियोंसे इसे आदर्शके रूपमें अपने सामने रखें। बड़े अंग्रेजी-हिन्दी कोशोंमें हरदेव बाहरीका वृहत् अंग्रेजी-हिन्दी-कोश (१९६०) तथा सत्यप्रकाश और बलभद्र मिश्र का मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश उल्लेख्य हैं, वस्तुतः इन दोनोंमें प्रविष्टियाँ अधिक देने तथा हर प्रविष्टिके लिए हिन्दीके उपलब्ध सारे प्रचलित-अप्रचलित शब्दोंको एकत्र करनेपर बल रहा है। द्विभाषिक कोशोंमें प्रतिशब्द बहुत नाप तौलकर सटीक और इसीलिए थोड़े दिये जाने चाहिये। इस ओर इन दोनोंही कोशोंमें बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया गया है। इनमेंसे दूसरे-कोश को अच्छा होना चाहिये था, क्योंकि प्रकाशनके पूर्व इसमें अनेक बार संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन किये गये मूलतः हरदेव बाहरीके निर्देशनमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबादमें इसका काम हुआ था, कुछ दिनोंतक भोलानाथ तिवारी के निर्देशनमें भी यह काम आगे बढ़ा। बादमें केन्द्रीय सरकारकी सहायतासे इस कोशकी सामग्री दिल्ली लायी गयी तथा रामचन्द्र टंडन और भोलानाथ तिवारीके निर्देशन में ५-६ व्यक्ति उसमें संशोधन-परिवर्धन कर प्रेस कापी तैयार करते रहे। प्रेस कॉपी फिर इलाहाबाद ले जायी गयी और उसे कई लोगोंकी देख-रेखमें 'बड़ा' बनानेका प्रयास होता रहा जो अन्तमें इस रूपमें प्रकाशित हुआ है। मैं चूंकि इस कोशसे दो बार सम्बद्ध हुआ, अतः यह विनम्रतापूर्वक अवश्य कहूँगा कि इसका वर्तमान रूप वृहत तो है किन्तु कोशकलाकी दृष्टिसे वह जैसे १९वीं सदीका है। हरदेव बाहरी या रामचन्द्र टन्डन तथा भोलानाथ तिवारीके निर्देशनमें तैयार किये इसके पूर्ववर्ती रूप वर्तमान रूपसे कहीं अच्छे थे। 'आकार' की वेदीपर 'प्रकार' की बलि प्रायः हो जाती है। आश्चर्य यह है कि इस बृहदाकार कोशमें पुरानी अंग्रेजीके तो बहुतसे शब्द भर दिये गये हैं, किन्तु अंग्रेजीके वर्तमानकालमें प्रचलित बहुत-से शब्द जो अंग्रेजीके कोशोंमें भी हैं, छूट गये हैं। अर्थ आदि अन्य भी कई दृष्टियोंसे काफी गलतियाँ हैं।[1]

परिभाषिक शब्दकोष

हिन्दीमें वैज्ञानिक या तकनीकी वाङ्मयकी कोई विशेष परम्परा नहीं रही है, इसी कारण हिन्दीमें पारभाषिक शब्दोंकी कमी रही है। योंतो इस कमीको दूर करनेके लिए स्वतन्त्रताके पूर्वभी कुछ प्रयास हुए थे

---

१. देखिये 'भाषा' (पत्रिका) के भाषाविज्ञान विशेषांक में महेन्द्र चतुर्वेदी द्वारा इस कोशकी समीक्षा।

किन्तु इस ओर विशेष ध्यान स्वतन्त्रताके बाद ही गया है। इस दिशामें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य केन्द्रीय सरकार के पारिभाषिक शब्दावली आयोगने किया है। यहाँ एक लाखसे ऊपर पारिभाषिक शब्दोंका निर्धारण (भारतीय भाषाओंके लिए) हुआ है। १९६२ में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयने पारिभाषिक शब्द-संग्रह नामसे पूरे कार्यको समेकित रूपमें प्रकाशित किया था। फिर उसका संशोधन हुआ और विज्ञानकी शब्दावली अलगसे प्रकाशित हो गयी है। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि कई राज्य सरकारों, नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि संस्थाओं तथा स्वतन्त्रतः कई व्यक्तियोंनेभी इस दिशामें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। व्यक्तियोंमें डॉ०रघुवीर का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है।

इनके कोश 'A Comprehensive English-Hindi Dictionary' (१९५५) में अंग्रेजीके काभी तकनीकी शब्दोंके लिए हिन्दी प्रतिशब्द दिये गये हैं। इस प्रसंगमें यह भी उल्लेख आवश्यक है कि डॉ० रघुवीरके बनाये अनेक तकनीकी हिन्दी शब्द आज पूरी तरह प्रचलन में हैं। इस रूपमें उनके कार्यका ऐतिहासिक महत्त्व है, किन्तु साथही इस ओर भी संकेत किये बिना नहीं रहा जा सकता कि डॉ० रघुवीरका हिन्दी तकनीकी शब्दावली विषयक यह सिद्धान्त कि हिन्दीके हर ऐसे शब्दके लिए (जैसे कलम, रेल, टिकट) जो मूलतः किसी विदेशी भाषा का है, यातो संस्कृत वाङ्मयसे नया शब्द आना चाहिये या धातु, प्रत्यय, उपसर्ग आदिके आधारपर नये शब्द बनाये जाने चाहिये, वैज्ञानिक नहीं है। उदाहरणके लिए नहरके लिए 'कुल्या' या सडकके लिए 'रथ्या' शब्द उन्होंने दिया है। इस तरहके प्रयास चाहे वे किसीकेभी द्वारा किये जायें, हास्यास्पदही होंगे। कुछ अन्य मुख्य पारिभाषिक कोश हैं : जन्तुविज्ञान शब्दकोश (१९५६)—महेश्वरसिंह; अर्थ-शास्त्र शब्दकोश (१९४८)—रघुवीर; गणितीय कोश (१९५४)—ब्रजमोहन; भौतिक विज्ञान कोश (१९५१)—सत्यप्रकाश; शासन शब्दकोश (१९४८)—राहुल सांकृत्यायन; बिहार विधान सभा शब्दावली (१९५२); विधिशब्द सागर (१९५१)—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी; भौगोलिकशब्दकोश और परिभाषाएँ (१९५५)—अमरनाथ कपूर; साहित्यशास्त्रका पारिभाषिक शब्दकोश (१९५५)—राजेन्द्र द्विवेदी; हिन्दी साहित्य कोश (१९५८)—धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य; भाषाविज्ञान कोश (१९६४)—भोलानाथ तिवारी।

व्यक्ति तथा कृतिकोश

इस क्षेत्रमें हिन्दी में अभीतक अधिक काम नहीं हुआ है। स्वतन्त्रताके बादके प्रकाशन ये हैं : तुलसी शब्दसागर (१९५४)—हरगोविन्द तिवारी तथा भोलानाथ तिवारी; सूरब्रजभाषा कोश (१९४६ से १९६२ तक)—प्रेमनारायण टण्डन; प्रसाद साहित्य कोश (१९५७)—हरदेव बाहरी; प्रसाद काव्य कोश (१९५७)—सुधाकर पाण्डेय,कबीर कोश (१९७३)—परशुराम चतुर्वेदी और महेन्द्र; मीराँ कोश (१९७३)—शशि प्रभा। कुछ कृतियोंकी अनुक्रमणियाँ भी तैयार हुई हैं : मानस शब्द सागर (१९५५) - बद्रीदास अग्रवाल, कामायनी शब्द-सूची (अप्रकाशित)—भोलानाथ तिवारी, साकेत शब्द-सूची (अप्रकाशित)—उमाकान्त गोयल, कबीर शब्द-सूची (अप्रकाशित)—पारसनाथ तिवारी।

बोली कोश

कुछही हिन्दी बोलियोंके कोश प्रकाशित हुए हैं। उल्लेख्य हैं : अवधी कोश (१९५५)—रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'; राजस्थानी सबद कोस (१९६१)—सीताराम लालस; ताजुज्बेकी कोश (१९७०)—भोलानाथ तिवारी (ताजुज्बेकी पुस्तकके अन्तमें), ब्रजका सूरके साथ सम्मिलित कोश निकला है, इसका स्वतन्त्र कोश आना चाहिये। बुन्देली तथा मैथिलीपर बहुत छोटे-छोटे कोश भी छप चुके हैं।

मुहावरा कोश

हिन्दी मुहावरोंपर अपेक्षाकृत अच्छेकाम हुए हैं। स्वतन्त्रताके बादके प्रकाशित ग्रन्थ हैं : हिन्दी मुहावरा कोश (१९५१)—भोलानाथ तिवारी; बृहत् मुहावरा कोश (प्रथम भाग १९५९)—रामदहिनमिश्र, हिन्दी मुहावरे (१९६९)—प्रतिमा अग्रवाल। अन्तिम ग्रन्थकी विशेषता यह है कि इसके सारे प्रयोग हिन्दी के विभिन्न कवियों और लेखकोंसे लिये गये हैं।

लोकोक्ति कोश

स्वतन्त्रताके पूर्व भी इस दिशामें कुछ उपयोगी काम हुए थे। स्वतन्त्रताके बाद राजस्थानी, मालवी, कुमायूँनी, बुन्देली, भोजपुरी आदिके अच्छे लोकोक्ति कोश प्रकाशित हुए हैं। मुख्य हैं : राजस्थानी कहावतें (१९४९)—नरोत्तम स्वामी तथा व्यास; मालवी कहावतें (१९५०)—

[शेष पृष्ठ १०६ पर]

उर्दू साहित्य : २५ वर्ष

—अज़ीज़ इन्दौरी,
उर्दू विभाग, आई० के०
कॉलेज, इन्दौर

किसीभी भाषाके साहित्यपर नज़र डालनेसे पहले उसकी प्रारम्भिक स्थितिका पता लगाना जरूरी है। ऐसा किये बिना हम उसमें समय-समयपर हुए परिवर्तनोंका पता नहीं चला सकते।

उर्दू हिन्दुस्तानमें जन्मी ऐसी भाषा है जिसे शक्तिशाली बनानेमें भिन्न-भिन्न भाषाओं और संस्कृतियोंका सहयोग रहा है। इसे अपने प्रारम्भसे ही ऐसे भाषाइयोंसे वास्ता पड़ा जिनकी मातृभाषा फ़ारसी थी या वे इस भाषासे प्रभावित थे। ऐसी स्थितिमें उर्दूका फ़ारसीसे प्रभावित होना स्वाभाविक था।

परन्तु उर्दूके साहित्यिकोंको प्रारम्भसे ही इस बातका एहसास था कि अपने निजी अनुभवके बिना अपने साहित्य का क्षेत्र न तो व्यापक बनाया जा सकता है और न उसे शक्तिशाली ही। इसी कारण उन्होंने अपना अलग मिज़ाज बनानेका आरम्भ ही से प्रयत्न किया। उन्होंने जब-जब प्रगतिशील वातावरण पाया, उससे भरभूर लाभ उठाया और अपने चित्तनके लिए नये तरीके खोजे, चाहे जमाना कितनाही कठिन रहा हो, स्थिति कितनीही उलझी हुई रह हो, दरबार और सरकारकी निगरानी कितनीही सख्त रही हो। उर्दू साहित्यकार ख़ुद को नयेरूपमें ढालने और आगे बढ़नेसे कभी पीछे नहीं रहे। प्रारम्भसे अबतकके साहित्यकारों और शायरोंकी रचनाओंसे इसके उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे वली, मीर, नज़ीर ग़ालिब, इक़बाल, जोश, चकबस्त, हाली, फ़ैज, फिराक़, सरदार जाफ़री, मीराजी, न०म० राशिद, सलाम, मख़दूम, मजाज़, अख़्तर कैफी, साहिर, अख़्तरूलइमान, कुमार पाशी, अमीक़ हन्फ़ी मोहम्मद अलवी की शायरी, मीर, इन्शा मीर हसन, शेफ़्ता और मोहम्मद हुसेन आज़ादके तज़करे, हीली, शिबली, महदी अफ़ायी, वहीदुद्दीन सलीम, सुलेमान नदवी डॉ० अब्दुल हक़, पण्डित कैफ़ी, अब्दुल रहमान बिजनोरी, मजनूं, सुरूर, रातेशाम हुसेन, अख़्तर हुसेन, कलीमुद्दीन एहमद, नियाज़, डॉ० रास० अब्दुल्लाह, इबादत बरेलवी, डॉ० अब्दुल अलीम, सरदार जाफ़री, अज़ीज़ एहमद, अब्दुल शकूर, फिराक़, मुमताज़ हुसेन, शबीह एहमद, असलूब एहमद, सज्जाद ज़हीर, डॉ० ख़लीलुर्रहमान, डॉ० वहीद अख़्तर, डॉ० अबू मोहम्मद सहर, शमसुर्रहमान फारूक़ी, महमूद हाशमी, फ़ुजेल जाफ़री इत्यादिकी आलोचनाएँ रामबाबू सक्सेना, मसूद हसन, डॉ० रोजाज़ हुसेन, हामिद हसन, नसीम कुरेशी, नूरूल हसन डॉ० ऐजाज़ हुसेन, हामिद हसन, नसीम कुरेशी, नूरुल हसन हाश्मी, डॉ० उबुल्लेस इत्यादिकी "तारीख़े अदब" (साहित्यका इतिहास) वजही, ग़ालिब, मोहम्मद हुसेन आज़ाद, शिबली सर सय्यद एहमद खान, पण्डित सरशार, नज़ीर एहमद, हाली, शरर, प्रेमचन्द, सज्जाद हैदर यलदरम कृष्णचन्द्र, राजेन्द्रसिंह बेदी, इस्मत, के० ए० अब्बास, नदीम कासमी, मंटू, मसरूर, मस्तूर, जीलानीबानो, वाजेदातबस्सुम, इन्तेज़ार हुसेन, रतनसिंह, बलराज मेनरा, रामलाल, कोसर चाँदपूरी, बलवन्तसिंह, अली अब्बास हुसेनी इत्यादिकी दास्तान, उपन्यास या कहानियोंको इस सम्बन्धमें पेश किया जा सकता है, जिनकी रचनाओंमें समय-समय पर उभरी समस्त विचारधाराएँ मिल जाती हैं।

परन्तु उर्दू साहित्यकी प्रगतिका नया और पहलेसे अधिक सुलझा हुआ रूप उस समय सामने आया जब अंग्रेजोंने अपनी नयी विचारधारासे भारतीय साहित्यको प्रभावित किया। इस प्रभावसे साहित्यिक वातावरणमें बहुत-से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उर्दू साहित्यकारको पहली बार किसी उन्नत साहित्यका गम्भीरता से अध्ययन करनेका अवसर मिला और उसने विश्वके दूसरे उन्नत साहित्योंके मुक़ाबलेमें आनेकी कोशिश की। इस प्रकार

कहा जा सकता है कि अबतक उर्दू साहित्यमें जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद डालनेमें अंग्रेजों की विचारधाराका बड़ा हाथ रहा।

उर्दू साहित्यकारोंको अँग्रेज़ी शासनकालमें विदेशोंकी यात्रा करने और वहाँके साहित्यको पढ़नेका अवसरभी मिला और उन्होंने महसूस किया उनकी डगर उन्हें ऐसी मंज़िलकी ओर ले जा रही है जिस ओर ज़मानेका रुख़ नहीं है। अगर वे उसपर लम्बे समयतक चलते रहे तो ज़मानेकी दौड़में काफ़ी पीछे रह जायेंगे। इसी कारण वे बिना झिझक अपनी बेजान परम्पराओंको छोड़ने और यूरोपीय साहित्यके उत्कृष्ट पहलुओंको अपनानेपर मजबूर हो गये। यहाँतक कि उन्होंने तकनीकी शक्लोंमें भी यूरोपीय साहित्यसे प्रभावित होना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार वे जीवनकी जटिल और महत्त्वपूर्ण समस्याओंपर विचार करने और उनका कोई हल खोजनेके योग्य हो सके। चिन्तन और अनुभूतिके इस नये रूपके कारण जीवनकी महत्त्वपूर्ण समस्याएँ और चित्र पहली बार बहुत साफ़ और ग़म्भीर शक्लमें नज़र आये।

हालीके ज़माने (१८५७ ई० के बाद) के बादकी पीढ़ीने नये विचारों और नयी रूपरेखाओंको जिस प्रकार अपनाया उससे उर्दू साहित्यमें काफ़ीसे अधिक फैलाव पैदा हुआ। इस पीढ़ीसे सम्बन्धित साहित्यकार "प्रगतिशील दृष्टिकोण" के थे और उन्होंने "हुस्नोइश्क़" की रागनियोंके स्थानपर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोणको उर्दू साहित्यमें खुलकर सम्मिलित किया। इस प्रगतिशील दृष्टिकोणने उर्दू साहित्यकारको स्वतन्त्रता संग्रामी, देशभक्त, ग़रीबी और अमीरीके अन्तरको उभारनेवालोंपर तेज़ीसे प्रहार करनेवाला बना दिया और साहित्यमें नये-नये दृष्टिकोणों और विचारधाराओंके साथही नये-नये प्रयोग किये जाने लगे। आज़ाद नज़्म (Free-verse), मोअर्रा नज़्म (Blank-verse), सानेट (Sonnet) ओड (Ode), मुख़्तसर नज़्में (Short Poem), नॉवेल (Novel), मुख़्तसर अफ़साना (Short' Story) सब उसी प्रयोगवादी आन्दोलनकी देन हैं। इस आन्दोलनसे सम्बन्धित साहित्यकारोंने भाषामें भी कई परिवर्तन किये और घिसीपिटी भाषा और बेजान शब्दोंके प्रयोगको समाप्त कर भाषाको ऐसा रूप दिया जो उनके विचारों और दृष्टिकोणका पूर्ण माध्यम बनने में सहयोग दे सके।

उर्दू साहित्यमें प्रगतिशील विचारोंका यह सिलसिला गत २० वर्षोंतक बड़ा तेज़ और लोकप्रिय रहा और उर्दू साहित्य हर क्षेत्रमें आगे बढ़ा। इस साहित्यमें जहाँ सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विवशताओं और संकटोंका चित्रण हुआ वहीं देशके प्रति निष्ठाके भी महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत हुए। आज़ादीके बादके उस वातावरणके चित्र-चित्रित हुए जिसने मनुष्यको मनुष्यका दुश्मन बनाकर पूरे समाजमें घृणा फैलायी थी। यही नहीं, बल्कि उन्होंने हर उस वातावरणको बदलना चाहा जिसने मनुष्यतापर प्रहार किया। परन्तु इस आन्दोलनके तहत जिस साहित्यका जन्म हुआ वह केवल विशिष्ट दृष्टिकोण और विचारधारा तकही सीमितरहा। यह प्रवृत्ति एक प्रकारसे आज़ादीसे विचार प्रकट करनेके रास्तेमें रुकावट बनी। ऐसी धारणा बनने लगी कि प्रगतिशील आन्दोलनके अन्तर्गत विचारोंका गला घोंट दिया गया है। इस विचारधाराने सामाजिक समस्याओंपर ही ध्यान दिया इसलिए सामूहिक विचारधारा और दृष्टिकोणपर तो बात की गयी परन्तु मनुष्यके व्यक्तित्वको दबा दिया गया और मनुष्यके व्यक्तित्वका विकास नहीं हो पाया। यहभी एहसास हुआ कि सामाजिक नारोंमें लिपटा हुआ साहित्य अधिक लाभदायक नहीं हो सकता।

[शेष पृष्ठ १०४ का]

रतनलाल मेहता; बुन्देली कहावत कोश (१९६०) – कृष्णानन्द गुप्त; राजस्थानी कहावतें (१९६०) —कन्हैयालाल सहल; कहावत कोश (भोजपुरी, मगही, मैथिली, १९६५), भुवनेश्वरनाथ मिश्र।

चरित्र कोश

इस क्षेत्रमें हिन्दी में अभी कमही काम हुआ है। स्वातन्त्र्योत्तर प्रकाशन हैं : हिन्दी साहित्यकी अन्तर्कथाएँ (१९५५)—भोलानाथ तिवारी; हिन्दी कथा कोश (१९५४)—भोलानाथ तिवारी; हिन्दी सेवी संसार (१९६३)—प्रेमनारायण टण्डन; हिन्दी साहित्य कोश भाग २ (१९६३) – धीरेण्द्र वर्मा तथा अन्य; भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश (१९६४)—सिद्धेश्वर शास्त्री; महाभारत कोश (१९६४)—रामकुमारराय, भारतीय लेखक कोश (१९७०)—रामगोपाल परदेसी, आवश्यकता है।

इसका एक कारण यह भी था कि उर्दू का साहित्यकार जिस वातावरणमें साँस ले रहा था उसमें विज्ञानकी बेतहाशा उन्नति और औद्योगिक क्रान्तिकी कोखसे जन्मी नयी सभ्यता और नये नैतिक मापदण्डके नामपर मजबूरी और ज़बरदस्तीकी ऐसी दीवार खड़ी करदी गयी है कि जिसे तोड़कर दूसरी ओरके एकान्तको प्राप्त करना उसके लिए असम्भव है। वह महसूस कर रहा था कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हंगामोंमें उसका व्यक्तित्व खो गया है। उसे यहभी महसूस हुआ कि नये नैतिक मापदण्डोंके नामपर फैला दी गयी सभ्यताने समस्त सभ्य और सामाजिक मापदण्डोंको समाप्त कर दिया है और मनुष्यसे मनुष्यके समस्त सम्बन्धोंको तोड़ दिया है। इस विचारधाराके कारण वह जीवनको एक हंगामा समझकर उसके शोर ग़ुलसे बचता हुआ एक ऐसे एकान्त स्थानपर पहुँचनेकी चेष्टा करने लगा जहाँ वह अपने खोये हुए व्यक्तित्वको पाकर थोड़ी देरके लिए चैनकी सांस ले सके। इसीकारण उसने ऐसे तमाम सामाजिक बन्धनोंसे अपने नाते तोड़ लिये जिनमें समाजसे सम्बन्धित नारोंके अलावा और कुछ न था और जिनमें मनुष्यके व्यक्तित्वका कोई महत्त्व नहीं था। इस प्रकारके विचारोंको उसने अद्भुत-कथा समझकर उससे विरक्ति प्रकट की और एक ऐसी विचारधाराका अनुमोदन किया जिसके तहत जीवनको ऐसे ख़ानों (भागों) में बाँटा जा सके जिनमें अनुभूति और संवेदनाके चिरागोंको जलाया जा सके। इस चेष्टाका परिणाम यह हुआ कि उसने अपने परिवेश और जीवनके उन हंगामोंसे आँखें मूँद लीं जिनमें चन्द सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नारोंके अलावा कुछ न था और वह अपने व्यक्तित्वकी खोजमें इतना गुम हो गया कि अपनेही व्यक्तित्वमें परिवेश और जीवनके हंगामे दिखाई देने लगे। इन हंगामोंकी तेज़ीने उसे अपने भविष्यसे भी बड़ी हदतक मायूस कर दिया। उसने जब तकनीकी-दिमाग़ों और मेहनती हाथोंको बेकारीका शिकार होते देखा तो उसकी पीड़ाएँ और उलझनें और भी बढ़ गयीं। इसी कारण वह जब साहित्यकी ओर झुका तो उसकी रचनाओंमें सामाजिक हंगामे तो मौजूद रहे परन्तु उसने सामाजिक नारों और राजनीतिक उद्देश्योंसे खुदको हर प्रकारसे बचानेकी चेष्टाकी और इस प्रकार उसका साहित्य केवल "सूचना पट्टी" ही बनकर नहीं रह गया।

नये युगके नये साहित्यकारकी इन विचारधाराओंने उसे उस छायावादके निकट ला खड़ा किया जो ह्यूम (Hulme) के द्वारा साहित्यमें लाया गया था और जो वास्तवमें बर्गसां (Bergson) के विचारोंसे प्रभावित होकर पेश किया गया था। इसके तहत साहित्यको प्रतीकात्मक भाषा प्रदान करनेपर जोर दिया गया था। इसका एक कारण यह था कि छायावाद यह मान कर चलता था कि साहित्यमें केवल उन्हीं विचारधाराओंको स्थान दिया जा सकता है जो ज्ञान और बुद्धिसे हो और जो ऐसा वातावरण बना सके जिससे भविष्यमें मनुष्यका मानसिक विकास हो सके। उसके विचारमें राजनीतिक दृष्टिकोण या क्रान्ति अपने उद्देश्योंकी पूर्ति के बाद या तो निरर्थक हो जाती हैं या तंग आकर उन्हें समाप्त कर देना पड़ता है। इसी कारण उसने अपने साहित्यको उद्देश्योंके बजाय अपनी भावनाओंके प्रकट करनेका ऐसा साधन बनाया जिसपर किसी खास प्रकारके राजनीतिक या सामाजिक उद्देश्यकी छाप न हो।

नये साहित्यकारके विचारोंकी तबदीली का एक कारण यह भी था कि पहलेकी पीढ़ी जिस कार्यको धर्म या दर्शनके माध्यमसे पूर्ण करती थी उसे साहित्यके माध्यमसे हल करनेकी कोशिश की गयी। इस विचारधाराके अनुगामियोंमेंसे कुछका यह ख्याल भी था कि विज्ञान और टेक्नॉलाजीकी उन्नतिने कई शक्लोंमें मनुष्यके अन्दर मौजूद अमानवीयताको सर उठानेका अवसर दिया है और बरबादीके अनेक रूप पैदा कर दिये हैं। इसी कारण नयी पीढ़ीके साहित्यकारने किसी नयी विचारधाराको महसूस किया। उसने यह भी महसूस किया कि साहित्यकी पवित्रता नये और स्पष्ट विचारोंपर निर्भर है। ऐसी साहित्यिक विचारधाराकी ज़रूरत है जो मनुष्यको तबाहीसे बचा सके। इस एहसासने उसे काफी परेशान किया और वह मशीनी सभ्यताके समस्त खतरोंसे चिन्तित होकर मनुष्यके व्यक्तित्वको उज्जवल भविष्य दिलानेकी चेष्टामें जुट गया। उसने उन समस्त दीवारोंको तोड़ दिया जिनपर वर्तमान और अतीतका प्लास्टर चढ़ा हुआ था। उसने उन वैज्ञानिक तबदीलियोंमें अपने व्यक्तित्वको अकेला पाया और अपनी आत्माको दुनियाकी भूलभुलैय्यामें खोया हुआ देखा। इसी एकाकीपनके कारण अनिश्चित भविष्यकी अपेक्षा वह फिर अतीतको खोजनेके लिए

तेज़ी से लपका और अनेक बार वह सभ्यताके धुन्दलकोंमें भी खो गया। परिणाम यह हुआ कि उसके सामने पीड़ा और छटपटाहटका ऐसा वातावरण बन गया जो सतही शान्ति और दिलासासे नहीं मिट सका। उसने पीड़ा झेल लेनेकी आदत डाली और अपने रोगोंके इलाजके लिए उन साधनोंको मंजूर नहीं किया जो दिलपर हाथ रखकर उसे अच्छा कर दे। उसने अपने ज़ख्मोंको भरने की चेष्टा तो की, फिरभी अपने रोगी और ज़ख्मी व्यक्तित्वको लेकर सामाजिक समस्याओंके बीच भटकता रहा। उसने महसूस किया कि वह समाजके ऐसे निम्न स्तरपर बिठाकर जकड़ दिया गया है कि उसके व्यक्तित्वका महत्त्व समाप्त हो गया है। जब वह अपने व्यक्तित्वकी खोजमें निकला तो उसे महसूस हुआ कि सोसायटी द्वारा बनाये गये दायरे बेकार हैं। यह वह ज़माना था जब उसने अपने व्यक्तित्वकी शक्तिके सहारे सामाजिक पाबन्दियोंको तोड़कर ज़ुल्म और सामाजिक अमानवीयताको दूर करनेकी ओर ध्यान दिया। इसका यह रूप बड़ा ही गम्भीर था। अब उसके लिए मनुष्य पराश्रयी न रहकर अपने व्यक्तित्वकी शक्तिसे सम्पन्न ऐसा कलाकार बन गया जो पग-पगपर नये-नये विचारोंसे अनुप्राणित था। हालाँकि वह समाजके 'क़ैदखानों' से पूर्णरूपसे आज़ाद तो नहीं हो पाया लेकिन उसे आकर्षक बनानेकी कोशिश ज़रूर की। उसने अपने पैरोंमें पड़ी कड़ियोंको काटनेकी भी कोशिश की जो दायरोंके रूपमें उसे सीमित कर रही थीं।

इस प्रकार उसने समाजके स्तरको एक ऐसी ऊँचाई पर ले जाना चाहा जहाँ मनुष्यके व्यक्तित्वको दबाने और उसके साथ असमानताकी समस्त कोशिशोंको समाप्त किया जा सके। ऐसा करनेमें उसे कुछ कठिनाइयोंका सामनाभी करना पड़ा जिनके कारण उसमें चिड़चिड़ापन पैदा हो गया और कभी-कभी ऐसा महसूस हुआ कि वह ग़लत रास्तोंपर चलकर समाजके किसी पहलूकी अवहेलना कर रहा है। लेकिन इसके बावजूद उसने एक ऐसी नयी विचारधाराको स्वीकार किया जिसने समाजके बेकार दायरोंको तोड़कर उसे आज़ाद वातावरणमें साँस लेनेका अवसर दिया। लेकिन इस ढंगसे कि समाजमें अपने व्यक्तित्वको उभारकर उससे अपनेको दूर रखनेवाले पहलुओंको उसने कभी नज़रअंदाज नहीं किया। उसके इस दृष्टिकोणको मज़बूत बनानेमें दो-तीन बातोंका खास सहयोग रहा। पहली तो यह कि उसके ज़मानेतक विज्ञानने काफी उन्नति कर ली थी और उसके द्वारा समस्त विश्व और उसकी समस्याएँ एक दूसरेके निकट आ गयी थीं। इससे उसके चिन्तनके ढंगमें विस्तार हुआ। दूसरे ज्ञान और शिक्षाके नये-नये तरीकोंने भी उसके सामाजिक और राजनीतिक विचारोंमें काफ़ी परिवर्तन किया और उसने सामाजिक ज़ुल्म और ज़्यादतीके विरुद्ध क़दम उठाये। लेकिन साथही उसने विज्ञानके द्वारा पैदा हुई उस 'बुद्धि' से भी इन्कार किया जो मानव और उसके द्वारा बनायी गयी सुन्दर दुनियाको बरबाद कर दे। इसी कारण वह उन यान्त्रिक पद्धतियोंसे दूर रहा जो मनुष्यके जीवनको समाजके दायरों तक सीमितकर देती हैं।

इस प्रकार इस युगका मनुष्य और साहित्यकार व्यक्तिगत विचारोंके इतना निकट हो गया कि उसने सामूहिक विचारधाराकी चिन्ता नहीं की। उसने यहभी सोचा कि यदि वह अतीतकी परम्पराओंको अपना लेता है तो उसकी रचनात्मक शक्ति बेकार हो जायेगी। इसी कारण उसने साहित्यकी रूपरेखामें नये-नये प्रयोग करनेकी ओर ध्यान दिया।

उर्दू साहित्यमें इस ओर सबसे पहले उस समय ध्यान दिया गया जब २५-३० वर्ष पहलेतक प्रगतिशील आन्दोलनके तहत साहित्यको सामाजिक नारों और राजनीतिक उद्देश्योंतक सीमित कर दिया गया था। नयी विचारधाराओंमें आस्था रखनेवाला साहित्यकार सामूहिक विचारधाराओंके स्थानपर व्यक्तिगत दृष्टिकोण की खोजमें निकल पड़ी और उसने यह महसूस किया उसका यह प्रयत्न उसे भटका भी सकता है, इसी कारण वह सन्देह और किसी हदतक मायूसीका शिकार भी हुआ। परन्तु एक नयी दिशाकी ओर वह बढ़ा ज़रूर। उसे समाजके बनाये हुए दायरोंसे ख़ुदको अलग करते समय 'अकेलेपन' के इतने निकट हो जाना पड़ा कि अपने व्यक्तित्वके अलावा उसे कुछ नजर ही नहीं आया। परन्तु इतना होनेपर भी उसने उन औद्योगिक हंगामोंका रोना ही नहीं रोया जिनके कारण उसका व्यक्तित्व दब गया था बल्कि उस सभ्यताकी दुरुस्ती भी की जिसपर लालसा, बनावट और दिखावेका जंग लग गया था। उसने औद्योगिक प्रगति या क्रान्तिके विरुद्ध रोमाण्टिक आन्दोलनकी तरह कोई क़दम नहीं उठाया बल्कि उससे सम्बन्ध रखते हुए उसपर छायी हुई अराजकता और मायूसीको दूर करनेकी कोशिश की।

नये युगका उर्दू साहित्यकार समाजसे जिसप्रकार पराङ्मुख हुआ, उसका यह अर्थ हरगिज़ नहीं कि वह समाजसे कट जाना चाहता था। बल्कि उसने उसमें फैली हुई कमज़ोरियोंको दूर करने और उससे सम्बन्धित व्यक्तियोंको अपने व्यक्तित्वको उभारनेके अवसरोंको सम्मानके साथ प्राप्त करनेका प्रयत्न किया। वह अपने इस कार्यमें निराश नहीं हुआ, हालाँकि उसे क़दम-क़दमपर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। परन्तु यह सत्य है कि नये युगकी बदलती हुई हालतोंने उसे इतना एकाकी बना दिया था कि वह अपने व्यक्तित्वको खोजने और उसके लिए साफ़ और स्वच्छ वातावरण पैदा करनेकी कोशिशोंमें समस्त सम्बन्धोंको तोड़नेपर मजबूर हो गया। इस प्रकार नये साहित्यकारने जीवन और समस्याओंको सही रूपमें अनुभव करनेकी कोशिश की। यह स्पष्ट है कि उर्दूका वह साहित्यकार जो गत २०-२५ वर्षोंमें सामने आया है जीवन, समाज और ज़मानेसे सम्बन्धित उन विचारधाराओंको अपनानेपर ज़ोर दे रहा है जिनमें उसके व्यक्तित्वको सम्मानके साथ उभारा जा सके और साहित्यको सामाजिक नारों और राजनीतिक उद्देश्योंसे बचाया जा सके।

इसी कारण उर्दू साहित्यके नये रूपकी परिभाषा जिन नये आलोचकोंने की है उन्होंने उक्त विचारधाराओं को सामने ज़रूर रखा है। स्व० प्रो० ऐहतेशाम हुसेनने इस सम्बन्धमें कहा था : "नयी शायरीसे मैं आमतौरपर वह शायरी मुराद लेता हूँ जो गुज़िश्ता २५-३० सालमें की गयी है। उसके मुख्तलिफ़ असालीब[1], मुख्तलिफ़ नस्बुऐन[2], मुख्तलिफ़ मोज़ूआत[3] और इंतेख़ाबेमवाद[4] के मुख्तलिफ़ मोहर्रेकात[5] हैं"[क] फ़ुज़ेल जाफ़रीका कहना है : "नयी शायरी यक़ीनन हमें अपने ज़माने और जिन्दगी को वसीतर[6] पैमानेपर समझनेमें हमारी मदद करती है"[ख] अमीक़ हंफ़ी कहते हैं : "नया अदब आजके इंसानके इदरावेज एहसास[1] का इज़हार है। नया अदीब अपने ज़ात[2] के वसीले[3]से बाहर रूनुमा[4] होनेवाली तबदीलियोंके असरात[5] क़बूल करता है। और आहिस्तारों[8] जज़बात-पर उन तुन्दख़ू[7] तबदीलियोंके जो अक्स[5] पड़ते हैं उन्हें दिखाता है।"[ग] कुमार पाशीने इस सम्बन्ध में कहा है : "नयी शायरीसे मुराद उस शायरीसे है जिसे मेरे ऐहद[9] के इंसानने तख़लीक़[10] किया है। मेरा ऐहद जिसमें आज मैं साँस ले रहा हूँ तेज़ी के साथ ज़वाल[11] की तरफ़ गामज़न[12] है मेरा माज़ी अब मेरे हाथमें नहीं है।"[घ] नये साहित्यसे सम्बन्धित डॉ० वारिस किर्मानीके विचार हैं : "नये अदबसे मुराद वह तख़लीकी सरमाया है जो जो तरक्कीपसन्द तहरीक[13] के रद्देअम (Reaction) में हमारी ज़बान में ज़ाहिर[14] हुआ।"[क] शमसुर्रहमान फ़ारूक़ीका कहना है : "दाख़ली[15] और मानवियत[16] हक़ी-क़तसे मैं उस शायरीको जदीद समझता हूँ जो हमारे दौरके ऐहसासे जुर्म[17], ख़ौफ़[18] तंहाई, कैफ़ीयतेइंतेशार[19] और ज़हनी [20]बैचेनीका इज़हार[21]करती है। जो जदीद संअती[22] और मेकान्की तेहज़ीब[23] की लायी हुई माद्दीख़ुशहाली[24], ज़हनीखोखलेपन, रूहानी[25] दीवालियापन और ऐहसासे बैचारगीकी देन है।"[ख] डॉ० ख़लीलुर्रहमान आज़मीने अपने विचार प्रकट करते हुए नये साहित्यके बारेमें कहा है : "नया अदीब न किसी चीज़को आँख बन्द करके रद्द करनेके हक़ में है और न आँख बन्द करके क़बूल करनेकी ताईद[26] में। बल्कि वह ख़ुद अपने हवास[27] अपने तजरेबे[28] और

---

१. ढंग, २. उद्देश्य, ३. शीर्षक, ४. सामग्री का चयन,
५. हरकतमें लानेवाला, ७. विस्तार,

क. जदीद शायरी एक सिम्पोजियम मासिक 'किताब' स्पेशल नम्बर १९६७ ई० पृ० ११८

ख. नई नज़्म की ज़बान मासिक शबख़ून माह अगस्त १९६९ ई०पृ० ९

---

१. समझ, २. व्यक्तित्व, ३. द्वारा, ४. प्रगट,
५. प्रभाव. ६. धीमेचल, ७. तेज़ आदत, ८. युग,
९. रचा, १०. गिरावट, ११. चलन, १२. प्रगट,
१३. अन्दरूनी, १४. अर्थ १५. युग १६. डर, भय,
१७. बिखराव की हालत, १८. मानसिक, १९. प्रगट,
२०. ओद्यौगिक २१. सभयता, २२. संसारिक ख़ुशी,
२३. आत्मा, २४. समर्थन, २५. होश, २६. अनुभव,
२७. समझ, २८. बनावट रूप,

ग. जदीद शायरी एक सिम्पोजियम मासिक किताब स्पेशन न० १९६७, पृ० १२२

ख. जदीद शायरी एक सिम्पोजियम मासिक किताब स्पेशल न० १९६७ पृ० १२४

क. जदीद शायरी एक सिम्पोजियम मासिक "किताब" स्पेशल न० १९६७ पृ० १२७

ख. जदीद शायरी एक सिम्पोजियम मासिक "किताब" स्पेशल न० १९६७ पृ० १२९

अपने इदराक[1] से ज़िन्दगीकी माहेय्यत[2] और हक़ीक़त को दर्याफ्त[3] करना चाहता है चूँकि यह अमल[4] बहुत कठिन है और उसके सहारे छिन चुके है इसलिए जिन्दगीका कर्ब[5] उसे अकेले झेलना पड़ रहा है। तन्हाई का कर्ब, तलाशोनुस्तुजू[6] की अज़ीयत,[7] अनजानी चीज़ोंका खौफ़ और जानी हुई हक़ीक़तोंकी मौजोदगी[8] का एहसास जदीदतर शायरीकी नुमायां[9] ख़ुसूसियत[10] है। जिसपर आप किसी किस्म[11] का लेबल नहीं लगा सकते न किसी एक सिफ़त[12] के दायरेमें उसे मुक़य्यद कर सकते हैं। नये अदीबने वाइज़[13] ही नहीं आशिक़, रिन्द[14], रूहानी-बाग़ी[15], मुबल्लिग़[16], मुजाहिद[17] इंक़लाबी—सबके नसबनामे[18]को फिरसे एक बार आदमके साथ जोड़नेकी कोशिश की है और आदमीके चेहरेसे उसका ऊपरी ख़ोल[19]उतारकर उसके बातिन[20] में झानकने की कोशिश की है।''क

इस प्रकार हम देखते हैं कि गत २५ वर्षोंका उर्दू साहित्य एक ऐसी प्रतिक्रिया है जो मनुष्यको औद्योगिक क्रान्ति राजनीतिक बिखराव और विज्ञानकी प्रगतिसे सम्बन्धित हंगामोंसे दूर करके एकाकीपनके एक ऐसे स्थानपर पहुँचा देता है जहाँ बैठकर वह अपने व्यक्तित्व के पर्दोंसे बाहरी हंगामोंके अनुभवोंको प्राप्त करता है। उसकी इस क्रियाको किसी ख़ास उद्देश्य या तरीक़ेकी जरूरत नहीं रहती।

जहाँतक नये साहित्यकी रूपरेखाका प्रश्न है, इस सम्बन्धमें नए साहित्यकारने अपनेसे पूर्वके साहित्यकारोंकी अपेक्षा अधिक जागरूकता दिखायी। इस सम्बन्धमें उसने सबसे महत्त्वपूर्ण अनुभव यह किया कि इस साहित्यकी भाषाको प्रतीकात्मक बनाया। हालाँकि उसके इस कदम ने उसके विचारोंको किसी हदतक उलझा दिया और आम पाठक उन विचारोंकी गहराई तक नहीं पहुँच सका। इस प्रकार उसने अपने साहित्यमें एक ऐसे वातावरणको पैदा करना चाहा जिसका सम्बन्ध उसके बिखरे जीवनसे था। इसी कारण उसने उन तमाम शब्दों और मुहावरों को त्याग दिया जिनका सम्बन्ध उससे पूर्वके साहित्यसे था या वे शब्दों और मुहावरोंका उस साहित्यमें रीति और रिवाजकी तरह प्रयोग किया जा रहा था। इस प्रकार उसने नये-नये शब्दों और मुहावरोंका प्रयोगसे उर्दू भाषाका विस्तार भी किया। उसका यह कार्य समय के तकाजोंकी एक प्रकारसे पूर्ति भी था। क्योंकि उससे पूर्व भी यह कार्य इसी प्रकार हो चुका था और सत्य तो यह है कि किसीभी साहित्यकी नवीनताके लिए उसमें नये विचारोंके साथही उसकी भाषामें भी नवीनता लाना जरूरी होता है।

इस प्रकार नये साहित्यकारने जिस भाषाको अपनाया वह उससे पूर्वकी भाँति वर्णनात्मक नहीं थी। उसे विशेष क़ायदे-कानूनकी पाबन्दियोंसे आज़ाद कराया जो प्रगतिशील आन्दोलनसे सम्बन्धित साहित्यके ज़मानेमें पैदा हो गये थे। जिन्हें खास उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए बना लिया गया था।

भाषायी रूपमें नयापन पैदा करनेके कुछ उदाहरण देखिये :

(१) ध्यानकी सीढ़ियों प पिछले पहर
कोई चुपकेसे पाँव धरता है

(२) हर अदा आबे खाँकी लहर है
जिस्म है या चाँदनीका शहर है

(३) नहर क्यों सो गई चलते चलते
कोई पत्थर ही गिरा कर देखो

(४) फाख़्ता चुप है बड़ी देरसे क्यों
सर्वकी शाख़ा हिलाकर देखो

(५) ख़ाकभी उड़ रही है रस्तों पर
आमदे सुल्हका समाँ भी है

नासिर काज़मी

(६) चरागे बज़्म अभी जाने अन्जुमन न बुझा
के यह बुझा तो तेरे ख़द्दोख़ालसे भी गये

अज़ीज़ हामिद मदनी

(७) मुझे ख़बर है के एक मुश्तेख़ाक हूँ फिर भी
तू क्या समझके हवामें उड़ा रहा है मुझे

साक़ी फ़ारूक़ी

---

१. मालूम करना, २. क्रिया, ३. दुःख, ४. खोजना, ५. दुःख, ६,७. स्पष्ट, ८. विशेषता, ९. प्रकार १०. विशेषता, ११. क़ैद किया गया, १२. नसीहत करने वाला, १३. शराबी, १४. अन्मा का विरुद्धि, १५. किसी उद्देश्य को फैलाने वाला, १६. कार्य करने वाला, १७. परिवारिक, १८. वह चीज जो ऊपर से पहनी जाय, १९. अन्दर,

क. ''जदीदतर ग़ज़ल'' मासिक ''शबखून'' माह जून १९६८ पृ० २८-२९-३०

(८) मुझको गिरना है तो मैं अपने ही कदमोंमें गिरूँ
जिस तरह सायरोदीवार प दीवार गिरे

(९) यारों मैं उस नज़र की बुलन्दीको क्या करूँ
साया भी अपना देखता हूँ आसमान पर

शकेब जलाली

(१०) मेरे वजूदसे क़ायम है मौसिमोंकी बहार
मैं किस तरह भला अपने आप को भूलूँ

क़ुमार पाशी

गत् २५ वर्षोंमें उर्दू साहित्यमें जो परिवर्तन हुए उससे सम्बन्धित साहित्यकारोंमें दो प्रकारकी विचारधाराओंको माननेवाले साहित्यकार पाये गये। पहले प्रकारके साहित्यकार प्रतीकोंको तोड़मोड़कर परिवर्तित कर रहे हैं या उनमें कुछ नयापन पैदा करके उन्हें पेश कर रहे हैं और जिनकी रचनाओंमें कुछ सँभली हुई दशाओंका पता चलता है। इनमें फिराक़ गोरखपुरी, अख्तरुलइमान, हुरमतुलइकराम, डॉ० वहीद अख्तर, नासिर काज़मी, हसन नईम, सुलेमान फ़रीब, नाज़िश प्रतापगढ़ी, शकेब जलाली, शहाब जाफ़री, फ़ज़ा इबने फैज़ी, ऐजाज़ सिद्दीक़ी (सब शायर), फिराक गोरखपुरी, आले एहमद सुरूर, डॉ० वहीद अख्तर, महमूद हाश्मी, ग्यानचन्द जैन, क़मर रईस, शारिबरवोलवी (सब आलोचक) जोगेन्द्रपाल, रतनसिंह, रामलाल (सब गद्य लेखक) का विवरण प्रस्तुत करने योग्य है।

दूसरे प्रकारके साहित्यकारोंका सम्बन्ध उस विचारधारासे है जो 'मजलिसों' की सब पाबन्दियोंसे बाहर आकर अपने प्रतिबिम्ब (Image) को बाहरी वातावरण में आज़ादीके साथ फैलानेकी चेष्टा करते हैं। इनमें अमीक़ हंफी कुमार पाशी, बलराज कोमल, मोहम्मद अलवी, आदिलमंसूरी, काज़ी सलीम, निदा फ़ाज़ली, बिमल अश्क, बानी, मनमोहन तल्ख़, साजेदा ज़ैदी, जाहिदा ज़ैदी, इफ्तेख़ार जालिब, एहमद हुमेश, सादिक़ फ़ज़ल ताबिश, अतहर अब्बास, अतीकुल्लाह, सलीम एहमद, शहज़ाद एहमद, अख्तर हसन, शहरयार, शमीम हंफी (सब शायर); शमसुर्रहमान फ़ारूक़ी, शमीम हंफ़ी, फ़ुजेल जाफ़री, डॉ० वारिस किरमानी, बाक़र महदी, इफ्तेख़ार जालिब, इत्यादि (सब आलोचक) बलराज मेनरा, अनवर सज्जाद, सुरेन्द्रप्रकाश, इन्तेजार हुसेन, मोहम्मद उमर मेनन इत्यादि (सब कहानीकार) की रचनाएँ उदाहरणके तौर पर पेश की जा सकती हैं।

पहले वर्गके साहित्यकारोंने उर्दू साहित्यमें नयापन लानेका प्रयत्न तो अवश्य किया। परन्तु उन्होंने उसके [illegible] करते हुए ही इस ओर ध्यान दिया। जबकि दूसरे वर्गके साहित्यकारोंने किसी विशेष उद्देश्य, फारमूले और नारोंकी पाबन्दियोंसे इन्कार कर दिया और हर उस वातावरणसे अपना नाता तोड़ लिया जो उन्हें 'साफ और ताज़े' वातावरणमें साँस लेनेसे रोके।

नये साहित्यकारकी विचारधारामें तबदीलीका कारण औद्योगिक क्रांति, **वैज्ञानिक उन्नति और राजनीतिक गठ-जोड़ से बेज़ारी ही है।** इसमें कोई शक नहीं कि उस बेज़ारीने उसे मानसिक तौरपर एक नये मोड़की ओर झुकाया और वह प्रगतिशील साहित्यकी चन्द बँधी-बँधाई पाबन्दियोंसे हटकर अपने अन्दरूनी सम्बन्धोंतक पहुँचनेकी कोशिश करता रहा और इसे ही 'नया साहित्य' बताता रहा है परन्तु प्रश्न यह है कि क्या उसकी इस कोशिशका परिणाम लाभदायक है? और क्या वह अन्दरूनी सम्बन्धों तक पहुँचकर चैन प्राप्त कर सकेगा? यह सम्बन्ध जितने मज़बूत होंगे नया साहित्यकार 'क्यों और कैसे' के प्रश्नों में सम्भवतः उलझता जाये और उसे अपने दिलकी बातों को पाठकतक पहुँचानेके ढंगोंकी तलाशमें आजसे अधिक खो जाना पड़े। यह भी सम्भव है कि समय ऐसा आ जाये जब उसे 'यांत्रिक' ढंग अपनाना पड़े और भविष्यकी पीढ़ी उसके वर्तमान ढंगसे बेज़ार होने लगे। यह भी सम्भव है कि उसे अपने व्यक्तित्वतक पहुँचनेके बाद उसमें घुटन और साँसको रोक देनेवाला वातावरणही उसे प्राप्त हो। नया साहित्यकार जो केवल एक मनुष्य ही है, अपनी आदतसे मजबूर होकर अपने व्यक्तित्वके खोलसे एक बार फिरसे बाहर आनेका प्रयत्न करे। इसलिए कि इफ़तेख़ार जालिब, अब्बास अतहर, एहमद हुमेश, बलराज मेनराकी वर्तमान रचनाएँ, आदिल मंसूरी शहज़ाद एहमद, एहमद सलीमके कुछ शेरोंकी भाषामें यांत्रिक प्रतीक आने लगे हैं। नये साहित्यके नामपर जिस प्रकार जीमें आ रहा है साहित्यका प्रयोग करनेकी कोशिश उसी प्रकारकी जा रही है जिस प्रकार बकौल नये आलोचकके प्रगतिशील साहित्यकारने की थी। यह कोशिश उर्दू साहित्यकारके लिए खतरनाक है। इसलिए इसमें अगर इस प्रकारकी रचनाएँ पेश करनेका प्रयत्न धीरे-धीरे पाठकोंमें फैल गया और भावी पीढ़ी इसी प्रकार उससे प्रभावित हुई तो सम्भव है कि नयी पीढ़ी उसे एक आन्दोलनकी भाँति अपना ले जिसका प्रभाव अभीसे उन बिलकुल नये साहित्यकारोंकी रचनाओंमें दिखाई देने लगे हैं। जैसे ये शेर

[शेष पृष्ठ ११३ पर]

क. स्वातन्त्र्योत्तर असमीया साहित्य

—प्रो॰ परीक्षित हाजरिका
अध्यक्ष, असमीया विभाग,
कानै महाविद्यालय, डिब्रूगढ़

स्वाधीनताके बाद हमारे देशमें सभी क्षेत्रोंमें परिवर्तन हुए हैं। साहित्यके क्षेत्रमें भी इसीप्रकार परिवर्तन हुए। कवि, नाटककार, उपन्यास-लेखक, कहानीकार और निबन्ध-लेखक—सभीके लेखनमें विषय-वस्तु, शैली, शिल्प आदिका यह नया परिवर्तन देखा जा सकता है। स्वाधीनताके साथ सम्पूर्ण भारतीय साहित्यमें जो गौरवपूर्ण प्रगति हुई वह असमीया साहित्यमें भी परिलक्षित होती है। साहित्यके प्रधान अंग कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, शिशु साहित्य और अन्यान्य विधाओंकी प्रगतिसे इसकी पुष्टि होती है।

कविता

स्वाधीनता के पूर्व ही असमीया साहित्यमें रोमाण्टिक कविताका प्रारम्भ हो गया था। सम्भवत: यह अंग्रेजी की देन है। उस युगके कुछ प्रवीण कवि अबभी कविता कर रहे हैं। उनमें अतुलचन्द्र हाजरिका, नीलमणि फुकन, विनन्दचन्द्र बरुवा, आनन्दचन्द्र बरुवा, प्रसन्नलाल चौधुरी, नलिनीबाला देवी, आदि प्रमुख हैं। प्राक् स्वाधीनता और स्वाधीनोत्तर युगको जोड़नेवाले कवि देवकान्त बरुवा (जो अब केन्द्रीय मन्त्री हैं) अब भी कविता लिख रहे हैं।

नवागत कवियोंमें विशेष रूपसे अमूल्य बरुवा, हेम बरुवा, केशव महन्त, भवानन्द दत्त, नवकांत बरुवा, वीरेन बरकटकी, इब्राहीम आली, अजित बरुवा, अब्दुल्ल छात्तार, महेशदेव गोस्वामी, अब्दुल मालिक, वीरेन भट्टाचार्य, राम गगैके नाम उल्लेखनीय हैं। उनकी कविताओंमें सामाजिक भेदभाव, आर्थिक समस्या, अमीर-गरीबका भेद, आन्तर्जातिक समझौता और मानवीय दृष्टि भंगिमा प्रस्फुटित होती है। मार्क्सवादी, आदर्श, फ्रायडीय चिन्तन, सामाजिक चेतनाबोध इन कवियोंकी प्रधान विशेषता है। वीरेन भट्ट, राम गगै, अब्दुल मालिक आदि कवियोंकी कविताओंमें वर्तमान जीवन और समाज व्यवस्थाके प्रति असन्तोष और सुधारवादी भावना विद्यमान है। असमीया नयी कवितापर आदर्शवाद और प्रतीकवादका प्रभाव देखा जाता है। अबतक प्रकाशित नयी कविताओंके महत्त्वपूर्ण संकलन हैं: बालिचन्द, मनमयूरी (हेम बरुवा), हे अरन्य हे महानगर, एति दुति एघारति तरा, ज्योति आरु केईतामान स्केच्च (नव बरुआ), सरवर (अब्दुल मालिक), निर्जनतार शब्द (नीलमणि फुकन), जातिस्मर (महेन्द्र बरा), पाञ्चशाला (नित्या दत्त), आरण्यक (परेशमल्ल बरुवा) इत्यादि हैं। इन लोगोंकी कविता मुक्तक छन्दोंमें हैं। अल्प शब्दोंमें विस्तृत भाव प्रकाश करनेमें ये लोग सफल हुए हैं। समसामयिक शक्तिशाली कवियोंमें होमेन बरदोहाँइ, भवेन बरुवा, दीनेश गोस्वामी, निर्मल प्रभा बरदलै, नाहेन्द्र पादुन आदिके नाम उल्लेखनीय है। पार्वतिप्रसाद बरुवा, डॉ॰ भूपेन हाजरिका, मित्रदेव महन्त, भूक्तिनाथ बरदलै, केशव महन्त, नवकांत बरुवा, तफज्जुल अली, लक्षहोरादास आदिका नाम गीतकारके रूपमें प्रमुख हैं।

नाटक

आजादीके बाद अनेक नाट्यकार नये शिल्प-शैलीके और नये विषयोंके साथ अपूर्व कला-कौशलको लेकर नाटक लिखते हैं। इनके नाटकोंमें समसामयिक चिन्तन और जनगणके विप्लववादी मनोभाव प्रस्फुटित हुए हैं। इनमेंसे कुछ मानव जीवनको प्रतीकके रूपमें नाटकोंमें प्रस्तुत करते हैं। साम्प्रदायिक, सद्भाव, रूढ़िवादी, समाज व्यवस्थाका विरोध और स्वार्थजटित राजनीतिके साथ अंग्रेजी कालकी घटनाओंको लेकर नाटक लिखे जाते हैं। अंग्रेजी कालकी घटनाओंपर लिखे गये नाटकोंमें हैं—पियलि फुकन (चन्द्रकांत फुकन), मणिराम

देवान, लाचित बरफुकन (प्रवीण फुकन) तिकेन्द्रजित, (अतुल हाजरिका) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त अनेक सामाजिक नाटक असमीयामें लिखे गये हैं। इनमें 'तारिख' (सारदा बरदलै), डॉ० प्रमोद, शतिकार बाण, विश्वरूपा (प्रवीण फुकन), शिखा, ज्योति-रेखा (सत्यप्रसाद बरुवा), मिनाबाजार (गिरिश चौधुरी), प्रतिवाद (अनिल चौधुरी), अभिमान, कंकण (सर्वेश्वर चक्रवर्ती), चाकनैया (दुर्गेश्वर बरठाकूर) किय, मोगजरा, (फणी शर्मा), इन्टार भिड (अमरेन्द्र पाठक), गटाखहनीया (उभयडेका) इत्यादि प्रमुख नाटक हैं। गुवाहाटी और शिलंगमें आकाशवाणी केन्द्र होनेके बाद अनेक नाटक लिखे गये हैं। उनमें एबेलार नाट (वीना बरुवा), निरुद्देश (दुर्गेश्वर बरठाकूर),

[शेष पृष्ठ १११ का]

(१) सख्त बेगम को शिकायत है जहाँने नो से
रेल चलती नहीं गिरजाता है पहले सिगनल

(२) धरा क्या है भला उलफ़त के इन झूठे फ़सानों में
भरम खोटे खरे का खुद ही खुल जायगा रानों में

(३) मरदान्गी का उसकी बड़ा शोर था मगर
आई शबे विसाल तो मुरदार हो गया

(४) बत्ती जला के देखले सब कुछ यहीं प है
शलवार मेरे नीचे है बनयान उस तरफ़

नये साहित्यके इस पहलूसे जहाँ कुछ लोग प्रभावित हो रहे हैं वहीं अक्सर लोग उससे बेजार भी नज़र आते हैं। उनमें ऐसेसाहित्यकारभी सम्मिलित हैं जो नये साहित्य की ओर बड़ी तेज़ीसे गये थे। उदाहरणके लिए मुज़फ़्फ़र हंफ़ीने बहुत पहले मासिक 'शायर' (बम्बई) में अमीक़ हंफी (जो नये साहित्यकार हैं) की झिल्लाहटसे अपनी बेजारी प्रकटकी थी। इसी प्रकार मासिक 'किताब' (लखनऊ) में शहाब जाफ़रीने शमसुर्रहमान फ़ारुक़ीकी सीमित विचारधारासे पैदा होनेवाले नुक़सानकी तरफ़ खुलकर इशारे किये हैं। या फिर जाकाउल्लाह सिद्दीकीने मासिक "गुफ़्तुगू" (बम्बई) में इन शब्दोंमें अपनी बेज़ारी प्रकट की है: "अब हमारी नयी शायरीका अलमिय[1] यह है के फ़िक्र[2] अगर कोई है तो शायराना नहीं है। किसी फिलसोफ़[3], झक्की, मंतक़ी[4] या पुख्ता साइंसदां की फ़िक्र है। इसलिए कि इसमें ज्यादातर फ़िक्रको अव्वलियत[5] दी गयी है और यह बात मुश्तबह[6] है कि शायरीको दर्जा भी दिया जाय।"कु

१=त्रासदी २=विचार ३=दर्शन ४=जबानी ५=प्राथमिकता ६=शक

कु. "तर्सील की नाकामी और कमज़ोरी" मासिक "गुफ़्तगू" (बम्बई) माह नो० १९६८ पृ० २६५

आजकी स्थिति इस बातकी गवाही दे रही है कि नये साहित्यमें इस थोड़ेसे समयमें नयी विचारधाराके नामपर जो रास्ता अपनाया गया है उसमें 'नई तबदिलियों' की जरूरत है। नया साहित्यकार अपनेतक जिस कदर सीमित होता जा रहा है कि वह दमघोट्ट वातावरणके निकट पहुँच रहा है।

यह बात भी विचारणीय है कि नया साहित्यकार आज अपने व्यक्तित्वमें खो जाने अथवा अपनेतक सीमित हो जानेका लाख प्रयत्न करे परन्तु वह समाजमें चलने फिरनेवाला एक मानव है। नहीं कहा जा सकता कि वह अपने व्यक्तित्वके खोलसे कब बाहर आनेकी कोशिश करने लगे।

आजके हालात का फैसला तो भविष्य करेगा जिसका एहसास आजके नये साहित्यकारको धीरे-धीरे हो रहा है। हर युगमें एक आन्दोलन और विचारधाराके परिवर्तनके तहत साहित्यमें परिवर्तन होते है और उसे नये मोड़के निकट लाया जाता है। हालीने ग़ज़लकी तंगीके तहत पहलेकी ग़ज़लको रद्द किया तो प्रगतिशील साहित्यकारने हालीकी नसीहतोंका विरोध किया। फिर नये साहित्यकारोंने प्रगतिशील साहित्यकारोंकी पाबन्दियों और क़ायदोंसे इंकार करके साहित्यकी एक नयी रूपरेखा तैयार करनेकी कोशिश की। अब यह भी सम्भव है कि कल इन्हींको रास्तेंकी धूल समझ लिया जाये। अगली पीढ़ी आजकी कोशिशोंको 'पुरानी' और 'सीमित' समझकर कोई नया रास्ता खोजनेपर मजबूर है।

फिरभी इतना तो मानना पड़ेगा कि आजका साहित्य (गत २५ वर्षोंका) 'समयकी आवाज' और 'हालातका तकाजा' है और इसलिए आजके 'तकाजों' और आज की 'आवाज़' के तहत उससे सम्बन्धित समस्याओंपर ही विचार करना उचित है।

पुतला नाच (भवेन शईकीया), नेपाति केनेकै थाको (तफज्जुल अली) माछ और काईट (जयन्त बरुवा) इत्यादि। आजकल प्रफुल्ल बरा, प्रफुल्ल बरुवा, रत्न ओझा, योगेन चेटिया आदि भी अच्छे स्तरके नाटक लिखते हैं। इन नाटकोंकी विशेषता है मानव समाजका सुन्दर रूपायन, मधुर चरित्र-चित्रण, यथोपयुक्त कथोपकथन और मानवीय आदर्श प्रदर्शनके साथ प्रतीकवादका आलम्बन।

रत्न ओझाने गहवर नाट्य-गोष्ठीके माध्यमसे एक कुशल प्रदर्शन किया, जो "वाटरनाट" के रूपमें विख्यात है। अभिनय जगतमें यह एक नवीन कौशल है। इसके साथ अन्य भाषाओंसे अनुवादका काम भी द्रुत गतिसे चल रहा है।

उपन्यास

स्वाधीनताके बाद असमीया साहित्यकी सबसे प्रगतिशील और जनप्रिय विधा है उपन्यास और कहानी। स्वाधीनता प्राप्तिके साथ मुहम्मद पियारने "प्रीतिउपहार", 'संग्राम', 'मरहा फूल' 'जीवन नैर जाजी' आदि उपन्यास लिखकर असमीया उपन्यास साहित्यमें नयी धारा प्रवाहित की। यह धारा अविराम गतिसे बह रही है। इसके बाद तो उपन्यासोंकी बाढ़-सी आ गयी। प्रफुल्लदत्त गोस्वामीका 'केंचा पातर कँपनि'; हितेश; डेकाका "नतुन पथ", "माराघर", "एयेतो जीवन", "मातिकार"; सैयद अब्दुल मालिकके अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए। योगेशदासका नाम असमीया उपन्यास जगतमें विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। विरिंच बरुवाका "सेउजी पातरकाहिनी" एक श्रेष्ठ उपन्यासके रूपमें गिना जाता है। वीरेन्द्र भट्टाचार्य, लक्ष्मीनन्दन बरा, कुमारकिशोर, पद्म बरकटकी होमेन बरगोहांई, अरुणदास, चन्द्रशईकीया, जमिद्दिन अहमद, निरुपमा, बरगोहाई, प्रेमनारायणदत्त आदिका भी उपन्यास क्षेत्रमें अपना स्थान है। अन्य अनेक उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं। अनुवाद कार्य भी कुछ हुआ है।

स्वाधीनताके बाद रचित उपन्यासोंकी विशिष्टता है—सामाजिक संघात, आर्थिक समस्या, ग्राम्य और नगर जीवनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, संस्कार-भावनासे मुक्ति, विशिष्ट चरित्र-चित्रण, हृदयग्राही कथोपकथन, जटिल परिस्थितियोंका रूपायन और नवीन शिल्पशैलीके साथ यथार्थवादी चिन्तन और यौन समस्याओंके आकर्षण।

कहानी

स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकी प्रगति विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। नयी कहानी फ्रायड, मार्क्स, मोपाँसा, चेकव, केथरिन मेंसफील्ड, जुंग और एड्लाट आदि लेखकोंसे प्रभावित है। दूसरे विश्वयुद्धके परिणामस्वरूप आर्थिक और सामाजिक वैषम्य तथा आंचलिक और साम्प्रदायिक विवादोंके कारण परिस्थितिने गम्भीर रूप धारणकरलिया। इन परिस्थितियोंसे असमीया कहानी अप्रभावित नहीं रही। मनस्तात्विक विश्लेषण द्वारा कहानियोंमें इन्हें रूपायित किया गया और असमीया कहानीकी विशेषता है।

प्राक् स्वाधीनता और स्वाधीनोत्तर युगके संयोग वाहक कहानीकारके रूपमें आते हैं सैयद अब्दुल मालिक। इनकी कहानियोंमें चरित्र-चित्रण, मनस्तात्विक विश्लेषण, आर्थिक संघात, समाज-जागरण विशेष रूपसे रूपायित हुए हैं। इनके उल्लेखयोग्य कहानी-संकलन हैं: 'परशमणि', एजनी नतुन घोवाली, रंगा गढ़ा, मरहा-पापटि इत्यादि। त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, दीननाथ शर्मा, योगेशदास, वीरेन भट्ट, चन्द्रप्रसाद शईकीया, रोहिनी काकति, लक्ष्मीनन्दन बरा, कुमारकिशोर, होमेन बरगोहाई, महिम-बरा, सौरभ चालिहा, भवेन शईकिया आदि भी प्रमुख कहानीकार हैं। समसामयिक कहानीकारोंमें निरोप चौधुरी, इमरान श्वाह, रिजु हाजरिका, परीक्षित हाजरिका, अतुलानन्द गोस्वामी, राजेन हाजरिका आदि विख्यात हैं। ये लोग तथा अन्य अनेक कहानीकार रोचकतापर विशेष ध्यान देते हैं। इन कहानीकारोंने मानवीय समस्याओं, समाज-सुधार, साम्प्रदायिक सद्भाव व्यक्तिकेन्द्रिक स्वार्थ, यौन समस्याओंपर विशेष ध्यान दिया है। कहानियोंमें बहुधा आदर्श चरित्र-चित्रण, उत्कृष्ट कथोपकथन और अत्यन्त काव्यधर्मी भाषा-शैलीका समावेश रहता है। अन्य भाषाओंसे असमीयामें अनुवाद पर्याप्त मात्रा में हो रहा है और असमीया कहानियाँ हिन्दीमें अनूदित रही हैं।

निबन्ध और आलोचना

स्वाधीनोत्तर कालके गम्भीर निबन्धके क्षेत्रमें

[शेष पृष्ठ ११६ पर]

ख. स्वातन्त्र्योत्तर ओड़िया साहित्य

—डॉ० गोपालचन्द्र मिश्र

अध्यक्ष ओड़िया विभाग,
सम्बलपुर विश्वविद्यालय

किसी विकासशील देशके जीवन और इतिहासमें पच्चीस वर्षकी अवधि इतनी अपर्याप्त नहीं है कि वह उस देशके साहित्यमें प्रतिबिम्बित न हो और उसकी सामाजिक अन्तर्वस्तुके रूप और विकासमें क्रान्ति न ला दे और इस प्रकार सारे समाजको राजनीतिक, वैचारिक और मानवीय आकांक्षाओंसे परिपूरित न कर दे। कला और साहित्य का सम्बन्ध जनतासे है।

पिछले पच्चीस वर्षोंके ओड़िया साहित्यका इतिहास देशकी महानतम उपलब्धिसे शुरू होता है, वह है स्वतन्त्रता आन्दोलनका उच्चतम शिखरपर पहुँचना और हमारे देश के इतिहासमें स्वाधीनताके युगका उदय। १४ अगस्त, १९४७ का मध्यरात्रि दीप प्रज्वलित हुआ और राष्ट्रीय जीवनका अतल अन्धकार दूर हो गया और शत-सहस्र जनमानसमें आशाओं और आकांक्षाओंका संचार होगया। ओड़िया साहित्यके स्वतन्त्रता-पूर्व वर्षोंमें गोपबन्धुदास (१८७७-१९२८), गोदावरीश मिश्र (१८८७-१९५३), नीलकण्ठदास (१८८६-१९६७), कालिन्दीचरण पाणिग्रही (१९०१), गोदावरीश महापात्र जैसे महारथी, जिनके विभिन्न लेखनोंमें स्वाधीनता आन्दोलनकालीन विचारधारा मुख्य रूपसे प्रतिबिम्बित हुई है, सच्चिदानन्द राउतराय, मनमोहन मिश्र जैसे तत्कालीन युवा लेखक, जिन्होंने कविता, कहानी और उपन्यासके माध्यमसे समाजवादी विचारधारा प्रस्तुत की, छाये हुए थे। इन अग्रगण्य लेखकों मेंसे अनेक अबभी सोत्साह लिख रहे हैं और समाजकी आवश्यकताओंके अनुरूप साहित्यका रूप निर्धारण कर रहे हैं। स्वातन्त्र्योत्तर कालके ओड़िया साहित्यकी चर्चा करते हुए उन वृत्तों, तथ्यों और विकास-प्रक्रियाओंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती जिन्होंने रूप और अन्तर्वस्तु, दोनों दृष्टियोंसे साहित्यके विकीर्ण विकासमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष योगदान किया है।

विदेशी दासतासे मुक्त हुए किसीभी देशमें एक नयी शक्तिके आविर्भावसे राजनीतिक चिन्तन और साहित्यिक नवोत्थानके क्षेत्रमें एक नये ढंगकी जागरूकता और सामाजिक चेतना अभिव्यक्त हुई। छठे दशकके प्रारम्भमें सचि राउतराय, मनमोहन मिश्र और अन्य अनेक युवा लेखकों की कविताओंने एक नयी कल्पना, एक नयी तुंगताका उद्घाटन किया और कवियोंने विभिन्न समस्याओंके संवेदनायुक्त अवबोधनका साक्षात्कार किया। जीवनके सौन्दर्य और दारिद्रय और क्षुधार्त मानवीय आत्माके साथ इसके अत्यन्तिक सम्बन्ध, नवप्राप्त स्वाधीनताको ध्यानमें रखते हुए समाजकी मूल मानवीय समस्याओंने कवियों और नाटककारोंको लोक चिन्ताओं को व्यक्त करनेकी प्रेरणा दी और परिणामतः प्रगति जारी रही। परम्परा-विरोधकी नकारात्मकता अपेक्षाकृत युवा कलाकारोंके लेखनमें व्याप्त हो गयी।

स्वाधीनताके प्रारम्भिक वर्षोंमें पुराने परम्परागत वाचन और लेखनसे वास्तविक रूपमें दूरी बढ़ती दिखायी देने लगी।

१९४७ से पूर्व हमारी स्वाधीनताकी शपथ क्या थी? यह इस प्रकार थी: ४३ वर्ष पूर्व रावीके तटपर महात्मा गान्धीके आशीर्वादके साथ जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें भारतके संघर्षरत निस्स्वार्थ देशभक्तोंने शान्तिपूर्ण और वैध उपायोंसे पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करनेकी ऐतिहासिक शपथ लेकर भविष्यके साथ सम्बन्ध स्थापित करलिया। १९४२ में देशने घोषणा की "हमारा विश्वास है कि अन्य किसी भी जन-समुदायकी भाँति भारतीय जनताका यह अनुल्लंघनीय अधिकार है कि वह स्वतन्त्रता प्राप्त करे और अपने श्रमका फल भोगे और जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्रियोंमें समभागी हो जिससे उन्हें विकासके पूरे अवसर प्राप्त हो सकें। हमारा यहभी विश्वास है कि यदि कोई

सरकार जनताके इन अधिकारोंका अपहरण करती है और उसका दमन करती है, तो जनताको यहभी अधिकार है कि वह उसे बदल दे अथवा उसे समाप्त कर दे।" इस दृष्टिसे भारतीय साहित्यमें धीरे-धीरे ऐसी विशिष्टताएँ प्रकट होने लगीं जोकि सर्जनके क्षेत्रमें आलोड़नकारी तत्व सिद्ध हुईं। जसाकि सुप्रसिद्ध कवि-दार्शनिकने एक बार कहा था : "कभीभी जोकुछ घटित हुआ है अथवा कहा गया है, साहित्य उसके अंशका अंश है परन्तु उसकाभी एक अंश ही लिखा गया है और इसमेंसे भी बहुत थोड़ा विद्यमान है।" स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ देशके लेखककी स्थिति और उसका दायित्व दोहरा हो गया और देशका प्रत्येक प्रबुद्ध लेखक देशकी दिन-प्रति-दिनकी घटनाओंसे जुड़ गया। यह चरण फिर दो भागोंमें विभक्त है, उत्कलकी घटनाएँ और भारतीय क्षेत्रकी घटनाएँ। इन वर्षोंमें शरणार्थी समस्याका सफलतापूर्वक समाधान, रियासती भारत के एकीकरणका चमत्कार, जमींदारी-प्रथाकी समाप्ति, पाकिस्तानी और चीनी आक्रमण, राष्ट्रीय नीतिके रूपमें लोकतन्त्रीय समाजवादके सिद्धान्तोंकी स्वीकृति युगान्तरकारी उपलब्धियाँ हैं और इसका आशय यह था कि देशभर के सृजनशील लेखक अपने-आपको इनसे सम्बद्ध कर लें। इनके साथ, प्रतिवर्ष न्यूनाधिक रूपमें बाढ़, सूखे अथवा अकालके कारण उत्कल प्रदेश जीर्ण-शीर्ण हो गया, समय-समयपर राजनीतिक नाटकोंका केन्द्र बन गया, और यह प्रदेश सभी प्रकारके पीड़ादायी शोषण-चक्रोंसे निरन्तर संघर्ष करता रहा है। पाँच आम निर्वाचन हो चुके हैं और प्रत्येक बार जनताकी आशाएँ और आकांक्षाएँ अपूर्ण रही हैं।

उत्कल-साहित्यने राष्ट्रीय जीवनके घोर संकटों और अकालोंकी इन चुनौतियोंका सामना करनेका भरसक प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नमें पुराने मूल्यांकनोंको निष्कासित कर दिया गया है। १९५० के बाद युवा कवियोंने नये मूल्यांकनोंके खोजकी नयी यात्रा प्रारम्भ की है।

हमारी स्वतन्त्रताकी इस ऐतिहासिक और निर्माणशील अवधिमें ओड़िया-साहित्य दो चरणोंमें विभक्त रहा। पहला चरण उन वरिष्ठ लेखकोंका है जिनकी लेखनी १९३० और १९४० से चल रही है, और दूसरा चरण उन युवा कवियों, नाटककारों और उपन्यास-लेखकोंका है जिन्होंने १९५० के बाद लिखना शुरू किया और अबतक लिख रहे हैं। इसके साथही, समकालीन विज्ञान दर्शन, मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद, फायडवादी मनोविज्ञान और इसी प्रकारके अन्य सभी नये आन्दोलनोंके प्रसारने पुराने मूल्यों और सौन्दर्यमानोंका स्थान ले लिया है और दोनोंके बीच

[शेष पृष्ठ ११४ का]

श्री वेनुधर शर्मा, रजनीकांत देवशर्मा, पद्मेश्वर गर्ग, डॉ० महेश्वर नेओग, हेम, बरुवा, डॉ० सत्येन्द्र शर्मा, विश्वनारायण शास्त्री, डॉ० प्रताप चौधुरी, मनोरंजन शास्त्री, त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, विजय भागवती, उपेन लेखारु, अतुलचन्द्र बरुवा, डॉ० प्रफुल्लदत्त गोस्वामी, शरत्चन्द्र गोस्वामी, अब्दुल चट्टार, महेशदेव गोस्वामी, आदि प्रमुख हैं। डॉ० उपेन्द्र गोस्वामी, डॉ० प्रमोद भट्टाचार्य, डॉ० महेन्द्र बरा, नवकांत बरुवा, डॉ० दिलीप बरुवा, डॉ० गोलोक गोस्वामी, तारिनी भट्टाचार्य, उमाकांत शर्मा आदिके प्राच्य और पाश्चात्यके तुलनात्मक अध्ययनमें पाण्डित्यपूर्ण विश्लेषणात्मक शैलीको अपनाया गया है। इनकी रचनाओंने असमीया आलोचना को व्यापक रूपसे प्रभावित किया है और उसे नयी दिशा प्रदान की है। संप्रति होमेन बरगोहांई, डॉ० हिरेन गोहांई, भवेन बरुवा, हेमन्तकुमार शर्मा, परीक्षित हाजरिका, बीरेन बरकटकी, राममल ठाकुरीया, शशि शर्मा, तारक गोस्वामी आदि नयी दिशा अपनाकर आलोचनाके क्षेत्रमें नयी धारा प्रवाहित करनेके लिए प्रयत्नशील हैं।

इसके अलावा असमीया-साहित्यमें, रिपोर्टाज, जीवनी, भ्रमण, अनुवाद, शिशु आदि अन्यान्य क्षेत्रोंमें भी बहुत प्रगति हुई है।

असमीया साहित्यकारके रूपमें अबतक निम्न लोगों को साहित्य अकादमीका पुरस्कार मिला है :

यतीन दुवटा (बनफूल), अम्बिका गिरि राय चौधारी (वेदनार उल्का), नलिनी बालादेवी (अलकानन्दा), वीरेन भट्ट (इयारुईंगम), वेनुधर शर्मा (कंग्रेचर काचियली रदत), अतुल हाजरिका (मंचलेखा), त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी (आधुनिक गल्प साहित्य)। इसके अतिरिक्त भृगुमुणि कागयुंग, तरुण आजाद, डेका, शशि शर्मा, परेशमल्ल बरुवा आदिको अन्यान्य पुरस्कार मिल चुके हैं।

खाई चौड़ी होती चली गयी है। परिणामस्वरूप ओड़िया साहित्यकी प्रत्येक विधाके रूपमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और उसने नया रूप ले लिया। सर्जनशील लेखक साहित्यिक चिन्तनकी अनेक विपरीत धाराओंमें लीन हो गये। जिस भारतीय पृष्ठभूमिके विरोधमें ओड़िया लेखन निरन्तर गतिशील रहा, उसे इसी सन्दर्भमें समझा जाना चाहिये।

ओड़िया साहित्यकी किसी अन्य विधापर आधुनिकता थोपनेका अथवा विधाकी आधुनिकताकी विद्यमानताका दावा नहीं किया गया जितना कि कविताके बारेमें। श्री सचि राउतराय १९३६ से काव्य क्षेत्रमें आधुनिकताके अग्रणी रहे हैं और अबभी तेजस्विता और नवीनताके साथ लिख रहे हैं, कालिन्दीचरण पाणिग्रहीकी स्फूर्तिदायक कविताओंमें मानवीय आत्माके वैभवपूर्ण एकाकीपनकी झाँकी मिलती है। श्री बैकुण्ठनाथ पटनायकने अपनी कविताको नयी व्यंजना प्रदानकी है। डॉ० मायाधर मानसिंहने तीस से प्रारम्भ होनेवाले दशकमें रोमाण्टिक कविताएँ लिखनी शुरू की थीं, स्वतन्त्रताके बाद उन्होंने अपने काव्यको देश-भक्तिका नया संस्पर्श दिया।

श्री राधामोहन गड़नायक, कृष्णचन्द्र त्रिपाठी, विनोद नायक, कुंजबिहारी दास अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओंद्वारा काव्य विद्याको सम्पन्न बनाते रहे हैं। गोपालचन्द्र मिश्र, यदुनाथदास महापात्र, चिन्तामणि बेहेरा जैसे अपेक्षाकृत युवा कवि और अन्य अनेक कवि पचाससे आरम्भ होने वाले दशकमें सामने आये। पचासवाले दशकके प्रारम्भमें जब उद्योगीकरण और इसके सामाजिक आर्थिक परिणामोंके कारण देशमें तेजीसे परिवर्तन होने लगे तो नये सामाजिक तनावोंका जन्म हुआ। एक बार फिर कवियों और लेखकोंकी नयी पीढ़ी दृष्टिगोचर होने लगी। पचासवेंसे शुरू होकर साठवें और सत्तरवें दशक के युवा कवियोंकी पीढ़ी नवीन विषय-वस्तु और पूर्ण रूप से नये शिल्प और अभिनवता-अपूर्वताके लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विश्वविद्यालयोंमें शिक्षित इन युवा कवियोंने समाजकी गहन समस्याओंमें बौद्धिक पैठके लिए कविताको माध्यम बनाया और यही उसकी प्रमुख टेक हो गयी। गुरुप्रसाद महान्ती, रमाकान्त रथ और इसी दलके अन्य अनेक कवियोंकी कविताएँ स्वभावतः उल्लासपूर्ण रोमाण्टिक हैं। इन रोमाण्टिक कवियोंके बाद १९६५ में एक और युवा दलका आविर्भाव हुआ। इस दलके कवि हैं: सदाशिवदास, देवराज लेंका, कैलाश लेंका, कमलाकान्त लेंका, नित्यानन्द पति, दीपकमिश्र, चण्डीचरण कर, शौरीन्द्र बारिक, बंसीधर षडंगी, हरिहर मिश्र, गगन मिश्र, मंगलू बिस्वाल। इस युवा कवि दलकी कविताओं की विशेषता है रूढ़िगत बिम्ब-विधानोंका साहसिक अतिक्रमण, वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाका प्रत्याख्यान, मृत्यु-कामना, अप्रचलित बिम्बों-प्रतीकों-संकेतोंकी शोचनीय चेतना, जिनके सम्मिश्रणसे आधुनिक कविके जटिल मनकी गीतियाँ और स्वर-संवाद उत्पन्न होते हैं। आधुनिक ओड़िया कवितामें समान रूपसे प्रतिबिम्बित होनेवाले कुछ समान तत्व हैं: वामपन्थी काव्यात्मक संकेत, नारी-मुक्ति, पृथ्वीपर मानवीय सत्ताके अभिप्रायकी खोज। सच्चिदानन्द राउतरायसे लेकर, जो आजभी ओड़िया कविताके वरिष्ठ पथ-प्रदर्शक माने जाते हैं, युवा कवि दल ने नाना उत्सों और विभिन्न तथा व्यापक कैनवासोंके साथ अनेक प्रकारकी शैलियाँ प्रस्तुत की हैं और इन युवा कवियोंने नियत लयके स्थानपर परिवर्तनशील लयको अपनाया है। काव्य-क्षेत्रकी इस आकस्मिक वृद्धिमें कुछ अच्छी और उल्लेखनीय कविताएँभी सामने आयीं, जोकि निम्न स्तर और प्रभावहीन कविताओंकी संख्याकी दृष्टि से कम नहीं हैं।

फिरभी, आधुनिक कालकी कविता एक अबोधगम्य वस्तु बन गयी है।

× × ×

उपन्यास क्षेत्रकी उपलब्धियोंकी समीक्षा करना भी उपयुक्त होगा। वृहत्कथा हो अथवा लघु कथा, दोनों रूपोंमें सर्जनात्मक जीवन-तत्व स्पन्दित होता रहता है। कालिन्दीचरण पाणिग्रही, गोपी महान्ती और कान्हूचरण महान्ती जैसे वरिष्ठ उपन्यासकारोंने नयी विचारधारा और शैलीके उत्कृष्ट उपन्यास लिखे हैं और लघु कथाएँ प्रस्तुत की हैं, इसके साथही पर्याप्त संख्यामें सफलताका वरण करते हुए अनेक अच्छे लेखक सामने आये हैं। कालिन्दीचरण पाणिग्रहीकी कहानियाँ और उपन्यास (लुहार-मणिष, अजिर-मणिष) जीवनके बौद्धिक अन्वीक्षण हैं। कान्हूचरण महान्तीकी अनेक लोकप्रिय कृतियाँ घटनाओं और सामाजिक तथ्योंके उत्कृष्ट कोटिके भावनात्मक विवरण हैं। गोपीनाथ महान्तीके उपन्यासों का आयाम अद्वितीय है और उनमें जनजातियोंके जीवन का यथार्थ चित्रण है तथा वर्तमान युगकी जटिल

परिस्थितियोंमें मानवीय आचरणका सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन है। श्री राजकिशोर पटनायक, श्री नित्यानन्द महापात्र, श्री चन्द्रमणिदास, श्री कमलाकान्तदास यद्यपि पूर्व पीढ़ीके हैं, फिरभी उनकी उत्कृष्ट कृतियाँ इसी अवधिमें लिखी गयी हैं। श्री सुरेन्द्र महान्तीने उपन्यास और लघुकथा क्षेत्रमें अपनी उर्वरा लेखनीसे प्रसूत कलात्मक रचनाओंके माध्यमसे पाठकोंका ध्यान खींचा है। ओड़िया इतिहासके आन्तरिक सीमान्तोंसे सूत्रबद्ध उनके उपन्यास 'नेल सैल' और 'अंध दिगन्त' का अच्छा स्वागत हुआ है और उनके उपन्यासों और लघु कथाओं से प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक कथा-साहित्य में फिर रुचि जागृत हो गयी है। नये विचार निरन्तर और तेजी से नवीन क्षेत्र में प्रवेश करते रहे हैं। परन्तु जोभी नवीन क्षेत्र उपलब्ध हुए हों। युवा उपन्यासकारों और कथाकारों ने इस विधाको परिपूर्णता प्रदान करनेके लिए कुछ नहीं किया। यह कहा जा सकता है कि अनवरत जारी परीक्षण का सतत वातावरण विद्यमान है। १९५० के बाद उपन्यासकारों ने पूर्ण रूपसे व्यवितगत आचरण शुरू कर दिया, जिससे समकालीन कथा-साहित्यकी अनुपमता, संश्लिष्टता, अद्वितीयता और इस कलाके अनिन्ध रूप का ताना-बाना तैयार कर उसका विश्लेपण सम्भव नहीं है। इसके साथही इस अवधिकी रचनात्मक गतिविधि इतनी सीमित है कि किसी विस्तृत अध्ययन का अवकाश नहीं है। इस क्षेत्र में सर्वश्री नरसिंह साहू, दशरथ सामल, कृष्णप्रसाद मिश्र, सनातनकुमार आचार्य, फतुरानन्द, बसन्तकुमारी पटनायक और अन्य अनेक लेखकोंने अपनी कृतियाँ प्रस्तुत की हैं।

समकालीन उपन्यास लेखकोंमें तीन स्पष्ट प्रवृत्तियाँ देखनेको मिलती हैं। ये हैं यथार्थवाद, नव रोमांसवाद और संवेदना। आधुनिक ओड़िया कथा साहित्य परीक्षण-कालमेंसे निकल रहा है और युवा लेखकों में प्रौढ़ता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं। अधिकांश समकालीन उपन्यास यौन समागमों और सामाजिक दम्भोंके विवरणों से भरे पड़े हैं।

× × ×

लघु-कथाके क्षेत्रमें प्रचुर मात्रामें विविधता मिलती है। जबकि वरिष्ठ लेखक किसी घटनाको चित्रपटमें परिवर्तित करनेसे विरत नहीं हुए हैं, वहीं युवा लेखकों के एक प्रबल दलका उदय हुआ है जिन्होंने एक समृद्ध भविष्यकी संभावनाकी आशा प्रदान की है। सर्वश्री कृष्णचन्द्र पाणिग्रही, गोपीनाथ महान्ति, राजकिशोर राय, राजकिशोर पटनायक, गोदवरीश महापात्र, अनन्तप्रसाद पण्डा, नित्यानन्द महापात्र, सच्चिदानन्द राउतराय, मनमोहन मिश्र, स्वतन्त्रता से पहलेके लेखक हैं। १९५० और १९६० के बाद अनेक युवकोंने कहानी लिखनी शुरू की। इनमें सर्वश्री सुरेन्द्र महान्ति, अच्युतानन्द पति, ब्रह्मानन्द पंडा, गोपालचन्द्र मिश्र, अखिल मोहन पटनायक, महापात्र नीलमणि साहू, के० पी० मिश्र, श्रीमती वीणा-पाणि महान्ति, विभूति पटनायक मनोजदास और वामा-चरण मिश्र तथा अन्य अनेक लोग उल्लेखनीय हैं। १९६० के बादके लेखकोंकी सूची तो विशेष रूप से अधूरी ही रहेगी। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि कुछ युवा लेखकोंपर पहलेके लेखकोंका स्पष्ट प्रभाव है। लघु-कथाओंकी प्रचुरताके कारण इस अवधि में लघुकथाने ओड़िया साहित्यमें महत्वपूर्ण कलाका रूप ले लिया है। औद्योगिक, वैज्ञानिक और आर्थिक परिवर्तनों ने हमारे युवा कहानीकारोंपर इतना गहरा प्रभाव डाला है कि उन्हें पुराने कहानीकारोंसे स्पष्ट रूपसे अलग किया जा सकता है। १९६० के बाद कहानीकारोंकी प्रवृत्तिके अन्तरको विशेष रूपसे रेखांकित किया जा सकता है। पिछले दो-तीन वर्षोंसे कहानीकार पुराने परम्परागत रूपके स्थानपर आभास गल्पको अधिक पसन्द करने लगे हैं। लघु-कथाके कलात्मक रूपका प्रारम्भ फकीर मोहन सेनापति (१८४३-१९१९) से हुआ था, चौथे दशक में सबुज दलके लेखकोंने इसे नियमित रूप प्रदान किया। श्री कालिन्दीचरण पाणिग्रहीकी 'मो कथाति सरिनाहीं', 'शेषरश्मि राशिफल', गोपीनाथ महान्तिकी 'घासफुल', 'आलुअ' छाई, कान्हूचरण महान्तिकी 'असमापिका नांटि तारचम्पा' कहानियों तथा अनन्तप्रसाद पण्डाकी कहानियों ने ओड़िया लघुकथा साहित्यमें नया जीवन फूँक दिया, जबकि श्री शचि राउतरायकी 'मशाणिर फुल', 'भातिर ताज' आदि कहानियोंसे सामाजिक तनाव और ग्रामोंमें व्याप्त असन्तोषको अभिव्यक्ति मिली। श्री राजकिशोर रायकी कहानियाँ विषय-वस्तुकी दृष्टिसे रोमानी हैं और उनकी भाषा अलंकरणोंसे आवृत्त हैं। श्री राज-किशोर पटनायककी 'तुठ पत्थर', 'निशाण खुट' और 'शळग्राम' में संकलित कहानियाँ मानवीय सम्बन्धोंके मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी दृष्टिसे प्रसिद्ध हैं। १९६०-

७० की अवधिमें लिखी गयी कहानियाँ प्ररूपकी दृष्टि से जटिल हैं और विषय-वस्तुकी दृष्टिसे उनमें विविधता है। सुरेन्द्र महान्तिकी कहानियाँ प्राच्य इतिहास हैं और शैली तथा शिल्पकी चेतना इनकी विशेषता है। उनके संकलनोंकी कृष्णचन्द्र, महानगरिर रात्रि, रुटिओ चन्द्र, शेष कथा, सबुज पत्र ओ धूसर गोलाप, महानिर्वाण, दुई सीमान्त, मोराकळर मृत्यु आदि कहानियाँ नगरीय और आत्माभिमानी समाजसे सम्बद्ध व्यक्ति-जीवनकी पीड़ाकुल त्रासदीका कलात्मक और प्रभावशाली ढंगसे चित्रण करती हैं। उनकी कहानियोंकी भाषा काव्यात्मक है। ब्रह्मानन्द पण्डाने अपनी कहानियोंमें जटिल समस्याओं और उच्च मध्य वर्गकी झूठी प्रतिष्ठा-भावनाके चित्र प्रस्तुत किये हैं। फतुरानन्द और सुनीलमोहन मिश्रकी हास्यसे परिपूर्ण कथाओंने पाठकोंको प्रभावित किया है। महापात्र, नीलमणि साहू, अखिल पटनायक, बामाचरण मिश्र, बीणापाणि महान्ति, गोपालचन्द्र मिश्र, किशोरी-चरण दास, नन्दिनी सतपथी, कमलाकान्त दासकी कहानियोंने इस कलात्मक विद्याको जीवन प्रदानकिया है।

इसके अतिरिक्त पिछले २५ वर्षोंमें अनेक भारतीय और विदेशी कहानियोंका ओड़ियामें अनुवाद हुआ है। इन में भोपासां, एच० जी० वेल्स, चेखोव, तालस्ताय, प्रेमचन्द्र, टैगोर, मुल्कराज आनन्द, मसली वेंकेटेश आई० आयंगार, गुलाबदास ब्रोकर, कर्त्तारसिंह दुग्गल आदि शामिल हैं।

अभी कुछ समयसे लघु-कथाका चलन हुआ है। इसका भविष्य क्या है, कैसा है, इस बारेमें अभीसे भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। युवा लेखकोंके एक वर्गमें लघु-कथाएँ बहुत प्रिय हैं और वे इसे 'आभास-गल्प' का नाम देते हैं। सर्जन स्तरपर इसप्रकारके परीक्षणोंसे कहानीके रूपमें नवीनता आयेगी और उसे नयी दिशा प्राप्त होगी। परन्तु इस रूपकी रचनाएँ आश्चर्यजनक तेजीसे आ रही हैं। क्रुद्ध युवाओंकी कहानियाँ (कविताओंकी भाँति) आत्माभिव्यक्तिकी खोजमें हैं, जो कुछ इनमें है वह है क्लब, ड्राइंग रूम, बाल रूम, सुरा और सुरकामिनी। कॉफी हाउसों, सिनेमाओं, होटलों और कालेज होस्टलोंमें नग्न कामुकताकी समस्या ही इन दिनों कहानियोंकी विषय-वस्तुपर हावी है।

× × ×

आधुनिक ओड़िया नाटकका आरम्भ दूसरे दशकके प्रारम्भसे हुआ, यद्यपि इसके रूपकी नींव १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरणमें रखी गयी थी। श्रीअश्विनीकुमार घोष और श्री कालिचरण पटनायकने पौराणिक और सामाजिक नाटक लिखे परन्तु उनके उत्तराधिकारी युवा नाटककारोंने आधुनिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान दिया। १९४७ से पूर्व श्री कालिचरण पटनायकके नाटकोंकी धूम थी और उनके रंगमंच और प्रबन्धके अन्तर्गत रंगमंचीय आन्दोलन आरम्भ हुआ। स्वातन्त्र्योत्तर अवधिमें भंजकिशोर पटनायक, गोपाल छोटराय, रामचन्द्र मिश्र, उदयनाथ मिश्र और मनोरंजन दास जैसे नये लेखक आये। इनकी रचनाओंसे स्पष्ट है कि इन्होंने कालिचरण पटनायक जैसे शक्तिशाली पूर्ववर्ती नाटककारोंसे प्रबल प्रेरणा ली। पूर्ववर्ती नाटककारोंकी कृतियोंका आधार राष्ट्रीयता, देशभक्ति और सामाजिक समस्याओंके प्रति जागरूकता थी। सम सामयिक ओड़िया नाटकोंके उल्लेखनीय व्यक्तित्व वसन्तकुमार महापात्र, बलराम मिश्र, सुरेन मोहन्ति, व्योमकेश त्रिपाठी, विजय कुमार मिश्र, विश्वजीतदास, भुवनेश्वर महापात्र, कमल लोचन महान्ति, जदुनाथदास महापात्र हैं और इन्होंने अपनी विषय-वस्तु और भावाभियक्तिकी नवीनता और गहराईके कारण मान्यता प्राप्त की है।

जहाँ तक ओड़िया रंगमंचके शिल्प-विधान और उपकरणों आदिका प्रश्न है, पिछले पच्चीस वर्षोंमें इसमें बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है। वैद्युतिक उपकरणोंका व्यापक रूपसे प्रयोग बढ़ा है। इसके साथही युवा नाटककार अत्यधिक जटिल सामाजिक समस्याओंपर आधुनिक श्रोताको ध्यानमें रखकर लिखते है। एकांकी भी समान रूपसे सफल रहे हैं। श्री प्राणबन्धुकर, श्रीं कालिन्दीचरण पाणिग्रहीने रेडियों और रंगमंचके लिए एकांकी लिखे हैं। अभिनय पद्धतिमें भी परिवर्तन हुए हैं। वस्तुतः ओड़ियाकी जनताके बड़े वर्गमें नाटकोंके प्रति वास्तविक रूचि पैदा हो गयी है, अन्नपूर्णा थियेटर, जनता रंगमंच जैसी नाटक मण्डलियोंने अपना स्थान बना लिया है और सिनेमा तथा रेडियोके होते हुए भी ओड़िसाकी नाटकीय परम्पराको जीवित रखा हुआ है।

आजके नाटककार कहीं अधिक गहरी और गम्भीर समस्याओंको उठाते हैं और जीवनकी कठिनाईयों और असंगतियोंको सम्वेदनशील व्यंग्यके साथ तीव्रतापूर्वक उभारते हैं।

पिछले पच्चीस वर्षोंमें ओड़िया आलोचना और आधुनिक निबन्ध विधामें विस्तार और अर्थवत्ताकी दृष्टिसे

उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हुई हैं। ओड़िया आलोचनाका कार्य १८८० में शुरू हुआ और इसी समय ओड़िया पत्र-पत्रिकाओंका उदय हुआ। जब उत्कल साहित्य (१८९७), मुकुर (१९०४), सत्यवादी (१९३४), प्राची (१९२८), सहकार (१९२८), नवभारत (१९३६), जुगवीणा (१९-३०), आधुनिक (१९३६) पत्रिकाओंका एकके बाद एक प्रकाशन शुरू हुआ तो आलोचनाकी एक नयी विकासशील शाखाका जन्म हुआ। गोपीनाथनन्द, डॉ. आर्तवल्लभ महान्ति, डॉ० करुणाकर, पण्डित विनायक मिश्र १९४० पहलेके आलोचना स्कूलके लोग हैं। आधुनिक ओड़िया आलोचना अपने कर्त्तव्यके प्रति अधिक सचेत हो गयी है। झंकार (१९४८), नवजीवन (१९५३), दिगन्तके प्रकाशनके बाद १९४७-१९६७ की अवधिमें ओड़ीसामें अनेक महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयोंकीस्थापना हुई। इससे इस क्षेत्रके कार्य-कलापमें विस्तार हुआ और सैद्धान्तिक एवं सौन्दर्यवादी आलोचनाके अतिरिक्त राधानाथ राय, मधुसूदन राव, फकीरमोहन सेनापति, गंगाधर मेहर, नन्दकिशोर बल, गोपबन्धुदास जैसे कवियोंके साहित्यपर व्यक्तिशः आलोचना-पर्यालोचन किया गया। महाविद्यालयोंके प्राध्यापकोंने जो आलोचनात्मक कृतियाँ तैयार कीं, उनमें सामान्य रूपसे परिचयकी साहित्यिक आलोचनाके सिद्धान्तोंका अनुसरण किया गया है। इन्हीं प्राध्यापकोंने साहित्यके मूल तत्वोंपर भी विचार किया है। पिछले कुछ वर्षोंमें अनेक पाण्डित्यपूर्ण और शास्त्रीय कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनमें श्री सूर्यनारायणदास और सुरेन्द्र महान्तिके ओड़िया साहित्यके इतिहास विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

निस्सन्देह साहित्यकी इस विधामें सर्जनात्मक कार्य मात्राकी दृष्टिसे उल्लेखनीय है और गुण तथा कोटिमें स्फूर्तिप्रद। प्रत्येक कलात्मक रूप—उदाहरणार्थ उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता आदि—पर युवा आलोचकोंने चिन्तन किया है। सबसे बढ़कर, युवा आलोचकों अथवा विद्वानोंमें यह प्रवृत्ति है कि वे प्रत्येक कलात्मक रचनाकी समीक्षा नवविकसित रूपोंको ध्यानमें रखते हुए करते हैं, विशेष रूपसे साहित्य और समाजके पारस्परिक सम्बन्धों पर ध्यान देते हैं। प्रो० विपिनबिहारी राय, श्री कालिन्दी चरण पाणिग्रही, स्वर्गीय श्री गोविन्द त्रिपाठी जैसे वरिष्ठ निबन्धकारोंके अतिरिक्त ऐसी युवा प्रतिभाएँ सामने आयी हैं जिनमें सामाजिक सुधारकोंकी अन्तर्दृष्टि है और चिन्तककी सूक्ष्म दृष्टि।

× × ×

पिछले पच्चीस वर्षोंमें प्रकाशित अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने ओड़िया साहित्यको समृद्ध बनाया है, उसे विविधता प्रदान की है और उसकी जीवन-शक्तिको सुदृढ़ किया है। नवभारत, दिगन्त सहित इनकी संख्या सैंकड़ों है। यह भी सही है कि इनमेंसे अनेक विस्मृतिके गर्तमें अन्तर्धान हो गये हैं, फिरभी ओड़िया साहित्यके विकास और संवर्धनपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। पिछले पच्चीस वर्षोंके ओड़िया साहित्यका मुख्य स्वर मुखरता, परम्परागत रूढ़-विरोध रहा है, उस सबके प्रति विद्रोह रहा है जो दम्भ है पाखंड है। देशके प्रगतिशील लेखक आन्दोलनने अपने प्रारम्भिक कालसे ही ओड़िया लेखकोंको प्रभावित किया है। ओड़िसा के अपेक्षाकृत युवा लेखकोंने जनताकी क्रान्तिकारी भावनाओंको प्रतिबिम्बित करनेका प्रयत्न किया है। गोर्कीकी 'मां' का न केवल अनेक लेखकोंने ओड़ियामें अनुवाद किया है, बल्कि इसप्रकारके क्रान्तिकारी सामाजिक विचारकों और साहित्यिक परिकल्पकोंके संदेश हमारे साहित्यकी आत्मामें प्रविष्ट हो गये हैं। प्रेमचन्दने अपने अध्यक्षीयभाषण (१९३६) में टिप्पणी की थी : "जीवनमें नये सौन्दर्यकी खोज लेखकोंको उस सामाजिक प्रणालीको समाप्त कर देनेको बाध्य करेगी जिसमें कोई एक व्यक्ति हजारों व्यक्तियोंपर अत्याचार कर सकता है। मानवीय आत्म-सम्मान हमें पूँजीवाद और साम्राज्यवादके विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठानेको कहेगा। इसके साथही, इस स्थितिका विरोध करनेके लिए केवल कागजोंपर अपने विचार घसीटनेतक ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये, बल्कि ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करनेके आन्दोलनके लिए सक्रिय रूपसे कार्य करना चाहिये जोकि सौन्दर्य सुरुचि और मानवीय प्रतिष्ठाको नकारती न हो।"

परिणामस्वरूप हमारे स्वातंत्र्योत्तर साहित्यमें एक नया क्रान्तिकारी रूप उभरकर आया है। समसामयिक ओड़िया साहित्यमें निरन्तर परीक्षणकी भावना उभरकर आ गयी है जिसमें असन्तोषका स्वर प्रबल है। यह विश्वकी वामपन्थी राजनीतिके प्रभावके कारण भी हो सकता है। इसने प्रादेशिक सीमाक्षोंके बन्धन तोड़ दिये हैं, और परम्पराकी श्रृंखलासे मुक्ति पाली है। इसका अभिप्राय अपने जीवन के वामपक्षी पहलुओंपर बल देना है। युवा लेखक वर्ग अन्तर्भेदी दृष्टि ग्रहण कर रहा है। इस २५ वर्षकी अवधि में पिछली किसीभी पीढ़ीकी तुलनामें कहीं अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और इस विषयमें हमारी सफलता इसपर निर्भर करेगी कि इतिहासकी वर्तमान चुनौतीका हम किस प्रकार सामना करते हैं। ××

ग. स्वातन्त्र्योत्तर बंगला साहित्य

—रामबहाल तिवारी,
विश्वभारती, पाठभवन,
शान्तिनिकेतन

किसीभी समाजके साहित्यिक उत्कर्ष-अपकर्षका निर्णय करनेके लिए पच्चीस वर्षकी अवधि पर्याप्त नहीं मानी जानी चाहिये। फिरभी गत पच्चीस वर्षोंमें बंगालमें जो विभिन्न परिवर्तन हुए हैं, वे कम गुरुत्वके नहीं हैं। बँगला साहित्यमें उनका प्रतिफलन स्वाभाविक ढंगसेही हुआ है। आजके जनजीवनकी वाणीही आजके साहित्यकी वाणी है।

परतन्त्रतासे मुक्ति तथा देश-विभाजन बंगाली जनता के लिए युगपत् हर्ष तथा विषादका कारण साबित हुआ। धनिक एवं वणिक श्रेणियोंका स्वार्थ-अन्ध-प्रताप, श्रम-जीवियोंमें ऐक्यबद्ध होनेकी प्रबल भावना, बेरोजगारी आदिका बेरोक प्रभाव तथा अन्यान्य कारणोंसे असन्तुष्ट, अस्थिर जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो उठा था। धीरे-धीरे यह स्थिति और भी नाजुक होती गयी। धनी-मानियोंका धन-मान बढ़ने लगा। गरीबोंकी गरीबी और दुःखकष्ट जोर पकड़ने लगा। सामाजिक विधान ढीला पड़ गया, राजनीति बे-दण्ड-मुण्डकी बन गयी। निराशा एवं अनिश्चितता देशमें छा गयी। युवापीढ़ीके सामने कोई सुदृढ़ चरित्रादर्शन होनेके कारण असंयत, अनियन्त्रित जीवन-वेग उन्हें खाईकी ओर खींचने लगा। सब कुछ मिलाकर निकट अतीत कलंक तथा उत्तेजनामय, वर्तमान असंयत तथा अस्थिर एवं भविष्य अनिर्णीत तथा अन्धकारमय— यही है स्वतन्त्रता—उत्तर पच्चीसवर्षीय बँगला साहित्यकी पृष्ठभूमि।

आलोच्य पर्वकी बँगला कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि शाखाएँ विविध तथा चित्र रूप-रससे समृद्ध हैं। अनगिनत साहित्य-सेवी और भक्तोंसे बंगसाहित्य-सरस्वतीका मठ भर उठा है। इनमें एक तरफ सफल तथा प्रख्यात साहित्यकार हैं तो दूसरी ओर असफल-अख्यात कलम-पेषकभी हैं। इनका वर्गीकरण न आसान है और न आवश्यक ही है।

कविता

वर्तमान सदीके तीसरे-चौथे दशकोंमें जिन कवियोंकी रचनामें अ-रावीन्द्रिक सुर बज उठा था, छठे-सातवें दशक तक उनमेंसे कुछका देहान्त हो गया है, किसीकी सर्जना धीमी पड़ गयी है तो किसीने लिखनाही छोड़ दिया है। कवि जीवनानन्ददास एवंसुधीन्द्रनाथदत्तका निधन हो जाने परभी बीस-पच्चीस वर्षोंसे इनकी कविसत्ता या व्यक्तित्व ही अधिक प्रभावशाली रहा है। अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त की कवितामें रोमाण्टिकता अबभी प्रतिफलित हो रही है, पर सामान्य काव्यान्दोलनसे उनका जैसे विच्छेद हो गया है। प्रेमेन्द्र मित्र जैसेके तैसे ही हैं, केवल तत्सम शब्दोंके साथ प्रात्यहिक जीवनके शब्दोंके प्रयोग से ध्वनिचित्र निर्माणकी उदारता पायी जाती है आजकल उनकी रचनाओंमें। व्हीटमैनके सफल अनुवादक श्री मित्र आजके कवियोंसे अलग बास रहे हैं। कवि अजितदत्तको 'पुनर्णवा' (१९४७) तथा 'छायार आलपना' (१९५१) काव्योंके मृदुव्यंग्योंपर ही निर्भर रहना पड़ता है। स्वातन्त्र्योत्तर-कालके बंगाली तरुण कवियोंको सबसे अधिक प्रभावित करनेवाले जीवनानन्ददासकी 'सातटि तारार तिमिर' (१९४८), जीवनानन्ददासेर श्रेष्ठ कविता (१९५४), रूपसीबांला (१९५७) तथा 'बेला अबेला कालबेला' (१९६१) आदि कृतियाँ भाषाकी नवीनता, उपमा आदि के नूतनत्व, वाक्यनिर्माणके निरालेपन, मामूली तथा हल्के शब्दोंके भावमय प्रयोगसे नये काव्यलोकका स्वाद लायी हैं। जहाँपर हेमन्तके धानकटे खाली खेतोंमें टेढ़ा चाँद मृत्युका प्रेतसाक्षी होकर दिखायी देता है, सफेद कंकालपर सौन्दर्यकी ओढ़नी ओढ़कर सुन्दरियाँ घूमती-फिरती हैं, वहाँ इतिहास, दर्शन तथा राजनीतिभी है। थकावट, हताशा, विस्मय, मृत्यु-प्रतीक्षा, सड़ागला, भतुहा, शारीरिक असन्तुलनके साथही पवित्र-पावक, धूपखिली

पृथ्वी, नारी-सविता, महानीलाकाश आदिकी उपलब्धि भी है उस नये जगतमें।

आत्मसचेतन बुद्धिजीवीकी भंगिमावाले कवि विष्णु दे की कविताओंमें आवेग तथा कर्ममयताकी मिसाल मिलती है। विद्रूप उनकी कविताकी एक साधारण खूबी है। वाममार्गीपना भी इनमें भरी पड़ी है। सन्दीपरे चर (१९४७), तार पर थेके अन्विष्ट (१९५०), नामरेखेछि कोमल गान्धार (१९५३), आलेख्य (१९५८), तुमि शुधु पँचिशे बैशाख (१९५८), स्मृतिसत्ता भविष्यत (१९६१), सेई अन्धकार चाई (१९६६) आदि काव्योंमें उन्होंने लोक-साहित्य तथा संस्कृतिके ऐतिह्यको नये ढंगसे प्रयुक्त किया है। जनताही सर्वशक्तिमान है, जनताही समाज-जीवनको सुन्दर तथा सफल बना सकती है—क्योंकि 'खेत-खलिहान हमही हैं, हमाराही खून और हड्डी समुद्र और पहाड़ हैं। पकड़ खींचो वासुकीकी गर्दन।' धीरे-धीरे उनकी उग्रता विनयमें ढलकर समाज-सचेतनतामें लीन हो गयी है।

कवि अमिय चक्रवर्ती संसारके विचित्र वैषम्यको निराली सुषमतामें बदलकर देखते हैं। विश्व-मानवताके प्रति गहरी आस्था, सामयिक दुर्योगको पार करनेकी इच्छा तथा मानव प्रेम उनकी रचनाओंमें भरा पड़ा है। कवि बहुत कम वहुत कुछ कह जाते हैं। देश-विदेश इनकी कविताओंमें एक-सा है। निरासक्त दृष्टि, निसर्ग चित्रण, भावकी गहराई, छन्द-विषयक-परीक्षा खासकर गद्य-पद्यमें संयोग लानेकी प्रचेष्टा—अमिय चक्रवर्तीकी काव्य विशेषताएँ मानी जा सकती हैं।

कवि सुधीन्द्रनाथ दत्त सदासेही बंगाली पाठकोंके लिए दुर्बोध्य-से रहे हैं। उनकी प्रकाश भंगिमाकी परीक्षा ही शायद इसका मुख्य कारण है। स्वाधीनता-उत्तर युगमें उनके तीन काव्य प्रकाशमें आये: संवर्त (१९५३), 'दशमी' (१९५६) तथा 'प्रतिध्वनि' (अनुवाद संकलन, १९५४)। युद्धसे थकीमाँदी पृथ्वीके प्रति कवि-मनमें अश्रद्धा पनपी है, फिरभी कविमें आत्म-विश्वासकी कमी नहीं है। माइकेल मधुसूदन दत्तकी तरह आभिधानिक शब्दोंके प्रति अनुराग काव्यमें नाट्य-धर्मिता लानेमें सहायक-सा लगता है। सुधीन्द्रनाथकी कवि-भावना प्रश्न बनकर रह गयी है—शून्यमें ही तैरती रह गयी है—जैसे उसे आश्रयही नहीं मिला।

बुद्धदेव वसुके 'द्रौपदीर साड़ी' (१९४८), शीतेर प्रार्थना: वसन्तेर उत्तर (१९५५), ये आँधार आलोर अधिक (१९५८), मरचे पड़ा पेरेकेर गान (१९६६) आदि काव्यग्रन्थ तथा कालिदासका 'मेघदूत' (१९५७), शर्ल बाँदलेपर: ताँर कविता (१९६१) एवं ह्यल्डालिनेर कविता (१९६७) प्रभृति अनुवाद ग्रन्थ छपे हैं। अनुवाद कार्यके फलस्वरूप कविका दृष्टिकोण कुछ हदतक बदल गया है। जीवन-अन्वेषा, प्रकृति-धारणा आदिमें अन्तर आ गया है। उनकी सतेज दृष्टिने प्रकृति और शिल्प, जीवनके आनन्द और विषाद, छन्द और शब्द आदिके गूढ़ रहस्यको उद्‌घाटित कर पाठकको नयी रोशनी प्रदान की है। बुद्धदेव वृद्ध होनेपर भी तरुण तथा काव्यप्रसू हैं। मनीशघटक, प्रमथनाथ विशी, अन्नदाशंकर राय, निशिकान्त सेन, अशोक विजय राहा, संजय भट्टाचार्य, विमलचन्द्र घोष तथा सुनीलचन्द्र सरकार—आदि कवियोंने भी बँगला काव्य-साहित्यको समृद्ध करनेकी भरसक कोशिश की है। किसीकी कविता जीवनसे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध है तो किसीमें रोमाण्टिकता है; कोई रूप-जगत्‌का पुजारी है तो कोई आत्मविभोर है; किसीकी कविता राजनीतिक परिवेशसे सोच्चार है तो किसीमें अचिन्त्य योग-भावना भरी पड़ी है। ये कवि अपनी-अपनी साधना के छोरपर पहुँच गये प्रतीत होते हैं। लेखनी संयत या स्तब्ध है।

पाँचवें दशकमें आविर्भूत कवियोंमें अरुणमित्र, चंचल कुमार चट्टोपाध्याय, दिनेशदास, सुशीलराय, समरसेन, विश्ववंद्योपाध्याय, कामाक्षीप्रसाद चट्टोपाध्याय, किरण शंकर सेनगुप्त, हरप्रसाद मित्र, सौमित्रशंकरदास गुप्त, गोपाल भौमिक, मणीन्द्रराय, दक्षिणारंजन बसु, सुभाष मुखोपाध्याय, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, मंगलाचरण चट्टोपाध्याय, अरुणकुमार सरकार, शुद्धसत्त्व बसु, जगन्नाथ चक्रवर्ती, नरेश गुह, नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती राम बसु आदि गिने जा सकते हैं। रवीन्द्र काव्य-ऐतिह्यको आत्मस्थकर अथवा पूर्वालोचित कवियोंसे पाठ लेकर ही ये बँगला काव्य क्षेत्रमें आये हैं। इनके आविर्भावका युग विपर्यस्त युग था। इनकी कविताओंमें सुदृढ़ सामाजिक भित्ति, विशिष्ट राजनीतिक विश्वास तथा समस्यापीड़ित, घायल, शोषित मानवके लिए गहरा प्रेम प्रतिफलित है। कविता लिरिक होते हुए भी अधिक सहज, दृढ़, गहरी, विचित्र, समाजसे टक्कर लेती, संग्राममुखर जीवन प्रेमसे सनकर औरभी

उद्दीप्त, तीक्ष्ण तथा अन्तर्भेदी हो उठी है। सुभाष मुखोपाध्यायने राजनीतिक चेतनाको वृहत्तर मानवीय चेतनाके साथ मिला दिया है। चित्रधर्मिता, व्यंग्य तथा प्रतीकात्मकता सरजनेमें वे बेजोड़ हैं। कविताकी भाषा अधिकसे अधिक वाक्‌धर्मी होती जा रही है—गद्यभी कविताका स्वीकृत वाहन हो उठा है। उल्लिखित कवियोंमें अधिकांशत: दृढ़तासे अधिक माधुरी, संग्रामसे अधिक दुःखके आवेग, मिलनसे अधिक विरहयन्त्रणा, तणिक सुखकी तृप्ति, जिन्दगीके रोशन हिस्से आदिके प्रतिही मुख्य आकर्षण पाया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि वर्ग-संग्राम परक बलिष्ठ जीवन प्रत्याशी कविताओंके साथ कोमल-विषण्ण-मधुर-सूक्ष्म तथा गहरी अनुभूतिवाली कविताओंके स्वादने पाँचवें दशककी बँगला काव्यभूमिको विचित्र तथा मोहनीय बनाया है।

छठे दशकको कविप्रतिष्ठा तथा कविता-पत्रिकाका दशक कहा जा सकता है। पाँचवें दशकमें स्थापित कवियोंको छठे दशकमें ही प्रतिष्ठा मिली। इस दशकमें प्रकाशित काव्यग्रन्थोंकी संख्या भी अधिक है। कमसे कम सात कविता-पत्रिकाएँ (सीमान्त, शतभिषा, मयूख, कृत्तिवास, पूर्वमेघ, नान्दीमुख, कविपत्र) निकलीं और प्रसिद्ध हुई। जबकि पाँचवें दशकमें केवल एकही पत्रिका ('एकक') थी। इन पत्रिकाओंने तरुण कवियोंको प्रोत्साहित तथा आत्मविश्वासी बनाया। बँगला काव्यचर्चाके विवेचनकी दृष्टिसे इस छठे दशकका अपना विशिष्ट स्थान है। इस अवधिमें रवीन्द्र-विरोधी आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा। रवीन्द्र नाथ फिरसे तरुण कवियोंके आदर्श बनने लगे। रवीन्द्र काव्यका पठन-पाठन-मनन तथा अनुसरण फिरसे शुरू हुआ। पर क्यों ? हो सकता है परिवर्तमान वास्तविकताका रुग्ण-बीभत्स-असुन्दरताका सामयिक प्रभाव कविमनसे हट गया, 'शान्तम् शिवम् सुन्दरम्' के कवि तथा उनकी काव्य-भावनाकी चिरन्तनताकी महत्ता सुस्पष्ट हो उठी। जीवन साहित्यको सँवारता है; अब साहित्यने जीवन सँवारनेकी जिम्मेदारी ली। जो कवि प्रकाशमें आये, वे हैं: फणिभूषण आचार्य, अरविन्द गुह, तरुण सान्याल, शंख घोष, राजलक्ष्मीदेवी, शिशिरकुमारदास, अलोकरंजनदास गुप्त, आनन्द बागची, आलोक सरकार, मोहित चट्टोपाध्याय, सिद्धेश्वर सेन, अभिताभ चट्टोपाध्याय, अभिताभदास गुप्त, कवितासिंह, शंकर चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद वंद्योपाध्याय, शंकरानन्द मुखोपाध्याय, सुकुमारराय, शान्ति लाहिड़ी, देवतोष बसु, सुनील गंगोपाध्याय एवं शक्ति चट्टोपाध्याय आदि। इस दशकके उल्लेखयोग्य कवियोंकी संख्या गत दशककी संख्यासे बहुतही अधिक है। इन कवियोंकी रचनाएँ रोमाण्टिकता, व्यंग्य, प्रतीक, घरेलू शब्द-प्रयोग, छन्दवैविध्य, चुटकुलापन, और साथही स्वगत-भाषण, ऊपरी हल्केपन परन्तु विषण्णताकी गहराई आदि खूबियों से भरी हैं। राजलक्ष्मीदेवी आलोच्य दशककी परिणत महिला कवि हैं। सुनील गंगोपाध्याय तथा शक्ति चट्टोपाध्यायकी कविताएँ अलग कोटिकी मानी जा सकती हैं। सुनीलके लिए जीवन और कवितामें कोई अन्तर नहीं है। जीवनकी पीड़ा तथा सन्तापके अन्दरसे अपनेको खोज निकालनाही कविता है। आश्चर्य और उत्तेजनाके आवेगसे इनकी भावना जन्म लेती है और भावना कविता बनती चली जाती है। शक्तिभी इसी श्रेणीके कवि हैं। अपनी भावनाको पकड़ रखनेके लिए वे किसीभी शब्द, कौशल तथा छन्दका द्विधाहीन प्रयोग करते हैं। यौन सचेतनता इस पर्वके कवियोंमें पायी जानेपर भी प्रकट रूपसे इन कवियोंमें पायी जाती है, इनकी रचनाओंमें यौन चेतना शिल्पित हो उठी है। परिणाम यह हुआ कि इनके अनुकारियोंकी संख्या दिन व दिन बढ़ने लगी। सातवें दशकके उदीयमान कवियोंको कुछ दूर चलनेके बाद पता चला कि जिस रिक्त, व्यर्थ तथा असह्य वातावरणसे ऊबकर क्लेदमय व्याधिग्रस्त जीवनका उन्होंने आश्रय लिया था अथवा जिसे लक्ष्य समझा था वह मरीचिका सिद्ध हुआ। अतः फिर उन्हें लौटना पड़ा—

> व्यर्थता औरे ग्लानिकी क्षुधासे हस्तमैथुनके सागरमें
> कूदकर ही
> मैं फिरसे व्यर्थता और ग्लानिके निःसीम तटपर
> लौट आया।
> —शमसेर आनवर

प्रकाश नहीं मिलता, अँधेराभी सहा नहीं जाता–इसीलिए यह विषण्णता है। पर यही सब कुछ नहीं है। दुःखके अन्तमें सुखकी प्रत्याशा, अतीत स्मृतिके प्रति आकर्षण एवं जीवनके प्रति अनुरक्तिभी फूट निकली है सातवें-दशकके कवियोंकी कलमसे। आजका तरुण कवि कहता है— "कविताके लिए ही यह जन्म हुआ...यह जीवनधारण है।" आजकल कविता घण्टिकी, दैनिक कविता, कविता साप्ताहिकी, कविता परिचय आदि तरह-तरहकी पत्र-पत्रिकाओंकी 'मिनि साइज' की अनगिनत कविता-पत्रिकाएँ प्रकाशमें आकर चारों तरफ छा गयी हैं। इनसे और

कुछ न भी हो—यह तो प्रमाणित होता है कि बंगाली काव्यप्रिय हैं—कविता लिखते हैं, छापते हैं, पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं—इसकी महत्ता भी कम नहीं है। इस दशकके होनहार तरुण कवियोंमें बेलाल चौधुरी, योगव्रत चक्रवर्ती, भास्कर चक्रवर्ती, शंकरदास गुप्त, सजल बंद्योपाध्याय, गणेश बसु, श्यामलराय आदिने सुन्दर-सार्थक कविताएँ लिखकर बँगला कविता पाठक वर्गको आशावादी बनाना शुरू किया है। यह आशावादिता कहाँतक अटूट रहेगी ?

नाटक

स्वातन्त्र्योत्तर बँगला नाटक शिल्प, विषय वैविध्य तथा चकाचौंध सर्जनकी दृष्टिसे अपने पूर्ववर्ती युगसे आगे है, आजका बँगला नाट्यसाहित्य पठनीय तथा चिन्तनीय उतना नहीं है जितना कि श्रव्य तथा दृश्य है। मूलतः अभिनय कुशलतापर ही इसकी सफलता निर्भर करती है। जीवनकी वास्तविकता अपनी बीभत्सता, नग्नता, रूढ़ता तथा सामयिकता आदिके साथ नाटकमें प्रकट हो रही है। इसी कारण सम्भवतः नाटकोंमें मानव-जीवनकी गहराई नहीं, बाहरी उलझन ही प्रमुखता पा रही है। इसी प्रसंगमें 'गणनाट्य' या नवनाट्य आन्दोलन (१९४४) की चर्चा भी की जा सकती है। विजन भट्टाचार्यको नवनाट्य-आन्दोलनका अगुआ माना जा सकता है। इस युगके नाटकोंमें व्यक्ति सत्ताका संघर्ष समाजसत्ताके साथ है। समाजकी अनुपयोगी परिस्थिति अथवा किसी अहितकारी मतवादसे भी व्यक्तिसत्ताकी मुठभेड़ हो सकती है। यह समाज या मतवाद ही खल-नायककी भूमिका अदा कर रहा है। व्यक्ति-मनकी इच्छा तथा शक्ति एवं घटित तथा अघटितके बीचका द्वन्द्व भी नाटककी गति नियन्त्रित करता है। पर सब नाट्यकारों की रचनाओंमें यह विशेषता पाना कठिन है। बहुत-सी नाट्यकृतियाँ नाटक कहलाने योग्य ही नहीं। इनमें कल्याणकर, यथार्थ जीवन-युद्ध मन्थित विशुद्ध-आनन्दमय तथा उपयोगी नाट्यांशोंके विचित्रतापूर्ण ग्रन्थनसे जीवनरसोत्तीर्ण गुण नहीं मिलते। प्रकाश भंगिमाका निरालापन भी शिल्पसम्मत नहीं पाया जाता। इसीलिए एक समालोचकने कहा है—"सामयिक उत्तेजनाकी सृष्टि, सरकारकी आलोचना, धनिकों-निर्धनोंके प्रति संकेत और केवल श्रमिकोंका महत्त्व प्रदर्शन, और जो कुछ भी हो, साहित्य नहीं है, नाटक नहीं है।" जो कुछ हो, अभि-नेयताका आग्रह नाट्य-विषयक पत्र-पत्रिकाओंका प्रका-शन, आलोचना सभा तथा पाठचक्र आदिका आयोजन जनताके नाट्यानुरागका ही प्रमाण माना जायेगा।

नवनाट्य आन्दोलनके पुरोधा विजन भट्टाचार्यने नाट्य रचनाके लिए दूसरोंको प्रोत्साहन, छिपी प्रतिभा को खोज निकालना एवं दक्ष परिचालना आदिमें अपनी प्रतिभाकी छाप रख छोड़ी है। विजन बाबूके योग्य सहयोगी हैं दिगिन्द्र बंद्योपाध्याय, नाट्यरचनाके लक्ष्य सुस्पष्ट करते हुए इन्होंने पूछा है, "यथार्थधर्मी नाट्यकार की दृष्टि क्या आपातदृष्ट तथा आपातग्राह्य वस्तुओंतक ही बँधी रहेगी ? या द्रष्टाको प्रेरणा द्वारा वस्तुका अति-क्रम करके ऐसी भावसत्ता अपनानी होगी जो आनेवाली पीढ़ियोंके लिए गौरवकी वस्तु बन सके ?" दिगिन्द्र बाबूके नाटकोंमें 'वास्तुभिटा', 'मोकाबिला', 'मशाल', 'दीपशिखा', एकांकियोंमें 'पूर्णग्रास', 'अपचय', 'आपेक्षिक' तथा 'वेवारिस' आदि उल्लेखनीय हैं। 'वास्तुभिटा' में देश-विभाजनके समय पूर्वी बंगालसे आनेवाले लोगोंकी जन्म भूमि छोड़नेकी ज्वाला अर्थलोभी, नारीदेह-व्यापारीका पापा-चार तथा अन्यविध घटनाओंके घात-संघात बड़े मार्मिक तथा उत्तेजक बन पड़े हैं। इसीतरह किसीमें मानवताकी जय, तो किसीमें वर्ग-संघर्षका चित्रण है।

तुलसी लाहिड़ी भी उल्लेखनीय नाट्यकार हैं। उनका 'दुःखीर इमान' अकाल-पीड़ित, अत्याचारित तथा शोषित जनताका हृदयदावक चित्रालेख है। उनका 'छेंड़ातार' भी बँगलामें एक नया संयोजन है। नाट्यकार सलिलसेनके नाटकोंमें जीवनकी विचित्र रूपरेखाएँ उभरी हैं, उनका 'नतुन इहुदी' देशविभाजनके शिकार बने एक असहाय परिवारकी मर्मस्पर्शी कहानी है। इसकी घटनाओंका विन्यास तथा परिणति सहज तथा स्वाभाविक है। उल्लेखनीय नाट्यकृतियोंमें इसका विशेष स्थान है। 'डाउन ट्रेन' सलिल बाबूकी एक और नाट्यकृति है जो बहुल अभिनीत, आलोचित तथा पुरस्कृत है। किसी रेलवे स्टेशनकी सच्ची घटनाके आधारपर यह नाटक लिखा गया है। आलोच्य युगके प्रतिभाशाली नाट्यकार, अभिनेताके रूपमें गंगापद बसुका नाम भी लिया जाना चाहिये। साथही वीरु मुखोपाध्याय, परेश धर, धनंजय वैरागी (तरुण राय), अजित गंगोपाध्याय, शम्भु मित्र, उत्पन्नदत्त, ज्योतु बंद्योपाध्याय आदिभी यशस्वी एवं नव-मार्ग सन्धानी नाट्यकार हैं। धनंजय वैरागीके नाटकोंमें जीवनधर्मी भाव एवं वस्तुनिष्ठ-रोमाण्टिकताका समन्वम पाया जाता है। शम्भु मित्रने विचक्षण, प्रखर

दृष्टिसम्पन्न, समाजसचेतन सांवादिककी तरह 'घूर्णि' नाटकमें समाजकी अँधेरी गलियोंका यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने बँगलामें कुछ विदेशी नाटकोंके सफल अनुवाद भी किये हैं। उदाहरणार्थ 'अयदिपाउस' तथा 'पुतुल-खेला'। 'कांचन रंग' एक सफल व्यंग्यात्मक नाटक है। शंभू बाबू सुदक्ष मंचाभिनेता हैं। अभिनय, परिचालन आदि द्वारा उन्होंने रवीन्द्र-नाटकोंमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। बँगला नाट्यमंच उनसे अबभी आशाएँ रखता है। प्रख्यात मंचाभिनेता उत्पन्नदत्तके नाटकोंमें अक्सर ध्वंसात्मक तथा बीभत्सात्मक भावही अधिक पाये जाते हैं। इनकी नाट्यभावनाही जैसे निराली है। इनके नाटकोंमें 'फेरारी फौज', 'अंगार', 'मेघ' मानुषेर अधिकारे' आदि विशेष रूपसे उल्लेख योग्य हैं।

सत्य वंद्योपाध्याय, रमेन लाहिड़ी, रतनकुमार घोष, शचीन भट्टाचार्य, धीरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय, पार्थप्रतीम चौधुरी, सुनील चक्रवर्ती, रवीन्द्र भट्टाचार्य, जगमोहन मजुमदार, प्रकाशकुमार नन्दी, ज्योतिर्मय दत्त आदि के नाटकोंमें समाज-जीवनके अविचार, अनाचार, संघर्ष, दुःख-दारिद्रय, अघटन-विघटन आदि क्लेदमयता भरी पड़ी है। भिन्न-भिन्न नाट्यकारोंके दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न हैं। कहीं उनमें घृणा, पक्षपात, सहानुभूतिहीनता झलकती है तो कहीं शिल्पित, स्वाभाविक संवेदनकी गहराई है। कहीं-कहीं तो हल्के हास्य-व्यंग्य आदिकी भरभारभी है। चटुलतासर्वस्व नाटकभी हैं।

मोहित चट्टोपाध्याय, बादल सरकार, अजितेश वंद्योपाध्याय तथा रुद्रप्रसाद सेनगुप्त आदिने बँगला नव नाटकका श्रीगणेश किया है। सम्भव है इनके प्रयत्न और मार्ग-दर्शन से बँगला नाटक निराले परन्तु अप्रत्याशित स्तर पर पहुँच जाये। नया विषय, नया चिन्तन— मनन, नया उदार जीवनबोध, नवीन एवं जटिल जीवन-रस उसमें एक अनास्वादित नाट्यरस लादे। मोहित चट्टोपाध्याय की 'नीलघोड़ा', 'राक्षस', 'मृत्यु संवाद' तथा 'चन्द्रलोके अग्निकाण्ड' आदि नाट्यकृतियाँ 'ऐब्सर्ड' धर्मिताकी बूसे भरी हैं। परन्तु बँगलाका पहला 'ऐब्सर्ड' नाटक है बादल सरकारका 'एवं इन्द्रजीत', जिसमें मनुष्य अकेला है, निस्संग है। जिन्दगीमें उसके लिए अब कोई चाह नहीं रह गयी है। सब कुछ शून्य है, झूठा है। कौतूहल, अनुभूति तथा नाटकीय चमत्कारकी दृष्टिसे 'एवं इन्द्रजीत' अनुपम है। 'बाकि इतिहास' भी इसीतरहका नाटक है। 'कविकाहिनी' तथा 'बड़पिसीमा,' बादल सरकारके दो व्यंग्यात्मक 'प्रहसन' हैं। इनमें नाट्यकारकी नाट्यप्रतिभा की विशेषता स्पष्ट है। केवल एकही अभिनेता द्वारा प्रस्तुत किया जा सकनेवाला नाटक भी बँगलामें लिखा जा रहा है। इस प्रसंगमें श्री सहदत हुसेनके 'कलकातार बुके', तथा 'बौदिरबिये' नाटकोंका जिक्र किया जा सकता है। स्त्री-चरित्रहीन नाटकोंमें जमकर खेले जानेवाले हैं रविदासके 'वरयात्री' तथा 'स्पुटनिक'।

पढ़कर भी नाट्यरसका आनन्द लिया जा सकता है। इसका प्रमाण मिलता है ताराशंकर वंद्योपाध्याय, बनफूल, प्रेमेन्द्र मित्र, जरासन्ध, अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त, नारायण गंगोपाध्याय, सन्तोषकुमार घोष आदिकी नाट्यकृतियोंमें कहा जा सकता है कि बुद्धदेव बसुके 'तपस्वी ओ तरंगिणी', 'कलकातार इलेकट्रा' 'सत्यसन्ध', 'पाताझरे जाय' तथा 'कालसन्ध्या' आदि नाटकोंमें नाट्य-साहित्य सम्बन्धी नयी-नयी परीक्षा-निरीक्षाएँ चल रही हैं। इन पठनीय नाटकों में अभिनेयता भी पायी जा सकती है। संलाप, कौतुक, अन्तर्दृष्टि आदि ही इनकी अपनी खूबियाँ हैं। बुद्धदेव वसुका एकांकी नाटक 'पाताझरे जाय' बँगला नाट्य साहित्यकी एक अभिनव सम्पदा है। विपरीत-चरित्रके स्वामी तथा स्त्री ही दो पात्र हैं। बस कुछही शब्दोंमें नगर जीवनका जो विश्लेषण हुआ है, उसका रूप तथा स्वाद बिलकुल नया तथा अनन्य है।

बँगलाका नाट्य साहित्य दिनों-दिन विकसित हो रहा है। इसके रूप, रस, वर्ण तथा महकमें भी नवीनता झलक रही है, पर शाश्वत धर्मिता या अमरता किस मात्रा तक है, यह तो भविष्यही बतायेगा।

उपन्यास

स्वाधीनता प्राप्तिके समयसे जिस युगका सूत्रपात हुआ है उसका परिचय दिया जा चुका है, उसके वैशिष्ट्य तथा जीवन-बोधका भी उल्लेख हो चुका है। युगकी पार्थिव माँगको पूरा करनेके लिए मनुष्यने बिना हिचकिचाहट अस्तित्वके यथार्थका परित्याग कर दिया, भविष्य उसे अनिश्चित तथा अन्धकारपूर्ण लगा। उसे विधि-विधानहीन व्यक्तिवादके हाथों खिलौना बनना पड़ा। तोड़-फोड़ बहुत हुई पर निर्माण कुछ भी नहीं। युगकी यह हताशा तथा अनिश्चित शून्यता विशेष रूपसे उपन्यास-साहित्यमें स्पष्टतः झलकती है। उपन्यासकार भी तो युगकी ही देन हैं। अतः युग-धर्मके बाहर जाना उनके लिए सम्भव नहीं है। परन्तु पहलेसे ही लगभग

प्रतिष्ठित उपन्यासकारोंपर ये बातें लागू नहीं होतीं। ऐसे साहित्यिकोंमें ताराशंकर वंद्योपाध्याय, मणिक वंद्योपाध्याय, मनोज बसु, सुबोध घोष, नरेन्द्रनाथ मित्र आदि गिने जा सकते हैं। शरतचन्द्र चट्टोपाध्यायके बाद ताराशंकरका ही नाम लिया जा सकता है—प्रतिष्ठित उपन्यासकारके रूपमें। आजके बँगला उपन्यासकी विकास मान शाखा है—ऐतिहासिक उपन्यास। ऐतिहासिक या इतिहास आश्रित उपन्यासोंकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती जा रही है। कुछ उपन्यासोंका आयतनभी अत्यन्त बृहत् है। लगता है इन महौपन्यासोंमें महौपन्यासिक रस देनेकी प्रचेष्टा की जा रही है। इस सन्दर्भमें विमल मित्रका 'साहेब विवि गुलाम' का उल्लेख किया जा सकता है। अपने दुःख-दारिद्रय, हास्य-विनोद, प्रकाश-अन्धकार आदिको लेकर अतीत युगकी गति रुक-सी जाती है, अपनी विशेषताओं, प्रकाशको खोकर वह साधारण सा हो जाता है—इस परिवर्तनमें एक करुण झंकार है जो सशक्त लेखकके हृदयका स्पर्श पाकर अपूर्व बन गयी है। ऐसाही एक उपन्यास है ज्योतिरिन्द्र नन्दीका 'वार घर एक उठान'। घर-द्वारहीन अभागे मनुष्यका दल एक जगह ऐसा डेरा डालता है—जहाँ 'अँगना' एक ही है पर बारह गृहस्थोंके घरोंके दरबाजे बारह हैं। इसी अँगनेमें मनुष्य-स्वभावकी विचित्र नीचता, शठता, हताशाकी व्यथा, ग्लानि, ज्वाला तथा नीतिहीन निर्दयता एक साथ दिखायी दे रही है। लेखकने जैसे उँगली उठाकर समाजके विकारग्रस्त रूपको दिखलाया है। रमापद चौधुरीका 'प्रथम प्रहर' भी इसी कोटिका उपन्यास है। यह जीवनको सम्पूर्ण रूपमें रूपायित करनेका प्रयास है। किशोर जीवनमें यौवनका प्रारम्भ। यौन केन्द्रिकता रहनेपर भी लेखकने असंयमको नहीं स्वीकारा है, यद्यपि कहा सब कुछ है। कथानकमें लेखक मनकी सहानुभूति तथा शिल्पचेतना सुस्पष्ट पायी जाती है। सन्तोष घोषके 'किनु गयलार गली' की कहानी भी यौनचेतना-सचेतन है। यह उपन्यास 'बारो घर एक उठान' से मिलता-जुलता है।

अवधूतका 'उद्धारणपुरेर घाट' तथा जरासन्ध का 'लौहकपाट' उपन्यास नहीं बल्कि वर्णनप्रधान कहानी है। उपन्यासधर्मिताके कारण नहीं, चमकदार, चटकदार घटनाओंका मनोहारी भाषामें रोचक चित्रणही इन ग्रन्थोंके बहुल प्रचार-प्रसारका मुख्य कारण है। पहले ग्रन्थमें जन-जीवनसे दूरके परिवेशकी निषिद्ध कथाएँ हैं—जिनकी जानकारीका कौतूहल स्वाभाविक ही है। गन्दी जिन्दगी की नग्नता, यौनाचार, बीभत्सता आदि वर्णित है। 'लौह कपाट' में भी ज़ेल-जगत्की अँधेरी कोठरीकी घटनाएँ हैं। चोर-डाकुओंके विचित्र प्रकारके कारनामे सुन्दर तथा रोचक ढंगसे लिखे गये हैं। कथाकारकी भाषा, बोलनेका ढंग मानवीयताके बोधसे सरस तथा सार्थक हो उठा है। शंकरने 'चौरंगी' उपन्यास वर्गीय रचनामें कलकत्ताके ताजमहल होटलमें होनेवाले साहवबीबियोंके यौन जीवनाचार, उसका परिणाम आदिका चित्रण सहानुभूतिसे किया है। शंकरने जो कहना चाहा है और जिस ढंगसे कहना चाहा है उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। 'चौरंगी' की अभिनवता, उसका साहित्यिक मूल्य स्वीकार करते हुए हमें कहना पड़ेगा कि वर्णित जीवनधाराकी गहराईमें पैठकर मोती खोज पानेके श्रमको शंकरने स्वीकार नहीं किया है। फिरभी पुस्तक सुखपाठ्य तथा बिकनेवाली है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

नरेन्द्र मित्रके 'चेनामहल' में कहानी, चरित्र आदि सब कुछका ही स्वाभाविक संगत विकास पाया जाता है। वर्णित प्रेममें जैसे विदेशी बू मिलती है। जोकुछ हो प्रांजल-प्रसाद गुण-सम्पन्न भाषा और उनकी अपनी विशेषता तथा मौलिकता अवश्य उल्लेख्य है। आशुतोष मुखोपाध्यायके उपन्यासोंकी कहानियाँ रोचक होनेपर भी अन्य विशेषताएँ सामान्य स्तरकी हैं। उपन्यास सुखपाठ्य हैं।

आधुनिक बँगला साहित्यकी उपन्यास लेखिकाओंमें आशापूर्णा देवी, प्रतिभा बसु तथा लीलाराय प्रतिष्ठित हैं। आशापूर्णा देवीका 'अनवगुण्ठिता' एक कौतूहलोद्दीपक तथा रोचक उपन्यास है। इसमें पुराने तथा नये मूल्यबोधमें संघर्ष, पारिवारिक विरोधका सुन्दर चित्रण है। युगबोध मनुष्यको आत्मकेन्द्रित बना देता है। प्रतिभा बसुके 'मनेर मयूर' में एकनिष्ठ प्रेमकी कहानी है, जो रोचक तथा लड़कियोंके लिए आकर्षक सिद्ध हो सकती है। विमलकरका 'पूर्ण-अपूर्ण' जीवनबोधकी गहराई, वातावरणकी सच्चाई एवं बारीक शिल्प कौशलसे समृद्ध है। मानव जीवन पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण एवं अपूर्ण होकर भी पूर्णतासे सम्बद्ध है—इस अनुभवको लेखकने प्रतीकके माध्यमसे समझानेका सफल प्रयत्न किया है। मनस्तात्त्विक विवेचन तथा विश्लेषण भी ऊँचे स्तरका है। 'पूर्ण-अपूर्ण' अपने ढंगका पहला उपन्यास है। सुशील रायने बृहत् परिकल्पनापर आधारित विराटकाय उपन्यास 'अनल आयति' लिखा है जिसका अवलम्बन है—अतीतकी बीभत्स तथा नृशंस

सतीदाह प्रथा। लेखकने इतिहाससे समाज, संस्कार, आचार, आचरण, पोषाक, परिच्छद और साथही मनुष्यके मन तथा मत परिवर्तनकी कहानीको ढूँढ़ निकाला है, सँवारा तथा सँजोया है। वर्णन-प्रधानता, चरित्रोंकी भीड़, घटनाओंकी कतारें होते हुए भी आन्तरिक उपलब्धि तथा तीव्र अनुभूतिकी कमीने 'अनल आयती' को उपन्याससे कहीं अधिक इतिहास बना दिया है। फिरभी लगभग दो सौ वर्षोंसे होते हुए सामाजिक परिवर्तनकी धाराको लेखक ने अनायास पकड़ तथा जकड़ दिया है। और कुछ नहीं तो दुःखदर्दभरी घटनाओंका शिल्पित चित्रण मनको अवश्यही खींच लेता है।

स्वातन्त्र्योत्तर बँगला उपन्यासके क्षेत्रमें एक बहु वितर्कित-आलोचित तथा पठित नाम है समरेश बसु। इनका 'विवर' एक ऐसा उपन्यास है जिसकी अश्लीलता या यौनताको तोपनेके लिए तरह-तरहकी कोशिशें की गयी हैं, पर वास्तविकता छिप नहीं पाती। समरेश बाबूमें सहानुभूति, शिल्पचेतना तथा दृष्टिशक्तिकी गहराई सब कुछ है पर मानसिक प्रवणताके प्रवाहमें बहनेसे अपने को रोक नहीं पाते, सम्भवतः यही उनमें सबसे बड़ी कमी है। जो कुछ हो उपन्यासकी बिक्री बहुत है—पर साहित्य-मूल्य पर प्रश्न चिह्नलगा है।

आमतौरपर इने-गिने उपन्यास कारोंकी इनी-गिनी कृतियोंके विषयमें यत्सामान्य आलोचना की गयी है। जिनकी चर्चा नहीं की गयी ऐसे उपन्यासकार तथा उपन्यासोंकी संख्या कम नहीं है।

पर प्रश्न यह है कि गत पचीस वर्षोंमें बँगला उपन्यासमें क्या नया सँयोजन हुआ है? उपन्यासकी पृष्ठभूमि, पात्र-पात्री आदिमें नवीनता आयी है। उपन्यासकी परिधि बहुत विस्तृत हो गयी है। नया स्वाद नया रोमांच आया हैं। शिल्प, रचना शैली एवं प्रतिस्थापन आदिके विवेचनसे भी आजका उपन्यास बहुत आगे बढ़ गया है। संक्षेपमें गतिशीलता, उज्ज्वल प्रकाशधर्मिता, सृजनकी गहराई आदि भी लक्ष्य की जा सकती है। उपयोगी भाषाकी लचक तथा तीक्ष्णताभी ध्यानाकर्षक है। आजके उपन्यासों में एक और विशिष्टता पायी जा रही है और वह है उत्कट यौनचेतना। शायद किसीभी कारणसे इस उत्तेजक कुप्रभावी प्रवृत्तिको सदर्था नहीं जा सकता।

यह कहना भी अन्याय नहीं होगा कि आलोच्य युगके उपन्यासोंमें स्वकीयता, जातीय-जीवनबोध, आन्तरिकता, जीवनकी गहराईमें पैठनेकी शक्ति या प्रवृत्तिका परिचय नहीं मिलता। फलतः कृत्रिमता एवं परानुकरणको प्रधानता दी गयी है। साहित्यका आदर्श या उद्देश्य है मनुष्यकी हृदयवृत्तिको प्रसारित करके मानवता एवं मनुष्यत्वके अर्जनमें सहायता करना। यदि यह सच है तो आजका बँगला उपन्यास कहाँतक सफल है—यहभी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन सकता है। उत्तर विवादास्पद होने पर भी विजय न-कारात्मक गोष्ठीकी ही होगी—इसमें कोई सन्देह नहीं।

कहानी

कहानीको बँगलामें 'छोटो गल्प' अर्थात् छोटी कहानी कहा जाता है। क्योंकि गल्पकारकी रुचि-अनुयायी कहानी बड़ी भी हो सकती है, और उपन्यास भी कहानी ही है; अतः जो छोटी भी है और कहानी भी है—वही 'छोटी कहानी' या छोटोगल्प है। जीवनके किसी विशिष्ट आन्तरिकतापूर्ण क्षणपर ही कहानी प्रायः आधारित होती है। गतिशील जीवनके उस विशिष्ट क्षणका सजीव चित्रण ही छोटो गल्प है। महाकाव्य या प्रबन्ध-काव्यके साथ कविताका जो सम्बन्ध है, उपन्यास या बड़ी कहानीके साथ छोटोगल्प का भी लगभग वही सम्बन्ध है। चौथे दशकसे कविता तथा छोटोगल्प या छोटी कहानी (हिन्दी में जिसे कहानी ही कहा जाता है) एक दूसरेके काफी निकट आ गये हैं। तभीसे बँगला कहानीमें प्रकृति प्रेम, रोमाण्टिकता आदिकी जगह मजदूरोंका जीवनवेद, वास्तव प्रेम, राजनीति, विदेशी प्रभावानुसरण एवं बुद्धिवादिता आदिकी प्रमुखता पायी गयी। जीवनका अवमूल्यायन, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी आदिको चित्रित करनेके लिए नयी शैली, नयी भाषा आदिकी परीक्षा-निरीक्षा चलती रही। साथही नियमित ढंगसे वितर्क, सभा, आलोचना और गल्पग्रंथ प्रकाश आदिकी व्यवस्थाभी छठे दशकतक दिखायी देती है।

सन् १९५० ई० के बाद जिन कथाकारोंने बँगला कहानीके क्षेत्रमें विषय व पद्धतिकी नवीनता, प्रगति साहित्यके समर्थन आदिसे नये दिगन्तका द्वारोद्घाटन किया, उनमें सुबोध घोष, सतीनाथ भादुड़ी, ज्योतिरिन्द्र नाथ नन्दी, नरेन्द्रनाथ मिश्र, सन्तोषकुमार घोष, सुधीरंजन मुखोपाध्याय, सुशीलराय, हरिनारायण चट्टोपाध्याय, कामाक्षीप्रसाद चट्टोपाध्याय, विमल मित्र, शचीन्द्रनाथ

वंद्योपाध्याय, अवधूत, आशापूर्णा देवी, आशुतोष मुखोपाध्याय, रमापद चौधुरी, शंकर, गौरकिशोर घोष, विमल कर और साथही नारायण गंगोपाध्याय, नवेन्दुघोष, गोपाल हालदार, अमरेन्द्र घोष, समरेश बसु, ननी भौमिक, सुशील जाना, स्वराज वंद्योपाध्याय, शांतिरंजन वंद्योपाध्याय मिहिर आचार्य प्रमुख हैं। बादमें दीपेन्द्र वंद्योपाध्याय, मतिनन्दी, सन्दीपन चट्टोपाध्याय, शचीन भौमिक, देवेश राय, प्रफुल्ल राय, शान्तिरंजन चट्टोपाध्याय, वरेन गंगोपाध्याय, दिव्येन्दु पालित, हिमानीश गोस्वामी, अतीन्द्र वंद्योपाध्याय आदि तरुण साहित्यिकोंने उनका अनुसरण करना प्रारम्भ किया। सन् १९६० ई० के लगभग सशक्त गल्पकारोंके एक दलका आविर्भाव हुआ। इनमेंसे कुछ कवि भी हैं। इनकी कहानियोंमें जीवनकी पीड़ाओंका नग्नरूप, भावावेगशून्य होकर उभरा है। भाषा, ठोस, लचकदार और कभी-कभी काव्यमय भी पायी जाती है। ऐसे कवियोंमें सुनील गंगोपाध्याय अग्रगण्य तथा सुप्रतिष्ठित हैं। इन कहानीकारोंमें शीर्षेन्दु मुखोपाध्याय, सैयदमुस्तफा सिर्राज, श्यामल गंगोपाध्याय, निखिल सरकार, बुद्धदेव गुह, अरुण बाग्ची, स्मरजित वंद्योपाध्याय, असित गुप्त एवं ओंकार गुप्त आदिके नाम स्मरणीय हैं। हालमें जिन तरुण कहानीकारोंकी रचनाएँ आकर्षक, रुचिपूर्ण एवं आशाप्रद लग रही हैं उनमें समीर रक्षित, अशोकसेन गुप्त, प्रलयसेन, सुधांशु घोष, कणा बसु, कल्याण श्री चक्रवर्ती, निर्मल चट्टोपाध्याय, रंजितराय चौधुरी, रमानाथ राय, सुनीलदास तथा वीरेन्द्रदत्त प्रमुख हैं।

जिन कवियोंके दलने भाषा निर्माण तथा प्रयोग, परिमित शिल्पबोध, शब्दभेदी अर्थकी व्यंजना आदि द्वारा शिक्षित पाठकोंका हृदय जीत लिया है और साथही अनुज लेखकोंको अविरत अनुप्रेरित कर रहा है, उनमें बुद्धदेव बसु, अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त, सुबोध घोष, नारायण गंगोपाध्याय, सन्तोषकुमार घोष तथा विमलकर आदि प्रमुख हैं। समरेश बसुको भी इसी दलमें गिना जा सकता है।

सुबोध घोषकी कहानियाँ सुन्दर-सीधी तथा मधुर भाषा, विषय-वस्तु तथा भावकी विचित्रता एवं अनुभवकी विशिष्टतासे अनन्य हो उठी हैं। आदर्शवादिता इनका एक खास धर्म है।

नारायण गंगोपाध्यायने नैसर्गिक पृष्ठभूमिपर अपने बुद्धि-वैभवकी सूक्ष्मतासे बेनकाब वास्तविकताको निराला शिल्परूप दिया है। उनकी कहानियोंमें प्राचीन-नवीन देशी-विदेशी, शिक्षित-अशिक्षित, सभ्य-असभ्य महान-नीच, दुखी-सुखी, शोषक-शोषित, ऊँच-नीच सभीप्रकारके लोगों ने अपनी-अपनी विशेषताओंके साथ आकर भीड़ जमायी है। विश्वसाहित्यके मननशील पाठक गंगोपाध्याय शुद्ध बंगाली साहित्यिक थे। उनमें मनुष्यके लिए प्रेम और जीवनके प्रति चाह कूट-कूटकर भरी थी। सफल बाह्य-साहित्यकारके रूपमें भी उन्हें प्रतिष्ठा मिली है।

सन्तोषकुमार घोषकी कहानियाँ माधुर्यपूर्ण शब्दोंमें काव्यमयतासे परिपूर्ण हैं। आंगिक, शिल्प दृष्टिकोण तथा विषय-वैचित्र्य आदिके विवेचनसे सन्तोषकुमारने बँगला कहानीके क्षेत्रमें नया प्रवाह-सा ला दिया है। इनके साथ-साथ कदम मिलाते हुए पाये जाते हैं नरेन्द्रनाथ मित्र। समाजके अनगिनत मानवोंकी शारीरिक व मानसिक अनुभूति, अभाव-अभियोग, मिलन-विरह, उन्नति-अधोगति आदिको बडेही निराले ढंगसे सूक्ष्मताके साथ इन्होंने चित्रित किया है। इसी अवधिके चटकदार तथा नग्नताविलासी कहानीकार हैं ज्योतिरिन्द्र नन्दी। नन्दीने सौन्दर्यकी नग्नता और नग्नताको सौन्दर्यका पर्याय मानकर प्रकृति और पुरुषका भी सहवास दिखाया है। इन्होंने समाजके सड़े-गले रूपको, कदर्यताको शील-संकोच, रुचि-नीति बोध आदिकी उपेक्षा करके चित्रित किया है। धिक्कृत, तिरस्कृत होनेपरभी अपनी राहसे इन्हें बेहद प्रेम है। आजभी इनकी कलम अपने ढंगकी कहानियाँ उगल रही है। हरिनारायण चट्टोपाध्याय, सुधीरंजन मुखोपध्याय, शचीन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय एवं प्रफुल्ल राय, अतीन वंद्योपाध्याय, रवीन्द्रगुह आदि तरुण गल्पकारोंकी रचनाओंमें विदेशी वातावरणकी अनुभूति होती है। चाणक्य सेन, नारायण सान्याल तथा शंकरके करस्पर्शसे अनजाने, जीवन एवं जीविकाका तथ्यपूर्ण विवरण सरस साहित्य हो उठा है। शरदिन्दु वंद्योपाध्यायकी कहानियोंमें ऐतिहासिक पात्र-पात्री तथा परिवेश सजीव हो उठा है। रमापद चौधुरीने अपनी कहानियोंमें आदिवासी, शांथाल तथा खानाबदोशोंकी जिन्दगीका संवेदनशीलता, आग्रह एवं सहृदयताके साथ चित्रण किया है। इनकी रचनाएँ सहज-सरल चित्ताकर्षक एवं निराली है। इस प्रसंगमें इनकी कहानियोंका संग्रह 'गल्प-समग्र' का नामोल्लेख किया जा सकता है।

आजकी कहानी मानवको समाज-सचेतन बननेमें सहायता देती है। कहानी पढ़कर निराश, दुखी, अभावी

मनुष्य विस्मयसे विमुग्ध आश्वस्त तथा आनन्दित भी होता है। इस सन्दर्भमें विमल मित्र, सुशीलराय, शान्ति रंजन वंद्योपाध्याय, गौरकिशोर घोष, समरेश बसु आदिका प्रसंग आ जाता है। सुशीलराय जीवनकी अति तुच्छ घटना, मनके विशेष क्षण, हृदय कड़ीकी टूटी आवाजको सुन्दर-सफल एवं श्लाघनीय कहानीरूप दे सकते हैं। गौरकिशोरकी कहानियोंमें विदेशी कहानियोंका प्रभाव झलकता है। इसके अलावा उनकी मौलिक रचनाओंमें राजनीति, तन्त्राचार, सामाजिक पीड़न, अत्याचार आदि का भी प्रतिफलन पाया जाता है। समरेश बसुकी कहानियों में गहरी सामाजिक-चेतना मिलती है। नग्नताको भी इन्होंने शिल्पनिर्माणका हथियार बनाया है। आशाकी जा सकती है, शीघ्रही इनकी रचनाएँ नये विषय तथा नवीन शैलीसे समृद्ध होकर पाठक मनको सन्तुष्ट करेंगी। विमलकर पवित्र जीवनादर्शके प्रवक्ता हैं। इनकी रोमाण्टिक कहानियाँ रहस्यमयतासे भी भीनी है। आजके बँगला कहानीकारोंमें विमलकरको ही 'मिष्टिक' कहा जा सकता है। व्यंग्यपूर्ण हास्यप्रधान लघु कहानियाँ भी लिखते हैं।

प्रख्यात लेखकोंके साथही अख्यात शचीन भौमिक, अमलेन्दु चक्रवर्ती, दीपेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय, कमलकुमार मजुमदार जैसे लेखक भी हैं। यहाँ यहभी कहा जा सकता है कि छठे दशकके अन्त एवं सातवें दशकके गल्पकारोंकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंके पृष्ठोंपर बिखरी पड़ी हैं। गल्पोंका संकलन नहीं निकल पाया है। बँगला साहित्यके लिए एक बड़ी कमी मानी जानी चाहिए।

यह युग है भ्रष्टाचार तथा विनाशका। विश्वभरके साहित्यका स्पन्दन इसी ओर संकेत करता है। सम्भवतः इसीकारण आजके गल्पकार तथा पाठक ध्वंसात्मक नीतिपर विश्वास रखते हैं। अतृप्ति, प्रेमाभाव, अभाव आदिका शिकार होकर ये लोग अपनी प्रतिक्रिया इसी रूपमें प्रकट करते हैं। परन्तु प्रतिक्रियासे सृष्टि नहीं होती। परिणामतः जीवन और साहित्यकी केवल जटिलता ही बढ़ रही है, समस्याका हल नहीं हो पाता; शायद इस मार्गसे हो भी नहीं सकता। जीवनको परखने, उसकी गहराईमें पैठने एवं अर्जित सामग्रीको आत्मस्थ करके फिर उसे सहज, सरल रोचक एवं वांछित रूप देनेके लिए जिस निष्ठा, शिक्षा, आत्मविश्वास एवं शक्तिकी आवश्यकता है, वह इनमें नहीं है। फलस्वरूप वे जो कुछ दे रहे हैं, सरज रहे हैं, वह सब कृत्रिम है।

निबन्ध

स्वातन्त्र्योत्तर बँगला साहित्यकी अन्य विधाओंकी भाँति निबन्ध शैलीका भी उत्तरोत्तर विस्तार और विकास हुआ है, पर मौलिकता, सरसता एवं रम्यता आदि अपरिहार्य गुणोंकी पूर्ति नहीं हो पायी है। निबन्ध सामान्यतः तथ्यपरक, शोधप्रधान और साथही परिश्रम-साध्य होते हैं। इसलिए वक्तव्य और आयतन बढ़ रहा है, पर 'रस' कम होता जा रहा है। परन्तु अब 'रम्य-रचना' नामसे एक प्रकारके लघुभावात्मक निबन्धधर्मी लेख काफी लिखे जा रहे हैं। रम्य-रचनाके अलावा अच्छे निबन्ध लिखनेवालों की संख्या लगभग नहींके बराबर है। स्वतन्त्र चिन्तन और मननवाले ऊँचे स्तरके सरस निबन्धकार आज उपलब्ध नहीं हैं, दो-एक अपवाद हो सकते हैं।

गवेषणा-विषयक निबन्ध साहित्य दिनोंदिन विचित्र एवं विस्तृत होता जा रहा है। सरस निबन्धकारके रूपमें प्रमथनाथ विशी तथा परिमल गोस्वामीके नाम लिये जा सकते हैं। प्रमथनाथ विशीके लेखकी शैली रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायकी शैलीसे मिलती-जुलती है। परिमल गोस्वामी आधुनिक बँगला गद्यके निपुण व्यंग्यकार माने जा सकते हैं। इन्हींके साथ अन्नदा शंकर राय, नन्दगोपाल सेन गुप्त और हीरेन्द्रनाथ दत्त 'इन्द्रजित्' के नामभी लिये जा सकते हैं। पर इनकी कृतियोंसे बँगला निबन्ध साहित्य विधामें कुछ विशेष संयोजन हुआ है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। इनकी रचनाएँ रोचक हैं—इतना ही बस।

कुछ समाज-सचेतन निबन्धकार भी हैं। जैसे—इतिहास सचेतन सुशोभन सरकार, गोपाल हालदार। लेनिनवादी, मार्क्सवादी निबन्धकार भी हैं। शिल्पसाहित्यकी नान्दनिक टीकाभी एक श्रेणीके बँगला निबन्धकारोंका उपजीव्य विषय है। ऐसे निबन्धकारोंमें अग्रगण्य हैं बुद्धदेव बसु। विदेशी साहित्य तथा विदेशी लेखकोंके विषयमें भी आजकल काफी ग्रन्थ लिखे जाते हैं। इस सन्दर्भमें चित्तरंजन वंद्योपाध्यायके 'ग्रन्थवार्ता' तथा 'सोनार आलपना' ग्रन्थोंका उल्लेख किया जाता है। बँगलामें 'भारत तत्त्व' की भी काफी चर्चा हो रही है। कुछ नये काव्यसमालोचक भी इस युगमें सामने आये हैं। इस प्रसंगमें अमलेन्दु बसु, भवतोषदत्त एवं शिशिरकुमार घोषका नामोल्लेख किया जाना चाहिये। नाटक, नाट्यकलासे सम्बद्ध निबन्ध आदि

[शेष पृष्ठ १४२ पर]

४. पश्चिमांचलीय भाषाएँ

क. स्वातन्त्र्योत्तर गुजराती साहित्य

— डॉ० अरविन्दकुमार देसाई,
एम० टी० बी० कॉलेज,
सूरत

पूर्व परिचय

भारतीय भाषाओंके इतिहासको देखनेसे प्रतीत होता है कि ईस्वी सनके दसवें शतकमें मथुरासे द्वारकातक एकही भाषा प्रचलित थी, जिसे भाषाविदोंने शौरसेनी अपभ्रंश कहा है। अपभ्रंश मध्यकालीन प्राकृतोंका अन्तिम रूप था। यही प्राकृत वैदिक एवं संस्कृत भाषा कालमें ब्राह्मणेतर लोक-समाजकी भाषा थी। गौतम बुद्ध और महावीर स्वामीने इसीमें अपने उपदेश देकर इसे साहित्यिक रूप प्रदान किया था। इनके द्वारा प्रयुक्त की गयी पाली और अर्धमागधी प्राकृतका प्राचीन रूप थी। इसप्रकार दसवीं शताब्दीतक भारतीय आर्यभाषाएँ इन दो प्रवाहोंमें विकसित होती रहीं। दसवीं सदीके अनन्तर कुछ कालके लिए दोनों प्रवाह एक हो गये और उसीसे आधुनिक आर्यभाषाओंका विकास प्रारम्भ हुआ। वर्तमान गुजराती, राजस्थानी तथा पश्चिमी हिन्दी का प्रारम्भ ११वीं सदीमें शौरसेनी अपभ्रंशसे हुआ। इसी लिए इन तीनोंके विद्वान् अपनी भाषाके प्राचीनतम उदाहरणके रूपमें निम्नलिखित एक ही पदको प्रस्तुत करते हैं :

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति;
अध्धा वलया महिहि गय अध्धा फुट्ट तडित्ति।

गुजराती भाषावैज्ञानिकोंके मतानुसार आचार्य हेम चन्द्र (सन् १०८८-११७२) से नरसिंह मेहता (सन् १४१४ से १४८०) तकका काल भाषा-विकासका काल रहा है। इन चार सदियोंमें गुजराती भाषा धीरे-धीरे अपभ्रंशसे मुक्त होती रही और पन्द्रहवीं सदीमें इसने अपना आधुनिक स्वरूप प्राप्त कर लिया। चार सदियोंके इस कालको गुजराती भाषाका 'प्राचीनकाल' कहा गया है और इस कालकी भाषा 'जूनी गुजराती' कहलायी है। कुछ इतिहासकारोंने इसे 'गुर्जर अपभ्रंश' नामभी दिया है। इस कालमें विरक्त जैन साधुओंके द्वारा रचा गया विभिन्न प्रकारका साहित्य उपलब्ध होता है। फागु, प्रबन्ध और वार्ता इस कालके प्रमुख साहित्य प्रकार हैं। फागु एक प्रकारका गेय-नृत्य-रूपक होता था, जिसमें वसंत क्रीड़ा, वर्षाचित्र, प्रकृति वर्णन, बारहमासा, प्रणय आदि विविध विषय रहते थे। इसे आधुनिक गरबा—गरबीका पूर्वज कहा गया है। इसी कालमें चरित्रात्मक और ऐतिहासिक कथावस्तुवाले प्रबन्ध काव्यभी लिखे गये। इनके लिए 'रास' या 'चरित्र' शब्दों का उपयोग हुआ है। वार्तामें सांसारिक रसकी काल्पनिक कथाका वर्णन रहता था। इसकी शैली भी प्रबन्धात्मक ही रहती थी। इस कालमें जैनेतर कवियोंकी कुछ रचनाएँभी देखने को मिलती हैं।

गुजराती-साहित्यके मध्यकालमें भक्तिका प्रवाह प्रबल रहा। इसमें निर्गुण और सगुण, दोनों प्रकारकी भक्ति रचनाएँ प्रचुर परिमाण में हुईं। रामायण, महाभारत और श्रीमद्-भागवतके भक्तिपोषक आख्यानोंको लेकर नरसिंह, भालण और मीरांने पन्द्रहवीं सदीमें भक्ति रचनाओंका प्रारम्भ किया। इस धाराको अनेक भक्त कवियोंने विकसित किया, जिनमें अखो या अक्षयदास, प्रेमानंद, शामलदास, दयाराम आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस कालमें यद्यपि भक्तिकी रचनाएँ ही प्रधान रहीं, पर साथही अन्य विषयोंसे सम्बन्धित कृतियाँ भी निरन्तर लिखी जाती रहीं। ऐसी कृतियोंमें 'कान्हड़दे प्रबन्ध', 'प्रबोध बत्रीशी', 'प्रबोध प्रकाश' इत्यादिके नाम ध्यातव्य हैं। गुजरातीका यह मध्यकाल साहित्यिक दृष्टिसे इसका सुवर्ण-युग कहा जा सकता है। काव्य-शैलीकी दृष्टिसे भी इस कालमें पर्याप्त विविधता देखी जाती है। गुजराती साहित्यके इतिहासमें प्रसिद्ध है, "नरसिंह नां प्रभातियां, मीरांनां पद, अखानी चौपाई, प्रेमानंदना आख्यान, शामलना छप्पा, धीरानी काफी, भोजाना चाबखा, वल्लभना गरबा अने दयारामनी गरबी" मध्यकालीन लोकप्रिय काव्य प्रकार हैं।

अंग्रेजोंके आगमनके साथही गुजराती साहित्यमें भी

आधुनिक युगका आरम्भ होता है। मध्यकालतकका लगभग सम्पूर्ण साहित्य पद्यबद्ध रहा है, किन्तु आधुनिक युगका प्रारम्भ गद्यसे हुआ। विषय, भाषा, शैली एवं विचारकी दृष्टिसे आधुनिक युगके वैतालिकके रूपमें वीर नर्मद (सन् १८३३ से १८८६) को स्मरण किया जाता है। नर्मदने ही सर्वप्रथम गुजराती भाषाको संवारकर आधुनिक युगके नवीन विचारोंको वहन करने योग्य बनाया। नर्मदसे कुछ पूर्व कवि दलपतरामने अपनी कविताओंमें नये विषयोंको ग्रहण कर लिया था, किन्तु भाषा-शैलीपर मध्यकालीन प्रभावोंके कारण वे समयके साथ नहीं चल सकीं। नर्मदने पद्य एवं गद्य, दोनोंको नया रूप प्रदान किया और साथही निबन्ध, नाटक, समालोचना, आत्मकथा, जीवनी, इतिहास, सम्पादन, संशोधन जैसे साहित्य प्रकारोंका प्रारम्भ करके गुजराती साहित्यके विकासको नयी दिशा प्रदान की। नर्मदके ही समकालीन और नर्मदनगरी सूरतके निवासी नन्दशंकरने सन् १८६६ में गुजरातीका प्रथम उपन्यास 'करणघेलो' की रचना की। इसी कालमें नवलरामने हास्य एवं ऐतिहासिक नाटकोंकी रचना करके साहित्यको समृद्ध किया।

उन्नीसवीं सदीका काल प्रधानतः सामाजिक सुधारके आन्दोलनोंका काल रहा है। सन् १८४२ में सूरतमें 'मानवधर्म सभा' नामसे एक समाज-सुधार संस्थाकी स्थापना की गयी। फिरतो इसके अनुकरणपर 'ज्ञानप्रचारक मण्डली', 'अन्योन्य बुद्धिवर्धक सभा', 'लिटररी सोसायटी' आदि स्थानिक संस्थाएँ कार्यरत बनीं। अखिल भारतीय संस्थाओंने भी अपने-अपने केन्द्र स्थापित किये, जिनमें प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, श्रेयस्साधक अधिकारी वर्ग और आर्यसमाज प्रमुख हैं। इन सभी संस्थाओंने गुजराती साहित्यको प्रभावित किया है और इनसे साहित्यको लाभ-हानि, दोनों हुए हैं। इन सब विचारधाराओंको आत्मसात करते हुए साहित्यकी धारा अखंड गतिसे प्रवाहित होती रही है। गुजराती-साहित्यके आधुनिक युगको इतिहासकार चार भागों में विभक्त करके देखते हैं: नर्मद युग, पंडितयुग, गांधीयुग और स्वातन्त्र्योत्तर युग।

नर्मद युग आधुनिककालका प्रारम्भिक समय होनेसे इसका साहित्य अपरिपक्व-सा प्रतीत होता है। इसका प्रधान स्वर समाज-सुधारका है। इस युगके साहित्यकार विविध सामाजिक-सुधारकी संस्थाओंसे संबद्ध थे, अतः उन्हींके विचारोंका प्रतिबिंब इस साहित्यमें पाया जाता है। मध्यकालीन धार्मिक साहित्यको इहलोकपरायण बनाकर समस्त साहित्यके प्रवाहको बदलनेका भगीरथ कार्य इस युगके साहित्यकारोंने किया। सन् १८८५ के लगभग यूनिवर्सिटियोंमें शिक्षाप्राप्त पण्डितोंने साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया। इन्होंने अंग्रेजी और संस्कृतका गहन अध्ययन किया था और ये प्राचीन भारतीय संस्कृतिसे अत्यन्त प्रभावित थे। इन पंडितोंके विचारोंमें पूर्व-पश्चिमका सुभग समन्वय था और इसीकारण पूर्वकालीन सामाजिक प्रवृत्तियाँ क्रियाके क्षेत्रसे विचारके क्षेत्रमें आकर संकुचित हो गयीं। नये-नये साहित्यिक प्रयोग हुए और साहित्यको समृद्ध बनानेके संनिष्ठ एवं सफल प्रयोग हुए। इस पंडितयुगके साहित्यकारोंमें बालाशंकर, मणिलाल, कलापी, नरसिंहराव, गोवर्धनराम, कान्त, नानालाल, खबरदार, बलवंतराम ठाकोर आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। इस युगमें सभी दृष्टियोंसे गुजराती साहित्यका अत्यधिक विकास हुआ।

सन् १९२० से ३० तकका दशक साहित्यिक दृष्टिसे मंदीका काल कहा जाता है, परन्तु इसके बाद सन् १९४७ तकका गांधीयुग साहित्यके विकासका युग है। इस बीचके दशकमें पण्डितयुग और गांधीयुगका मिश्र प्रभाव रहा। सन् ३० के बाद कन्हैयालाल मुंशी, रमणलाल देसाई, रामनारायण पाठक, मेघाणी, धूमकेतु, चन्द्रवदन मेहता, उमाशंकर जोशी, सुन्दरम, स्नेहरश्मि आदिने गांधीजीकी प्रगतिशील भावनाको साहित्यमें अद्भुत कलात्मक ढंगसे अभिव्यक्त किया। गांधीजीके प्रभावके कारण काल्पनिक वाणी विलासका स्थान शब्दसंयम, वस्तुदर्शिता एवं अर्थ-प्रधानताने ले लिया। कथ्यवस्तुकी सरलता, भाषाकी सार्थकता एवं लघुता गांधीयुगीन साहित्यकी विशेषता है। गांधीजीने इसी धरतीपर आत्मबल और श्रद्धाके द्वारा स्वर्गप्राप्तिका सहज मार्ग साहित्यकारोंको दिखलाया। पश्चिमके टॉलस्टाय, बर्नार्ड शॉ, इब्सन, वेल्स, मोपासां, चेखोव, ब्राउनिंग जैसे समर्थ साहित्यकारोंके प्रभावने गुजराती साहित्यको नयी प्रेरणा प्रदान की। इस युगके साहित्यमें नवीनता-प्रेम, विविध-शौक, यथार्थवादिताका मोह, परम्पराका विरोध, जीवनकी अभिमुखता, नयी दिशाओं की कल्पना तथा सौन्दर्य-राग देखनेको मिलता है। पाश्चात्य एवं अन्य भाषा-साहित्योंके संपर्कके कारण सभी साहित्य विधाओंका विकास हुआ। कविता स्पर्शक्षम और प्रयोगशील बनी, उपन्यास सुरुचिपूर्ण, विषय एवं शैलीकी दृष्टिसे वैविध्यपूर्ण बना, कहानीमें यथार्थ जीवनके साथ कलात्मक सामग्री आयी, नाटक और एकांकीने पाश्चात्य रंगको लेकर नवीन रूप धारण किया, निबन्धने गद्यमेंही कविताका-सा रूप प्राप्त कर लिया। लोकसाहित्यका पुनरुद्धार हुआ।

साहित्यमें मनोविज्ञानके प्रवेशके कारण जीवनके प्रति आस्था एवं अभिमुखता आ गयी। इसप्रकार इस युगके साहित्यमें सर्जकने अपने व्यक्तित्वकी अपेक्षा जन-आन्दोलनों को तथा गांधीप्रदत्त दृष्टिको अधिक महत्त्व दिया। इतनी भूमिकाके अनंतर अब अपने मूल विषयपर, प्रत्येक साहित्य-विधाको लेकर, विचार किया जायेगा।

कविता

गत पच्चीस वर्षोंमें गुजराती कविताने सबसे अधिक रूप-रंग बदले हैं। सन् ४० के लगभग साहित्यमें गांधी प्रभावका उतार प्रारम्भ हुआ। इस कालका साहित्य गांधी-रवीन्द्र-अरविन्दकी विचारधारासे आक्रान्त था। रवीन्द्रका प्रभाव इसके बादभी कुछ वर्षोंतक बना रहा। सन् १९४२ के आन्दोलनने और विशेषतः सन् ४७ के देशके बँटवारेने साहित्यकी दिशा ही बदल दी। कविता-विकासकी दृष्टिसे सन् ४१ से सन् ५१ तकके कालको 'अनुगांधीयुग' कहा गया है। इस युगका आरम्भ सन् ४० में प्रकाशित प्रह्लाद पारेखके '**बारी बहार**' कविता-संग्रहसे माना जाता है। इस संग्रहकी विशेषताओंका वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसमें तत्कालीन समाजाभिमुखताकी अनुपस्थिति है और गांधी-मार्क्सके उद्घोषोंका सर्वथा अभाव है। इसमें प्रचलित छन्दोंके स्थानपर श्लोकबंदका आग्रह रखा गया है तथा शब्दोंको कम से कम तोड़ा-मरोड़ा गया है। इसमें सबकुछ साफ़, स्वच्छ, सुघड़ एवं सहज है। इसकी कविता आँख, कान और नाककी कविता है अर्थात् इसमें इन्द्रिय ग्राह्यताका विशेष गुण है। कलाका प्रयोजनही अमूर्तके मूर्त्त-विधान द्वारा इन्द्रियके माध्यमसे अतिरिन्द्रियमें अमूर्त आनन्दके रूपमें प्रसर जाना है। इस संग्रह की अनेक कविताएँ वाणीके द्वारा प्रत्यक्ष भी हो सकी हैं। यथा—

अनंत महीं ऊडतो उपरणो रहे वायुनो,
अने कदीक मेघशंख धरी हाथ ए फूंकतो।

इसके पश्चात् कविता स्पष्टरूपेण दो भिन्न धाराओंमें प्रवाहित होने लगती है। एक ओर देश-कालके प्रभाववाली सामाजिक-समानतायुक्त धारा है तो दूसरी ओर समकालीन परिस्थितिके प्रति उदासीन किन्तु अन्तर्मुखी-आत्मलक्षिता-युक्त प्रवाह है। कभी-कभी किसी एकही कवितामें दोनों धाराओंका सुभग मिलन भी दिखायी दे जाता है। इन दोनों धाराओंके प्रतिनिधि कवि हैं, निरंजन भगत और राजेन्द्र शाह। प्रथममें सामाजिक समानता है और मानवके श्रेयका भी उसे ध्यान है। वे समाजके विविध प्रश्नोंकी चर्चा करते हैं तथा मानवकी व्यथा, मनोमंथन, अभिलाषा, आदर्श आदिको अभिव्यक्त करते हैं। अभिव्यक्तिकी सफाई और भावोंका संयम उनकी कविताके प्रधान लक्षण हैं। सन् १९४९ में प्रकाशित '**छंदोलय**' स्वातन्त्र्योत्तर कविताका पूर्वालाप है। इसकी कवितापर रवीन्द्र-गांधीकी अपेक्षा इलियट, एज़रा पाउण्ड, रिल्के और बोदलेरका अधिक प्रभाव है। गांधीयुगोत्तर कवितामें नगर सभ्यताकी नयी रीति सर्वप्रथम निरंजनकी कवितामें अभिव्यक्त हुई। आजका मानव अपनी आत्माको गँवा बैठा है, अतः अब उसे नये ढंग के अंक सिखाने चाहिये। जैसे—

एकडे एको
परमेश्वरने नामे प्हेलो मेलो मोटो छेको।

निरंजन छन्द, गान और लयमें कुशल हैं। सुगठित छन्द, ध्वनि एवं लयका इनकी कवितामें सुन्दर सामंजस्य पाया जाता है। प्रास तथा वर्णध्वनिका कौशल प्रशस्य है। इनके कुछ काव्यसंग्रह हैं, किन्नरी, अल्पविराम, ३३ काव्यो इत्यादि। प्रियकान्त मणियार इसी धाराके एक अन्य प्रमुख कवि हैं, जिनके काव्यसंग्रह प्रतीक, अशब्दरात्रि और स्पर्श प्रसिद्ध हैं। हसमुख पाठक तथा नलिन रावलभी इसी धाराके कवि हैं।

दूसरी धाराको हम 'सौन्दर्याभिमुख धारा' कह सकते हैं। सन् ५१ में प्रकाशित '**ध्वनि**' नामक राजेन्द्र शाहके काव्य-संग्रहसे इसका आरम्भ होता है। इसपर रवीन्द्रका अधिक प्रभाव है। गुजराती आलोचकोंने इन्हें 'सौन्दर्यलुब्धकवि' कहा है। भावोंकी मुग्धता और मसृणता, देशज छन्दों तथा रागोंकी लय-लीला, गम्भीर और छटादार आध्यात्मिक उद्गारोंके कारण यह कविता चित्तको प्रभावित कर लेती है। प्रकृतिके सुन्दर-चित्रात्मक वर्णनोंमें कविकी नाजुक संवेदनशीलता और सूक्ष्म निरीक्षण शक्तिके दर्शन होते हैं। राजेन्द्र नगर-कवि नहीं है और न ही आरण्यक-कवि है, वह तो जन-वनकी सीमाका कवि है। इनकी कवितामें ईश्वरीय लीलामें पाये जानेवाले वैविध्यपूर्ण एकत्वके दर्शन होते हैं :

हुं ज रहुं विलसी सहु संगे ने हुं ज रहुं अवशेषे।

'एक नो अनेकमां विलास अने अन्ते पाछुं एक' यह कवि की श्रद्धाका अर्क है। कविके प्रणय-गीतोंमें विफलताकी कराह नहीं है, किन्तु साफल्यकी कृतकृत्यता है। इन्होंने गीत, सोनेट, संवाद काव्य आदि विविध काव्य प्रकारोंका प्रयोग किया है। शब्द और अर्थका सहितत्त्व इन कविताओंमें संपूर्णतः सिद्ध हुआ है। इनके कुछ काव्य-संग्रहोंमें आन्दोलन, श्रुति, शान्त कोलाहल, विणादनो साद आदि उल्लेख-

नीय हैं। इस धाराके अन्य कवियोंमें पिनाकिन ठाकोर, गीता परीख, हरीन्द्र दवे तथा सुरेश दलालके नाम लिये जा सकते हैं। प्रथम धाराकी कवितामें जहाँ सामाजिक समानताके प्रत्याघातके कारण रोष, आक्रोश, व्यंग्य, परिहासादि भाव व्यक्त हुए हैं, वहाँ दूसरी धारामें आनन्द, उल्लास, आमोद तथा शमके भावोंकी प्रचुरता पायी जाती है।

इन दोनों धाराओंके अन्तरालमें चलनेवाले कवियोंमें उशनस्, बालमुकुन्द दवे, जयन्त पाठक, जशभाई पटेल आदि प्रमुख हैं। उशनसकी कवितामें नये प्रयोग या नयी शैली नहीं है, फिरभी उनकी कवितामें उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है, जिसमें कल्पनाकी विशालता, संवेदनकी तीव्रता, चित्रालेखनकी विपुलता, अभिव्यक्तिकी प्रौढ़ि आदि आकर्षक ढंगसे प्रस्तुत किये गये हैं। प्रसून, नेपथ्ये, मनोमुद्रा, आर्द्रा, **तृणनो ग्रह**, स्पंद अने छंद इत्यादि उनके कविता-संग्रह हैं। बालमुकुन्द दवे गांधीयुगके कवि हैं। उनपर गांधी विचार-धारा हावी है। उनका अनुभवक्षेत्र सीमित है। गीति रचनामें उनकी तुलना भक्तिकालीन कवियोंसे ही की जा सकती है। गज़ल और गीत लेखक वेणीभाई पुरोहित तथा करसनदास माणेक भी भजनिक ढंगके गांधीवादी कवि हैं। जयंत पाठक गांधीयुग और नवतरयुग के कवियोंके बीच सेतु समान हैं। इनकी कविता आरम्भसे ही मधुर तथा परिपक्व-सी प्रतीत होती है। इनमें प्राचीन और नवीनकी समतुला है। पुरातन गम्भीर गान तथा आधुनिकतम लय-लीलाका समन्वय इनकी विशेषता है। जशभाई पटेल, हसित बुच, हेमन्त देसाई और महंमद मंसूरी भी इसी कोटिके कवि हैं।

इस कालके क्रान्तिकारी कवियों में सुरेश जोशीका उल्लेख अनिवार्य है। सन् ५६ में '**उपजाति**' नामक काव्य-संग्रहके साथ उन्होंने इस क्षेत्रमें प्रवेश किया, किन्तु सन् ६१ में '**प्रत्यञ्चा**' के द्वारा अपने प्रथम-संग्रहको रद करनेकी घोषणा करके सबको आश्चर्यमें डाल दिया। वे रूढ़ि और परम्पराके विरोधी हैं। गतानुगतिकताको काहिलीपना मानते हैं और साहित्यमें नये-नये प्रयोगोंके आग्रही हैं। डॉ० सुरेश पाश्चात्य साहित्यके प्रखर अभ्यासी हैं और इसका स्पष्ट प्रभाव उनके साहित्यपर देखा जाता है। उनकी कविताकी तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं :(१) जागतिक वितृष्णा और निर्भ्रान्ति, (२) सुकुमार प्रकृति चित्रण, (३) शिशु सहज लीलामयता। वर्णिक-मात्रिकसे लेकर अछांदसतक उनकी समान गति है। गुजरातीकी नयी कविताकी विभावनाको समझनेके लिए उनकी कविता सर्वाधिक उपयोगी है। आधुनिकतम कालमें एक और पुराने सुप्रतिष्ठित कवि उमाशंकर, सुन्दरम, स्नेहरश्मि आदि कार्यरत हैं, तो साथही नयी पीढ़ी अपने युगकी नवीनतम विभावनाओंको लेकर अपना मार्ग खोजनेमें लगी हुई है। अरविन्द दर्शन, भूदान प्रवृत्ति, उच्च जीवनमूल्यकी श्रद्धा इत्यादि अब भूतकालकी बातें हो गयी हैं। युद्धोत्तर यूरोप-अमरीको कविताका प्रभाव सविशेष दिखायी दे रहा है। इसके कारण कविता अधिक शुद्ध एवं वैयक्तिक चेतना-संपन्न बन गयी है। वर्तमान कवितामें अनेक निषिद्ध बातोंका वर्णन होने लगा है और श्लील-अश्लीलका भेद दूर हो गया है। प्रकाशन रूपके नये-नये प्रयोग, प्रतिसम्यता तथा प्रति-संस्कृतिके प्रबल संस्कार कवितामें व्यक्त हो रहे हैं। फ्रेंच प्रतीकवाद, जापानी हायकू, अस्तित्ववाद, परावास्तववाद, लिंगवाद आदि इसके प्रधान लक्षण हैं। कविताके लिए कुछ भी हेय नहीं है, यह मानकर कवि स्वच्छन्द बनता जा रहा है। नयी कविताके प्रचारार्थ 'कविता', 'कविलोक', 'कृति', 'ड्राउँ ड्राउँ', 'या होम', 'रे' आदि अनेक पत्रिकाएँ प्रकट हो रही हैं। नयी कविताके उन्नायकोंमें गुलाम मोहम्मद शेख, चीनु मोदी, आदिल मन्सूरी, मनहर मोदी, मनोज खंडेरिया, रमेश पारेख, मणिलाल देसाई, राजेन्द्र शुक्ल, दिनेश कोठारी, महेश दवे, भूपेश अध्वर्यु इत्यादिके नाम उल्लेखनीय हैं। इस नयी कविताने शब्दानुगत आत्मचेतनाका इन्द्रियकरण करके कृतिनिष्ठ शुद्धताकी तथा भावककी विशेष सज्जताकी अपेक्षा प्रस्थापित की है। गुजरातीके अनेक कवियोंने गज़लको भी पुनः जीवित किया है और यह प्रवृत्तिभी आजकल प्रबल हो रही है।

उपन्यास

सन् १८८६ से प्रारम्भ हुए समस्त गुजराती उपन्यासको विषयवस्तुकी दृष्टि से तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। ऐतिहासिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक। आधुनिक समस्याओंका हल खोजनेमें इतिहास सहायक होता है और साथही इतिहासरसके कारण वह कथारसको अधिक पुष्ट भी करता है। गुजरातीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंका परिमाण सबसे अधिक है। गोवर्धनराम त्रिपाठीने '**सरस्वती-चन्द्र**' के द्वारा सामाजिक उपन्यासकी भूमि तैयार की। फिरतो इसमें ग्राम्य समाज और नगर समाजके विभाग हो गये तथा दोनोंही धाराओंपर प्रचुर परिमाणमें उपन्यास लिखे गये। जयंति दलालने मनोवैज्ञानिक उपन्यासका प्रारम्भ करके एक नयी दिशाका संकेत किया। इसका भी विविध प्रकारसे विकास होता रहा है। वर्तमान उपन्यास व्यक्तिप्रधान हैं। आजके उपन्यासकारके सामने वह

पुराना रूढ़िचुस्त समाज नहीं रहा है। उसे आर्थिक और नैतिक प्रश्नोंमें भी रस नहीं रहा है। उसके सामने विद्यमान है केवल मानसनियति और यन्त्रविज्ञान। समाजसे मुक्त होकर मानव यन्त्रविज्ञानसे बँध गया है। आजके उपन्यास-कारको विचार-स्वातन्त्र्य तो प्राप्त हो गया है, पर उसकी वैचारिक शक्ति ही क्षीण हो गयी है, इसलिए बाहरसे आने वाले विचारोंको अपनाकर ही वह मन मना रहा है।

गुजराती-उपन्यास-साहित्यमें सरस्वतीचन्द्र (१९०१), पाटणनी प्रभुता (१९१६), ग्रामलक्ष्मी (१९३३), मान-वीनी भवाई, जनमटीप, दीपनिर्वाण (१९४४), व्याजनो-वारस (१९४६) सीमास्तंभ रूप उपन्यास हैं। इनमेंसे प्रत्येकका अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, अतः इनकी तुलना सम्भव नहीं है। उपन्यास-साहित्यका विकास अत्यन्त द्रुतगतिसे हो रहा है। प्रतिदिन नये-नये उपन्यास प्रकाशमें आ रहे हैं, किन्तु इनमेंसे कितने चिरंजीवी होंगे, यह कह सकना सम्भव नहीं है। हमारे आलोच्यकालमें एक ओर दर्शक, पन्नालाल, पेटलीकर, स्नेहरश्मि, पीताम्बर पटेल जैसे पीढ़ और प्रतिष्ठित लेखक अपनी कलम चला रहे हैं, तो दूसरी ओर नये लेखकोंमें शिवकुमार जोशी, सांरगबारोट, चन्द्रकान्त बक्षी, सुरेश जोशी, हरीन्द्र दवे, भगवतीकुमार शर्मा, चंदुलाल सेलारका, रघुवीर चौधरी, राधेश्याम शर्मा, धीरुबहन पटेल, सरोज पाठक, कुन्दनिका कापड़िया, इला मेहता, मोहम्मद मांकड आदि अपनी रचनाओंसे साहित्यको समृद्ध करनेमें लगे हुए हैं। कविता और कहानीकी भाँति उपन्यासका स्वरूप भी बदल गया है। दूसरे विश्वयुद्धके बाद मानवको यह ज्ञात होने लगा है कि वह आजभी अपनी पशुताको छोड़कर आगे नहीं बढ़ पाया है। उसका संस्कारी रूप केवल छलना है। भौतिक सुखोंके लिए बनाये गये उसके शस्त्र आज उसीका विनाश कर रहे हैं। विज्ञानकी अभिवृद्धिने जीवनको शुष्क, उत्साहहीन तथा भावशून्य बना दिया है। यूरोपमें सार्त्र, काम्, काफ्का और जेम्स जोयस जैसे उपन्यासकारोंने मानवके इस छिन्न-भिन्न रूपको कला-त्मक ढंगसे उभारा है। आधुनिक गुजराती-उपन्यासपर इन्हींका प्रभाव है। वस्तुके स्थानपर उसकी निरूपण पद्धतिको महत्त्व दिया गया है। रचनाकी सफलता-अस-फलताका मानदंड उसमेंसे निरूपित होनेवाली सुरेख कला-मय आकृति है। घटना या प्रसंग गौण हैं, परन्तु पात्रके मनोव्यापारके निरूपणका आग्रह इनका प्रधान लक्षण है। इसीलिए एक सामान्य व्यक्तिभी अपने समस्त गुण-दोषोंके साथ आजके उपन्यासका नायक बन सका है। व्यक्तिकी मानसिक लीलाओंको अभिव्यक्त करनेके लिए तथा स्थूल घटनाओंसे बचनेके लिए उपन्यासकार नये-नये प्रतीकोंका प्रयोग करने लगा है। इन विशेषताओंवाले कुछ उपन्यास हैं—**छिन्नपत्र**, पूर्वराग, **अमृता**, आकार, आवरण, एकलव्य, तेड़ागर, चहेरो इत्यादि।

समसामयिक उपन्यास अपने परिमाणकी लघुताके कारण कहानीके समीप आ गये हैं। लम्बे-लम्बे दीर्घकाय उपन्यास अब जनताकी रुचिके विषय नहीं रहे हैं। गुजराती में विदुला, अस्ती, फेरो, पूर्वराग आदि लघुकाय सफल उपन्यास हैं। इनमें प्रयुक्त नये-नये प्रयोगोंने भी पाठक एवं आलोचकका ध्यान आकर्षित किया है। गद्य-भाषाको वर्तमान उपन्यासने एक नया रूप प्रदान किया है, जिसमें आंचलिकताके कारण लोक-बोलीके नये शब्द प्रयुक्त हुए हैं और भाषा सशक्त बन गयी है। मनोवैज्ञानिकता, आंच-लिकता एवं यथार्थवादिता आजके उपन्यासोंके प्रधान लक्षण हैं। आदर्शवादियोंको इसमें अश्लीलताका भी दर्शन हो सकता है, फिरभी ये जीवनके अधिक निकट आये हैं। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि वर्तमानकालीन उपन्यासकार समानतासे भाषाका प्रयोग कर रहा है और नये शिल्पके साथ भाषाकीय ताज़गी प्राप्त करनेमें सफल रहा है।

कहानी

पश्चिमके प्रभावसे कहानीके आधुनिक कला-प्रकारका प्रारम्भ बीसवीं सदीके प्रारम्भमें हुआ। इस साहित्य विधाने अत्यंत तेजीके साथ विकास किया है और मलयानिल, धन-सुखलाल मेहता, कन्हैयालाल मुंशी, धूमकेतु, द्विरेफ, मेघाणी, स्नेहरश्मि, सुन्दरम, पन्नालाल, पेटलीकर, चुनीलाल मड़िया, सारंग बारोट इत्यादि कहानीकारोंने समय-समयपर इसे विविध रूप प्रदान किये हैं। धनसुखलाल और मुंशीकी कहानियोंमें कटाक्ष, उपहास तथा प्रणालिका भंगकी विशि-ष्टता देखी जाती है तो धूमकेतुकी कहानियोंमें अनुभूतिकी तीव्रता है। पन्नालाल और पेटलीकर ग्राम्यजीवनके चितेरे हैं, चुनीलाल मड़ियाने नागरिक जीवनको अपनी कहानीका केन्द्र बनाया है। मेघाणीने सौराष्ट्रकी वीरताका वर्णन किया है तो द्विरेफने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखकर कथा-साहित्यको संपन्न बनाया है। सन् १९५४ तक का कहानी-साहित्य एक सीधे-सरल मार्गपर चलता रहा। प्रायः सभी कहानीकार एकही दिशामें गति करते रहे और यथासमय माइल-स्टोन स्थापित करते हुए आगे बढ़ते रहे, किन्तु कहानीकी गति एकमार्गीय ही रही।

सन् ५४ में सुरेश जोशीने अपने कहानी-संग्रह 'गृह-

प्रवेश' के द्वारा एक नवीन प्रयोग प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी कहानियोंमें घटनातत्त्वका लोप करके अथवा उसे नामशेष रखकर एक नये स्वरूपमें अभिव्यक्त किया। इनमें नये प्रतीक, अभिव्यक्तिका नया प्रकार, मानस-मनकी यथार्थ भावना आदि प्रथम बार वर्णित हुईं। अद्यावधि साहित्यमें जो अग्राह्य माना जाता था, वह नये-नये प्रतीकों के द्वारा व्यक्त किया गया। चूहा, खून, पीप, राक्षस, बिल, उल्लू, मकड़ी, शव, साँप इत्यादि प्रतीकोंके स्वरूप कहानीमें प्रथम बार प्रविष्ट हुए। इनमें घटनालोपको देखकर एक आलोचकने तो इन्हें कहानीके स्थानपर 'गद्यमें प्रवाहित कविता' कहना ही अधिक उचित माना है। पुरानी कहानियोंमें वस्तु, घटना तथा रहस्यका महत्त्व रहता था, जबकि इन नयी कहानियोंकी निरूपण शैली पाठकका ध्यान आकर्षित करती है। सुरेश जोशीका अनुकरण करते हुए चन्द्रकान्त बक्षी, मधुराय, शिवकुमार जोशी, गुलाबदास ब्रोकर आदिने भी नयी शैलीकी कहानीपर अपनी कलम चलायी और गुजराती कहानीको एक नये धरातलपर लाकर खड़ा कर दिया।

स्वातन्त्र्योत्तर कालके प्रारम्भिक वर्षोंमें कहानी-साहित्य भी दो प्रवाहोंमें विभक्त हो गया था। एक ओर घटनाका लोप करके मानव-मनकी तरंगोंका चित्रण करते हुए कहानी को सिद्ध करनेका प्रयास किया जाता था, तो दूसरी ओर घटनाका आश्रय लेकर उसके पीछे कार्यरत मनकी गतिविधि की ओर उँगली निर्देश करके कहानी साधनेका प्रयास होता था। प्रथम प्रवाहके कहानीकारोंमें उपर्युक्त लेखकोंके साथ-साथ राधेश्याम शर्मा, प्रबोध परीख, किशोर जादव, अब्दुल करीम शेख, इवाडेव, मोहम्मद मांकड, रघुवीर चौधरी, सरोज पाठक, सुधीर दलाल, अभेसिंह परमार आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। अपने आसपास प्रसृत जीवन की यथार्थ समस्याओंका चित्रण करके इनके द्वारा मनपर पड़नेवाले प्रभावोंका वर्णन करनेमें इन कहानीकारोंको पूर्ण सफलता मिली है। दूसरे प्रवाहको गति देनेवाले कहानीकारोंमें अधिकांश स्वातन्त्र्यपूर्व कालसे ही इस क्षेत्रमें प्रतिष्ठित हैं। वे अबभी कहानीमें घटनातत्त्वको अनिवार्य मानते हैं।

कुछ कहानीकारोंकी मान्यता है कि महान् कलाकृतियोंमें अमूर्तकला और सररियलके तत्त्व अनिवार्य रूपसे विद्यमान रहते हैं। इधर इसी सररियलके नामपर कहानीमें नग्नतावादका प्रवेशभी कुछ अधिक परिमाणमें ही होने लगा है। पाश्चात्य विचारोंके अनुकरणके कारण आजकी कहानीमें अस्तित्ववाद और अतियथार्थवादका प्रभावभी स्पष्ट रूपसे देखा जाता है। वस्तुतः कहानी एक स्वतन्त्र कला है और इसे किसी व्याख्याके द्वारा सीमित कर सकना सम्भव नहीं है। यह आरम्भसे ही स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द रूपसे विकसित होती रही है। वर्तमान सदीके प्रथम पाँच दशकतक यह घटनाके बंधनमें बँधी रही, तो अब उस बंधनसे मुक्त होकर एक प्रकारकी विशिष्ट शैलीके बंधनको ले बैठी है। इसने प्रतीकोंके बंधनको भी स्वेच्छासे ग्रहण कर लिया है। भविष्यमें अब यह कौन-सा बंधन स्वीकारेगी, यह कह सकना सम्भव नहीं है। हमारे आलोच्यकालके कुछ विशिष्ट कहानी-संग्रह निम्नलिखित कहे जा सकते हैं—'रात अंधारी' शिवकुमार जोशी, 'माणसनुं मन' गुलाबदास ब्रोकर, '**हीरानां लटकणियां** स्नेहरश्मि, '**अपि च**' सुरेश जोशी, '**बांशी नामनी एक छोकरी**' मधुराय।

नाटक और एकांकी

गुजराती-साहित्यमें कविता, उपन्यास और कहानीकी तुलनामें नाटकका विकास संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। गुजरातीमें नाटकोंका प्रारम्भ पारसी विद्वानोंके द्वारा किया गया था। अंग्रेजी-नाटकोंसे प्रभावित होकर इन्होंने अपनी गुजरातीमें कुछ नाटकोंकी रचना की थी। सन् १८५० से १९०० तक गुजरातीके प्रायः सभी नाटक रंगभूमिको ध्यानमें रखकर ही लिखे गये थे। बीसवीं सदीके प्रारम्भके दो दशकका काल नाट्य-साहित्यकी दृष्टिसे अन्धकारका काल था। सन् १९२० के बाद नानालाल, चन्द्रवदन मेहता और कन्हैयालाल मुंशीने उच्चकोटिके नाटक लिखकर नाट्य साहित्यको उन्नत बनानेका सफल प्रयत्न किया। इनसे पहलेके नाटकोंमें 'कान्ता', 'राइनो पर्वत' तथा 'गुरु गोविन्दसिंह' जैसे बहुत थोड़े नाटक साहित्यिक क्षमतावाले कहे जाते थे। नानालालने अनेक नाटक लिखे, जिनमें उनका '**जया जयंत**' श्रेष्ठ माना गया है। चन्द्रवदन मेहताके '**रेलगाड़ी**' और मुंशीके '**काकानीशशी**' ने विशेष लोकादर प्राप्त किया था। तत्पश्चात् अनेक नाट्यकारोंने कुछ उत्तम नाटकोंकी रचना करके नाट्य साहित्यको समृद्ध किया। यशवंत पंड्या, उमाशंकर जोशी, कृष्णलाल श्रीधराणी और जयंती दलाल पूर्व स्वातन्त्र्य कालके नाट्यकार हैं। स्वातन्त्र्योत्तर कालमें भी इनमेंसे कुछ नाट्यकार सक्रिय रहे हैं और अन्य कुछ नये नाट्य लेखकभी इस क्षेत्रमें आये हैं।

गुजराती नाटक प्रारम्भसे ही व्यावसायिक और अव्यावसायिक नामसे दो भागोंमें विभक्त रहे हैं। गत पच्चीस वर्षोंमें भी नाटकके ये दोनों प्रवाह समान गतिसे प्रवाहित

होते रहे हैं। इस कालके नाट्यकारोंमें चुनीलाल मड़िया, शिवकुमार जोशी, यशोधर मेहता, गुलाबदास ब्रोकर, नंदकुमार पाठक, वजुभाई टांक, अनन्त आचार्य, प्रागजी डोसा आदि नये नाट्यकारोंके साथ-साथ चन्द्रवदन मेहता, धनसुखलाल श्रौर श्रीधराणीने भी उत्तम नाटकोंकी रचना की है। चन्द्रवदन मेहताने दोनों प्रकारके नाटक लिखे हैं। उनके नाटकोंमें कटाक्ष श्रौर हास्यका सूक्ष्म प्रवाह रहता है। गुजराती भाषाके बोलचालके स्वरूपकी विविध लाक्षणिकताश्रोंका प्रयोग करनेमें वे सिद्धहस्त हैं। धनसुखलाल मेहताने अपने **'धूम्र-सेर'** नाटकमें वस्तु-संकलनका विशिष्ट प्रयोग किया है। शिवकुमार जोशी इस कालके सबसे अधिक सफल नाटककार हैं। उन्होंने अनेक सामाजिक नाटकोंकी रचना की है, जिनमें 'सुमंगला', 'कृत्तिवास', **'सुवर्णरेखा'**, 'संधिकाल', 'कहत कबीरा' आदिके नाम उल्लेख्य हैं। बाहरसे सुखी दिखायी देनेवाले कुटुंबोंकी छिपी हुई ट्रेजेडीका सूक्ष्म निरूपण करना, इनके नाटकोंका मुख्य विषय है। नन्दकुमार पाठकके **'पारकी जणी'** में परिस्थितिजन्य हास्य है तो मड़ियाके **'हुं ने मारी वहु'** में तीव्र कटाक्षका सुन्दर प्रयोग देखा जाता है। श्रीधराणी लिखित **'मोरनां इडां'** तथा रघुवीर चौधरीके द्वारा लिखे गये 'झूलता मीनार' श्रौर 'अशोकवन' भी आलोच्यकालके उत्तम नाटक हैं। प्रागजी डोसा, वजुभाई टाँक श्रौर अनन्त आचार्य प्रधानतः रंगभूमिके नाट्यकार हैं श्रौर उसीको ध्यानमें रखकर नाटक लिखते हैं। अन्य नाट्यकारोंने भी अपनी रचनाश्रोंमें रंग प्रयोग सम्बन्धी सूचनाएँ यथास्थान दी हैं, किन्तु अभी साहित्यिक नाटकोंको रंगमंचपर देखने योग्य प्रेक्षकगण तैयार करने हैं। इस कालमें रंगभूमिका भी अच्छा विकास हुआ है श्रौर अनेक नगरोंमें स्थायी रंगमंच बन गये हैं। सभी बड़े-बड़े नगरोंमें अव्यवसायी रंगभूमिके नामसे विविध मण्डल नये-नये प्रयोग करते रहते हैं। अभी इस क्षेत्रमें विकासके लिए पर्याप्त अवकाश है।

नाटकके अभावको **एकांकीने** कुछ श्रंशमें दूर किया है। एकांकीका स्वरूप श्रंग्रेजीके one-act-play के आधारपर गठित हुआ है। इसमें जिज्ञासा प्रेरक प्रारम्भ, श्रंतिम लक्ष्यकी श्रोर वेगके साथ गति करती हुई कथावस्तु, एकही घटना-पात्र या रसकी अभिव्यक्ति, उत्कट आंतर-बाह्य संघर्ष, स्वाभाविक एवं सचोट संवाद, स्थल-काल श्रौर वातावरणका मूर्त तथा इन्द्रियग्राह्य निरूपण, अकल्प्य-चमत्कारपूर्ण फिरभी यथार्थवादी अन्त इत्यादि इसके प्रधान लक्षण हैं। गुजरातीमें इसप्रकारके एकांकियोंका आरम्भ (सन् १९२२ में) करनेका श्रेय बटुभाई उमरवाडियाको दिया जाता है। उनके अनेक एकांकी-संग्रह उपलब्ध हैं। कथा-वस्तुके लिए उन्होंने अत्यंत विशाल क्षेत्र पसंद किया था श्रौर प्रेम-वासना, नर-नारीके यौन-सम्बन्ध, स्त्री स्वातंत्र्य, मानसिक ग्रंथियाँ, कला-महिमा इत्यादिका गम्भीर एवं सुन्दर निरूपण किया। उनके समकालीन एकांकीकारोंमें यशवंत पंड्या, प्राणजीवन पाठक, उमाशंकर जोशी, कृष्णलाल श्रीधराणी, इन्दुलाल गांधी, चन्द्रवदन मेहता, जयन्ति दलाल, धनसुखलाल मेहता आदिके नाम लिये जा सकते हैं। इन सबने गंभीर तथा हास्य-व्यंग्यात्मक एवं रेडियो-नाटक लिखकर साहित्यके भण्डारको समृद्ध किया है।

स्वातन्त्र्योत्तरकालमें एकांकियोंकी रचना प्रचुर परिमाणमें हुई है, फिरभी यह एक आश्चर्यका विषय है कि गत पच्चीस वर्षोंमें एकांकीकी रचनामें विषयवस्तु या शैलीकी दृष्टिसे कोई परिवर्तन नहीं आया है। एकांकी विधा परंपरागत रूपमें ही चल रही है। पूर्व स्वातन्त्र्यकालमें उमाशंकर जोशीका **'सापना भारा'** श्रेष्ठ एकांकी-संग्रह था तथा अन्य एकांकी भी उत्तमकोटिमें रखे जाने योग्य थे। जयन्ति दलालके एकांकियोंने विशेष लोकादर प्राप्त किया था। वर्तमानकालमें चुनीलाल मड़िया, शिवकुमार जोशी, यशोधर मेहता, गुलाबदास ब्रोकर, नंदकुमार पाठक, पुष्कर चंदरवाकर, अदी मर्ज़बान, फिरोज़ आंटिया, प्रबोध जोशी इत्यादि एकांकीकारोंने सुन्दर नाट्य रचनाकी है। चुनीलाल मड़ियाका **'रंगदा'** आलोच्यकालका श्रेष्ठ संग्रह कहा जा सकता है। ग्राम-जीवनविषयक कृतियोंमें उन्हें अच्छी सफलता मिली है। शिवकुमार जोशी तथा ब्रोकर नागरिक जीवनको सरल श्रौर हास्यात्मक शैलीमें चित्रित करते हैं। यशोधर मेहता श्रौर नंदकुमारने गंभीर एवं सांस्कृतिक विषयोंपर अपनी लेखनी चलायी है। पुष्कर चंदरवाकर सौराष्ट्रकी संस्कृतिको उजागर करनेमें विशेष सफल रहे हैं। अदी मर्ज़बान श्रौर फिरोज़ आंटिया पारसी जगतको ध्यानमें रखकर हलके-फुलके हास्यप्रधान नाटकोंकी रचना करते हैं। प्रबोध जोशीके नाटकोंमें दैनिक कार्योंमें होनेवाली छोटी-छोटी भूलोंको दिखाकर हास्य उत्पन्न करनेका सफल प्रयास किया गया है। सन् १९६५ के बाद कुछ **एब्सर्ड नाटकों** की भी रचना होने लगी है। इनमें कुछ बड़े नाटक श्रौर अधिकांश एकांकी ही पाये जाते हैं। इनपर पश्चिमी नाटककारोंका स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। आदिल मन्सूरीका **'हाथपग बंधायेलाछे'** (सन् १९७०) नामक एकांकी-संग्रह इस कोटिका उत्तम संग्रह कहा गया है।

अन्य नाटककारोंमें चीनु मोदी, मधु कोठारी तथा किरीट वैद्यके नाम लिये जाते हैं। इन एब्सर्ड नाटकोंके प्रयोग रंगभूमिपर भी बड़ी सफलतासे हो रहे हैं। रेडियोकी लोकप्रियताकी अभिवृद्धिके साथ रेडियो नाटक, एकांकी, फीचर आदिकी रचनाभी बड़े परिमाणमें होने लगी है, फिर भी इस क्षेत्रमें अभी बहुत कुछ करना शेष है।

निबन्ध-आलोचना

समस्त साहित्य-विधाओंमें गुजराती-साहित्यकारोंने निबंधकी ओर सबसे अधिक उदासीनता दिखायी प्रतीत होती है। आधुनिक युगके प्रारंभिक कालमें और पंडितयुगमें भी निबंधोंकी प्रचुर मात्रामें रचनाएँ हुईं। नर्मदसे लेकर बलवंतराय ठाकोरतक सभी साहित्यकारोंने निबन्ध लिखनेमें पर्याप्त उत्साह दिखाया है। गांधीजीके आगमनके साथ अन्य साहित्य विधाओंकी भाँति निबन्धमें भी सरलता और सादगीने प्रवेश किया। उन्होंने स्वयं अपने पत्रोंमें स्पष्ट विचारोंवाले आडंबरहीन तथा व्यक्तित्वकी संपूर्ण छापवाले निबंध लिखे। गांधीयुगके अन्य निबंधकारोंमें किशोरलाल मशरूवाला, काका कालेलकर, कन्हैयालाल मुंशी, रामनारायण पाठक, विजयराय वैद्य तथा विष्णुप्रसाद त्रिवेदीके नाम लिये जाते हैं। इन सबने समाचारपत्रोंमें तथा स्वतंत्र पुस्तकोंके रूपमें निबन्ध-साहित्यकी अभिवृद्धि की है। इनके अतिरिक्त समसामयिक विषयोंपर समाचारपत्रोंमें समय-समयपर निबंध लिखनेवालोंमें ज्योतीन्द्र दवे, गगनविहारी मेहता, लीलावती मुंशी, विनोदिनी नीलकंठ, उमाशंकर जोशी और बकुल त्रिपाठीके नामभी उल्लेखनीय हैं।

स्वातन्त्र्योत्तरकालमें निबन्ध रचनाकी ओर लेखकोंका ध्यान अधिक नहीं रहा है, फिरभी कुछ उच्चकोटिके निबंध लिखे गये हैं। इस कालमें सुरेश जोशी, स्वामी आनंद तथा उमाशंकर जोशीने अपने उत्तम निबन्धोंमें गद्यकाव्यात्मक भाषा-शैलीका प्रयोग करते हुए अपने व्यक्तित्वकी लाक्षणिकता दिखायी है। पेटलीकर, दर्शक, किसनसिंह चावड़ा तथा काका कालेलकरके निबंधोंमें चिंतनात्मकताका परिमाण पर्याप्त रूपमें पाया जाता है। उमाशंकरका **'गोष्ठी'**, विजयराय वैद्यका **'नाजुक सवारी'**, बकुल त्रिपाठीका **'सचराचर'** इत्यादि इस कालके विशिष्ट निबंध-संग्रह हैं। गुजरातीमें हास्यरसका साहित्य भी अधिक मात्रामें रचा गया है। चिनुभाई पटवा, मधुसूदन पारेख 'प्रियदर्शी', परमसुख पंड्या, ज्योतीन्द्र दवे, धनसुखलाल मेहता आदिने हास्य और विनोदमय ललित निबंधोंके द्वारा साहित्यका विकास किया है। चन्द्रवदन मेहताके आत्मकथनात्मक निबंध **'बांध गठरिया'** को एक श्रेष्ठकोटिका संग्रह कहा जा सकता है। इनके साथ-साथ साहित्यिक-विवेचनात्मक निबंधोंकी रचनाभी निरंतर हो रही है।

सन् १८५८ में नर्मद द्वारा लिखे गये 'कवि और कविता' निबंधसे गुजराती **आलोचना** का प्रारंभ माना गया है। नर्मदयुगमें अधिकांश प्रशंसात्मक आलोचनाएँ हुईं। पंडितयुगमें तर्कप्रधान समालोचना होती रही। रमणभाई नीलकंठ, आनन्दशंकर ध्रुव, बलवंतराय ठाकोर जैसे आलोचकोंको पाकर गुजराती साहित्य कृतकृत्य हो गया। गांधीयुगमें भी रामनारायण पाठक, विजयराय वैद्य, विश्वनाथ भट्ट और विष्णुप्रसाद त्रिवेदीने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्रका गहन अध्ययन करके आलोचनाके क्षेत्रमें अनेक नये विचार प्रस्थापित किये। सन् १९५० तकका विवेचन विशेषतः समाजाभिमुख था, किन्तु उसके बादका आलोचनाका स्वर कुछ बदला हुआ-सा प्रतीत होता है। साहित्य का समाजके साथ सम्बन्ध टूटता हुआ-सा प्रतीत होने लगा। उमाशंकर जोशीके 'अभिरुचि' आलोचना ग्रंथसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वातन्त्र्योत्तरकालके आलोचना साहित्य पर केवल संस्कृत और अंग्रेजीका ही प्रभाव नहीं है, किन्तु वह विश्व साहित्यके समस्त प्रवाहोंको आत्मसात् करके विकसित हो रहा है।

गत पच्चीस वर्षोंके आलोचना साहित्यमें उमाशंकर जोशी, मनसुखलाल झवेरी, सुन्दरम्, अनन्तराय रावल और सुरेश जोशीकी देन विशेष स्मरणीय है। उमाशंकरकी आलोचना प्रवृत्ति अनेकरंगी है। अखो, शाकुन्तल और उत्तररामचरितकी आलोचनामें वे एक तलस्पर्शी विद्वान् और रसज्ञ समालोचक प्रतीत होते हैं तो उपन्यासोंकी समीक्षामें वस्तुलक्षी विश्लेषक बन जाते हैं। उनके अनेक समीक्षाग्रंथ प्रकट हो चुके हैं। मनसुखलाल और अनन्तराय छात्रोपयोगी सद्योगम्य सर्वांगी समीक्षा करते हैं। मनसुखलालकी समीक्षामें विषयवस्तुकी सूक्ष्मता देखनेको मिलती है तो अनंतरायमें ऐतिहासिक दृष्टिकी विशेषता है। वे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें वस्तुको देखकर उसका मूल्यांकन करते हैं। सुन्दरमने **'अर्वाचीन कविता'** में एक सदीकी गुजराती कविताकी समालोचना करते हुए कवि और उनकी कृतियोंकी विशेषता दिखायी है। आलोच्यकालके क्रांतिकारी समालोचक सुरेश जोशी हैं। बीसवीं सदीके दो महायुद्धोंने मानवमूल्योंको छिन्न-भिन्न कर दिया है, यान्त्रिकीके विकासने मानव-सम्बन्धोंको परिवर्तित कर दिया, मनोविज्ञानके विकास

ने मानवमनके अगोचर प्रदेशोंको खोलकर दिखा दिया, जीवन और विज्ञानके इन नये संदर्भोंने कला और साहित्यके रूढ़ विचारों तथा चुस्त वर्गीकरणोंको तोड़-फोड़कर अलग कर दिया है। सुरेश जोशीने इन आन्दोलनोंको आत्मसात् करते हुए गुजराती साहित्य और समालोचनाको नयी दिशा दिखानेका पुण्यकार्य किया है। परंपरागत आलोचनामें हम किसी कृतिकी वस्तु, भाव और रसको देखकर उसका मूल्यांकन करते हैं। इसमें संक्रमण व्यापारको स्वाभाविक माना जाता है और रूपनिर्मितिको संक्रमणका माध्यम माना जाता है। संक्रमणके लिए साधारणीकरणकी अपेक्षा रहती है। किन्तु नव्य आलोचनाके अनुसार कलाकृति या साहित्यकृति एक संरचना, एक आकृति अथवा रूपनिर्मिति मात्र है। जिसप्रकार अग्निशिखाके रूपमें घी, बत्ती (रुईकी वर्तिका) आदि सामग्री अवशिष्ट रहे, यही इष्ट स्थिति है उसीप्रकार आकार रूपमें ही कलाके उपादान अवशिष्ट रहें, यह इच्छनीय है। अपने इन क्रांतिकारी विचारोंको डॉ० जोशीने अपने ग्रंथोंमें अभिव्यक्त किया है। अपनी कहानियों, उपन्यासों, कविताओं, संपादनों आदिके द्वाराभी उन्हें स्पष्ट किया है। समालोचना सम्बन्धी अपने विचारोंको व्यक्त करनेके लिए 'किंचित्', '**कथोपकथन**', '**काव्यचर्चा**', 'शृण्वन्तु', 'गुजराती कवितानो आस्वाद' आदि अनेक पुस्तकोंकी रचना की है। इनके साथ ही प्रो०अनिरुद्ध ब्रह्मभट्ट और डॉ०हरिवल्लभ भायाणीने भी नव्य आलोचनापर अनेक लेखादि लिखे हैं। इस नव्य आलोचनाके सम्बन्धमें एक गुजराती विद्वान्‌का कथन है कि प्राचीन आलोचना कृतिको देखकर की जाती थी, जबकि नव्य आलोचनामें प्रथम विवेचनके सिद्धान्त नियत किये जाते हैं और फिर तदनुकूल कृति तैयार की जाती है।

गुजराती साहित्य और आलोचना अब केवल अंग्रेजीसे ही नहीं, किन्तु विश्व-साहित्यके प्रवाहोंसे परिचित हो गया है और इसमें डॉ० सुरेश जोशीकी देन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गत पच्चीस वर्षोंमें उन्होंने 'मनीषा', 'विश्व-मानव', 'क्षितिज' तथा 'उहापोह' और मासिक पत्रोंके द्वारा पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकनका वातावरण पैदा कर दिया है। गुजरातीमें अत्यंत तीव्र और कटुसत्य समीक्षाकी परिपाटीभी इन्हीं पत्रिकाओंकी देन है। इनकी आलोचनामें सहृदयताकी अपेक्षा साहसका परिमाण अधिक दिखायी देता है। तात्विक विचार को ये अधिक आवश्यक नहीं मानते, फिरभी इस विवेचनामें कुछ धाराएँ अवश्य लाभदायी हैं। इन पत्र-पत्रिकाओंके साथही विविध विश्वविद्यालयोंसे अनुसंधानके नामपर भी आलोचनाका अच्छा कार्य हुआ है और हो रहा है। अनेक शोध-प्रबंध प्रकाशित हो चुके हैं। 'ज्ञान गंगोत्री' योजनाके अन्तर्गत दस ग्रंथ अबतक प्रकाशित हो गये हैं, उनमेंसे तीन सुन्दर और उपयोगी ग्रंथ साहित्य-दर्शन सम्बन्धी हैं। गुजरात सरकारका 'ग्रंथ निर्माण बोर्ड' भी इस दिशामें कार्य कर रहा है और उसकी ओरसे भी उत्तम कोटिके ग्रंथ प्रकाशमें आ चुके हैं। इसप्रकार गुजराती आलोचना प्रगतिके मार्गपर अग्रसर हो रही है।

आत्मकथा और जीवनचरित्र

आत्मकथा लेखनको उन्नीसवीं सदीसे ही साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया गया है। ऊपरसे देखनेपर यह एक सरल साहित्य विधा प्रतीत होती है, किन्तु इसमें सबसे अधिक भयस्थान रहते हैं। आत्मकथा लेखक चाहे कितना ही तटस्थ रहनेका प्रयास करे परन्तु जाने-अनजाने आत्मप्रशंसा हो जानेका भय बना ही रहता है। गुजरातीमें उच्चकोटिकी अनेक आत्मकथाएँ मिलती हैं, जिनमें नर्मदकी 'मारी हकीकत', गांधीजीकी '**सत्यना प्रयोगो**', काका कालेलकरकी '**स्मरणयात्रा**' आदि उल्लेखनीय हैं। आलोच्यकालमें भी कुछ उच्च साहित्यिक कोटिकी आत्मकथाएँ प्रकाशमें आई हैं, जिनके कारण गुजराती-साहित्यकी श्रीवृद्धि हुई है। इनमें से कुछ प्रमुख आत्मकथाएँ हैं : रायबहादुर कमलाशंकर त्रिवेदी लिखित 'अनुभव विनोद'; कन्हैयालाल मुंशीके 'अड्धे रस्ते', 'सीधा चढाण' और 'स्वप्नसिद्धिनी शोधमां'; प्रभुदासगांधीकी आत्मकथा '**जीवननुं परोढ**'; धूमकेतुकी 'जीवन पथ' और 'जीवन रंग'; चन्द्रवदन मेहताकी 'बांध गठरियाँ', 'छोड़ गठरियाँ', 'सफर गठरियाँ' तथा 'रंग गटरियाँ'; गणेश वासुदेव मावलंकरकी '**संस्मरणो**'; इन्दुलाल याज्ञिककी '**आत्मकथा**' इत्यादि।

चिन्तनशील मानवके लिए मानवही अभ्यास और संशोधनका सनातन विषय है। देश-विदेशका जीवनी-साहित्य इसका प्रमाण है। दो सदी पूर्वतक जीवनीको इतिहासका विषय माना जाता था, किन्तु अंग्रेजी-साहित्यके प्रभावके कारण जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र आदिका साहित्य विधाके रूपमें विकास हो रहा है। जीवन-चरित्र-लेखनके लिए भी कुछ सिद्धांत नियत किये गये हैं। इन्हींके आधारपर गुजरातीमें भारतीय और विदेशी महापुरुषोंकी जीवनियाँ लिखी गयी हैं। इनमें धार्मिक, राजनीति, साहित्यिक महापुरुषोंके साथ-साथ समाज-सुधारक तथा वैज्ञानिकोंकी जीवनियाँ प्राप्य हैं। प्राचीन और आधुनिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक सभी प्रकारके व्यक्तियोंके जीवन-

चरित्र लिखे गये हैं। ये जीवन-चरित्र छोटे बालकोंके लिए, कुमारोंके लिए, अल्पशिक्षित प्रौढ़ोंके लिए तथा सभीप्रकार के पाठकोंके लिए उपयोगी हैं। कुछ उल्लेखनीय जीवन-चरित्र हैं : 'महान वैज्ञानिको', 'आपणा नेताओ','साम्ययोगी विनोबा', 'श्रेयार्थीनी साधना', 'महायोगी श्री अरविन्द', 'युगपुरुष स्तालिन', 'सोरठना सिद्धो' इत्यादि।

बाल-किशोर साहित्य

गुजरातीमें स्व० गिजुभाईने बाल-साहित्यको नया रूप देनेका सफल प्रयास किया था। उन्होंने ही सर्वप्रथम बाल-कथा, लोक-कथा, दृष्टांतकथा, बोधकथा, परीकथा आदिके द्वारा इस क्षेत्रको समृद्ध किया। उन्होंने विविध विषयोंपर गेय-कविताएँ रचीं, नाटक, प्रवास-वर्णन, वैज्ञानिक कहानी इत्यादिकी रचना करके बालकों तथा किशोरोंके लिए विपुल साहित्यका सृजन किया। उनका अनुकरण करते हुए अनेक लेखकोंने इस क्षेत्रमें अपनी कलम चलायी। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं, जिनमेंसे गांडीव, कुमार, बालमित्र तो आजभी बालकों और किशोरोंमें अत्यंत लोकप्रिय हैं। इस कालमें सोमाभाई भावसार, मूलजीभाई भक्त, जुगतराम दवे, चन्द्रवदन मेहता, प्रेमशंकर भट्ट, रमण लाल सोनी इत्यादिने विविध साहित्य-विधाओंमें बाल और किशोर साहित्यकी रचना की। इनमेंसे अनेक लेखक आज भी इस क्षेत्रमें कार्यरत हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर कालमें इस ओर साहित्यकारों और प्रकाशकोंका विशेष ध्यान आकर्षित हुआ प्रतीत होता है। इस कालमें बाल-पुस्तकमालाओंकी भरमार-सी हो गयी है। इन मालाओंमें कहानी, नाटक, विज्ञान, यात्रा-वर्णन, भूगोल, इतिहास, सामान्यज्ञान जैसे सभी विषयोंका समावेश रहता है। अशोक बालपुस्तकमाला, बालविनोदमाला, गांडीव-कुमारमाला, विद्यार्थी वाचनमाला, देश-विदेशनी लोककथा, साक्षर कथामाला, कविकथामाला, विज्ञान-विकास श्रेणी, जगतना महान वैज्ञानिको, जीवन-विज्ञानमाला, वनस्पति परिचयमाला जैसी अनेक पुस्तकमालाएँ बालकोंकी आयुको ध्यानमें रखते हुए ५ से १५ वर्षतकके बालकोंके लिए प्रकाशित की गयी हैं। देश-विदेशके बाल-साहित्यका भी गुजरातीमें अनुवाद हुआ है। 'बालजीवन', 'रमकडुं', 'चांदामामा', 'बालसंदेश', 'झगमग' जैसी मासिक और साप्ताहिक बाल-पत्रिकाएँ बड़े सुन्दर ढंगसे नियमित प्रकाशित हो रही हैं। वर्तमान बाल-साहित्यकी प्रधान विशेषता यह है कि आज यह वर्ग एक विशिष्ट पाठक वर्गके रूपमें प्रतिष्ठित हो गया है। प्रकाशकोंके लिए आर्थिक दृष्टिसे यह लाभदायी सिद्ध हो रहा है, इसलिए बाल-रुचिके अनुकूल पुस्तकें तैयार करनेकी ओर ध्यान दिया जा रहा है। फिरभी इस ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये क्योंकि बाल-रुचि अत्यंत चंचल, अस्थिर तथा परिवर्तनशील होती है। अतः इस साहित्यके सर्जनमें जिसप्रकारका मनोवैज्ञानिक आयोजन होना चाहिये, वह नहीं हो पाया है। बाल-किशोर साहित्यका समीक्षा-क्षेत्रभी अभी अछूता ही है। गत तीन-चार वर्षोंमें 'ग्रंथ' मासिकने कुछ 'बाल साहित्य विशेषांक' प्रकाशित करके इस ओर उचित कदम उठाया है। प्रतिवर्ष गुजरात सरकारकी ओर से बाल-साहित्यकी उत्तम रचनाओं पर पारितोषिक दिये जा रहे हैं। इससे भी लेखकोंको प्रोत्साहन मिल रहा है। इस आलोच्यकालमें जो उल्लेखनीय बाल-साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें विजयगुप्त मौर्य लिखित 'कपिनां पराक्रमो', **'कीमियागर कबीर';** नरसिंह मू० शाह रचित वैज्ञानिकोनां चरित्रो'; छोटुभाई सुथार की **'आकाशदर्शन'**, रमणलाल सोनीकी **'अमृत कथावलि';** जयभिक्खु की 'प्राणीकथाओ' तथा 'ऐतिहासिक कथाओ' आदिने बालकोंमें विशेष आकर्षण जमाया है। आशा ही नहीं परन्तु पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमें यह साहित्य और भी अधिक सुन्दर रूप धारण करेगा।

पत्र-पत्रिका-साहित्य

पत्रकारिताके क्षेत्रमें गुजराती देशकी सबसे अधिक सौभाग्यशाली भाषा है। हमारे देशका प्राचीनतम समाचार पत्र **'मुंबई समाचार'** सन् १८२२ की पहली जुलाईसे आज तक नियमित रूपसे प्रतिदिन प्रकाशित हो रहा है। इसी प्रकार 'जामे जमशेद', 'खेड़ा वर्तमान' और 'गुजरातमित्र' ने भी अपनी आयुके सौ वर्षसे अधिक पूरे कर लिये हैं। गुजरातीकी एक मासिक पत्रिका **'नवचेतन'** सन् १९२२ से प्रारंभ होकर एकही व्यक्तिके संपादकत्वमें नियमित प्रकाशित हो रही है। अभी गत वर्ष ही उसने अपना सुवर्ण महोत्सव मनाया है। रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज़पेपर की नवीनतम सूचना के अनुसार गुजरातीमें कुल ५६१ पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। इनमें ४२ दैनिक, १३६ साप्ताहिक, ६८ पाक्षिक, २६६ मासिक, १५ द्विमासिक, ३० त्रैमासिक तथा ५ वार्षिक हैं। दैनिक समाचारपत्रोंके पाठकोंकी संख्या दस लाखसे भी अधिक है। शिक्षा और संस्कारके विस्तारके साथ लोगोंमें पढ़नेकी भूख भी बढ़ती जा रही है। गुजराती पत्र-साहित्य एक लाभदायी व्यवसायके रूपमें अपनी नींवको अत्यंत दृढ़ बना चुका है, अतः व्यवसायप्रिय उद्योगपतियोंका इधर ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक है। इस समय

गुजरातीमें प्रकाशित होनेवाले लोकप्रिय दैनिक पत्रोंमें 'मुंबई समाचार', 'जामे जमशेद', 'जन्मभूमि', 'जनशक्ति', 'गुजरात समाचार','संदेश', 'जनसत्ता', 'लोकसत्ता', 'प्रभात', 'गुजरात मित्र', 'प्रताप', 'जयहिंद', 'फूलछाब' इत्यादि प्रमुख हैं। ये सभी पत्र रविवारके दिन तथा अन्य त्यौहारोंके अवसरपर विशेष पूर्तियाँ निकालते हैं और उनमें साहित्यकी विभिन्न विधाओंको भी यथोचित स्थान देते हैं।

सन् १९१९ में प्रकाशित 'वीसमी सदी' नामक मासिक पत्रिकासे गुजरातीमें साहित्यिक पत्रिकाओंका युग प्रारंभ हुआ माना जाता है। तत्पश्चात् अनेक पत्रिकाएँ समय-समयपर प्रारंभ हुई और कुछ अल्पायुमें ही कालकवलित हो गयीं और कुछने दीर्घायुष्य भी प्राप्त किया। कुछ पत्रिकाओं ने लोकादरभी प्राप्त किया तथा साहित्यकी समुचित सेवा भी की। कुछ पुरानी पत्रिकाओंमेंसे कौमुदी, मानसी, साहित्य, गुजरात, युगधर्म आदिको आजभी स्मरण किया जाता है। गत पच्चीस वर्षोंमें अनेक नयी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं और कुछ पुरानी पत्रिकाओंने भी नया रूप धारण किया है। इनमें विविध विषयोंसे सम्बन्धित पत्रिकाएँ हैं। साहित्य, धर्म, आलोचना, आरोग्य, कथा-कहानी, कविता, उपन्यास, तत्त्व-दर्शन, सिनेमा, ज्योतिष, विज्ञान, उद्योग, शिक्षा, संशोधन, डाइजेस्ट तथा स्त्रियोपयोगी पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं। शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओंमें **'संस्कृति'**, 'बुद्धिप्रकाश', **'प्रस्थान'**, **'स्वाध्याय'**, 'नवचेतन', 'उर्मि-नवरचना', 'अभिनव भारती', 'परब' इत्यादि प्रमुख हैं। साहित्यिक पत्रिकाएँ पढ़नेवाले समाजमें अल्पसंख्यक होनेसे इनके ग्राहकोंकी संख्या भी अल्प ही रहती है। परिवारके सभी सदस्योंकी रुचिको संतुष्ट करनेवाली पत्रिकाएँ अधिक लोकप्रिय होती हैं। गुजरातीमें ऐसी पत्रिकाएँ हैं **'अखंड आनंद'**, **जनकल्याण'**, 'जीवनमाधुरी', **'कुमार'**, 'गृह-माधुरी' आदि। इनमेंसे प्रथम दो पत्रिकाओंके तो एक-एक लाखसे भी अधिक ग्राहक हैं। कहानी आधुनिक युगकी अत्यंत लोकप्रिय विधा है। गुजरातीके कहानी-मासिकोंमें 'सविता', **'चांदनी'**, **'आराम'**, 'वर्षा', 'सीमा', 'कंकावटी' इत्यादि प्रमुख हैं। बालकोंके लिए 'गांडीव', 'बालजीवन', **बालमित्र'**, 'बालसंदेश', 'झगमग', 'रमकडुं', 'चांदामामा' जैसी अनेक मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। 'नवनीत', **'मिलाप'**, **'संसार'**, 'श्रीरंग', 'बीज', 'रंगतरंग', 'अभिषेक' आदि डाइजेस्ट पत्रिकाएँ हैं। शुद्ध कविताकी पत्रिकाओंमें 'कविलोक', 'वैशाखी', **'कविता'**, 'क्यारेक' आदि लोकप्रिय हैं। स्त्रियोंके लिए भी **'स्त्री जीवन'**, 'श्री', 'स्त्री', 'सुधा' जैसे मासिक और साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। बंबईसे प्रकाशित होनेवाले **'ग्रंथ'** मासिकमें गुजराती तथा अन्य भारतीय एवं विदेशी साहित्य का आलोचनात्मक परिचय दिया जाता है। ये पत्रिकाएँ भी दिवालीके अवसरपर अपने विशेषांक निकालकर साहित्य की वृद्धिमें योगदान देती हैं।

उपसंहार

इस आलोच्यकालमें शिक्षाका विकास-विस्तार हुआ है। जहाँ पहले केवल १८ प्रतिशत शिक्षित लोग थे, वहाँ अब ४२ प्रतिशत हो गये हैं। इस अनुपातसे साहित्यकी भी वृद्धि हुई है। गुजरात सरकारभी साहित्यकी वृद्धिके लिए सभी प्रकारकी सुविधा दे रही है। स्वातन्त्र्यपूर्व कालमें गुजरातमें एकभी विश्वविद्यालय नहीं था, किन्तु आज यहाँ छह विश्वविद्यालय हैं और सातवाँ कृषि विश्वविद्यालय भी शीघ्र ही अस्तित्वमें आनेवाला है। कुछ विशिष्ट संस्थाएँ भी साहित्य-सर्जनको प्रोत्साहन दे रही हैं। सरदार पटेल विश्वविद्यालयके द्वारा 'ज्ञान-गंगोत्री ग्रंथ श्रेणी' का उत्तम कार्य हो रहा है। इस श्रेणीमें १० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं तथा अभी २० ग्रंथ और प्रकाशित करनेकी योजना है। गुजरात सरकारका 'ग्रंथ-निर्माण बोर्ड' भी उच्चस्तरीय साहित्यका प्रकाशन कर रहा है। पिछले कुछ वर्षोंमें भाषा-विज्ञानपर भी बहुत सुन्दर कार्य हुआ है। डॉ० प्रबोध पंडित, हरिवल्लभ भायाणी, केशवराम शास्त्री तथा प्रो०के०बी० व्यास जैसे भाषाशास्त्रियोंने भाषाविज्ञानके क्षेत्र में नयी खोजें की हैं। साहित्यके अतिरिक्त कला, राजनीति, इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र जैसे सभी विषयोंपर प्रचुर साहित्य पाया जाता है। इसप्रकार इस आलोच्यकालमें गुजराती साहित्यने जो चतुर्दिक् विकास-विस्तार किया है, उससे कोईभी साहित्यप्रेमी संतुष्ट हो सकता है। इस साहित्यके द्वारा हमने मानव और जगत् को अधिक स्पष्ट रूपसे पहचाना है और भविष्यमें औरभी अधिक इनको पहचाननेमें यह साहित्य सहायक होगा। ●

ख. स्वातन्त्र्योत्तर मराठी साहित्य

—डॉ० भीमराव कुलकर्णी
पुणे विश्वविद्यालय, पुण
अनुवाद : प्रा० श्री दा० संगोराम

गत पच्चीस-तीस वर्षोंसे मराठी साहित्यमें बड़े पैमाने पर परिवर्तन हुआ है। मराठीकी कहानी, कविता, उपन्यास, ललित गद्य, आलोचना, नाटक आदि साहित्य विधाओंमें यह परिवर्तन तीव्र गतिसे और अनेक रूपोंमें हुआ है। फलस्वरूप बीसवीं शताब्दीके प्रथमार्द्धमें और बादके पच्चीस वर्षोंमें प्रकाशित मराठी साहित्यमें आश्चर्यजनक अन्तर परिलक्षित होता है। इस परिवर्तनके पदचिह्न १९४० के पूर्वके साहित्यमें यत्र-तत्र निश्चयही दिखायी देते हैं, किन्तु दूसरे महायुद्धके पश्चात् इन परिवर्तनोंके कारण मराठी साहित्यमें नये रूप, नयी दृष्टि, नयी अनुभूति और नये शिल्पका विकास हुआ।

१९४० के आसपास मराठीमें जिस नये साहित्यका निर्माण हुआ, वह अपने पूर्ववर्ती साहित्यकी अपेक्षा अधिक कलात्मक और महायुद्धोत्तर जीवनके कारण अंतर्मुख था। इन अनुभूतियों तथा उनकी अभिव्यक्तिके मूलस्रोत पश्चिमी साहित्यसे कुछ समय बाद यहाँतक आ पहुँचे थे और इससे इस कालखण्डके साहित्य-निर्माणमें एक प्रकारका अभिनिवेश था; कुछ नया कर दिखानेकी लगन थी। इस नयी प्रेरणाके कारण १९४० के बाद २०-२५ वर्षोंमें मराठी साहित्यमें जो परिवर्तन हुए, वे साहित्यके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण और चिरस्मरणीय मंजिल सिद्ध हुए हैं।

कविता

कहानी और कविताके क्षेत्रमें इस परिवर्तनने एक चेतनाका निर्माण किया है; विशेष तौरपर कविताके क्षेत्रमें बा० सी० मर्ढेकर जैसे कविका उदय कई दृष्टियोंसे एक क्रांतिकारी घटना है। मर्ढेकर अब जो कर दिखाना चाहते थे, उसकी नींव उनके पूर्ववर्ती रविकिरण-मंडलके बाद उदित हुए कवियोंने—अर्थात् 'अनिल', 'कुसुमाग्रज' और 'बोरकर' जीकी कविताने डाल दी थी। इससे भी पूर्व बालकवि ठोंबरेकी कविताने प्रकृतिसौन्दर्यका जीताजागता चित्र उपस्थित करते हुए हर शब्दमेंसे शब्द-रस-रूप-गंधादि की संवेदनाओंका रूप-जगत खड़ा कर दिया था। श्री अनिल ने मुक्तपद्यके रूपमें और नयी सामाजिक अनुभूतियोंको सहज रूपमें अभिव्यक्त करनेके नामपर काव्यके पुराने बंधनोंको पर्याप्त शिथिल कर दिया था। कवि कुसुमाग्रजने व्यक्तिगत प्रेमभावनाकी उत्कटता और समाजगत अन्यायके प्रति क्षोभ आदि परस्पर विरोधिनी विशेषताओंके द्वारा अत्यंत प्रभावपूर्ण काव्यका सृजन किया था और कविवर तांबेके पदचिह्नोंपर चलकर काव्यक्षेत्रमें पदार्पण करनेवाले बोरकरने तो स्वयं तांबेको भी मात दी और मराठीकी प्रतिभासृष्टिको अपनी विशिष्ट शब्दावलीसे और अधिक ऊर्जस्वित कर दिया था। इसी वातावरणमें मर्ढेकरकी कविताने अपने पदन्याससे देखते-ही-देखते सबको विस्मय-चकित कर दिया था। उनकी कविता नये यंत्रयुगकी अनुभूतियोंको एक अनोखी शैलीमें अभिव्यक्त कर रही थी। इसमें यंत्रयुगका नयी दृष्टिसे आकलन भी था और अभिव्यक्तिका सर्वतः नया ढंग भी। इसीलिए इस कविताने मराठीके मानसको एक तरहका धक्का ही दिया था। यह धक्का जबरदस्त था और इसने मराठी कविताको भलीभाँति गतिमान् कर दिया। नयी प्रतिभा, यंत्रयुगके द्वारा निर्मित नूतन विश्वकी संवेदनाओंका नये मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे रचा हुआ विश्व और उसे रचनेके लिए जानबूझकर रूढ़िबद्ध काव्यलेखन पद्धतियोंका कुछ विकृत लगनेवाले रूपमें किया हुआ उपयोग आदिके कारण प्रस्तुत कविता एकदम लीकसे हटी हुई और विवादग्रस्त सिद्ध हुई। इन नयी विशेषताओंके कारण यह कविता कई स्थलोंपर दुर्बोध और अनाकलनीय प्रतीत होने लगी। उसमें जो प्रतिभासृष्टि थी वह अपनी सम्मिश्रताके कारण घोर वैयक्तिकताको लिए हुए थी। इस दुर्बोधताके अतिरिक्त यंत्रयुगका चित्रण करते समय उसने जो घोर यथार्थवादी रूप धारण किया था उसके कारण वह कुरूप, बीभत्स और कलात्मक सौन्दर्यके लिए विघातक प्रतीत होने लगी। मर्ढेकरके अनुकरणपर यंत्रयुगीन जीवनका और उसकी संज्ञाशून्यताका चित्रण बड़े पैमानेपर होने लगा। लेकिन ध्यान रहे कि मर्ढेकरकी कविताके

पीछे केवल मनबहलावकी भावना नहीं थी। उसके पीछे नूतन युगकी विफलताओंपर सोच-समझकर किये हुए भाष्य की भित्ति खड़ी थी। नयी कविताके नामपर लिखी हुई सभी कविताओंके पीछे इस प्रकारकी कोई दार्शनिक पृष्ठभूमिही रहती हो सो नहीं है। इसीसे ऐसी कविता पर्याप्त मात्रामें पाठकोंसे दूर हट गयी है।

मर्ढेकरके बाद मराठीमें जीवनकी तीव्र लगनसे पैदा हुए विशुद्ध काव्यकी रचना बड़े पैमानेपर हुई है। लेकिन यह समस्त कविता 'नयी कविता' के अंतर्गत नहीं आयेगी। सर्वश्री वसंत बापट, मंगेश पाडगांवकर, वा० रा० कांत आदिकी कविताओंपर नयी कविताका प्रभाव निश्चित रूपसे पाया जाता है। तथापि प्रधानतः वह बोरकर और कुसुमाग्रजकी परंपराका ही अनुसरण करती हुई-सी लगती है। श्रीमती इंदिरा संत, पद्मा गोले इत्यादि कवियित्रियोंके काव्यमें जो सूक्ष्मता पायी जाती है उससे भी यह स्पष्ट होता है कि मराठी कविता पहलेकी अपेक्षा बहुत आगे बढ़ चुकी है। विंदा करंदीकरकी कविताका स्वरूप तो दोहरा है। जहाँ उनकी प्रारंभिक कवितामें साम्यवादी विचार प्रणालीके कारण प्रचारकका ढंग मिलता है, वहाँ इधर दस वर्षोंमें उनकी कवितामें विभिन्न प्रकारके प्रयोगोंकी झलक मिल रही है और फलतः उनकी कविता पहलेकी अपेक्षा अधिक परिणामकारिणी बन गयी है। इसी बीच करंदीकरकी तरह साम्यवादी विचारोंसे प्रभावित मुक्तिबोधकी मुक्तछंदमें लिखी कविताने पाठकोंका ध्यान खींच लिया है। इन सबमें अपने एक 'तृतीय पंथ' की घोषणा करनेवाली पु० शि० रेगेकी कविता नव-कविताके संबंधमें होनेवाली भ्रान्तियोंका निराकरण करनेवाली है। संस्कृतकी शब्दावली तथा 'संस्कृत' की संस्कृतिपर पोषित रहनेपर भी इस कवितामें नयी अनुभूतियोंकी प्रतीति है। इस कविताको पढ़कर अनेकोंको गाथा सप्तशती, संस्कृतके शृंगारप्रधान ध्वनिकाव्य तथा लावनीके मदभरे वातावरणकी याद आ जाती है। रेगेकी कविताने इन समस्त संस्कारोंमेंसे एक नया ही विश्व खड़ा कर दिया है। नयी कविता केवल वैफल्यगर्भा नये प्रतिमानोंके जालमें फँसी हुई और जीवनके कृष्णपक्षके ही दर्शन करानेवाली होती है, यह धारणा ठीक नहीं। नयी कविताकी कुछ रचनाओंमें नयी अनुभूतियों, नये प्रतिमानोंके माध्यमसे सौन्दर्यका नया आकृतिबंध निर्माण करनेवाली कलात्मक दृष्टिके भी दर्शन होते हैं।

सर्वश्री रेगे, करंदीकर, बापट और पाडगांवकर आदि कवियोंके साथ चित्रे, खानोलकर आदि कवियोंकी एक नयी पीढ़ी मराठी काव्य-जगत्‌में उदित हुई। इस पीढ़ीने काव्यलेखनकी परंपराको विच्छिन्न करनेके लिए ही कुछ नये प्रयोग किये हैं। वस्तुतः श्री चि० त्र्यं० खानोलकर और दिलीप चित्रे, दोनोंकी कविताकी उड़ान बापट-पाडगांवकरकी अपेक्षा कई गुना बड़ी है। इतनाही नहीं, उनके परवर्ती कवियोंमें भी वह पायी जाती है। किंतु इस नयी पीढ़ीकी प्रवृत्ति एक ओर खिलवाड़की है तो दूसरी ओर उसमें घोर उग्रताके लक्षण दिखायी देते हैं। इससे इस कविताकी

[शेष पृष्ठ १२६ का]

लिखकर आशुतोष भट्टाचार्य, साधनकुमार भट्टाचार्य, अजितकुमार घोष, जीवन बंद्योपाध्याय आदिने प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

आज बँगलाके आलोचना-साहित्यका स्तर गिरा हुआ है। आलोचनाभी सृजनशील साहित्यका एक नामान्तर है। पर आजके आलोचक केवल प्रशंसा या निन्दा करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। अतः सृजनशीलता उनके पास भी नहीं भटकती। आलोचना-साहित्यकी सर्जनाके लिए जिस मानसिकता, विभिन्न उन्नत साहित्योंसे घनिष्ठ परिचय और उच्चस्तरके साहित्य-बोधका होना अपरिहार्य है, शायद उसीकी कमी रह गयी है। फिरभी आलोचकोंमें नीहार रंजन राय, गोपाल हालदार, नीरेनराय, सुधीन्द्रनाथ दत्त, विष्णु दे, आबु सैयद चौधुरी, नारायण चौधुरी आदि के नाम अग्रगण्य हैं।

डॉ० आशुतोष भट्टाचार्यने बँगला लोकसाहित्यकी शाखाको सुसमृद्ध तथा सुव्यवस्थित किया है। लोकसाहित्य की प्रत्येक शाखाका इन्होंने समाजतात्त्विक एवं नृ-तात्त्विक दृष्टिकोणसे विवेचन, आलोचन किया है तथा उसके संरक्षणकी समुचित व्यवस्थाकी है। 'वांलार लोकसाहित्य' ४ खण्ड, गोपीचन्द्रेर गान, वांगलार लोकसंगीत ५ खण्ड, 'वांगलार लोकसंगीत रत्नाकर' तथा 'वांगलार लोकश्रुति' आदि ग्रन्थ डॉ० मुखोपाध्यायके कीर्तिमान घोषक हैं। आजतक बँगला लोकसाहित्यके औरभी २०-२५ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। कहना यह है कि स्वातन्त्र्योत्तर कालमें बँगला लोकसाहित्यकी अभावनीय एवं अतुलनीय समृद्धि हुई है। बहुत-सी पत्र-पत्रिकाओंकी देनभी इस क्षेत्र में सराहनीय रही है।

[इस निबन्ध लेखन कार्यमें 'साहित्य ओ संस्कृति' १३७६ आश्विनसे साभार सहायता ली गयी है।]

दुर्बोधता चरम सीमातक पहुँच गयी है। यह धारणा कि मराठी नियतकालिक एवं अनियतकालिक लघु पत्रिकाओंका जन्म गत १५-२० वर्षोंमें ही हुआ है, ठीक नहीं है। मराठीमें नियतकालिक लघु पत्रिकाएँ पूर्वभी विद्यमान थीं। किन्तु स्वीकृत आदर्शोंके विरुद्ध विप्लव करनेकी दृष्टि तो नयी है। पश्चिमी समाजके ढर्रेपर विक्षुब्ध युवकोंने यह जो आंदोलन चलाया था, वह क्षणजीवी सिद्ध हुआ। शायद उनकी धारणा है कि लैंगिक भावना और कल्पनाका अतिरिक्त मात्रामें उपयोग करनेका ही नाम विप्लवी-वृत्ति है। विशेषतः आधुनिक विक्षुब्ध युवकोंकी नियतकालिक पत्रिकाओंमें प्रकाशित होनेवाली कविताओंसे ऐसा लगता है, ये प्रतिभाशून्य मनकी विकृत क्रीड़ाएँ हैं। श्री अशोक शहाणे, चंद्रकांत खोत, सतीश कालशंकर जैसे कुछ इनेगिने कवियोंमें प्रतिभा और कल्पनाकी झलक मिलती है। शेष अधिकांश कविताके बारेमें यह कहना पड़ेगा कि वह कविता कहलाने लायक नहीं है। आजकल कविताके लिए कोई भी तैयारी या तपस्या नहीं करनी पड़ती। फलतः आज 'कविता' निरर्थक और विद्रूप बन गयी है तथा सर्वार्थमें मुक्त बन गयी है। सबसे कठिन यह साहित्यविधा इधर कुछ दिनोंसे सबसे आसान बन गयी है। कविता लिखी तो विपुल मात्रामें जाती है, किन्तु वह साधारण पाठकोंसे दूर हट गयी है।

कहानी

नवकविताके साथही स्वातन्त्र्यकालकी पृष्ठभूमिपर नयी कहानीका जन्म हुआ और श्री गंगाधर गाडगील, पु० भा० भावे, अरविंद गोखले आदिके द्वारा मराठी कहानीमें एकदम समृद्धि आ गयी। उनके बाद श्री व्यंकटेश माडगूलकरके व्यक्ति-चित्रों (रेखाचित्रों) ने इस समृद्धिमें बड़ा योगदान दिया। कवितामें जो स्थान मर्ढेकरका है वही मराठी कहानीमें गंगाधर गाडगीलका है। उनकी कहानियोंकी बदौलत मराठी कहानीपर अबतक तंत्रकौशल और नकलीपनके जो बंधन थे वे खुल गये। अनेक पहलुओंसे, अनेक तरीकोंसे और पूरे शक्तिसामर्थ्यके साथ उन्होंने मराठी कहानीका कायाकल्प कर दिया। इसके फलस्वरूप, मराठी कहानी कितने विभिन्न प्रकारोंसे लिखी जा सकती है और गाडगील जैसा शक्तिशाली कहानीकार मानवजीवनकी अतिसाधारण घटनाओंको कैसे एक अभिनव अर्थ प्रदान कर देता है, इसकी प्रतीति मिल गयी। गोखलेकी कहानियोंमें मध्यम-मार्गका अनुसरण रहनेसे उनकी कहानी शीघ्रही लोकप्रिय बन गयी और पु०भा० भावेकी कहानियोंकी विद्रोही प्रवृत्तिसे अनुप्राणित कल्पना-विलासके कारण मराठी पाठक क्षण भरके लिए चमत्कृत हो उठा। तथापि गाडगीलकी कहानियोंके 'मनोवगाहन' के कारण कविताके समानही मराठी कहानीपर भी दुर्बोधता, अश्लीलता और अभद्रताका आरोप होने लगा। यह आरोप औरभी पुष्ट होता गया, क्योंकि परवर्ती कहानीकारोंमेंसे कुछ लेखकोंको उसका चस्का ही लग गया। सीमित भावविश्वके कारण कुछ द्वितीय एवं तृतीय श्रेणीके लेखकोंने विकृतिको ही सबकुछ मान लिया। गाडगील-गोखलेकी पीढ़ीके बाद जी० ए० कुलकर्णी, कमल देसाई, विजया राजाध्यक्ष, पानवलकर, विद्याधर पुंडलिक, जयवंत दलवी तथा नये खेमेके अन्य कई कहानी लेखकोंने मराठीके कहानीक्षेत्रमें अल्पावधिमें उल्लेखनीय प्रगति कर ली है।

मराठी कथाके क्षेत्रमें, इसी बीच, ग्रामीण कहानीने एक नयी चेतनाको जन्म दिया। मध्यवित्त-वर्गीय कथा-विश्वको इसने पूरी तरह बदल दिया। स्व० श्रीपाद महादेव माटेने उपेक्षितोंके दुःखोंको सबके सामने प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे इस ढंगकी कहानीका श्रीगणेश किया था। किन्तु बादमें सर्वश्री ग०दि० माडगुलकर, मो० दा० देशमुख, आनन्द यादव इत्यादि लेखकोंने मराठीकी प्रादेशिक बोलियों और उन विशिष्ट प्रदेशोंकी विशिष्ट सजीवताको अपनी आंचलिक कहानियोंमें भलीभाँति चित्रित किया। इन कथाओंके द्वारा मराठी पाठकोंने कहानीके क्षेत्रमें एक 'अनोखेपन' को महसूस किया। अपनी विलक्षणता और नाटकीयताके कारण इन कहानियोंने कुछ समयतक पाठकोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

उपन्यास

कहानीकी तरहही उपन्यासके क्षेत्रमें भी आंचलिकताने एक नयी उड़ान भरी। इस उड़ानकी झलक आरंभमें र० वा० दिघेके उपन्यासोंमें मिलती है। किन्तु उनके पश्चात् श्री ना० पेंडसेने इस क्षेत्रपर अधिकार कर लिया। उनके 'एलगार', 'हद्दपार', 'गारंबीचा बापू' और 'रथचक्र' नामक उपन्यासोंने उन्हें स्वातन्त्र्योत्तर युगके श्रेष्ठ उपन्यासकारका पद प्राप्त करा दिया। गो० नी० दांडेकरने, जिन्हें हम बहु-प्रसव उपन्यासकार कह सकते हैं, इस कालमें भिन्न-भिन्न प्रकारके उपन्यास लिखकर कीर्ति संपादित की। आंचलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक आदि सभी प्रकारके उपन्यास उन्होंने लिखे हैं। 'कुण्या एकाची भ्रमणगाथा', 'शितू', 'पडघवली', 'माची वरील बुधा', 'मृण्मयी' आदि उनके कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। उद्धव शेलके (धग), आनंद यादव (गोतावला), रा० रं० बोराडे (पाचोला)

आदि कुछ अन्य दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। इन आंचलिक उपन्यासोंके साथ-साथ फडके-खांडेकर-माडखोलकर इन ख्यातिप्राप्त लेखकोंका लेखन कार्य इस कालमें भी जारी है। प्रा० ना० सी० फडकेने ६५वाँ उपन्यास हालमें ही पूरा किया है। स्वातंत्र्योत्तर युगमें फडकेने लगभग ४० उपन्यास लिखे हैं। श्री खांडेकरके 'ययाति' नामक पौराणिक उपन्यासपर तो उन्हें पुरस्कारका सम्मान ही प्राप्त हुआ है।

इस कालके ऐतिहासिक और चरित्रप्रधान उपन्यासोंने पाठकोंके एक बहुत बड़े वर्गका निर्माण किया। रणजित देसाई इस प्रकारके उपन्यासोंके सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं। उनके 'स्वामी' उपन्यासने तो यशकी चरमसीमा ही प्राप्त की। ना० सं० इनामदार, गो० नी० दांडेकर, भीमराव कुलकर्णी आदिके ऐतिहासिक उपन्यास मराठीमें प्रसिद्ध हैं। 'हरिनारायण' नामक उपन्याससे लेकर चरित्र-प्रधान उपन्यासोंका सूत्रपात होता है। श्री ज० जोशी, भा० द० खेर, तथा गंगाधर गाडगीलके उपन्यासोंके कारण चरित्रप्रधान उपन्यास अपना स्थान बनाये हुए हैं। अस्तित्ववादी उपन्यास भी मराठीमें लिखे जाने लगे हैं। इसप्रकारके भालचंद्र नेमाडे (कोसला), भाऊ पाध्ये (व० अनिरुद्ध धोपेश्वरकर) आदिके उपन्यास उल्लेखनीय हैं। चक्र (जयवंत दलवी), माहीमची खाडी (मधु मंगेश कर्णिक), हातभट्टी (शंकरराव खरात) उपन्यासोंमें इस तत्त्वका निर्वाह भलीभाँति हुआ है।

नाटक

मराठी रसिकोंके मनमें नाटकके प्रति विशेष आकर्षण है। स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद चित्रपटने रंगमंचपर आक्रमण करके नाटककी मानो रीढ़ ही तोड़ दी थी। किर्लोस्कर, देवले, गडकरी, खाडिलकर आदिकी समृद्धिशाली परंपराकी बुनियादपर टिकी रंगभूमि हतबल हो गयी थी। आचार्य अत्रे, भा०वि० वरेरकर, मो०ग० रांगणेकर जैसे नाटककार उसमें संजीवनी मंत्र फूंकनेका प्रयत्न कर रहे थे। तथापि स्वातंत्र्य-प्राप्तिके बादके दस वर्ष नाटककी दृष्टिसे गत्यवरोधके ही साबित हुए। फिरभी गत २५ वर्षोंमें मराठी रंगमचने नवचैतन्य प्राप्त कर लिया है और आज रंगभूमि बड़े उत्साहवर्धक वातावरणमें प्रगति कर रही है। सर्वश्री पु०ल० देशपांडे, वसंत कानेटकर, वि०सा० शिरवाडकर तथा विजय तेंडुलकरकी नाट्यकृतियोंने गत पंद्रह वर्षोंमें मराठी रंगभूमिको फिर एक बार प्रतिष्ठा प्राप्त करा दी है। इन नाटककारोंमेंसे बराबर लिखते आ रहे हैं कानेटकर और तेंडुलकर। इनमें भी अपेक्षाकृत तेंडुलकरकी कलममें नाट्यमयताकी सामर्थ्य अधिक सूक्ष्मतासे प्रकट होती है। उनका नया नाटक 'सखाराम बाइंडर' अपनी साहसिकताके कारण आज 'विवादास्पद' बन गया है। 'शांतता कोर्ट चालू आहे' जैसा उनका नाटक हमें उनकी नाट्य लेखनकी क्षमताका प्रत्यय करा देता है। पु० ल० देशपांडेका 'तुझे आहे तुज पाशी' नाटक; कानेटकरके 'प्रेमा तुझा रंग कसा', 'मीरा मधुरा', 'हिमालयाची सावली' आदि नाटक तथा शिरवाडकरका 'नट सम्राट्' नाटक मराठीके वर्तमान नाट्य साहित्यकी आभिजात्य कृतियाँ हैं।

आलोचना

गत २५-३० वर्षोंमें मराठी समीक्षा या आलोचना क्षेत्रमें भी बड़ी उल्लेखनीत प्रगति हुई है। पूर्वी और पश्चिमी साहित्यशास्त्रका परिचय करा देनेकी दृष्टिसे सर्वश्री रा०श्री० जोग, द०के०केलकर, रा०शं०वालिंबे, ग०त्र्यं०देशपाण्डे और श्री०के०क्षीरसागरके ग्रंथ गत २५ वर्षोंमें प्रकाशित हुए। इन ग्रन्थोंके सिलसिलेमें समीक्षाविषयक कई मूलभूत प्रश्नोंपर ऊहापोह हुआ। कविके काव्य, उसके व्यक्तित्व तथा उसके परिवेशकी परिस्थितिके अन्योन्याश्रित सम्बन्धको ध्यानमें रखकर काव्यप्रक्रियापर नया प्रकाश डालनेका महत्त्वपूर्ण कार्य डॉ० वालिंबेने किया। जोगके कवि केशवसुतपर लिखे ग्रंथ और उसके बाद डॉ० वालिंबे और मराठेके 'बालकवि' विषयक प्रबन्धोंने समीक्षाके क्षेत्रमें साहित्यविषयक एक नयी दृष्टि उत्पन्न की। डॉ० वालिंबेने पश्चिमी साहित्य-प्रणालियों एवं आलोचनाके मूल्योंका परिचय कराया तो प्रा०रा०श्री० जोगने साहित्यकी सौंदर्य-कल्पना तथा उससे मिलनेवाले आनंदके बारेमें विचार-विमर्श किया। श्री०के० क्षीरसागरने आभिजात्य साहित्यकी विशेषताओंको विशदकरके बताया। प्रा०वा०ल० कुलकर्णीने आस्थापूर्वक अनेक साहित्यविषयक प्रश्नोंका स्वरूप खोलनेका प्रयत्न किया तथा मराठी साहित्यमें उत्पन्न होनेवाले नूतन प्रवाहोंका स्वागत किया और वे नव्य-साहित्यके भाष्यकार बन गये। नव-कविताके प्रवर्तकत्वके साथ-साथ नयी समीक्षाके उद्‌गाताके नाते मर्ढेकरने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। कलामें होनेवाले सौंदर्यात्मक तत्त्वोंको उन्होंने नूतन सौंदर्यशास्त्र (इस्थेटिक्स) के आधारसे स्पष्ट किया। इसके लिए उन्होंने नयी परिभाषा, नये दृष्टिकोण और नितान्त नये विचारको प्रस्तुत किया। इसका मराठीकी समीक्षापर बहुत अधिक प्रभाव हुआ। मर्ढेकरकी विचारप्रणालीका बहुत अधिक प्रतिवाद भी हुआ। अनेक विचारकोंने अनेक

प्रकारसे इस विचारप्रणालीको सदोष घोषित किया। फिर भी आलोचनापर उसका प्रभाव बढ़ता ही गया। मर्ढेकर की प्रणालीसे कलाकृतियोंपर आलोचना करनेवाले आलोचकोंका एक नया वर्ग ही बन गया। सर्वश्री गंगाधर गाडगील, दि० के० बेडेकर, माधव आचवल तथा दिलीप चित्रे इसी वर्गमें आते हैं।

मराठी समीक्षा या आलोचनाको व्यापक, रसोद्ग्राही, विशुद्ध और विविधोन्मुखी बनानेवालोंमें सर्वश्री जोग, वालिंबे, क्षीरसागर, वा० ल० कुलकर्णी तथा श्रीमती कुसुमावती देशपांडेका बड़ा हाथ है। मराठी आलोचनामें बार-बार प्रस्तुत होनेवाले असाहित्यिक और असंबद्ध प्रश्नोंका इन्होंने समय-समयपर समाधान किया है।

उपर्युक्त आलोचकोंके साथही सर्वश्री भवानीशंकर पंडित, मा० गो० देशमुख तथा अ० ना० देशपाण्डे जैसे वैदर्भीय आलोचकोंने अपने अध्ययनपूर्ण लेखनके द्वारा मराठी आलोचनाकी प्रगतिमें मूल्यवान योगदान दिया है। पश्चिमी, पौर्वात्य तथा मराठी नाट्यसाहित्य और रंगभूमिका तुलनात्मक अध्ययन करनेवालोंमें आज माधव मनोहरका स्थान अग्रणी है। मराठी रंगभूमिके बारेमें उनका अवलोकन अधुनातन है। सर्वश्री रा० भि० जोशी, गं० ब० ग्रामोपाध्ये, स० गं० मालशे, ल० ग० जोग, वसंत दावतर, धों० वि० देशपांडे, व०दि० कुलकर्णी, नरहर कुरुंदकर आदिका आलोचनाके प्रसंगमें स्वाभाविक रूपमें स्मरण हो आता है। इन सभी महानुभावोंके समीक्षाविषयक कार्यके द्वारा मराठीकी समीक्षा का विस्तार एवं विकास हुआ है।

निबन्ध

सन् १९२६ से १९५० तक मराठीमें फड़के, खांडेकर, काणेकर, दांडेकर, ना० म० संत आदिने 'लघुनिबंध' या 'ललित निबंध' (व्यवितत्वप्रधान निबंध) की नूतन साहित्य-विधाको प्रचलित किया था। मराठीके इन प्रमुख ललित-निबंध लेखकोंने जिस शैलीमें ये निबंध लिखे, वह शैलीही इस विधाकी विशेष शैली बन गयी। वही उसका व्यवच्छेदक लक्षण बन गयी। इन लक्षणों एवं तंत्रमंत्रोंके दायरेमें यह विधा पक्के तौरपर बैठ गयी। साधारण विषयमेंसे किसी अनोखे आशयको खोजनेका प्रयत्य करना, उसके लिए अपने जीवनकी कोई घटना या अनुभव पाठकोंको विश्वासमें लेकर सुनानेका निमित्त बनाना, निस्संकोच पाठकोंसे गपशप करते हुए परिचित, सार्वकालिक और सर्वमान्य विषयका दूसरा पहलू दिखाकर पाठकोंको चकित करना इत्यादि बातोंका अंतर्भाव इस प्रकारके निबंधकी शैलीमें हो गया। फड़के-खांडेकर-काणेकरके समान समर्थ लेखकोंने अपनी श्रेष्ठ प्रतिभा शक्तिके द्वारा निबंध-शैलीके उपर्युक्त दायरेमें रहकर भी एकसे एक बढ़कर सुंदर ललित निबंध लिखे। किन्तु स्व-निर्मित इस दायरेकी दीवारको तोड़नेका प्रयत्न उनसे नहीं हो सका। फलतः इस साहित्य-विधाका अनुकरण करनेका प्रयत्न सामान्य लेखकोंने किया और इसीके साथ इन निबंधोंके दिखावटी स्वरूपका एहसास सबको होने लगा।

सन् १९५० के बाद मराठी साहित्यकी इस लेखन-विधामें कुछ इष्ट परिवर्तन होनेके लक्षण दिखायी देने लगे। क्योंकि व्यक्तित्वप्रधान निबंधके नाते जो बंधन इस विधाने अपने ऊपर लाद लिये थे वे धीरे-धीरे टूटने लगे। यह नूतन निबंध नयी प्रवृत्तियों, नयी समाज रचना तथा नयी अनुभूतियोंका निदर्शक है। जीवनमें बड़े-बड़े विषयोंके समानही दैनंदिन व्यवहारके विषय भी महत्त्व रखते हैं। क्रीडन शैलीको समाजमें यशस्वी बननेका एक साधन नहीं मानना चाहिये। वह तो अत्यंत श्रेष्ठ व्यक्तित्वका एक सहज सुंदर आविष्कार है। उसे सदा उपहासका विषय नहीं बनाना चाहिये। अत्यंत गंभीर चिंतनशील दृष्टिकोणसे भी निबंधकी अवतारणा हो सकती है। परिचित विषयके अपरिचित पहलूको देखनेकी कामनासे ही ललित निबंधका निर्माण होता है, ऐसा नहीं है। बल्कि किसीभी भाववृत्ति या मनोभावका आविष्कार लेखकके व्यक्तित्वके अनुसार अनेक विध रूप धारण कर सकता है....

संक्षेपमें कहना हो तो यह नूतन निबंध--फिर चाहे उसे लघुनिबंध कहा जाये या ललित निबंध—बड़ा बहुरूपिया है। समुद्रमें लहरानेवाली तरंगोंके समान क्षण-क्षणमें नित्य नया रूप धारण करने तथा उन नये रूपोंका जीवनके नये संदर्भमें नया अर्थ खोजनेकी उसे धुन है और इसीलिए यद्यपि इस नये ढंगमें वह कितनेही विविध रूपोंमें प्रकट हो जाये, वह कभी पुराना नहीं होगा या गत्यवरोधका शिकार नहीं बनेगा। सौभाग्यवश गत कुछ वर्षोंमें जो कुछ थोड़ा प्रयत्न इस दिशामें हुआ है, उसीकी बदौलत इस नयी साहित्य विधाकी शक्तिका भान हमें हो रहा है। यद्यपि प्रस्तुत नये काल खण्डमें इस विधाका संख्यात्मक विकास कम हुआ है, तो भी उसने 'केंचुली बदलने' के कई यत्न किये हैं। कुछ निबंधोंने पुरानी लीकका ही अनुसरण किया है तो कुछने ऐसा करते हुए भी कुछ भिन्न दिशामें भी थोड़ा प्रयास किया है। कभी-कभीतो इस ललित निबंधने अन्य साहित्य विधाओंमें धीरेसे प्रवेश करके अपनी चंचलताका परिचय दिया है। आजकी नयी

मराठी कहानियोंमेंसे कुछ कहानियोंका रूप तो ललित निबंधसेही साम्य रखता है। यात्रावर्णन, हास्य-लेखन, रेखाचित्र आदि साहित्य विधाओंमें प्रवेशकरके इस ललित निबंधने अपनी अभिवृद्धि साध ली है।

इस प्रकार यह साहित्य प्रकार सुकुमार, नमनीय तथा सर्वसमावेशक और उतनाही कठोर है। साधारण लेखकोंको वह कैसे चकमा देगा और समर्थ लेखकके हाथमें पड़कर वह किस सीमातक चमत्कृत करेगा, इसका अनुमान करना कठिन है। वह कभी फूलकी भाँति सुकुमार और सहल प्रतीत होगा तो क्षणमें बड़ा प्रक्षोभक रूप धारण करेगा। चींटीसे लेकर मेरु पर्वततक उसके लिए किसी प्रकार विधि-निषेध नहीं है। वह किसीभी विषयको एक नया ही मोड़ देगा और हमें लेखककी आत्माके दर्शन करायेगा। वह प्रत्येक व्यक्तिके साथ अलग-अलग दृष्टिकोण व्यक्त करेगा। विशिष्ट निर्मिति क्षणकी भाववृत्तिके अनुसार उसे हर समय एक विशिष्ट ही रूप प्राप्त होगा। व्यक्तित्व संपन्नताके अनुपातमें तथा अनुभूतियोंको प्रस्तुत करनेकी क्षमताके अनुसार प्रत्येक निबंधमें वेधकता या आकर्षकता आ जायेगी।

जीवनानुभव, जीवनावलोकन और जीवन-चिंतन निबंधके प्रधान और महत्त्वपूर्ण साधन हैं। लेखकका दृष्टिकोण उसके चिंतनकी व्यापकता, अंतःकरणकी सदयता एवं ऋजुता और जीवनविषयक बालसुलभ कौतूहल तथा उच्च कोटिकी संवेदनक्षमता इत्यादि विशेषताएँ जितने परिमाणमें निबंधके अंदर प्राप्त होंगी, उतनेही परिमाणमें वह निबंध अधिकाधिक निजात्मक और परिणामकारी बन जायेगा। उसके वैचारिक स्वरूपके कारण उसे शुद्ध कलात्मक रूप आसानीसे प्राप्त नहीं हो सकेगा। इस दृष्टिसे विशुद्ध प्रतिभासंपन्न लेखक ही चाहिये। सौभाग्यकी बात है कि इधर कुछ लेखकोंने निबंधोंको अत्यंत शुद्ध रूपमें प्रस्तुत करनेमें सफलता पायी है। मराठी निबंधकलाकी यह शुद्ध रूपा अभिव्यक्ति व्यक्तित्वप्रधान निबंधकी रूढ़ परिकल्पनाकी अपेक्षा सर्जनशील ललित निबंधके माध्यमसे अधिक अच्छी तरह हुई है। आजका निबंध पुराने व्यक्तित्व-प्रधान (लघु) निबंधकी अपेक्षा अधिक प्राणवान और शक्तिमान है। श्रीमती इरावती कर्वे, दुर्गा भागवत, श्री०गो०वि० करंदीकर, माधव आचवळे तथा मधुकर केचेके ललित लेखनमें इस सामर्थ्यकी झलक मिलती है। इन सभी लेखकोंके निबंधोंने यह दावा गलत साबित कर दिया है कि ललितनिबंध केवल एक हल्की और तरल रचना है। विशेषतः दुर्गा भागवत, करंदीकर, आचवल तथा केचेके निबंधोंको सर्जनशील निबंध कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

कुछ अन्य विधाएँ

कहानी, कविता, उपन्यास, ललित निबंध आदि क्षेत्रोंमें जो नव्यता आयी, वह मराठीके यात्रावर्णनों एवं हास्य लेखोंमें भी प्रकट हुई। हास्यव्यंग्यात्मक साहित्यके क्षेत्रमें श्री०पु०ल० देशपाण्डेने अपना स्वतंत्र युग ही आरंभ कर दिया। विनोदके लिए विनोदके पक्षमें वे नहीं हैं, उनके लेखनकी समस्त भूमिका ही वैचारिक है।

अपनी संस्कृति, अपने संस्कार, अपनी कला, अपने साहित्य, अपने राजकारण और समाज कारणका उन्होंने जो अत्यंत ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया है, उसके पीछे उनकी यह वैचारिकता ही है। और इस वैचारिकताके पीछे उनका अत्यंत संपन्न, बहुमुखी और सजग कलाकार खड़ा है। अतः उनकी यह वैचारिकता सदैव अत्यंत आत्मनिष्ठ रूपमें अभिव्यक्त हुआ करती है। इस सजगताके द्वारा समाजके सभी क्षेत्रोंमें पायी जानेवाली अनंत असंगतियों, अनगिनत पाखंडों, विपरीत कल्पनाओं जैसी रुग्ण प्रवृत्तियोंपर बराबर नुक्ताचीनी किया करते हैं। उनका अवलोकन जहाँ सूक्ष्म और तीक्ष्ण रहता है, वहाँ वह सदैव अधुनातन रहता है। जिस प्रकार उनकी दृष्टि चौकन्नी रहती है उसी प्रकार उसका हेतु अत्यंत उदात्त और संस्कृतिनिष्ठ रहता है। जब वे समाजकी वृत्तिको 'श्रेयस' से 'प्रेयस' की ओर मुड़ते हुए देखते हैं तब वे बेचैन हो जाते हैं और उपहास एवं व्यंग्यके प्रखर वाग्वाणोंको लेकर ऐसी प्रवृत्तियोंपर आक्रमण करते हैं। प्रखर वैचारिकताको शिष्ट एवं शुद्ध हास्यके सहारे इतनी सहजगतिसे बिलकुल साधारण पाठकोंतक प्रेषित करनेकी कलामें श्री देशपांडेके समान सफलता अबतक किसीको भी प्राप्त नहीं हुई थी।

मराठीके यात्रावर्णनात्मक लेखनमें आज लालित्यकी प्रतीति मिलती है। इसका मूल कारण है इन यात्रावर्णनोंमें प्राप्त होनेवाली व्यक्तिचित्रोंकी झलक तथा उनका आकर्षक शिल्पविधान। रूक्ष और उबानेवाले यात्रावर्णनोंके नीरस वातावरणमेंसे ललितरम्य तथा अतिसुंदर यात्रावर्णनोंकी सृष्टि करनेका सारा श्रेय श्री अनंत काणेकरको देना होगा। इनके यात्रावर्णनोंमें कई वर्षोंके व्यापक अनुभव तथा सीधी-सादी किन्तु नाट्यपूर्ण निवेदन-शैलीके कारण बड़ी मार्मिकता आ गयी है।

काणेकरके बाद यात्रा-वर्णनके क्षेत्रमें संस्मरणीय नाम

[शेष पृष्ठ १४८ पर]

ग. स्वातन्त्र्योत्तर सिन्धी साहित्य

—प्रा० मोतीलाल जोतवाणी
देशबन्धु कॉलेज,
नयी दिल्ली

देशके विभाजनके पश्चात् सिन्धके हिन्दू विस्थापित होकर भारतके विभिन्न प्रांतोंमें आकर बसे। पंजाब और बंगालके आधे हिस्से भारतमें ही रहे, लेकिन सिन्धका पूरा प्रांत पाकिस्तानका हिस्सा बना। सिन्धी भाइयोंको अपनी जन्मभूमिका बलिदान देना पड़ा और वे भारतमें आकर खाना, कपड़ा और मकान---इन तीन बुनियादी समस्याओंको सुलझानेमें लग गये। देश-विभाजनोत्तर सिन्धी साहित्यमें उनका यह जीवन भलीभाँति प्रतिबिंबित हुआ है।

यहाँ एक बात ध्यातव्य है। हम देखते हैं कि उर्दू, पंजाबी अथवा कुछ हदतक हिन्दीमें भी, बँटवारेके एकदम बाद हुई मारकाट, रक्तपात और बलात्कारकी बातें मुखर हुई हैं। (सिन्धीमें हुए तत्कालीन अनुवादोंकी बात छोड़ दें), सिन्धीकी मौलिक कृतियोंमें इस तरहकी विभीषिका देखनेको नहीं मिलती। सूफी संतोंकी क्रीड़ाभूमि सिन्धमें हिंदू और मुसलमान सौहार्द्र और भ्रातृभावसे रहते थे। अब भी सीमा-रेखाके दोनों ओरके सिन्धी लोगोंमें एक दूसरेके लिए अगाध प्रेम है। हमारे कवि सरहद पार एक दूसरेको कवितामें प्रेम-पातियाँ लिखते रहे हैं। १९६५ की हिंद-पाक लड़ाईके समा सिन्धके सुप्रसिद्ध कवि शेख़ अयाज़ने भारतके सुविख्यात कवि नारायण श्यामको सम्बोधित कर लिखा :

यह संग्राम !
सामने है
नारायण श्याम !
उसके और मेरे
कौल भी वही हैं
बोल भी वही हैं।
उसपर कैसे बंदूक उठाऊँ मैं !
उसपर कैसे गोली चलाऊँ मैं !
कैसे चलाऊँ मैं !!

बँटवारेसे एकदम बादके सिन्धी साहित्यके वर्ण्य विषय हैं : अपने वतन सिन्ध की याद, शरणार्थी (!)—कैम्पोंका जीवन, दैनिक जीवनकी सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का सामना और नयी व्यवस्था या नया समाज स्थापित करनेकी कामना। १९५३ में उस्ताद शायर लेखराज "अज़ीज़" का नया कविता-संग्रह "आबशार" प्रकाशित हुआ और उसकी भूमिकाकी पहली पंक्ति थी : "सिन्धसे रोकर विदा लेनेके बाद यह प्रथम पुस्तक है, जो प्रकाशित कर रहा हूँ।" और जब उस संग्रहके पहले शेरपर नज़र जाती है तो दिल दो टूक होकर रह जाता है :

वतनके बागके भूले न बुल्बुलको तराने हैं,
हुए वे दूर गुलसे औ' उजड़े बेआशियाने हैं।

विस्थापित भाइयोंके कैम्पोंका जीवन परसराम "ज़िया" की हास्य-व्यंग्य कविताओंमें साकार हो उठा। उस समय बड़ी उम्रके कवियोंने सूफ़ियाना बैत, सौन्दर्य-बोधसे युक्त रुबाइयाँ, ग़ज़ल और क़त्आत भी लिखे। ऐसी कविताकी गहराइयोंमें हमारे एहसास (अनुभूतियाँ) भीग उठते हैं और हवास (ज्ञानेन्द्रियाँ) प्रशिक्षित होते हैं। इतना होते हुए भी उस समयके सिन्धी-काव्यका मुख्य स्वर प्रगतिवादका था। बँटवारेसे पहले, अन्यान्य प्रांतोंकी तरह, सिन्धमें भी प्रगतिवादकी बलवती लहर उठी थी। उसी लहरका ज़ोर भारतकी आज़ादीके बाद बहुत सालोंतक जारी रहा। प्रगतिवादी कवियोंने रूस-चीनकी सराहना की, क्रांतिके नारे बुलन्द किये और प्रगतिवादी कविताके नाममें साम्यवादका खुला प्रचार किया। लेकिन १९६२ तक आते-आते, चीनके भारतपर आक्रमणके समय, उस लहरका ज़ोर एकदम टूट गया। वैसे उस काव्यमेंसे कोरी नारेबाज़ीके उदाहरणोंको एक तरफ़ छोड़ दें, तो हम देखेंगे कि उसमें कई स्थलोंपर किसान-मज़दूर और अन्य शोषित-पीड़ित लोगोंके वास्तविक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यही नहीं, काव्य-विषयके साथ-साथ काव्य-भाषामें भी परिवर्तन आया। काव्यमें साधारण लोगोंकी भाषाका प्रयोग बढ़ा। अर्जुन शाद, ईश्वर आंचल, कृष्ण राही, गोवर्द्धन भारती आदि उस दौरके प्रमुख कवि थे, लेकिन फिर उनमेंसे ही

बहुत और दूसरे कई कवि घोर प्रगतिवादकी प्रतिक्रिया-स्वरूप (विशेषकर भारतपर चीनके आक्रमणके पश्चात् साम्यवादके नामपर चीनकी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति और वैविध्य-हीन कला-रूपके विरुद्ध) जाग उठे और वे पाकिस्तानी सिन्धी कवि अयाज़ और भारतीय सिन्धी कवि नारायण श्यामकी नव-क्लासीकल (Neo-classical) धारामें अवगाहन करनेको तैयार हुए। जाने-पहचाने, परम्परागत छंदोंको नया जीवन देना और लोक-कथाओं के नायक-नायिकाओंके रिश्तों-नातोंको नये युगकी नयी रोशनीमें जाँचना-परखना, इस धाराके काव्यकी कुछ विशेषताएँ हैं। दोहा, वाई, काफ़ी, ग़ज़ल आदि कविताके पुराने रूप रहस्यवाद, सूफ़ीवाद और परंपरावादके ढेरसे उठकर, नयी अँगड़ाई लेकर, सिन्धी कवितामें नयी ताज़गी भरने लगे और अब उनमें इश्क़ और हुस्नके स्थानपर बदले परिवेश और परिवर्तित संदर्भकी समस्याएँ स्थान पाने लगीं। श्यामके अतिरिक्त, कृष्ण राही, इन्द्र भोजवाणी और हरी दिलगीर इस धाराके प्रमुख कवि हैं।

प्रगतिवादी और नव-क्लासीकल प्रवृत्तियोंके बाद १९६५ के लगभग एक नयी प्रवृत्तिका विकास दृष्टिगत होता है। नयी कवितामें आजके परेशान इन्सानकी पूरी तस्वीर है। जीवनके मूल्य बड़ी तेज़ीसे बदल रहे हैं। ऐसा लगता है कि हर पाँचवें साल एक नयी पीढ़ी या एक नया दृष्टिकोण जन्म ले रहा है। ज्यों-ज्यों आदमी उम्रमें बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों वह अपनेही कालमें अधिकाधिक पुराना या पुराने विचारोंका लग रहा है। मानव किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा अपनीही बढ़ती शक्तिके चमत्कारको असहाय-सा देख रहा है। नयी कवितामें व्यक्तिगत अनुभूतिको अधिकाधिक प्रश्रय मिला है। उसमें तीक्ष्ण और प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए वास्तविक जीवनके प्रतीकों और बिम्बोंका प्रयोग होता है। आजका कवि जन-साधारणके "प्रोज़ैक" जीवनका प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे सिन्धी कवियोंमें हरीश वास्वाणी, वासुदेव मोही और आजिज़ बेदीके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

कथा-साहित्य

पिछले २५ वर्षोंमें सिन्धी कहानीकी अप्रत्याशित प्रगति हुई है। प्रारम्भके कुछ वर्षोंकी सिन्धी कहानियाँ अधिकतर अनूदित हैं और उस अवधिकी जो मौलिक कहानियाँ मिलती

[शेष पृष्ठ १४६ का]

श्री०रा०भि० जोशीका है। इनके यात्रावर्णन केवल पश्चिमी तथा अन्य देशोंके अवलोकनपर या केवल प्रकृतिसौंदर्यकी अनुभूतिसे प्रेरित होकर नहीं लिखे गये हैं। इनके प्रवास-वर्णन प्रधानतः फुटकर रूपमें हैं। किन्तु सच्चे रसिकोंके लिए वे अत्यंत आस्वाद्य बन गये हैं।

विदेशयात्राके कारण तथा प्रकृतिसौंदर्यकी लगनसे प्रेरित होकर किये गये यात्रावर्णनोंमें आज उल्लेखनीय वैचित्र्य निर्माण हो गया है। सर्वश्री गंगाधर गाडगील, प्रभाकर पाध्ये, बाल गाडगील, जयवंत दलवी तथा रमेश मंत्रीने मराठी विनोदके क्षेत्रमें आजकल विशुद्ध विनोद (Humour) की विधाका सूत्रपात कर दिया है और उसकी प्रतीति इनके यात्रावर्णनात्मक लेखनमें मिलती है।

मराठीके आलोचना, नवकाव्य, नवकथा तथा ललित साहित्यने गत २५ वर्षोंमें जो प्रगति की है वह उल्लेखनीय है, इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु गत ५-६ वर्षोंमें सभी क्षेत्रोंमें एक तरहकी शिथिलता-सी आ गयी है। आलोचनाके क्षेत्रमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण एवं अध्ययनके अभावमें आजकलके विख्यात आलोचकोंकी कलममें केवल प्रदर्शनीयता ही बच गयी है। भाव या आशयकी गहराईकी अपेक्षा तथा किसीभी कलाकृति या किसी खास कालखंडके साहित्यका वस्तुनिष्ठ चित्र उपस्थित करनेकी अपेक्षा, आनुषंगिक गौण विचारोंका प्रदर्शनही आजकल बड़े पैमानेपर हो रहा है। कलाकृतिके बहिरंगकी ओर ध्यान होनेके कारण आजकलकी समीक्षामें रूपविच्छेदनकी मात्रा बढ़ गयी है। ऐसे अनेक अनावश्यक और व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोणोंके सातत्यके कारण आजकी नयी आलोचनामें व्यर्थके विस्तारका दोष आ गया है।

यह प्रदर्शनीयता या व्यर्थका विस्तार कहानीके क्षेत्रमें भी घुस गया है। इससे आजकी तथाकथित प्रयोगशील कहानी अपने कथा-रूपको ही खो बैठी है। वह ललित निबंध तथा नवकविताके इतने निकट पहुँच गयी है कि ललित-निबंध, काव्य और कहानियोंके बीचकी सीमारेखा शीघ्रगतिसे लुप्त हो रही है। व्यक्तित्वप्रधान निबंधके आगे जाकर 'ललित निबंध' का याने सर्जनशील निबंधका रूप लेनेका प्रयत्न करनेवाला कर्वे-भागवत-करंदीकर आदिका लेखन लगभग इतिहासकी बात बन गया है। हास्यव्यंग्यात्मक तथा अन्य ललित लेखनके क्षेत्रका मानदण्ड बननेवाली रचनाएँ भी पाँच-दस साल पहलेकी ही हैं।

ऐसा क्यों हो रहा है ? आजकी राजनीतिक और सामाजिक जीवन प्रणालीकी संज्ञाशून्यता तो इसका कारण नहीं है ?

हैं, वे जीवनको छूनेकी कम शक्ति रखती हैं क्योंकि उनमें साम्यवादी प्रचार और नारेबाज़ी मुखर है। सिन्धी कहानीमें लाल पुष्प, गुनो सामताणी और मोहन कल्पनाके पदार्पणसे सिन्धी कहानी की सशक्तता बढ़ी। उनके प्रतिनिधि कहानी-संग्रहों **दायरो, अभिमान** और **चांदनीऐं ज़हर** में मानव-मनकी ग्रन्थियों और आधुनिक परिप्रेक्ष्यकी संवेदनात्मक अभिव्यंजना हुई है। मोहन कल्पना और लाल पुष्पकी प्रारम्भिक रचनाओंमें प्रगतिवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थ-वाद और गुनोसामताणीकी प्रारम्भिक कहानियोंमें शरत का रोमांसवाद था और उनकी समकालीन कृतियोंमें व्यक्तिवादकी समस्याएँ मनोविश्लेषणात्मक शैलीमें सुल-झानेका प्रयास है। अब वे केवल साहित्यके प्रति "कमिटेड" हैं और कहींभी फ़तवा या निर्णय न देकर व्यक्तिके सत्यकी खोजमें संलग्न हैं। इन तीन नामोंके अतिरिक्त सिन्धी कहानी-क्षेत्रमें अन्य उल्लेखनीय नाम हैं : ईश्वर चन्दर, आनन्द खेमाणी, विष्णु भाटिया, श्याम जयसिंहाणी, हरीश वास्वाणी, जयन्त रेलवाणी (और यदि अपना नाम लेना गुनाह न हो तो) मोतीलाल जोतवाणी। ईश्वरचन्दरके लिए लाल पुष्पका कहना है कि वे एक-दो कहानियोंके सिवा 'एवरेज' से बढ़कर कहानी नहीं दे सके हैं। कमलेश्वरने ईश्वरचन्दरकी वही सिन्धी कहानियाँ हिन्दीमें पढ़कर कहा कि न जाने क्यों लोग अबभी 'महान् साहित्यिक उपलब्धियों' की प्रतीक्षामें रत हैं जबकि आजकल कोई सही लेखक इस आदर्शमुखी प्रतीक्षाका मोहताज नहीं है; अबतो लेखन एक निरन्तर चलनेवाली लड़ाई है, जिसे रचनाशील लेखक लड़ रहा है। आनन्द खेमाणी और विष्णु भाटियाकी कहानियाँ नयी कहानीकी परिभाषापर सही उतरनेका धोखा दे जाती हैं। वास्तवमें कहानी-क्षेत्र में उनके नित नये प्रयोगमें नर-नारी-यौन-सम्बन्धका अश्लील प्रदर्शन है। भाषाकी अपरिपक्वता और मानव-मनकी अधकचरी समझ ऐसे "नये प्रयोगों" का नयापन और बढ़ा देती है। श्याम जयसिंहाणी और हरीश वास्वाणीकी कहानियाँ समय-संगत दुरुहता (complexity) पर सहज प्रकाश डालती हैं। जयन्त रेलवाणी और मोतीलाल जोतवाणीकी दृष्टिमें कहानी कभी कथाहीन नहीं हो सकती। हाँ, यदि कथा-वस्तु या प्लाट तानाशाह या डिक्टेटर हो जाये तो उससे मुक्ति पानेकी कोशिश अवश्य करनी चाहिये और ऐसी कोशिशमें चमत्कार पैदा करनेकी ज़रूरत नहीं है। जयन्त रेलवाणीके **बन्धनिन जा पिंजिरा** और मोतीलाल जोत-वाणीके **परम्पराहीन** कहानी-संग्रहोंमें अपनेही निजी परि-वेशसे संगत (विदेशोंकी देखादेखी नहीं) आधुनिकता दर्श-नीय है। स्त्री-लेखिकाओंमें सुन्दरी उत्तमचन्दाणी, पोपटी हीरानन्दाणी और तारा मीरचन्दाणीने कई कहानियाँ लिखी हैं।

आलोच्य कालके आरम्भमें एक ऐसा भी दौर रहा जब विभिन्न भारतीय भाषाओंके श्रेष्ठ उपन्यासोंके अनुवादोंकी बाढ़-सी आयी। भारतमें सिन्धीका पहला उल्लेखनीय मौलिक उपन्यास तारा मीरचन्दाणीका **कूमायल कली** (मुर्झायी कली) है। इसका कथानक पुरुषकी स्वार्थ-परा-यणतापर आधारित है। गोविन्द मालीका **आँसू** विस्था-पितोंके कैम्प-जीवनपर यथार्थपरक उपन्यास है। उनके **ज़िन्दगी जी राह ते** और **जीवन-साथी** समस्यामूलक उप-न्यास हैं, जिनमें क्रमशः संयुक्त परिवार और प्रेम-विवाहकी समस्याओंपर समुचित प्रकाश डाला गया है। मालीने दर्जनसे ऊपर उपन्यास लिखे हैं, पर वे सबके सब "साहित्य जीवनके लिए" उद्देश्यको लेकर चले हैं। राम पंजवाणीके उपन्यास **ज़िन्दगी या मौत, आहे न आहे, शल धीअर न जमनि** भी कलात्मक कम और उद्देश्य-परक अधिक हैं। सुन्दरी उत्तमचन्दाणीके **किरन्दड़ दीवारूँ** और **प्रीति पुराणी रीति निराली** उपन्यास नयी सामाजिक व्यवस्था या नया निज़ाम खड़ा करनेकी ओर स्पष्ट इंगित करते हैं। गुनो सामताणीका **वापस**, लाल पुष्पका **हिक सर्द दीवार** और मोहन कल्पनाका **रुञ ऐं पाछा** विशिष्ट लेखकीय कोणोंके सफल उपन्यास हैं। उपन्यास विधामें पर्याप्त सांख्यिक उन्नति होते हुए भी पिछले २५ वर्षों में कोई ऐसा उपन्यास सामने नहीं आया है जिसे उसी प्रकार सिन्धी उपन्यास कहें, जिस प्रकार बाँगला उपन्यासका नाम लेनेसे हमारे सम्मुख ख़ास बँगला उपन्यासका 'इमेज' उभरता है। किसीभी सिन्धी उपन्यासमें सिन्धी-जातिका समग्र रूप नहीं आया। अधिकांश सिन्धी उपन्यासोंके पात्र शहरी-जीवनके रमेश, सुरेश आदि हैं, जो सिन्धीमें बातचीत करते हुए भी किसीभी अन्य जातिके हो सकते हैं।

नाटक

सिन्धीमें छोटे चाहे बड़े नाटक बहुत ही कम लिखे गये हैं। नाटक-कला एक कठिन कला है। उसमें काव्यका रस और उपन्यासकी रोचकता चाहिये। राम पंजवाणी के **सिन्ध जा सत नाटक** सिन्धकी लोक-कथाओंपर आधारित हैं और उनमें कुछ परिवर्तन करनेपर वे नाटक रंगमंचोप-योगी भी हो सकते हैं। तीर्थ बसन्तने **रस गोलो** आदि नाटक लिखे हैं जिनमें रंगमंचीयता कम है। बर्नार्ड शा

की तरह इनके नाटकभी समवर्ती समसामयिक समस्याओं पर बहसें हैं। दास तालिब और जेठानन्द नागराणीने कई हास्य-व्यंग्यपूर्ण नाटक लिखे हैं। ये नाटक मुख्यतः हास्य-विनोदपूर्ण हैं और उनमें कहीं-कहीं सामाजिक बुराइयोंपर ज़ोरदार फब्ती कसी गयी है। इस युगमें एकांकी नाटक बड़े लोकप्रिय हुए हैं। ऐसे नाटकोंके प्रो० मंघाराम मल्काणी सिद्धहस्त लेखक हैं। **जीवन चहचिटा** और **खुड़खबीता प्या टिमकनि** में उनके एकांकी संगृहीत हैं। इधर पिछले दिनों हरिकान्त, मोती प्रकाश और वासुदेव निर्मलके कई नाटक और लक्ष्मण भाटियाके संगीत-रूपक बड़ी सफलतासे रंगमंचपर प्रस्तुत किये गये हैं। लेकिन कहना होगा कि हमारे नाटक-साहित्यमें आधुनिक भाव-बोधकी भारी कमी है।

•

५. दक्षिणांचलीय भाषाएँ

क. स्वातन्त्र्योत्तर कन्नड़ साहित्य

—डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति
मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

आधुनिक कन्नड़ साहित्यके इतिहासको प्रायः तीन सोपानोंमें देखा जाता है। प्रथम सोपान उन्नीसवीं शताब्दीके प्रथम चरणसे १९२० ई० तक, द्वितीय सोपान १९२० ई० से १९४७ ई० तक एवं तृतीय सोपान १९४७ से वर्तमान समयतक माना जाता है। भाषाके नवीन रूपकी स्वीकृतिके साथ आधुनिक कन्नड़ साहित्यका प्रारम्भ हुआ। इस नवीन रूपकी स्वीकृति तबसे अबतक अनेक प्रकारसे हुई है। नवजागरण तथा नवीनता बोधका शंखनाद जिन महानुभावोंने किया, उनकी प्रेरणा-स्फूर्ति आजभी विस्मृत नहीं हुई है।

स्वतन्त्रताप्राप्तिके अनंतर भारतीय साहित्यमें साहित्यिक चेतनाके जो लक्षण दिखायी पड़े, वे देशके अभ्युत्थानकी चिंतन-परंपराके द्योतक हैं। वे समस्त लक्षण कन्नड़ साहित्यमें भी दृष्टिगत होते हैं। सन् १९४७ के पूर्वके कन्नड़ साहित्यमें रोमांटिक प्रवृत्ति, जिसको कन्नड़के राष्ट्रकवि डॉ० के० वी० पुट्टप्पाजीने 'नवोदय प्रवृत्ति' कहा है, तथा प्रगतिशीलताके लक्षण दर्शित होते हैं। सन् १९४७ के बादके साहित्यमें 'नव्यता' का आग्रह है। यद्यपि यह सत्य है कि आधुनिक कन्नड़ साहित्यको पश्चिमसे प्रेरणा मिली, तथापि उसने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखा है, उसकी भारतीयता नष्ट नहीं हुई है।

कविता

विगत पच्चीस वर्षोंके कन्नड़ साहित्यको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि कन्नड़-कवितामें अपेक्षाकृत अधिक नवीनता बोधके लक्षण विद्यमान हैं। स्वतंत्रताप्राप्तिके अनन्तर नवभारतके निर्माणके उत्साहमें कवियोंने उल्लास और आवेशके साथ नव्यताका जो नारा बुलंद किया, वह पश्चिमकी टी० एस० इलियटकी काव्य-परंपराकी प्रेरणाका परिणाम था। १९५० ई० में प्रकाशित डॉ० वि० कृ० गोकाककी 'नव्यकविते' से यह परंपरा विकसित हुई। १९५२ ई० में प्रकाशित रामचन्द्र शर्माकी रचना 'हृदयगीत' और गोपालकृष्ण अडिगकी 'नडेदु बंद दारि' (विगत पथ) में इस नयी प्रवृत्तिको स्पष्ट रूपमें देख सकते हैं। प्रारम्भमें यह नयी प्रवृत्ति जीवनका सामंजस्य स्थापित न कर सकी, परंतु बादमें यह परिणामकारी सिद्ध हुई। कवियोंकी नयी वाणीसे नवजागृति हुई, नये मूल्य स्वीकृत हुए। नये कवियोंको भारतीय प्रज्ञाका भी स्मरण और बोध हुआ। यहाँ यह बतानाभी आवश्यक है कि इस नयी प्रवृत्तिने पुरानी प्रवृत्तियोंको समाप्त नहीं किया है। पुरानी प्रवृत्तियोंके दर्शन वर्तमान कविताकी अंतर्वाहिनीके रूपमें कर सकते हैं।

साहित्य बनाम काव्यमें 'नव्यता' का आग्रह हो सकता है, पर वह दुराग्रह न हो। प्राचीन साहित्यको 'आध्यात्मिक प्रवंचना' और मूल्यहीन ठहराकर यदि नव्यता अपने अस्तित्वको कायम करना चाहे तो उससे स्वस्थ परम्पराका प्रचलन नहीं हो सकता। यह केवल प्रचारात्मक वाद बन जाता है। कन्नड़की 'नव्य कविता' में इस प्रकारकी स्थिति नहीं है, यह स्वस्थ काव्य-परम्पराका लक्षण कहा जा सकता है। प्रेषणीयता और उपलब्धिकी दृष्टिसे विचार करें तो

यह स्पष्ट होगा कि वह पाश्चात्य प्रेरणाको स्वीकार करते हुए भी भारतीयता से दूर अथवा असंपृक्त नहीं है। प्राचीन कवियोंने जिन काव्य बिम्बोंका प्रयोग किया है, उनसे भिन्न प्रकारके बिम्बोंका प्रयोगकर 'नव्य कविता' अथवा नयी कविताके कवियोंने न केवल साहित्यके बदलते हुए मूल्यको स्पष्ट किया है, अपितु यहभी व्यक्त किया है कि प्राचीन काव्यके समान वर्तमान काव्यका उद्देश्य 'जीवनकी सिद्धि' है।

आचार्य बी० एम० श्रीकंठय्या आधुनिक युगके प्रवर्तक माने जाते हैं। जबसे उनके 'इंग्लिष गीतिगळु' का प्रकाशन हुआ तबसे कन्नड़-काव्य-क्षेत्रमें नये प्रयोग बराबर हो रहे हैं। कन्नड़में अंग्रेज़ीकी सभी काव्य-विधाएँ स्वीकृत हो गयी हैं। विगत पच्चीस वर्षोंमें नवीन प्रयोगके लक्षण अधिक दिखायी पड़ रहे हैं और इनका नामभी सर्वत्र सुनायी पड़ता है। नवीन कवियोंने इस अवधिमें विविध प्रकारकी सफलताएँ पायी हैं। मुक्तक, प्रबंध, मार्ग, देसी आदि काव्यके नाना रूप आश्चर्यजनक रीतिसे विकसित हुए हैं। छंदोंकी दृष्टिसे भी कई अच्छे प्रयोग हुए हैं।

डॉ० डी०वी० गुण्डप्पा, मास्ति वेंकटेश अय्यंगार, द०रा० बेन्द्रे और राष्ट्रकवि के०वी० पुट्टप्पा प्रभृति मूर्धन्य साहित्यकारोंकी रचनाएँ नवीन साहित्यकारोंकी रचनाओंके साथ मिलकर साहित्यकी विशालता और संपन्नताको प्रकट कर रही हैं। डॉ० डी० वी० गुण्डप्पाकी साहित्य-साधनाके कई सुन्दर फल कन्नड़को प्राप्त हुए हैं। उनके 'श्रीमद्भगवद्गीता तात्पर्य अथवा जीवन-धर्मयोग' के लिए सन् १९६७ में साहित्य अकादमीने पुरस्कार प्रदान किया है। डी०वी०जी० जो उनका लोकप्रसिद्ध नाम है) भावुक कवि ही नहीं, चिन्तक और दार्शनिक भी हैं। उपर्युक्त रचना इस बातका प्रमाण है। कवितामें विचारोंका प्रचोदन और विश्लेषण हो सकता है, इसके लिए उनका और ग्रंथ 'मंकुतिम्मन कग्ग' (मूढ़ तिम्मका काव्य) साक्षी है। वह एक मेरुकृति है, कन्नड़की श्रेष्ठ कृतियोंमें ही नहीं, समग्र भारतकी श्रेष्ठ कृतियोंमें भी उसका नाम गिना जाना चाहिये। उसमें निरूपित जीवन-दर्शन साहित्यके लिए एक चिन्तनशील साहित्यकारकी अनूठी देन है। डी० वी० जी० की 'उमरन ओसगे' (उमरकी रूबायियातें), 'अंतःपुरगीतेगळु' (अंतःपुर गीत), 'बेलूरिन शिलाबालिकेयरु' (बेलूरकी शिलाबालिकाएँ) आदि रचनाओंके समान ही 'मंकुतिम्मन कग्ग' भी बहुत ही लोकप्रिय काव्य है। 'श्रीनिवास' उपनामधारी मास्ति सुप्रसिद्ध कहानीकार हैं। कवि और नाटककारके रूपमें भी उनकी विशेष ख्याति हुई है। उनकी कविताओं में भारत तथा कर्नाटककी संस्कृतिके सभी पहलुओंके चित्र हैं। राष्ट्रीयता, स्त्रियोंके प्रति गौरवकी अभिव्यक्ति और सात्विक श्रद्धालुता उनकी कविताओंकी विशेषताएँ कही जा सकती हैं। उनकी 'यशोधरा' (नाटक), 'चेन्नबसवनायक' (उपन्यास), 'भाव' (व्यक्तित्व विश्लेषण) आदि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं ही।

'नादलीले' (नादलीला), 'सखीगीत', 'गंगावतरण' आदि काव्य-संग्रहोंके कवि द०रा० बेन्द्रे कन्नड़के वरकवि हैं। उनकी कविताएँ लोक छंदोंके शोभा-वैशिष्ट्यसे परिपूर्ण हैं। इस कारण उनकी कविताओंको 'देसी' कह सकते हैं। उनकी कविताओंमें जादू करनेकी शक्ति है, गीतिकाव्यका माधुर्य है। 'इळिदु बा ताये इळिदु बा' (उतर आओ माँ, उतर आओ) जैसी उनकी कविताओंकी पंक्तियाँ भुलायी नहीं जा सकतीं। 'अरळु मरळु' (बुद्धि मांद्य) काव्य-संग्रहके लिए उनको साहित्य अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इस संग्रहकी कविताएँ रवि-रश्मियोंकी भाँति अर्थगरिमा प्रकीर्ण करती हैं। नवीन प्रयोगोंकी दृष्टिसे ही विचार करें तो बेन्द्रेके प्रयोग कम महत्त्वपूर्ण नहीं माने जा सकते। उनके नाटक और आलोचनाएँ उनकी बहुमुखी प्रतिभाके निदर्शक हैं।

डॉ० के०वी० पुट्टप्पाके कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। मुक्तकके अतिरिक्त उन्होंने प्रबंध काव्योंकी भी रचना की है। यहाँ उनके महाकाव्य 'श्रीरामायणदर्शनम्' का नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। वह उनकी अद्भुत प्रतिभा और तपस्याका प्रमाण है। आलोचकोंकी दृष्टिमें वह इस युगकी काव्यसिद्धि है। 'महाकाव्योंका युग समाप्त हो गया' कहनेवालोंके लिए वह एक चुनौती है। वह 'पाराडाइज़ लास्ट' सदृश महाकाव्योंका स्मरण दिलाता है। वह प्राचीनताकी भित्तिपर नवीन चिंतन और 'दर्शन' प्रस्तुत करनेवाला बृहत् काव्य है। साहित्य अकादमी और भारतीय ज्ञानपीठके सर्वोच्च पुरस्कारोंसे पुरस्कृत 'श्रीरामायणदर्शनम्' बहिर्घटनाको प्रतिबिंबित करनेवाला 'सत्स्य सत्य कथन' है। उसमें चार संपुट अथवा भाग हैं (अयोध्या संपुट, किष्किंधा संपुट, लंका संपुट और श्रीसंपुट) और संपूर्ण कथानक पचास सर्गोंमें विभाजित है। पुट्टप्पाजीकी वह जगद्भव्य रामायण महाछंदकी मेरुकृति है। श्रीरामचरित दार्शनिक दृष्टिके उद्घाटनके लिए बाह्य आवरण मात्र है, जैसे आत्माके लिए शरीरका आवरण होता है, वैसेही यह आवरण है। 'श्रीरामायणदर्शनम्' शीर्षकसे यह

दार्शनिक दृष्टि स्पष्टभी है। वेदान्तमें पंचकोशों द्वारा आत्माके विकासकी परिपूर्ण स्थितिका वर्णन किया जाता है। इसीके आधारपर उसमें दार्शनिक विचार प्रतिपादित हुए हैं। अयोध्या संपुट मनोमय कोशका, किष्किंधा संपुट प्राणमय कोशका, लंका संपुट अन्नमय कोशका एवं श्रीसंपुट विज्ञान-मय तथा आनंदमय कोशोंका प्रतीक है। इस प्रतीक योजनामें कविको पर्याप्त मात्रामें सफलता मिली है। रामके चरितको नूतन दृष्टिसे देखनेकी आधुनिक प्रवृत्तिभी यहाँ स्पष्ट है।

'कुवेम्पु' उपनामधारी पुट्टप्पाजी बहुमखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं। उनके कई निबंधोंके संग्रह प्रकाशित हुए हैं। यहाँ उनकी भावुक-प्रतिभाके सुंदर उदाहरणके रूपमें 'रसो वै सः' का उल्लेख करना आवश्यक है। उसमें उन्होंने रस, अलंकार और काव्य-बिम्बपर जो विचार व्यक्त किये हैं, वे उनकी दीर्घकालीन साहित्य-तपस्याके परिणाम हैं। उपन्यासकारके रूपमें 'कानूरु हेग्गडति' की रचनाकर उन्होंने यश पाया है। इधर प्रकाशित उनकी कृति 'मले-गळल्लि मदुमगळु' एक नवीन प्रयोग है। उसमें कथानक है और नहीं भी। वह उपन्यास है, कहानी है, वृत्तांत है, विचार है और नहीं भी।

'देसी' साहित्यके अच्छे नमूनेके रूपमें जी०पी० राज-रत्नम्के 'रत्नन पद' (रत्नके पद) का नाम यहाँ लिया जाना चाहिये। उसमें भाषाका माधुर्य है और मदिराकी दूकानके वातावरणका रम्य चित्रण है। डॉ० वि० कृ० गोकाककी 'नव्य कविते' का उल्लेख ऊपर किया गया है। वे तो प्रयोग-पारंगत हैं। उनके 'समुद्रगीतेगळु' में समुद्रकी रमणीयताका 'उगम' (उद्गम) में पार्वतीय शोभाका तथा 'द्यावा पृथ्वी' में हवाई जहाज़ द्वारा दर्शित प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़ा रसपूर्ण वर्णन है। उनके 'द्यावा पृथवी' काव्य संग्रहके लिए साहित्य अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है। डॉ० एस० वी० रंगण्णाने बारहवीं शताब्दीके शैवभक्त कवियोंकी भाषा-शैलीका अनुकरण करते हुए आधुनिक भाषामें 'वचन' की रचनाका नया प्रयोग किया है। उनके 'रंगबिन्नप' (रंगकी विनय) में ऐसे वचनोंका संग्रह है। इस ग्रंथके लिएं उनको साहित्य अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है। गंगाधर चित्तालके 'मनुकुलद हाडु' (मनुकलका गीत) में मुक्त छंद परंपराकी विशिष्टताएँ देखी जा सकती हैं। 'नव कविता' के प्रवर्तकोंमें गोपालकृष्ण अडिगका नामभी लिया जाता है। उनमें नवीनताका आग्रह स्वाभा-विक रूपमें प्रकट हुआ है। उनकी कविताओंमें प्राचीनताके प्रति, जो बासी हो गया है, अरुचि और असंतृप्ति व्यंजित हुई है। नवीन निर्माण और स्वस्थ परंपराकी उत्कट अभि-लाषा उनकी कविताओंकी विशिष्टता कही जा सकती है। उनकी भाषामें ओज है, शैलीमें प्रभावशीलता है और विचारधारामें निर्भीकता है। उनके सरीखे स्पष्टवादी अधिक नहीं हैं। उनके आलोचनात्मक लेख उनकी स्पष्ट-वादिता और तटस्थ मनोवृत्तिके प्रमाण हैं। उनके द्वारा संपादित 'साक्षी' के अंक उनके नवीन प्रयोगके साक्षी हैं।

गोपालकृष्ण अडिगकी कविताओंमें हम प्राचीन मार्गका त्याग और नवीन जीवनकी आकांक्षा का अवलोकन करते हैं। उनके 'भावतरंग', 'कट्टुवेवु नावु' (निर्माण करेंगे हम), 'नडेदु बंदे दारि' (विगत पथ) तथा 'चंद मद्दले' (चंड-मृदंग) जैसे काव्य संग्रहोंमें उनकी शक्तिसंपन्न कविताएँ संगृहीत हैं। उनकी प्रगतिवादी मनोवृत्ति और सामाजिक चेतनाके लिए 'विधिगे' (विधिके प्रति), 'होस बाळु' (नवीन जीवन), 'कट्टुवेवु नावु' (निर्माण करेंगे हम) आदि कविताएँ देखी जा सकती हैं। अडिगकी कल्पनामें शाली-नता है, उनके रूपकोंमें नवीनता और सूक्ष्मता है। कुछ आलोचक उनकी कविताओंमें पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद अथवा सूत्रराहित्य देखते हैं, इस कारण उनकी दृष्टिमें ऐसी कविताएँ कृत्रिम और क्लिष्ट हो गयी हैं। परन्तु यह आरोप केवल अडिगकी कविताओंपर ही नहीं, प्रायः अन्य नवीन पंथी कविताओंपर भी लगाया जा सकता है।

नवीन मार्गके अन्वेषकोंमें रामचंद्र शर्माका नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। गोपालकृष्ण अडिगसे प्रेरणा प्राप्त करते हुए भी उन्होंने अपने स्वतंत्र अस्तित्वको कायम रखा है। उनकी कारयित्री प्रतिभाके निदर्शक हैं उनके 'हृदयगीत' और 'एळु सुत्तिन कोटे' (सात भीतोंका किला)। उनकी कविताओंमें कर्कशता कम और लालित्य अधिक है। उनमें स्पष्टता है, यथार्थता है और गुप्त मनके जटिल चित्र भी हैं। 'क्षोभ', 'गौरीशंकर', 'तायि मगु' (माँ-बच्चा) जैसी कविताओंमें रमणीय शैलीमें नवीन भाव पिरोये गये हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद देशकी विभिन्न समस्याओंको लेकर भी कविताएँ लिखी गयीं। राष्ट्रीयता, गांधीवाद आदि विषय इन कविताओंमें देख सकते हैं। जयदेवी तायि लिगाडे, बेळेगेरे जानकम्मा, पार्वती देवी हेग्गडे प्रभृति कवियित्रियोंने भी नव्य प्रसूनोंसे कन्नड-कविताका शृंगार किया है। इन कवियित्रियोंकी कविताओंमें सामाजिक चेतना सुंदर शब्दोंमें प्रकट हुई है।

एक्कुण्डि, चेन्नवीर कणवि, के०एस० नरसिंहस्वामी तथा

डॉ० शिवरुद्रप्पा 'नव्य काव्य' के उन्नायकोंमें हैं। एक्कुण्डिकी कविताओंमें यद्यपि प्रगतिवादी भावनाएँ दिखायी पड़ती हैं तथापि उनकी नव्यताका कारण पौराणिक आख्यान सम्बन्धी रम्य रूपकोंकी निर्मितिमें है। चेन्नवीर कणविकी कविताएँ नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाके लिए अच्छे उदाहरण हैं। उनकी कविताओंके संग्रह हैं—'काव्याक्षी', 'भावजीवी', 'आकाशबुट्टि' (आकाशकी टोकरी), 'मधुचंद्र' तथा 'दीपधारी'। उनकी कविताओंमें सहज अभिव्यक्ति और उच्च कल्पना द्रष्टव्य है। प्रेम और प्राकृतिक विषयोंको लेकर लिखी गयी कविताओंमें सामंजस्य और नवीनता है। के० एस० नरसिंहस्वामीकी कविताओंका विषय यद्यपि प्रेम है, तथापि उनमें पवित्र शृंगारकी मधुरिमा और नवीन कांति है। उनके 'मैसूरु मल्लिगे' (मैसूरकी मल्लिका) में संगृहीत कविताओंकी सुगंधि सर्वत्र फैली हुई है। उनमें विवाहोत्तर प्रेमके रसपूर्ण चित्र हैं। सुंदर भावोंकी अभिव्यक्ति और मनोहर शैलीके लिए ये कविताएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनमें व्यावहारिक भाषाका लालित्य, व्यंग्य-विनोद और सौन्दर्यकी गरिमा है। डॉ० जी० एस० शिवरुद्रप्पा कविके साथ-साथ अच्छे आलोचक भी हैं। उनके 'सामगान', 'चेलुवु ओलुवु' (सौन्दर्य और प्रेम), 'संजे दारि' (शामका रास्ता) तथा 'देवशिल्प' काव्य संग्रहोंमें उनकी नयी विधायक मनोवृत्ति प्रकट हुई है। उनकी कविताओं में परंपरागत और नवीन दोनों प्रकारकी कल्पनाकी सूक्ष्मता देखी जा सकती है। उनकी भाषा-शैलीमें नवीन आकर्षण है। 'संजे दारि' (शामका रास्ता), 'तायि तन्न मगुविगे' (माँ अपने बच्चेसे), 'बागिलल्लि' (द्वारपर), 'जडे' (वेणी) जैसी उनकी कविताएँ अत्यंत रोचक और रसपूर्ण हैं।

कन्नड़-गीतिकाव्य-परम्परामें पु० ति० न० (नरसिंहाचार्य) की कविताओंका विशिष्ट स्थान है। यद्यपि नव्य काव्यकी धारासे उनका संबंध नहीं है, तथापि यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कई नये प्रयोग किये हैं। 'हणते' (प्रणीता), 'मांदळ्ळिरु' (आम्रपल्लव), 'शारदयामिनी', 'गणेशदर्शन' आदि काव्य संग्रहोंके अतिरिक्त उनके 'विकट कवि विजय', 'हंस दमयन्ती मतु इतर रूपकगळु' (हंस-दमयन्ती तथा अन्य रूपक) जैसी नाट्य कृतियाँ भी पर्याप्त प्रसिद्ध हुई हैं। 'विकट कवि विजय' में गंभीर हास्य है। 'हंस दमयन्ती मतु इतर रूपकगळु' में गीतिनाट्यका माधुर्य है। इस कृतिके लिए उनको साहित्य अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है। 'इचलमरद केळगे' (देसी खजूरके पेड़के नीचे), 'रामाचारिय नेनपु' (रामाचारीकी स्मृतियाँ) आदि कृतियोंमें उनकी गद्य शैलीका नमूना मिलता है। 'काव्य कुतूहल' में उन्होंने काव्यके सम्बन्धमें नये ढंगसे सोचने का प्रयत्न किया है। 'सत्यायन हरिश्चंद्र' में उनका नवीन काव्य-चिंतन द्रष्टव्य है। आधुनिक कवियोंमें पु० ति० न० का निश्चयही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुरानी पीढ़ीके कवियोंमें स्व० ती० नं० श्रीकण्ठय्या, कडंगोड्लु शंकर भट्ट और 'रसिकरंग' उपनामधारी रं०श्री० मुगलिके नाम विस्मृत नहीं किये जा सकते। स्व० ती०नं० श्रीने कविताएँ कम लिखी थीं। 'किरिय काणिके' (छोटा उपहार) और 'तळिरु' (नवपल्लव) में उनकी कविताओंका संग्रह है। उन्होंने कतिपय संस्कृत और अंग्रेज़ी कविताओंका अच्छा अनुवाद भी किया है। भाव और भाषाकी दृष्टिसे उनकी कविताएँ ललित और सुंदर हैं। शंकर भट्टका नाम श्रेष्ठ कवियोंकी पंक्तिमें रखा जाता है। उनकी कविताओंमें कल्पनाकी उच्चता और भावोंकी मधुर अभिव्यंजना देखी जाती है। 'काणिके' (उपहार), 'नल्मे' (प्रीति), 'हण्णु कायि' (फल-फूल) जैसे काव्य संग्रहोंमें उनकी कविताएँ संगृहीत हैं। रसिकरंगकी कविताएँ 'बासिग' (हार), 'अपार करुणा' और 'ओं अशान्तिः' में संगृहीत हुई हैं। प्राचीन काव्योंसे प्रेरणा ग्रहणकर प्रकृतिसे नया उन्मेष प्राप्त करते हुए उन्होंने अपने व्यक्तित्वका निर्माण किया है। उनकी कविताओंमें सुंदर कल्पना, अच्छे काव्य बिम्ब, सौन्दर्यानुबोध, आशावादिता तथा आध्यात्मिक भावनाशीलता देखनेको मिलती है।

वी० सी० (सीतारामय्या) वर्तमान युगके वयोवृद्ध साहित्यकार हैं। प्राचीनता और नवीनताके बीच उन्होंने अपना मार्ग आविष्कृत किया है। 'गीतगळु' ('गीत'), 'दपगळु' (दीप), 'बेळकु' (प्रकाश) 'द्राक्षिदाळिम्बे' (अंगूर और अनार) जैसे उनके काव्य संग्रहोंमें प्राचीन आर्षवाणी की स्फूर्ति, नया जीवनदर्शन, देशभक्ति व क्रान्तिकी भावनाएँ देखी जा सकती हैं। 'कस्मै देवाय', 'अभीः' 'शतं जीवेम शरद शतम्' आदि उनकी कविताओंमें बड़ी रमणीय कल्पना की अभिव्यक्ति हुई है। उदात्त भाव और विचारोंके संगुंफनसे युक्त उनकी कविताएँ सत्वपूर्ण कही जा सकती हैं।

अच्छी कल्पना और उत्कृष्ट शैलीके कवि ईश्वर सणकल्ल और जनवादी परम्पराके कवि सिम्पि लिंगण्णाके नामभी यहाँ उल्लेखनीय हैं। 'कोरिके' (अभिलाषा) में ईश्वर सणकल्लकी कविताएँ संगृहीत हुई हैं। लिंगण्णाने स्व० रामनरेश त्रिपाठीके 'मिलन' का कन्नड़में भावानुवाद किया है। उनकी फुटकर कविताएँ 'मुगिलु जेनु' (मेघ-

मधु) में संगृहीत हुई हैं। ललित शैलीमें दिनकर देसाईने अच्छी कविताएँ लिखी हैं जो उनके 'कवन संग्रह' में संगृहीत हैं। उन्होंने कतिपय शिशुगीत भी लिखे हैं। उनकी 'दीनगिन्त देव बडव' (दीनसे भगवान गरीब है) कविता बहुत लोकप्रिय हुई है। 'नक्षत्रगान', 'भावतीर्थ' आदि काव्य संग्रहोंके प्रणेता डॉ० डी० एस० कर्कि; पार्वतीय प्रदेशकी सौन्दर्य-सुषमाके गायक एस०वी०शंकर भट्ट जिनकी कविताएँ 'रागिणी', 'जहांनारा' और 'गगनचुक्कि' में संगृहीत हैं; 'बाळकनसु' (जीवन-स्वप्न) और 'जीवनाद' के द्वारा ओजपूर्ण कविताएँ देनेवाले कवि कृष्णमूर्ति पुराणिक; 'वरुण' के कवि पेजावर सदाशिव राव; 'कोळल कृष्ण' (मुरलीका कृष्ण), हू गोचलु (फूलोंका गुच्छा), 'चेंगलवे' (रक्तोत्पल) और 'सुपन्था' के रचयिता पाण्डेश्वर गणपति राव; 'मेघनाद' काव्य संग्रहके कवि बी०एस० श्रीधर;'हक्कि हाडु' (चिड़िया गीत), 'राग' और 'आ चित्रगळु मतु इतर कथन कवनगळु' (वे चित्र तथा अन्य कथन-कविताएँ) के कवि 'राघव' उपनामधारी एम० वी० सीतारामय्या; 'कळेद पुटगळु' (बीते पृष्ठ) के प्रणेता विनीत रामचंद्र; 'नन्न गीतगळु' (मेरे गीत) के रचयिता गीतप्रिय एवं जीवन-साधना और स्वानुभूतिके गायक प्रह्लाद नरेगल्ल प्रभृति लोगोंके नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं। नव्य काव्यधारामें लगभग एक सौ कृतियोंकी गिनती की जा सकती है, पर यहाँ उन समस्त कृतियोंका उल्लेख भी संभव नहीं है। हाँ, इस काव्यधाराकी विशेषताओंके संबंधमें संक्षेपमें उल्लेख किया जा सकता है, यथा—(१) नव्यकाव्यही सच्चा काव्य है, यह विचार कुछ नव्यवादियोंके आग्रहका परिणाम है। उन लोगोंकी दृष्टिमें जो नव्यकाव्यकी दीक्षा स्वीकार नहीं करते, वे यातो अनिश्चितताके बवंडरमें फँसे हुए हैं या उनकी कविताकी शक्ति नष्ट हो चुकी है। (२) नव्य-काव्यकी परम्परा और सिद्धि अभूतपूर्व है। वस्तुतः इसके पूर्व कन्नड़में ऐसा काव्य नहींके बराबर था। (३) नव्य कविताही ईमानदारीकी कविता है। (४) नव्य कवियों में वर्तमान समाजके प्रति जितनी चेतना है, उतनी पूर्वके कवियोंमें नहीं थी। पूर्वके कवि जीवनके यथार्थसे विमुख होकर पलायनवादी बने हुए थे। (५) नव्यकाव्यमें अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे जो नवीनता दिखायी पड़ती है, वही उसकी सिद्धि है। उपलब्धिकी दृष्टिसे यह कम महत्त्वकी वस्तु नहीं है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि सभी नये कवि पूर्वाग्रहग्रस्त नहीं हैं। कुछ लोग प्राचीन काव्य-परम्पराके मूल्यको उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखते। यह कहना गलत होगा कि प्राचीन कवियोंमें सामाजिक चेतना नहीं थी। देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता सम्बन्धी कविताओंको पढ़नेसे ज्ञात होगा कि यह बात कितनी निरर्थक है। प्रयोगकी दृष्टिसे आधुनिक कवियोंने जो साधना की है, वह अवश्य स्तुत्य है। इन कवियोंने कविताकी भाषाको व्यावहारिक भाषाके समीप लानेका सफल प्रयास किया है। प्रयोगकी नवीनता श्लाघ्य होती है, पर उससे क्लिष्टताकी समस्याभी उत्पन्न होती है। नवीन प्रयोगके नामसे काव्यमें अपूर्ण अथवा खण्डित बिम्ब प्रस्तुत करनेसे काव्य दुर्बोध और क्लिष्ट बन जाता है। वर्तमान युगकी कतिपय कविताओंपर यह दोषारोपण अनुचित नहीं कहा जा सकता।

गद्य-लेखन

कन्नड़में प्राचीन कालसे ही गद्य लेखनकी परंपरा विद्यमान है। कन्नड़के प्राचीन काव्योंमें पद्यके साथ गद्यका भी प्रयोग द्रष्टव्य है। आधुनिक युगमें गद्य-शैलीका विकास अनेक रूपोंमें हुआ है। उपन्यास, कहानी, निबंध, प्रबंध, आलोचना, जीवनी आदि साहित्य-विधाओंमें गद्य-शैलीके विविध रूपोंको देख सकते हैं। गद्यशैलीकारोंमें यहाँ डी० वी० जी० मास्ति, स्व० ए० आर० कृष्णशास्त्री, कुवेंपु, बी० सी० पु० ति० न०, एम० वी० सीतारामय्या और सी० के० वेंकट-रामय्याके नाम मुख्यरूपेण उल्लेखनीय हैं। डी० वी० जी० की कविताओंके संबंधमें ऊपर बताया गया है। उनके 'जीवन सौन्दर्य मत्तु साहित्य' में विचारात्मक निबंध हैं जिनकी शैली आदर्श गद्यशैली कही जा सकती है। 'गोपालकृष्ण गोखले' और 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तात्पर्य अथवा जीवनधर्म-योग' भी अच्छी गद्यशैलीके उदाहरण हैं। कथाकारके रूपमें मास्तिको विशेष ख्याति मिली है। कन्नड़-कहानी-साहित्यके वे पितामह माने जाते हैं। उनकी 'रामकृष्ण परमहंसरु' जैसी जीवनीमें गद्यशैलीका सुंदर रूप उपलब्ध होता है। उनके उपन्यास और कहानियोंमें तो आदर्श गद्यशैली है ही। उनकी शैलीमें प्रसाद गुणका प्राधान्य है। स्व० ए० आर० कृष्ण शास्त्रीका 'वचन भारत' एक उत्कृष्ट ग्रंथ है जिसमें महाभारतका सार-संचयन है। उसकी शैलीमें मोहकता और भाषामें आकर्षण है। वह उनके गंभीर अध्ययन और चिन्तनका सुपरिणाम है। कन्नड़ जनताके लिए वह एक अद्‌भुत देन है। शास्त्रीजीने सोमदेवके कथासरित्सागरके आधारपर 'कथामृत' की रचना की है, वह भी सुन्दर गद्य-शैलीका अच्छा उदाहरण है। शास्त्रीजीके 'बंगाति कादं-बरिकार बंकिमचंद्र' ग्रंथके लिए साहित्य अकादमीका

पुरस्कार प्राप्त हुआ है। गद्यशैलीकारके रूपमें शास्त्रीजी को अखण्ड यश प्राप्त हुआ है। कुवेंपुकी गद्य-कृतियोंमें 'विभूतिपूजे', 'तपोनंदन' के अतिरिक्त 'स्वामि विवेकानंद' का नाम यहाँ उल्लेख्य है। उनकी शैलीकी यह विशेषता है कि उसमें तत्सम शब्दोंका आधिक्य होता है, तथापि वह दुरूह नहीं होती है। बी०सी०जी० के निबंधोंमें सूक्ष्म निरीक्षण और विवेचनके सौकुमार्यके साथ-साथ आदर्श गद्यका रूप देखा जा सकता है। गीतिकाव्यकार पु० ति० न० के निबंधोंने गद्यशैलीको नयी गति प्रदान की है। 'ईचलमरद केळगे' (देसी खजूरके पेड़के नीचे) के निबन्ध इसके साक्षी हैं। एम० वी० सीतारामय्याने सामाजिक समस्याओंको लेकर कई उपन्यास लिखे हैं। उनके निबन्ध संग्रह 'मुगिलुगळु' (मेघ) में सुंदर गद्यका नमूना मिलता है। सी०के० वेंकटरामय्याके ग्रंथोंमें यहाँ 'आळिद महास्वामियवरु' (राज्य किये हुए महाराजा) का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। सिद्धव्वनहल्लि कृष्णशर्माकी 'कन्नडद किडिगळु' (कन्नडके अंगारे), 'वर्धयात्रे' और 'पर्णकुटि' जैसी जीवनियोंमें सरल, सुबोध गद्यशैलीमें व्यक्तिचित्र प्रस्तुत किये गये हैं। हास्य-व्यंग्य शैलीमें प्रभावशील गद्य लिखने वालोंमें ना० कंस्तूरि और नाडिगेर कृष्णरायके नाम प्रसिद्ध हैं। इन लेखकोंने चमत्कारपूर्ण शैलीके मार्गका आविष्कार किया है। आधुनिक शैलीकारके रूपमें डॉ० एस० वी० रंगण्णाको अपार कीर्ति मिली है। 'शैली' नामसे प्रकाशित उनके ग्रंथकी शैली समस्त विशेषताओंसे युक्त है। महाकवि कुमारव्यासकी शैलीपर रंगण्णाने बहुत अच्छा प्रबन्ध लिखा है। ए० एन० मूर्तिरावके विचारात्मक निबन्धोंकी भाषामें चमत्कार है। अच्छे गद्य लेखकोंमें मूर्तिरावका निश्चयही उच्च स्थान है। 'हगलुगनसुगळु' (दिवास्वप्न) और 'अलेयुव मन' (घूमता मन) निबन्ध संग्रहोंमें उनकी गद्यशैलीका स्वरूप देखा जा सकता है। स्व० ली० नं० श्रीकण्ठय्याकी आलोचनात्मक गद्यशैली गम्भीर होती है। 'सम्भावने' (अभिनंदन ग्रंथ), 'समर्पणे' (समर्पण) और 'बागिन' (उपहार) जैसे ग्रंथोंमें उनकी शैलीका नमूना मिलता है। त० सु० शामरायके 'कन्नड महाभारत' और 'वचन भागवत'; 'श्रीरंग' उपनामधारी आद्य रंगाचार्यका 'गीता गाम्भीर्य'; सिंपि लिंगण्णका 'कन्नड कुलदीपक बसवण्णनवर जीवन'; हार्डिकर मंजप्पाका 'हिन्दुत्व'; बुर्लि बिंदुमाधवका 'राष्ट्रपतिगळु' (राष्ट्रपतिजी) तथा डॉ० रं०श्री० मुगलिके आलोचनात्मक लेख भी गद्यशैलीके अच्छे उदाहरण हैं।

नाटक तथा अन्य प्रकाशन

स्वातंत्र्योत्तर कालमें 'शोकचक्र', 'जरासंधि', 'कर्तारन कम्मट' (कर्तारकी टकसाल), 'जीवनजोकालि' (जीवनका झूला), 'यमन सोलु' (यमकी हार), 'सम्पुष्ट रामायण' आदि नाटकोंकी रचना हुई है। कन्नड़के वयोवृद्ध साहित्यकार शिवराम कारंत बहुमुखी प्रतिभासंपन्न व्यक्ति हैं। उन्होंने अनेक प्रकारके प्रयोग किये हैं, उनके नाटक ऐसे प्रयोगोंके लिए उदाहृत हो सकते हैं। उन्होंने पद्य नाटक, गीत नाटक तथा छाया नाटक लिखे हैं। उनके नाटकोंमें स्वतंत्र कल्पना शक्तिका विकास हुआ। 'सोमिय सौभाग्य', 'यारो अंदरु' (किसीने कहा) और 'मुक्तिद्वार' कन्नड़-नाटक-साहित्य को उनकी सर्वोत्कृष्ट देन हैं। कुवेंपुने ऐतिहासिक, पौराणिक आदि विषयोंको लेकर नाटकोंकी रचना की है। उनके नाटकोंमें कल्पनाकी समृद्धि और शब्दविलास देखतेही वनते हैं। उनके 'शूद्र तपस्वी', 'बेरळ्गे कोरळ्' और 'स्मशान कुरुक्षेत्र' नाटक इसके अच्छे उदाहरण हैं। कैलासम्‌के मार्गानुगामी नाटककार हैं पर्वतवाणी और क्षीरसागर। पर्वतवाणीने अपने नाटकोंके लिए सामाजिक विषय चुने हैं। दैनिक जीवनसे सम्बन्धित समस्याओंके रूप उनके नाटकोंमें मिलते हैं। उनके नाटकोंकी भाषामें हास्य-व्यंग्यके द्वारा दर्शकोंके मनको आकृष्ट करनेकी अद्भुत शक्ति विद्यमान है। बच्चोंके मनको प्रसन्न करनेवाले नाटकोंकी सृष्टिभी उन्होंने की है। क्षीरसागरके सामाजिक नाटक कैलासम्‌के नाटकोंके समान अधिक लोकप्रिय हुए हैं। पाश्चात्य ढंगके नाटकोंके नमूने उपस्थित करनेमें क्षीरसागरको विशेष सफलता मिली है। कैवार राजारावके नाटकोंमें वस्तुविन्यास, पात्रोंके चरित्र-चित्रण और वातावरणकी निर्मितिकी अपेक्षा सरस संभाषणकी प्रधानता है। 'गण्डन जुल्माने' (पतिका जुर्माना), 'प्रेम परीक्षे' और 'वधू परीक्षे' उनकी प्रसिद्ध एकांकी नाटक हैं। वयोवृद्ध साहित्यकार बेन्द्रे और अ० न० कृष्णरायने अच्छे नाटक लिखे हैं। एन०के० कुलकर्णीने एकांकीके क्षेत्रमें उल्लेखनीय कार्य किया है। उनके 'बेळकु' (प्रकाश) और 'नडुमनेयल्लि' (मध्यगृहमें) अच्छे नाटक हैं। ना० कस्तूरि, नरेन्द्र बाबू, श्रीमती सुनंदम्मा, बल्लारि बीचि, ए० एन० मूर्तिराव, एम० वी० सीतारामय्या, निशाकान्त, दाशरथी दीक्षित, गिरीश कार्नाड आदि नाटककारोंके नामभी यहाँ उल्लेख्य हैं। गिरीश कार्नाडका 'तुग़लक' वर्तमान युगके नये चिंतनकी उपलब्धि है। अंग्रेज़ीमें भी उसका

रूपांतर हुआ है। उसमें तुग़लकके राजनीतिक व्यक्तित्वको पहचाननेका अच्छा प्रयास किया गया है।

इस समय कन्नड़को सर्वप्रकारेण संपन्न और समृद्ध-शाली बनानेकी दिशामें स्तुत्य कार्य हो रहे हैं। वैज्ञानिक और तकनीकीविषयक पुस्तकोंका प्रकाशन अधिक संख्यामें हो रहा है। सदियों पहले भट्टाकलंक नामक कन्नड़ वैया-करणने जो कहा था कि कन्नड़ शास्त्रके प्रतिपादनके लिए अनुपयोगी नहीं है, वह आजभी स्मरणीय है। विगत पच्चीस वर्षोंमें कन्नड़में शास्त्रविषयक अच्छे ग्रंथोंका प्रणयन हुआ है। यक्षगान (लोक गीतनाट्य) कन्नड़की एक विशेष प्रकारकी साहित्य विधा है। कन्नड़में अनेक यक्षगान मिलते हैं। आजभी यक्षगान कलाकी उपासना करनेवाले कलाकार हैं। कन्नड़के सुप्रसिद्ध विद्वान् शिवराम कारंतने इस कलापर 'यक्षगान बयलाट' नामक सुन्दर पुस्तक लिखी है जिसके लिए साहित्य अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है। उसमें लेखकने यक्षगान साहित्य विधाका संपूर्ण इतिहास और विवेचन प्रस्तुत किया है। कारंत स्वयं नट और नटोंके गुरु हैं, उनकी बहुमुखी प्रतिभाके निदर्शनके रूपमें उनकी कृति विलसित है। उन्होंने बहुत परिश्रमसे जो विश्वकोश प्रकाशित किया है, वहभी उनकी बहुमुखी प्रतिभाका प्रमाण है। वे आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले साहित्यकार हैं।

इधर कुछ वर्षोंसे कन्नड़में भाषावैज्ञानिक कार्यका विस्तार हुआ है। प्रो० रा०य० धारवाडकरका 'भाषाशास्त्र' ग्रंथ यहाँ प्रथमतः उल्लेख्य है। उसमें भाषाविज्ञानके सामान्य सिद्धान्तोंके विवेचनके साथ-साथ कन्नड़की उत्पत्ति और विकासके संबंधमें भी विचार किया गया है। इसके बाद डॉ० चिदानंदमूर्तिके 'भाषाविज्ञानद मूलतत्वगळु' तथा हंप नागराजय्याके 'द्राविड भाषाविज्ञान' और 'भाषाविज्ञान' के नाम लिये जाने चाहियें। नागराजय्याके 'द्राविड भाषा-विज्ञान' को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। मास्तिने 'नम्म नुडि' नामसे जो पुस्तक प्रकाशित करायी हैं, वे पूरी वैज्ञानिक न होते हुए भी रोचक कही जा सकती हैं। अंग्रेजीमें कन्नड़ भाषाशास्त्रसंबंधी पुस्तकोंका प्रकाशन हुआ है, यथा—'डॉ० आर० सी० हिरेमठका 'स्ट्रक्चर ऑफ़ कन्नड', डॉ० ए० के० रामानुजनका 'ए जनरेटिव ग्रामर ऑफ़ कन्नड', डॉ० एच०एम० नायकका 'कन्नड़ लिटरेरी अण्ड कोलोकियल' आदि। कन्नड़-व्याकरणसंबंधी ग्रंथभी अंग्रेजीमें लिखे गये हैं। कन्नड़में प्रकाशित कतिपय मुख्य ग्रंथ इसप्रकार हैं: प्रो० डी० के० भीमसेनरावका 'शब्दमणिदर्पणद पाठा-न्तरगळु', डॉ० डी० एल० नरसिंहाचार्यद्वारा संपादित 'शब्दमणिदर्पण', चिक्कण्णय्याका 'सचित्र नवीन व्याकरण पाठगळु', एस० हनुमंतप्पाका 'कन्नड़ नुडिगन्नडि', म० प्र० पूजारका 'केलवु कन्नड व्याकरण विचारगळु', तिरु श्री निवासाचार्यका 'व्याकरणसार' और मान्वी नरसिंगरावका 'नडुगन्नड'। सेडियापु कृष्णभट्टके 'कन्नड वर्णमाले', डॉ० डी० एल० नरसिंहाचार्यके 'शब्दविहार' और डॉ० बिलिगिरिके 'वर्णनात्मक भाषाविज्ञान' भी भाषावैज्ञानिक चिंतनके ही परिणाम हैं। स्व० डी० एल० नरसिंहाचार्यने पाठानुसंधानके क्षेत्रमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनका 'कन्नड ग्रंथ संपादने' उनकी दीर्घकालीन तपस्याका फल है। १९७१ में प्रकाशित उनके 'पीठिकेगळु लेखनगळु' में आलोचनात्मक लेखोंके अतिरिक्त 'कन्नड निरुक्त' शीर्षकके अंतर्गत २३ भाषावैज्ञानिक लेख हैं। आलोचक और भाषाशास्त्रीके रूपमें आचार्यजीका नाम कन्नड़-साहित्यमें अमर रहेगा। स्व० ती० नं० श्रीकण्ठय्या, डॉ० आर० सी० हिरेमठ और प्रो० मरियप्पभट्टके प्रकाशित लेखभी कन्नड-भाषाशास्त्रके लिए अच्छी देन हैं।

इतिहासविषयक ग्रंथोंमें, जिनकी संख्या कम नहीं है, पा० भी० देसाईके 'मिंचिद महिळेयरु' (महिलाएँ जो कौंधी) और 'विजयनगर साम्राज्य', डॉ० एम० वी० कृष्णराव और एम० केशवभट्टके 'कर्णाटकद इतिहासदर्शन' एवं मैसूर सरकारद्वारा प्रकाशित 'कर्णाटक संस्कृति' जैसे ग्रंथोंका नामोल्लेख होना चाहिये। साहित्यके इतिहास-लेखकोंमें डॉ० रं० श्री० मुगलिका नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है जिनके 'कन्नड साहित्य चरित्रे' को साहित्य अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अकादमीने कुछ वर्ष पूर्व उनके 'कन्नड साहित्यद इतिहास' का भी प्रकाशन किया है जिसका हिन्दी अनुवाद १९७१ में निकला है। प्रो० मरियप्प भट्टके 'संक्षिप्त कन्नड साहित्य चरित्रे' में संक्षेपमें साहित्यका इतिहास प्रस्तुत किया गया है। त० सु० शामरावके 'जनप्रिय कन्नड साहित्य चरित्रे' तथा 'कन्नड साहित्य चरित्रे—ओंदु समीक्षे' में आधुनिक कालतकके इतिहासका विवेचन है। पिछले दशकमें प्रकाशित डॉ० एम० एच० कृष्णका 'कर्णाटकद पूर्व चरित्रे' एक स्फूर्तिदायिनी रचना सिद्ध हुई है। अनंत-रंगाचार्यकी 'साहित्यभारती' में समस्त भारतीय भाषाओंके साहित्येतिहासको प्रस्तुत करनेका महान् प्रयत्न किया गया है।

आलोचना-निबन्ध

सैद्धान्तिक आलोचना संबंधी ग्रंथोंका प्रकाशन इस समय अधिक संख्यामें हुआ है। डॉ० के० कृष्णमूर्तिने

संस्कृतके काव्यशास्त्र-ग्रंथोंका अनुवादकर इस क्षेत्रमें अत्यंत स्तुत्य कार्य किया है। उन्होंने भामह, मम्मट, क्षेमेन्द्र, आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त तथा वाभनके ग्रंथोंका अनुवाद किया है। उनके 'संस्कृत अलंकार' और 'भारतीय-काव्यमीमांसा तत्व मत्तु प्रयोग' कन्नड-साहित्यालोचनके लिए अनुपम देन हैं। एन० बालसुब्रह्मण्यने अंग्रेजीसे अरस्तू और होरेसके ग्रंथोंका सफल अनुवाद बड़ी अच्छी भूमिकाओंके साथ प्रस्तुत किया है। के० वी० सुब्बण्णाका 'दशरूपक' उत्तम संदर्भग्रंथ माना गया है। सी०पी०के० (कृष्णकुमार) ने पाश्चात्य साहित्यालोचनसंबंधी ग्रंथोंका अनुवाद ही नहीं किया है, मौलिक पुस्तकें भी लिखी हैं। डॉ० एच० तिप्पेरुद्रस्वामीकी पुस्तक 'साहित्य विमर्शेय मूलतत्वगळु' में आलोचककी आधुनिक दृष्टिभी स्पष्ट है। कुवेम्पुकी 'रसो वै सः' में रस, अलंकार तथा काव्यबिम्बपर उनके सुलझे हुए विचार अभिव्यक्त हुए हैं। बी० एच० श्रीधर तथा डॉ०रं० श्री० मुगलिने भी इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय कार्य किया है। डॉ० एस० वी० रंगण्णाके 'पाश्चात्य गंभीर नाटकगळु' तथा डॉ० जी०एस० शिवरुद्रप्पाके 'विमर्शेय पूर्व पश्चिम' का नामोल्लेख भी इस संदर्भमें होना चाहिये।

निबंध और आलोचनात्मक कृतियोंके विचारसे यह समय संपन्न कहा जा सकता है। श्रेष्ठ निबंधकार ए०एन० मूर्तिरावका उल्लेख ऊपर किया गया है। एन०के०एम० वी० सीतारामय्या, कृष्णमूर्ति पुराणिक, एच०एस०के० (कृष्णस्वामी अय्यंगार), एस०मंजुनाथ, स०स० मालवाड, एन०एस० गदगकर, वाडप्पि, डॉ० हा०मा० नायक आदि अच्छे निबंधकार माने गये हैं। इनके निबंधोंमें समकालीन प्रज्ञा और सामाजिक चेतना दर्शनीय है। भाषाकी दृष्टिसे भी ऐसे निबंध महत्त्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। मास्ति, कुवेंपु, बेन्द्रे और डी० वी०जी०प्रभृति बड़े साहित्यकारोंकी प्रेरणा उनके लेखोंके द्वारा आजके लेखकोंको प्राप्त है। इस युगके वरिष्ठ आलोचकोंमें स्व० डॉ० डी०एल० नरसिंहाचार्य, डॉ० रं० श्री० मुगलि, डॉ० वि० कृ० गोकाक, डॉ०शिवरुद्रप्पा,डॉ०आर०सी०हिरेमठ, प्रो०त०सु०शामराव, के०डी० कुर्तुकोतटि, डॉ० वेंकटसुब्बय्या, एम०वी० सीतारामय्या, सी०के० वेंकटरामय्या, एम०वी० सीतारामय्या, डॉ० शं०भा० जोशी, प्रो० जवरेगौडा, डॉ० हा०मा० नायक, डॉ० वरदराजाराव आदिके नाम लिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई महानुभाव इस क्षेत्रमें सराहनीय कार्य कर रहे हैं। इन सभी लेखकोंकी कृतियोंकी आलोचना क्या,नामोल्लेख भी स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं किया गया है। आज कन्नड़ आलोचनाको नयी स्फूर्ति मिली है। प्राचीन पद्धतिको छोड़कर नयी पद्धतिको अपनानेका आग्रह दिखायी पड़ता है। नये आलोचक प्राचीन मूल्यको स्वीकार करनेके पक्षमें नहीं हैं। उनका कहना है कि देश-कालकी अभिरुचिके अनुसार आलोचनाका स्वरूप बदलना चाहिये। इस कालको एक दृष्टिसे संधिकाल कहा जा सकता है, क्योंकि इस समय प्राचीन परंपराके अनुसार आलोचना करनेवाले हैं, और नये मूल्योंको स्वीकार कर आलोचना करनेवाले भी। आलोचनात्मक और शोधपूर्ण ग्रंथोंमें स्व० डी०एल०नरसिंहाचार्यके 'पीठिकेगळु', लेखनगळु'; डॉ० शं० भा० जोशीके 'कर्नाटक संस्कृति दर्शन'; डॉ० एच० तिप्पेरुद्रस्वामीके 'कर्णाटक संस्कृति समीक्षे'; डॉ० डी०एस० र्करकिके 'कन्नड छंदोविकास'; डॉ० पी० वी० वेंकटाचल शास्त्रीके 'कन्नड छंदस्सु'; डॉ०चिदानंदमूर्तिके 'संशोधन तरंग'; स्व० ती०न० श्रीकण्ठय्याके 'भारतीय काव्य मीमांसे', 'काव्यसमीक्षे' और 'समालोकन';प्रो०मरियप्प भट्टके 'कन्नड़ संस्कृति';डॉ०आर० सी० हिरेमठके 'साहित्य संसृष्टि'; डॉ० सुंकापुरके 'कन्नड साहित्यदल्लि हास्य'; एस०स० मालवाडके डॉ० जी०एस० शिवरुद्रप्पाके 'प्रोयोगिक विसशे'; प्रो० दे० जवरेगौडाके 'कविदर्शन'; डॉ० हा०मा० नायकके 'ए डिकेड इन कन्नड लिटरेचर' और 'समीक्षे' तथा के०डी० कुर्तुकोटिके 'नडेदु बंद दारि' (विगत पथ); डॉ० सरोजिनी महिषीके 'कन्नड कवियित्रियरु' आदिको विस्मरण नहीं किया जा सकता। यहाँ जिन लेखकों या ग्रंथोंके नाम नहीं बताये गये हैं, उन्हें कम महत्त्वका नहीं समझना चाहिये।

उपन्यास-कहानी

अ०न० कृष्णराय, त०रा० सुब्वराय, बसवराज कट्टिमनि, कृष्णमूर्ति पुराणिक, निरंजन, इनामदार, रावबहादुर, मिर्जी अण्णाराय, एम० वी० सीतारामय्या, देवुडु नरसिंह शास्त्री, गोकाक, के० वी० अय्यर, यू० आर० अनंतमूर्ति, एस० एल० भैरप्पा और व्यासराय बल्लाळ प्रभृति उपन्यास लेखकोंके नाम मुख्य रूपसे लिये जा सकते हैं। इन लेखकोंके उपन्यासोंमें विविध समस्याओंके स्वरूप दृष्टिगत होते हैं। कुछ मुख्य उपन्यासोंके नाम इस प्रकार हैं—कारंतका 'अळिद मेले', अ० न० कृष्णरायके 'नटसार्वभौम' और 'साहित्यरत्न', त० रा० सु० के 'रक्तरात्रि', 'तिरुगु बाण' (उलटा बाण) और 'हंसगीत', बसवराज कट्टिमनिके 'माडि मडिदवरु' (करके जो मरे), 'स्वातंत्र्यदेडेगे' और 'मण्णु मतु हेण्णु' (मिट्टि और नारी), कृष्णमूर्ति पुराणिकका 'बेवरिन बेले' (पसीनेका मूल्य), निरंजनके 'विमोचन', 'वनशंकरी'

श्रौर 'रंगम्मन वठार' (रंगम्माका गृहसमूह), इनामदारका 'बाडिद हू' (मुरझाया फूल) राववहादुरका 'ग्रामायण', मिर्जी अण्णारायका 'निसर्ग', एम० वी० सीतारामय्याके 'ताय बयके' (मांकी अभिलाषाएँ) श्रौर 'कुंकुमभाग्य', देवुडु नरसिंह शास्त्रीके 'महाब्रह्मण' श्रौर 'महाक्षत्रिय' जिसके लिए साहित्य अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है, गोकाकका 'समरसवे जीवन' (समरस ही जीवन है), बी० पुट्टस्वामय्याका 'कल्याण क्रान्ति', के० वी० अय्यरका 'शान्तला', अनंतमूर्तिका 'संस्कार', भैरप्पाका 'वंशवृक्ष' एवं व्यासराय बल्लाळका 'हेमंतगान'। त० रा० सु० श्रौर निरंजनने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। मास्तिके ऐतिहासिक उपन्यास भी प्रसिद्ध हैं। कोरटि श्रीनिवासरावको ऐतिहासिक उपन्यासकारके रूपमें विशेष ख्याति मिली है। 'जैत्रयात्रे', 'जगन्मोहिनी' श्रौर 'मैसूरु हुलि' (मैसूरका बाघ) इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

मास्ति कन्नड़ कहानी-साहित्यके पितामह माने जाते हैं। इन पच्चीस वर्षोंमें भी उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। उनकी कहानियोंमें मानव स्वभाव श्रौर संस्कृतिके यथार्थ श्रौर सूक्ष्म चित्र मिलते हैं। एम०वी० सीतारामय्याके छः कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'रतिदेवी' का नामोल्लेख यहाँ करना चाहिये। उसमें प्रसादगुण शैलीमें विस्तृत अनुभवके चित्र हैं। पुरानी पीढ़ीके कहानीकारोंमें अश्वत्थ श्रौर राजरत्नमके नाम भी यहाँ लिये जाने चाहिये। अश्वत्थने उपन्यासभी लिखे हैं, पर कहानीकारके रूपमें उनको अधिक यश मिला है। राजरत्नमने किशोरोंके मनको आकर्षित करनेवाली सुंदर कहानियाँ लिखी हैं। नये कहानीकारोंमें रामचंद्र शर्मा श्रौर यू० आर० अनंतमूर्तिके नाम नहीं भूल सकते। इनसे बड़ी आशाएँ हैं। अनंतमूर्तिकी कहानियोंमें 'हुलिय हेंगरुळु' (बाघका स्त्री-हृदय) प्रसिद्ध है। नयी टेकनीक उसकी विशेषता है। कहानी लेखिकाश्रोंमें श्रीमती अनुपमा निरंजन, वाणी, इंदिरा, प्रेमा भट आदिके नाम ले सकते हैं। श्रीमती अनुपमा निरंजनकी कहानियाँ बड़ी सरस श्रौर वैज्ञानिक होती हैं। उनकी हाल ही प्रकाशित 'दिनक्कोंदु कथ' (प्रतिदिनके लिए एक कहानी) उत्तम कहानी-संग्रह है। उन्होंने उपन्यासभी लिखें हैं। उनके उपन्यासोंमें उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति देखी जा सकती है। कन्नड़ लेखिकाश्रोंकी कहानियाँ प्रायः सामाजिक व पारिवारिक वातावरणको लेकर चलती हैं।

यात्रा, जीवनी, लोक-साहित्य

यात्रा श्रौर जीवनी साहित्यके श्रंतर्गत दिनकर देसाईके ना कण्ड पडुवन' (मेरा देखा पश्चिम), ह०रा०पुरोहितके, 'श्रीबदरी-केदारनाथ दर्शन', डॉ० बी०जी०एल० स्वामीके 'अमेरिकादल्लि नानु' (अमेरिकामें मैं), कृष्णानंद कामतके 'नानू अमेरिकाक्के होगिद्दे' (मैंभी अमेरिका गया था), श्रीरंगके 'श्रीरंगयात्रे' (श्रीरंगयात्रा), एन०एस० गदगकरके 'गोवायात्रे', चंद्रशेखर ऐनालके 'सौन्दर्यद सान्निध्यदल्लि' (सौन्दर्यके सान्निध्यमें), चंद्रराज सिद्धकट्टेके 'भारतद महानगरगळु' (भारतके महानगर) श्रौर जी० गुण्डण्णाके 'प्रवासतीर्थ' एवं सी०के० वेंकटरामय्याके 'पैगंबर महम्मदनु', एस०बी० वसंतराजुके 'अहिंसा ज्योति महावीर', डॉ० प्रभुशंकरके 'खलील जिब्रान' श्रौर 'निवेदिता', एच० एस० कृष्णस्वामी अय्यंगारके 'रामानुज', कुवेम्पुके 'स्वामी विवेकानंद' श्रौर 'श्रीरामकृष्ण परमहंस', हुरगलावडि लक्ष्मीनरसिंह शास्त्रीके 'महातपस्वी चंद्रशेखर भारती', 'भारतीकृष्णतीर्थ' श्रौर 'सच्चिदानंद भारती', डॉ० शिवरुद्रप्पाके 'कर्मयोगी', शिवमूर्ति शास्त्रीके 'वीरशैव महापुरुषरु', राजरत्नम्के 'हत्तु वर्ष' (दस साल), डॉ० एच० तिप्पेरुद्रस्वामीके 'शिस्तुगार शिवप्पनायक' श्रौर परिपूर्णदेडेगे' (परिपूर्णताकी श्रोर), दे० जवरेगौडाके 'मेडमक्यूरि' श्रौर 'राष्ट्रकवि कुवेम्पु' बेन्द्रेजीके 'चतुर्मुख' तथा श्रीमती कमला हंपनाके 'अक्कमहादेवी' जैसे ग्रंथोंके नाम यहाँ गिनाये जा सकते हैं।

इस समय लोक-साहित्यकी दिशामें उल्लेखनीय कार्य हुआ है। क० रा०कृ० गोरूरु रामस्वामी अय्यांगार, सिंपि लिंगण्ण, डॉ० बी० एस० गद्दगिमठ, एल० आर० हेगडे, परमशिवय्या, डॉ० हा० मा० नायक श्रौर बी० रंगस्वामी सरीखे विद्वानोंने इस दिशामें कार्य किया है। मैसूर विश्वविद्यालयमें लोक-साहित्यके विशेष अध्ययनकी व्यवस्था की गयी है। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ आदिसे संबंधित अच्छे-अच्छे ग्रंथोंका प्रकाशन इधर कुछ वर्षोंसे हो रहा है। एच०एस० अच्चाप्पाके 'कन्नड गादेगळु' (कन्नड कहावतें) श्रौर 'ग्रंथस्थ गादेगळु' (ग्रंथस्थ कहावतें) कहवातोंसे संबंधित अच्छे ग्रंथ हैं।

जैसाकि ऊपर कहा गया है, आजकल कन्नड़में विज्ञान संबंधी पुस्तकोंका प्रकाशन कार्य स्तुत्य रूप में संपन्न हो रहा है। कुछ पुस्तकोंके नाम इस प्रकार हैं—गणेशजीका 'लब्धादाय हव्यासगळु', एल० एन० चक्रवर्तीका 'श्रंकगळ इतिहास', डॉ०ए०वी० नरसिंहमूर्तिके 'भारतीय नाण्यगळु' श्रौर 'सांस्कृतिक बृहद्भारत', डॉ० के० एन० वेंकटप्पाका 'स्त्री मत्तु समाज', श्रीमती एम० नंजम्मण्णिका 'समाजशास्त्र

ख. स्वातन्त्र्योत्तर तमिल साहित्य

—डॉ० एस० एन० गणेशन
मद्रास विश्वविद्यालय,
मद्रास

प्रत्येक काल और देशके साहित्यमें समकालीन जीवनकी विविध प्रवृत्तियोंको स्वायत्त करने और उनको अभिव्यक्त करनेके माध्यम ढूँढ़नेकी चेष्टा होती रहती है। अतः सामयिक जीवन तथा युगीन चिन्तनको रूपायित करनेवाली शक्तियाँ तत्कालीन साहित्यको भी प्रभावित करती हैं। तमिलका स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद अन्य भारतीय भाषाओंकी तरह तमिलमें भी अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ उभर आयी हैं, और चिन्तन-प्रणाली एवं अभिव्यक्तिमें मौलिक परिवर्त्तन लानेवाली अनेक प्रवृत्तियाँ वाद-विवादके विषय भी बनी हैं।

तत्कालीन तमिल साहित्यका अवलोकन करते समय इस बातका विस्मरण नहीं किया जा सकता कि तमिल साहित्यकी एक दीर्घकालीन सशक्त परम्परा रही है, जो शताब्दियोंके अन्य सम्पर्कोंके बावजूद अपनी मौलिक विशेषताओंको बनाये रख सकी है। वस्तुतः वर्तमान तमिल साहित्यकी विविध विधाओंको कई परम्परागत और नयी प्रवृत्तियोंने प्रभावित कर रखा है। यहाँतक कि सृजनके क्षेत्रमें दृष्टि-भिन्नताके कारण अनेक समानान्तर धाराएँ एक साथ बह रही हैं।

परिचय' और एन०एस० वीरप्पाका 'मक्कळ मनस्यु' (बच्चोंका मन) आदि। मैसूर विश्वविद्यालयने कन्नड विभत्रकोशके प्रकाशनका कार्य प्रारंभ कर दिया है। अबतक प्रकाशित तीन भाग अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। किशोरोंके उपयोगार्थ कर्नाटक सहकारी प्रकाशन मंदिर, बेंगलूरसे प्रकाशित ज्ञानगंगोत्रीके दो भागभी इस दिशामें प्रगतिके प्रमाण हैं। कन्नड़में अनेक कोश-ग्रंथोंका भी प्रकाशन हुआ है। हालमें ही मद्रास विश्वविद्यालयसे प्रकाशित किट्टल कन्नड़-अंग्रेजी कोशका नाम यहाँ लिया जाना चाहिये जिसका संशोधन कार्य प्रो० मरियप्पा भट्टने किया है।

आज कन्नड़के सर्वतोमुखी विकासके जो प्रयास हो रहे हैं, वे शुभ लक्षण कहे जा सकते हैं। ●

कविता

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादकी तमिल कवितामें स्पष्टतः तीन धाराएँ द्रष्टव्य हैं : (१) परम्परावादी कविता, (२) राष्ट्रीय एवं सुधारवादी कविता, (३) नयी चेतनाकी कविता।

यद्यपि भारतकी अन्य भाषाओंकी तरह तमिल कविता भी समकालीन सामाजिक दृष्टिकोण तथा नयी चेतनासे प्रभावित हुई है, तोभी नयी चेतनाने परम्परागत काव्य-धाराको क्षीण नहीं किया है। इस परम्परागत धारामें ऐसी कविताएँ आती हैं, जिनमें सामाजिक समस्याओं या तत्कालीन जीवनके पहलुओंसे अधिक सम्बद्ध न होकर प्रकृतिके विविध रूपोंका आकर्षक ढंगसे चित्रण किया जाता है, या प्रेम आदि सार्वजनिक मनोभावों तथा सामान्य मानवीय सम्बन्धोंको बड़ी सरसताके साथ अभिव्यक्त किया जाता है। संघ-कालीन (ईस्वी प्रारम्भकी शतियोंके) साहित्यमें जो 'प्रकृति' और 'प्रेम' काव्यके मुख्य विषय थे, वे आजभी व्यापक रूपमें कविताके आधार बने रहते हैं। गत दो दशाब्दोंमें प्रकाशित अनेक कविता-संकलनोंमें 'प्रकृति', 'प्रेम', 'परिवार' शीर्षक देकर जो खण्ड-विभाजन किया गया है, वह इस बातका प्रमाण है कि सार्वजनिक एवं शाश्वत संवेदनाके ये विषय आजभी तमिल कविताके लिए प्रेरक हैं। आजके प्रायः सभी लब्ध-प्रतिष्ठ कवियोंने इस धाराका पोषण किया है। विशेषकर कण्णदासन, वाणीदासन, 'नाणल' (श्रीनिवास राघवन), कलैवाणन, सोमु, शालिवाहनन, कम्बदासन, तुरैवन, सुरभि, पुत्तनेरि सुब्रह्मण्यम, मु० अण्णामलै, सुरदा, मुडियरशन, एषिलन आदिके नाम लिये जा सकते हैं।

प्रकृतिके बाह्य-रूपका आलंकारिक शैलीमें वर्णन तथा मनोभावोंका भावुकतामय चित्रण इनकी कविताओंमें प्राप्य है। यद्यपि प्रकृतिकी विविध वस्तुओंको विशेष स्थान दिया गया है, तोभी छायावादी काव्यकी वायवीयता और सूक्ष्म बिम्ब-विधान अधिक नहीं मिलते। बाह्य सौन्दर्यका तरल वर्णन ही इन कवियोंकी सामान्य प्रवृत्ति है। प्रेम और

परिवार-सम्बन्धी कविताओंमें सामान्य वातावरण और जातीय आचरणोंका परिचय मिलता है, पर वर्तमान जीवनकी संकुलता और तनावकी अभिव्यक्ति नहीं मिलती। सदसद् भावोंका संघर्ष तथा सत्के प्रति आग्रह और आस्था इनको आदर्शवादी प्रमाणित करते हैं। यद्यपि ये कवि सांसारिक जीवनकी संकुलताको जानते हैं, तोभी, कठिनाइयोंसे व्यथित और कुण्ठाग्रस्त न होकर दार्शनिककी भाँति मानसिक आनंद और उल्लास प्राप्त करनेकी इच्छा करते है। तणिकै उलकनाथनकी कविता 'सदा हँसते रहेंगे' (एन्रुम चिरिप्पोम्) इसी दृष्टिको व्यक्त करती है।

> दुःख भरा जीवन हो, फिरभी
> मानस उछल मचलता हो,
> हर्ष-लब्धिका और न कोई
> मार्ग नहीं है, सत्य यही।
>
> —उलकनाथन

परम्परावादी काव्य-धारामें जिन जीवन-मूल्योंकी स्थापनाका प्रयत्न किया गया है वे भी परम्पराके अनुकूल हैं। यद्यपि जीवनके सामान्य सिद्धान्त और सर्वकालीन आदर्श निश्चित करना असंभव है, तोभी जीवनके प्रति मनुष्यकी उत्सुकता और आस्थाने उसे जीवनके गहन और निगूढ़ तत्त्वोंको खोजकर सिद्धान्त बनानेको प्रेरित किया है। ऐसी सैद्धान्तिकता अनेक कवियोंकी रचनाओंमें मिलती है। मी० प० सोमसुन्दरमकी प्रतीकात्मक कविता 'परछाइयाँ' (निषल्कळ्) में एक हिरण सरोवरके निश्चल जलमें प्रति-बिंबित प्रकृतिको देखकर मोहमें पड़ता है, पर जलके हिलने पर इस विभ्रमसे मुक्त हो जाता है। वस्तुतः यह कविता मानवकी भ्रमजनित आस्थाओं और विश्वासोंकी अयथार्थता को ही व्यक्त करती है। मु० अण्णामलईकी अनेक कवि-ताओंमें जीवनको सभ्यताके नामपर कलुषित किये बिना नैसर्गिक और प्रसन्नतामय बनानेकी आवश्यकतापर बल दिया गया है। उनकी 'सरोवरमें' (एरियिले) जीवनकी संकुलताके बीचमें हास-रुदनको समान रूपसे स्वीकृत करनेकी प्रेरणा देती है, तो 'नश्वरता' (निलैयामै) उमर खय्यामकी तरह इस नश्वर जीवनकी सीमाके अन्दरभी आनन्द देखनेका आग्रह व्यक्त करती है। पल्लडम माणिक्कमकी 'जीवन ही रंगमंच है' (वाष्व्रे मेडइ), 'शवकुटीरके द्वारपर' (कल्लरइ वासलिले), 'एक ही जगह' (ओरे इडम्) आदि कवि-ताओंमें भी जीवनकी क्लिष्टताओंसे जनित वेदनात्मकता और उससे उत्पन्न दार्शनिक-दृष्टि प्राप्य है।

तत्कालीन काव्यकी एक प्रमुख धारा सामान्य मानवीय संवेदनाओंपर आधारित है। पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्ध अपनी सामान्य दशाओंमेंभी मानवके लिए चिरन्तन आकर्षणके विषय रहे हैं। साहित्यने इन सम्बन्धोंको शाश्वत संवेदनाके स्रोतके रूपमें अपनाया है। मानव-हृदयमें कभी ऊब न पैदा करनेवाले नित्य-जीवनके प्रसंग और सामाजिक सम्बन्ध सदाकी तरह स्वातन्त्र्योत्तर तमिल कविताके एक विशाल अंशके आधार हैं। बालक्रीड़ा, प्रेमके विविध सन्दर्भ और रूप, नारी-सौन्दर्य, विभिन्न पारिवारिक सम्बन्ध,विरह, मरण आदिसे आजभी अधिकांश तमिल कवि प्रेरणा पाते हैं। इनमेंभी अधिकतः प्रेम और दाम्पत्य-जीवनको ही अधिक महत्त्व मिला है। कण्णदासन, वाणीदासन तथा कम्बदासनकी प्रेम कविताएँ प्रसिद्ध हैं। पल्लडम माणिक्कमकी 'सुन्दरी', 'प्रेम' (कातल्), 'काव्य-नायिका', 'क्या, आओगी ही नहीं?' (वरवे माट्टाया?) आदि और इळं भारतीकी 'हृदय वीणा' (इतय वीणै), 'पुष्प-मण्डप' (पूप्पन्दल), 'तुम्हीं सब कुछ हो' (नीये एल्लाम) आदि विविध प्रेम प्रसंगोंको भावुकताके साथ प्रस्तुत करनेवाली कविताएँ हैं। पेरिय करुप्पनकी 'कृषक कन्यापर प्रेम' (उषत्ति मेल कातल) और 'बगुलेकी चोंचकी मछली', इळं भारतीकी 'उपाय कहो' (चोल्लु वषि) और 'जल्दी क्यों, प्रिय?'; मुत्तु गणेशनकी 'कोप क्यों?' (चिनम् एन्); अण्णामलइकी 'क्या दोष?' (एन्न कुरै) आदिमें लोकगीतकी शैलीमें शृंगारिक भावनाओंका तरल और भावुकतापूर्ण वर्णन मिलता है। सुरदाकी कविताएँ उत्कट शृंगारके लिए प्रसिद्ध हैं। सहजता और घरेलूपन इन कविताओंका मुख्य गुण है। यद्यपि इनमें गंभीर चिन्तन, गहन विश्लेषण या कविका कोई स्वतन्त्र जीवन-दर्शन नहीं मिलता, तोभी सामान्य हार्दिक भावनाओं तथा संगीतमय सरल शैलीके कारण ये सामान्य जनको मोहित करते हैं। च० तु० सुब्रह्मण्यम्, चो० अडइक्कलम, चेन्तामरइ, पुत्तनेरि सुब्रह्मण्यम् आदिकी कुछ कविताएँ भी इस विधामें आती हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व सुब्रह्मण्य भारती, नामक्कल रामलिंगम पिल्लइ, देशिक विनायकम पिल्लइ आदि प्रसिद्ध कवियों द्वारा पुष्ट राष्ट्रीय एवं सुधारवादी काव्य भी परवर्ती कालपर अपना प्रभाव छोड़ गया है। स्वतन्त्रता प्राप्त होनेपर कवियोंका ध्यान सामाजिक समस्याओंपर केन्द्रित हुआ, और राष्ट्र-निर्माणकी भावनासे अनेक कविताएँ लिखी गयी हैं। रामलिंगम पिल्लइ, पेरियसामि तूरन और तिरुलोक सीतारामने गान्धीवादी दृष्टिसे समाज-निर्माणकी

कविताएँ लिखी हैं। गृहोद्योग, सहकारिता और हरिजनोद्धारसे लेकर पंचवर्षीय योजना और अणुबम-विरोधतक इनके काव्यके विषय हैं। विषयोंके स्वभावके कारण ऐसी कविताएँ अधिक प्रचारात्मक हुई हैं, और अनुभूतिके उच्च तलोंको स्पर्श करनेमें असमर्थ हैं। भाषाके प्रवाह और गेयता तथा शैक्षणिक मूल्यके कारणही इनका महत्त्व है। सम्प्रति यह धारा अत्यन्त दुर्बल होकर प्रायः लुप्त-सी हुई है।

जीवनके विविध पहलुओंके सम्बन्धमें आदर्श प्रस्तुत करनेवाली आदर्शवादी कविताएँ पर्याप्त मात्रामें लिखी जा रही हैं जिनमें भारतकी आध्यात्मिक परम्परा और तमिल संस्कृतिके अनुकूल आदर्शोंकी स्थापनाका प्रयास मिलता है। तिरुलोक सीतारामकी 'उत्तम जीवन' (नल वाष्वु), मुहम्मद मूसोकी 'तुम क्या हो ?' (नी एतु ?) ऐसे आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत करती हैं। सभी परम्परावादी कवियोंने जीवनकी विभिन्न समस्याओंको लेकर अपनी दृष्टिसे समाधान ढूंढ़नेका प्रयास किया है। कहीं-कहीं सामाजिक अनीतियोंके विरुद्ध आवाज़ उठी है। आर्थिक विषमता और वर्गगत असमत्वका विरोध करनेवाले कवियोंमें भारतीदासन और वाणीदासन का विशेष स्थान है। भारतीदासनकी अधिकांश प्रसिद्ध कृतियाँ स्वतन्त्रता-पूर्व प्रकाशित हो चुकी थीं। बादमें जो स्फुट कविताएँ लिखी गयी हैं, उनमेंभी उनका पहलेका-सा क्रान्तिकारी रूप प्रकट हुआ है। सर्वश्रेष्ठ भगवानके रूपमें मानवकी प्रतिष्ठा, धर्मके नामपर चलनेवाले अत्याचारों और अन्धविश्वासोंका विरोध, सन्तुलित आर्थिक व्यवस्था, व्यापक सामाजिक चेतनाद्वारा शोषणोन्मुख प्रवृत्तियोंका अन्त, परिवार और समाजमें नारीका उचित सम्मान—इत्यादि समाज-जीवनके स्वस्थ विकासके लिए अनिवार्य बातोंको सशक्त वाणीमें प्रस्तुत करके भारतीदासनने तमिल काव्यमें सामाजिक चेतनाकी एक नयी परम्परा स्थापित की है। अनेक कविताओंमें तमिल संस्कृतिपर अपार आस्थाभी प्रकट हुई है।

वाणीदासनकी 'क्या सत्तूके लिए उपाय है ? (कंजिक्कु वषियुण्डा?) और अन्य कई कविताएँ आर्थिक विषमताका अन्त करनेकी प्रेरणा देती हैं। उनकी अनेक कविताएँ धनकी पूजा करनेवाले और बाह्याडम्बरोंको अधिक महत्त्व देनेवाले नगर-जीवनकी तुलनामें घोर दरिद्रतामें भी जीवन-मूल्योंकी रक्षा करनेवाले ग्राम-जीवनकी श्रेष्ठताको प्रमाणित करती हैं।

सुधारवादी काव्य धाराके अन्य कवियोंमें मुत्तु गणेशन, अरु० सोम सुन्दरम, पल्लडम माणिक्कम, मु० अण्णमलइ आदिके नाम लिये जा सकते हैं।

राष्ट्रीय व सुधारवादी काव्यकी तीसरी धारा वह है, जिसमें तमिल देश, भाषा और संस्कृतिका समुज्ज्वल रूप प्रस्तुतकरके यशगान गाया जाता है और लोगोंमें जातीय सम्मान तथा भाषा-प्रेम बढ़ानेका प्रत्यक्ष प्रयत्न किया जाता है। इस शताब्दीके आरम्भमें उदित यह धारा अब अधिक पुष्ट और शक्ति-सम्पन्न हुई है। भारतीदासन, कण्णदासन, वाणीदासन आदि प्रसिद्ध कवियोंकी अनेक कविताओंके अतिरिक्त बीसों अन्य कवियोंकी रचनाएँभी तमिल भाषा और संस्कृतिपर आस्था उत्पन्न करनेवाली हैं। इळं भारतीकी 'आनन्दमय तमिल' (इन्ब तमिल), पलनियप्पन की 'तमिल वैगा' (तमिष वैगै), इळं तिरैयनकी 'खोज आया हुआ दैव' (तुडिवन्दु दैवम), 'अमर तमिष जीवन' (अषिया-तमिष्वाष्वु), माणिक्कमकी 'हमारी भाषा' (एंगल् मोषि), मुत्तु गणेशनकी 'तमिल देवी', 'तमिल अप्सरा' (तमिष् अणंगु) इत्यादि सैकड़ों कविताओंमें प्राचीन तमिल संस्कृतिका वैभव दिखाया गया है और तत्कालीन अधःपतनपर हार्दिक व्यथा प्रकट करके पुनरुत्थानकी प्रेरणा दी गयी है। तमिलनाडुके वर्तमान साहित्यिक वातावरणमें ऐसी कविताओंको विशेष मान्यता मिली है। कवि-सम्मेलनोंने भी इस धाराके विकासमें विशेष योगदान दिया है।

नयी कविताका विकास तमिलमें हालमें ही हुआ है, और अभी वह अधिक शक्ति प्राप्त नहीं कर सकी है। यद्यपि १९३५ के लगभग ही काव्यमें नयी चेतनाका उदय हुआ, तोभी तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरणमें एक वादके रूपमें उसका विकास नहीं हो सका।

न० पिच्चमूर्त्तिको तमिल नयी कविताका पुरोधा माना जा सकता है। इस शतीके तीसोंमें प्रकाशित इनकी अनेक कविताओंमें नयी सृजनात्मक चेतना मिलती है। सामयिक जीवनकी संकुलता, उस संकुल जीवनका गहरा अनुभव और उस अनुभवसे उत्पन्न दुविधामय संश्लिष्ट अनुभूतियाँ—ये सब उस कालमें पत्रिकाओंमें प्रकाशित और बादमें 'जंगली बतख़' नामक संकलनमें सम्मिलित उनकी अनेक कविताओंमें मिलती हैं। पिच्चमूर्त्तिने साहित्यकारकी प्रतिबद्धताका विरोध करके सृजनको वादमुक्त और बाह्य शक्तियोंसे स्वतंत्र बनाया।

'मनुयुगकी बाढ़ जा चुकी,
मार्क्स युगकी बाढ़ भी जा चुकी,

भू-माँकी करुणाकी स्रोतस्विनी
बहेगी सदा अजस्रा'

इन पंक्तियोंमें उन्होंने मानवकृत सामाजिक बन्धनोंसे मनुष्य तथा कविताको मुक्त कर उन्हें प्रकृत और स्वतंत्र बनानेका आग्रह प्रकट किया है। इस कालके लगभग कु० म० राजगोपालनकी कुछ कविताएँ भी नयी सर्जनाके रूपमें सामने आयी थीं। किन्तु इसके बाद दीर्घकालतक नयी कविताका स्रोत सूख-सा गया। फिर १९५० के आसपास सी० एस० चेल्लप्पाने उसे नवजीवन दिया। उनकी 'एषुत्तु' (लेखन) नामक साहित्यिक पत्रिकाके प्रोत्साहनसे १९६० तक नयी कविता पर्याप्त विकास प्राप्त कर सकी। इसके बाद नयी पीढ़ीके अनेक कवियोंने नवचेतनाका परिचय दिया है, और कुछने अपने व्यक्तित्वको मुखर किया है। 'एषुत्तु' के अतिरिक्त 'नडै' (शैली), 'कणैयाषि' (मुँदरी) और 'कचटतपर' जैसी पत्रिकाओंने नयी कविताके विकासमें सहायता दी है।

आजके सृजनकारोंमें चालै इळं तिरैयन, ज्ञानकूत्तन, वैदीश्वरन, माली, कि० अ० सचिदानन्दम, सुन्दर रामस्वामी, नील पद्मनाभन, प० लक्ष्मणन आदि इस नयी चेतनासे युक्त हैं।

चालइ इळंतिरैयनके 'इळं तिरैयन कवितैकळ्', 'अन्नइ नी आडवेण्डुम' (माता, तुम नर्त्तन करो) जैसे संकलनोंकी कई कविताएँ नयी चेतनाका परिचय देती हैं। आजकी सामाजिक परिस्थितियोंमें विभिन्न वर्गों तथा स्तरोंके लोगों उत्पन्न मानसिक कुण्ठा और अस्वस्थताको कई कविताओं में अभिव्यंजन मिला है। 'काक-सन्देश' में सरकारी नौकरी पाकर दिल्लीमें 'प्रवास' करते हुए, किन्तु किरायेका मकान न मिलनेसे पत्नीको साथ लानेमें असमर्थ एक युवक पति तथा उसकी पत्नीके मनोजगतको अनावृत किया गया है। 'यमके साथ थोड़ी देर' नामक कविता मनुष्यके उन बन्धनोंकी ओर इंगित करती है, जो वह स्वयं बना लेता है। 'आनन्द कहाँ ?', 'प्रायोगिक' आदिभी नयी चेतनायुक्त कविताएँ हैं।

सुन्दर रामस्वामी और वैदीश्वरन, दौड़धूपके बावजूद एकही जगह स्थिर रहनेवाले समकालीन मानवके 'वन-स्पति-जीवन' को पहचानते हैं, और उससे उत्पन्न व्यथाको व्यंजित करते हैं। सुन्दर रामस्वामीकी 'खोजते मत भटको' और वैदीश्वरनकी 'उलझन' शीर्षक कविताएँ द्रष्टव्य हैं :

खोजते मत भटको
भले मत भटको
'कल जीवनका प्रारम्भ'
डायरीमें फिर
लिखनेसे क्या लाभ ?
जब जब लिखा,
प्रारम्भ न हुआ।
'कल जीवनका प्रारम्भ'—
इस भुलावेमें
फिर कलकी गणना
करनेसे क्या लाभ ?

× × ×

लुढ़कता हुआ गेंद
पीछेकी ओरभी—
लुढ़क सकता है।

—सुन्दर रामस्वामी

कल और कलके बीचमें
उलझन आजकी !
कालके माया-भारसे
गर्वके टूटते,
छातीके दबते,
स्वप्नहीन जीवनमें
रात्रिहीन दिन हुए
हम
आज।

× × ×

हवा है उड़ जानेको,
काल है पार करनेको,
भय लदे हृदयके पिंजड़ेमें
धड़-धड़ करती लँगड़ी जान।

—वैदीश्वरन

ज्ञानकूत्तनकी कविताएँ तीक्ष्ण व्यंगसे भरी हैं। जीवनकी विकृतियोंके प्रति निस्पृह रहकर दबे हुए स्वरमें गहरा व्यंग्य करना उनकी विशेषता है। उनकी कविता 'कुत्ते' आजकी व्यक्तित्वहीन जनताके मनोभावको व्यक्त करती है :

रातको देरसे खानेवाले पंडितजीने
जूठे पत्तेको सड़कपर फेंका।
निर्जन राहके बीच दो कुत्ते
लड़ पड़े
उसके लिए।
गाँवकी नींदको हराम करते

जब भूँक उठे कुत्ते——
दूसरी गलीके कुत्ते भी
इधर उधर भूँक उठे ।
नगरके कुत्तोंको भूँकते देख,
गाँवके कुत्ते भी मिलकर भूँके ।

× × ×

शृंखलाबद्ध हो भूँकते कुत्तोंमेंसे——
आखिरी कुत्तेको रोककर
कारण पूछो तो
सो क्या बतावे ?

इनके अतिरिक्त माली, प० लक्ष्मणन, जय भास्करन, त० ना० स्वामीनाथन, कि० अ० सच्चिदानन्दन, पी०शोणाचलम, हरि श्रीनिवासन, नील पद्मनाभन आदिकी कुछ कविताएँ भी नये भावबोधका परिचय देती हैं। फिरभी यह कहना पड़ेगा कि भारतकी अन्य भाषाओंकी तुलनामें तमिलमें नयी कविताका विकास कम ही हुआ है। गत दस वर्षोंमें नयी-कविताके पक्ष और विपक्षमें जो चर्चाएँ सभा-समितियोंमें चल रही है, उनसे यह काव्यधारा नयी शक्ति अर्जित करती दीखती है ।

इस तरह सामाजिक जीवन तथा राजनीतिक वातावरणके वैविध्यपूर्ण दशाओंके कारण स्वातन्त्र्योत्तर कविता विभिन्न धाराओंमें प्रवाहित हो रही है। सबके अपने-अपने आस्वादक——यहाँतक कि आराधक भी—हैं और खण्डन करनेवाले भी । काव्यके मौलिक तत्त्वों और मूल्योंपर अधिक चर्चा नहीं होती. अतः साहित्यिक दृष्टिसे इनका मूल्यांकन भी कम ही हुआ है।

उपन्यास

जीवनके व्यापक परिप्रेक्ष्यको प्रस्तुत करनेमें और समाजकी गतिशीलताको विस्तृत और गहरे रूपमें अभिव्यक्त करनेमें समर्थ साहित्यिक विधाके रूपमें उपन्यासका विशेष महत्त्व है। अतः स्वातन्त्र्योत्तर समाजमें आनेवाले परिवर्तनों और क्रियाशील शक्तियोंसे वह अधिक प्रभावित भी हुआ है। यद्यपि तमिल उपन्यासमें स्वातन्त्रताके बाद कोई क्रान्तिकारी परिवर्त्तन नहीं आया है, तोभी बदलते हुए सामाजिक मूल्योंको और नये समाजकी संकुलताओंके बीच जीनेवाले व्यक्तियोंकी मनोवृत्तियोंको प्रतिबिंबित करनेका प्रयास किया गया है ।

अन्य भाषाओंकी तरह तमिलमें भी सैकड़ों उपन्यास प्रकाशित हो रहे है, जिनमें अधिकांश सामान्य स्तरके हैं। तमिलके सामाजिक उपन्यासोंमें प्रायः एक रोचक कथाके साथ अनेक पारिवारिक जीवन-सन्दर्भोंका समावेश होता है। हास्य-व्यंग्यके प्रसंग संपूर्ण कृतिमें बिखरे रहते हैं। अश्लीलता प्रायः नहीं होती । स्त्री-पुरुषके सम्बन्धके प्रसंगोंमें तरलता और भावुकताका आधिक्य रहता है । सामान्यतः मान्यताप्राप्त सामाजिक मूल्योंकी स्थापना होती है। ये सामान्य उपन्यास अनायास पढ़े जा सकते हैं, और इनसे तमिल समाजके सामान्य रूपका परिचय भी प्राप्त हो सकता है। पर इनमें विशिष्ट संवेदनाओं या गहरे विश्लेषणको ढूंढ़ना व्यर्थ है ।

इस स्तरसे ऊपर उठकर सामाजिक सम्बन्धों और समस्याओंपर विचार करनेवाले लेखक अनेक हैं। इनमें सर्वथा अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्वके लेखक हैं डॉ० मु० वरदराजन (मु० व)। मु० व० के सभी उपन्यास जीवनकी समस्याओं पर आधारित हैं और भावुकतापूर्ण एवं आदर्शवादी हैं। 'कळ्ळो कावियमो ?' (शराब या काव्य?) एक ऐसे युवक की कथा है जो जीवनके प्रलोभनोंमें पड़कर पारिवारिक जीवनको चौपट कर देता है, पर काव्यकी प्रेरणासे बदलकर पुनः संयत जीवन बिताता है। 'करिन्तुण्डु' (कोयलेका टुकड़ा) एक ऐसे अपाहिज व्यक्तिकी कथा है, जो अपनी घोर दुर्दशामें भी स्वावलंबी रहता है। इसी तरह विभिन्न आदर्शोंकी स्थापनाके लिए ही उनके अन्य उपन्यास भी लिखे गये है। इनमें 'दिलका काँटा' (नेंजिल ओर मुळ्) 'पथका दीप' (अकल् विळक्कु) आदि प्रसिद्ध हैं। मु० व० के आदर्श प्रायः तमिलके प्रसिद्ध नीतिग्रंथ तिरुक्कुरल द्वारा स्थापित आदर्श हैं, और उससे अनेक उद्धरण भी इन उपन्यासोंमें दिये गये हैं ।

वैज्ञानिक दृष्टिसे समाजको देखने और उसकी मौलिक प्रेरक शक्तियोंको जाननेकी चेष्टा स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासमें विकसित हुई है । इससे उपन्यासको ठोस सामाजिक आधार भी प्राप्त हुआ है। भावुकताके साथ पात्रोंको प्रस्तुत करनेकी और समस्याओंके कल्पित समाधान ढूंढ़नेकी प्रवृत्तिके स्थानपर मनुष्यकी प्रकृतिको और सामाजिक शक्तियोंको जानकर यथार्थ रूपमें प्रस्तुत करनेकी चेष्टाका विकास हुआ है। अनेक उपन्यासोंमें निम्न वर्गोंके जीवन का भी चित्रण मिलता है । चिदम्बर रघुनाथनका 'रूई और भूख' (पंजुम पशियुम) सतत दरिद्रतामें जीनेवाले जुलाहोंके जीवनपर है, तो प० शिगारवेलुका 'सागरके पार' मछुआरोंके जीवन पर। इळंकीरनका 'ओ न्याय, तुम सुनो भी!' (नीतिये, नी केळ्) और के० टी० शेल्वराजका 'फूल और फूस' समाजमें गहराईसे व्याप्त शोषण-प्रवृत्तिपर

समाजवादी दृष्टिसे लिखा गया है। आर० एस० नल्लपेरु-मालका 'संघर्ष' (पोराट्टंगल) भी वर्ग-संघर्षकी कथा है।

सीमित परिवेशमें जीवनकी जटिलताको अधिक गहराईसे समझनेका प्रयास इन्दिरा पार्थसारथी, गणेशलिंगम, चूडामणि, अनुत्तमा, हेप्ज़ीबा जेशुदासन आदिके उपन्यासोंमें मिलती है। चूड़ामणिका 'परीक्षा' (शोदनइ) एक वृद्ध रोगीकी कथा है, और इसमें असहाय रोगीकी मानसिक व्यथा, खीझ और हीन भावनाका दर्दभरा चित्रण है। अनुत्तमा परम्परागत मान्यताओंके अनुसार नारीकी दृष्टिसे जीवनको देखती हैं, और सम्मिलित परिवारके संयुक्त जीवनके सौन्दर्य, सुख व समृद्धिपर जोर देती हैं। समकालीन सामाजिक विघटनसे वे दुःखी और चिन्तित हैं। उनका 'रेतका घर' (मणल वीडु) टूटते हुए परिवारका प्रतीक-चित्रण है। हेप्ज़ीबाका 'नया घर' में एक प्रेम कथा है, जिसके परिवेशमें ऐसे दो ईसाई परिवारोंके जीवनका चित्रण है, जो जातीय अहंकार और आभिजात्यके वहमके कारण स्वयं शिथिल होते हैं और प्रेमी युग्मको मूक वेदनामें आमग्न करते हैं।

गान्धी शताब्दीके वर्षमें गान्धीवादी आदर्शोंको प्रस्तुत करनेवाले दो उपन्यास प्रकाशित हुए हैं: ना० पार्थसारथीका 'आत्माके राग' (आत्माविन रागंगळ्) और चिदम्बर सुब्रह्मण्यमका 'भूतलपर दीखता है स्वर्ग' (मण्णिल तेरियुदु वानम)। दोनोंमें मुख्य पात्र जीवनके संघर्षोंसे गुज़रते हुए गांधीवादी आदर्शोंका पालन करते हैं। संकटके प्रसंगोंमें गांधीवादके विविध तत्त्वोंपर प्रकाश डालनेके भी अवसर आये हैं।

क० ना० सुब्रह्मण्यमके उपन्यासोंमें अधिकतर बौद्धिक दृष्टिसे सामाजिक प्रक्रियाओं तथा वैयक्तिक प्रवृत्तियोंको देखनेका प्रयास मिलता है। 'मनुष्य-हन्ता' (आट्कोल्लि) में उन्होंने भौतिकताके कारण अपनी मनुष्यता खो बैठनेवाले मनुष्यका और 'झूठे देवता' (पोय् तेव्) में आदर्शोंका बाना पहने जाहिरदारोंकी पोल खोली गयी है।

ना० पार्थ सारथीका 'समुदाय-वीथी' और अशोक मित्रनका 'पिघली हुई छायाएँ' (करैन्द निषलकळ्) सिनेमा जगत्के जीवनका और उसमें पिघलकर लुप्त होते हुए व्यक्तित्वोंका चित्रण प्रस्तुत करते हैं। कन्दसामीके 'छायावन' में विदेशसे काफी कमाईके साथ गाँव लौटकर कारखाना खोलनेवाले एक युवकके जीवनके साथ काल-क्रमसे समाजमें होनेवाले परिवर्तनपर बल दिया गया है।

ऐसे सैकड़ों अन्य उपन्यास भी मिलते हैं जिनमें समाजके किसी-न-किसी अंगको या समस्याको व्यक्त करनेका प्रयास किया गया है।

कृत्तिकाके उपन्यास अधिक यथार्थवादी और विश्लेषक हैं। उनका 'वासवेश्वरम' एक छोटे ग्रामको केन्द्र बनाकर समकालीन जीवनकी सामाजिक रुग्णता और वैयक्तिक कुण्ठाको व्यक्त करता है। दिल्ली-निवासी इस लेखिकाने 'धुएँके बीच' (पुकै नडुवे), 'सत्यमेव', 'सोनेका पिंजड़ा' (पोन कूण्डु), 'धर्मक्षेत्रे' आदि उपन्यासोंमें महानगरीके जीवनकी सड़न-गलनको बड़ी तीक्ष्ण शैलीमें प्रकट किया है। जोरदार कथानक, पात्रोंकी मानसिक प्रक्रियाओंका मार्मिक प्रस्तुतीकरण, तीक्ष्ण व्यंग्य आदिके कारण कृत्तिकाके उपन्यास सशक्त बने हैं।

परिवर्तनशील समाजमें, एक दूसरे के साथ समझौता करनेमें असमर्थ नयी-पुरानी पीढ़ियाँ जिस मानसिक तनाव और व्याकुलताका अनुभव करती हैं, उनको कुछ उपन्यास-कारोंने मार्मिकताके साथ चित्रित किया है। राजम कृष्णन के 'कुरिंजि पुष्पका मधु' (कुरिजित्तेन), के० रत्नमका 'पत्थर और मिट्टी' (कल्लुम मण्णुम), नकुलनका 'छायाएँ', (निषलकळ्), नील पद्मनाभनका 'पीढ़ियाँ' (तलैमुरैकळ्) आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। इनमें विविध समु-दायोंमें नये विचारों तथा पुराने आचारोंमें होनेवाली विष-मता तथा उससे नयी-पुरानी पीढ़ियोंमें होनेवाली मनो-दशाओंको बारीकी से अंकित किया गया है।

सामाजिक चेतनाका एक और रूप आंचलिक उपन्यासोंमें प्रकट हुआ है। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्वभी वेंकटरमणी, शंकरराम और षण्मुखसुन्दरमके कुछ आंचलिक उपन्यास निकल चुके थे। स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद अनेक छोटे-बड़े उपन्यास निकले हैं जिनमें स्थानीय परिवेश और साम्प्र-दायिक या जातीय आचारों-विश्वासोंका विस्तृत चित्रण हुआ है। आंचलिक चित्रकारोंमें सर्वश्रेष्ठ स्थान राजम कृष्णनका है। लेखिकाके विस्तृत अनुभव तथा गहरे निरी-क्षणने उनके सभी उपन्यासोंको यथार्थ सामाजिक चित्र प्रस्तुत करनेके कारण महत्त्वपूर्ण बना दिया है। उनका 'कुरिजित्तेन' (कुरिंजि पुष्प मधु) नीलगिरिके निवासी बड़गोंके सामाजिक जीवनका विशद लेखा प्रस्तुत करता है। गिरिवर्गोंका पारस्परिक विद्वेष, उससे उत्पन्न वैमनस्य, जीवनकी सरलता और कठिनाइयों आदिके वर्णनसे प्रायः उस समाजका सम्पूर्ण चित्र प्राप्त होता है। राजम कृष्णनके 'अमृत होकर आओ' (अमुतमाकि वरुक) में कुण्डा बाँध के निर्माणमें लगे लोगोंके जीवनका यथार्थ चित्रण है।

ग्रामीण जनता अपनी आशाओंके मूर्त रूपमें बाँधको देखती है और उसकी पूर्तिकी आकांक्षा करती है। उनके ही 'चूड़ियों वाले हाथ' (वळैक्करम) में गोआकी जनताके जीवनका और उसके स्वातंत्र्य-समरका मार्मिक चित्रण है। इन सब उपन्यासोंमें परिवेशकी विस्तृतिके साथ समाज और व्यक्तिके अध्ययनमें गहराईभी मिलती है। अन्य आंचलिक उपन्यासोंमें सुन्दर रामस्वामीका 'एक इमलीके पेड़की कथा' (ओरु पुळिय मरत्तिन कतै) और नील पद्मनाभनका 'पीढ़ियाँ' (तलैमुरैकळ्) प्रसिद्ध हैं। दोनोंमें नाजिल नाडु (कन्याकुमारी जिला) की सामान्य जनताका जीवन यथार्थ रूपमें चित्रित हुआ है।

गत दो दशाब्दोंमें जीवनको अधिक गहराईसे समझनेके प्रयासके फलस्वरूप उपन्यासका मनोवैज्ञानिक आधार सुदृढ़ हुआ है। यद्यपि मनोविकारोंपर ही आधारित व्यक्तिवादी उपन्यासोंका विकास नहीं हुआ है, तोभी सीमित परिवेशके अन्दर व्यक्तियोंका चित्रण करनेवाले अनेक उपन्यासकारोंने मनोवैज्ञानिक गहराईका परिचय दिया है। इस दिशामें ति० जानकीरामन, जयकान्तन, और कृत्तिकाके प्रयास उल्लेखनीय हैं। इन लेखकोंने अधिकतः यौन-जीवनकी विषमताओंको और उससे उत्पन्न मानसिक विक्षोभोंको अपने उपन्यासोंमें व्यक्त किया है। पहले नारी-पुरुषके सम्बन्धोंकी जो चर्चा की जाती थी उसमें एक आदर्शवादी दृष्टि थी। स्वातन्त्र्योत्तर रचनाओंमें भी मु० व० का 'शराब या काव्य ?', अखिलनका 'पुत्तलिका दीप' (पावै विळक्कु), ना० पार्थसारथीका 'स्वर्ण-पशु' (पोन विलंगु) आदिमें यही दृष्टि मिलती है। यद्यपि इनमें यौन भावनाओंका अधिक गहरा चित्रण मिलता है, और मनुष्यकी वासनामयताको दिखाया गया है, तोभी प्रेमका दैवी रूपमें उदात्तीकरण इनकी विशेषता है। प्रायः नारीको दुर्बल या विवश मानकर सहानुभूतिका पात्र बनाया गया है, या पवित्र और उदात्त मानकर आदरका पात्र।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिके कारण इस स्थितिमें परिवर्तन हुआ है। जानकीरामनने पारिवरिक जीवनमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धको उसकी जटिलताओंके साथ देखा है। नैसर्गिक मनोवृत्तियों तथा सामाजिक मान्यताओंके बीचका वैरुध्य, और उससे संजात मानसिक संघर्ष उनके कई उपन्यासोंमें व्यक्त हुए हैं। उनकी प्रसिद्ध कृति 'मोहका काँटा' (मोहमुळ) में बाबू नामक युवकके अपनेसे दस वर्ष बड़ी यमुनाके प्रति आकर्षणका और वैयक्तिक तृष्णा तथा सामाजिक बन्धनके बीचमें तड़पते हुए दोनोंके मानसिक जगत्का बारीकीसे चित्रण किया गया है। 'जीवनका मधु' (उयिर तेन) यौन भावना और प्रेमकी विषमताका विश्लेषण है। उसकी अनसूया का कहना है, "शारीरिक सम्बन्ध बिलकुल साधारण बात है। लेकिन बिना किसी फ़रकके सबसे एकही तरह प्यार करना कठिन है। मैं चाहती हूँ कि विश्वभरको अपने अंकमें समेटकर प्रवाहित होती रहूँ।" सामाजिक मान्यताओं की दृष्टिसे वह पतित है, किन्तु पतिव्रता चेंगम्माका यह कथन सच लगता है कि सभी पतिव्रताओंसे यह पतिता श्रेष्ठ है, उसकी 'आत्मा' पवित्र है। जानकी रामनके 'अड़हुल' (चेंपरुत्ति) में अपने प्रेमीके दूसरी नारीसे विवाह करनेपर भी उससे विरत न होकर उसका संपर्क चाहती हुई एक नारीका मानसिक संघर्ष और 'माँ आयी' (अम्मा वन्दाळ्) में पाँच बच्चोंको जन्म देनेके बादभी एक दुर्बल निमिषमें पथ विगलित होनेवाली एक माताकी मनोदशाओंका संवेदनामय चित्रण प्राप्त है। इन सबमें सामाजिक मान्यताओं तथा नैतिक मूल्योंकी निरर्थकता प्रकट हुई है। ति० जा० के मनमें नारीका महत्त्व इसमें नहीं है कि वह एक या अधिक पुरुषोंसे सम्बन्ध रखती है, पर इसमें है कि किसी पुरुषके साथ रहते समय वह कहाँतक पुरुषसे मानसिक ऐक्य पाकर उसे आत्मसात् कर लेनेमें समर्थ होती है।

जयकान्तनका 'ऋषि द्वारा' (रिषि मूलम) 'पारिस जाओ' (पारीसुक्कु पो) आदिभी वर्तमान सामाजिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं और मानवके मौलिक मनोविकारों तथा विविध परिस्थितियोंमें उनकी प्रक्रियाओंको स्पष्ट करते हैं। कृत्तिकाका 'वासवेश्वरम' एक बहुचर्चित कृति है जिसमें यौन विकारोंके विविध रूपोंको यथार्थ रूपमें प्रस्तुत किया गया है।

मनोवैज्ञानिक गहराई प्राप्त करनेके प्रयासमें कुछ शैलीगत प्रयोग भी हुए हैं। ल० स० रामामृतमके 'पुत्र' और 'अभिदा' में चेतना प्रवाह शैलीका प्रयोग हुआ है। कुछ मनोवृत्तियोंके ही स्पष्टीकरणके लिए लिखित इन उपन्यासोंमें घटनाएँ नाममात्रको हैं; शिथिल शब्द-चित्रों द्वारा मनोजगत्को हमारे सामने लानेका प्रयत्न किया गया है। का० ना० सुब्रह्मण्यमके 'असुरगण', सी० एस० चेल्लप्पाके 'जीवनांश' में प्रायः बाह्य-जीवनके चित्रणसे बढ़कर भाव चित्रोंके द्वारा पात्रोंकी मनोवृत्तियोंका आभास दिया गया है।

इस तरहके कुछ उपन्यासोंको छोड़ दें तो अन्य उपन्यासों में प्रायः परम्परागत विवरण, दृश्य और सम्भाषण द्वारा कथा-विकासकी प्रवृत्ति मिलती है।

स्वातन्त्र्यप्राप्तिके पूर्व कृष्णमूर्त्ति 'कल्कि' द्वारा पुष्ट

ऐतिहासिक उपन्यास विधा बिना अधिक परिवर्तनके विकासोन्मुख हुई है। जैसे कल्किके उपन्यास प्रायः ऐतिहासिक रोमांस थे, उसी तरह आजभी अधिकतः इतिहास और स्वच्छन्द कल्पनायुक्त उपन्यासही निकल रहे है। प्राचीन कालके सम्बन्धमें प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्रीके अभावके कारण दो-एक पात्रोंको या घटनाओंको केन्द्र बना कर कल्पनाके बलसे कथा-सृजन करनेकी प्रवृत्तिही अधिकांश उपन्यासोंमें मिलती है। वीरोंके वीर-कृत्यों तथा प्रेम-व्यापारोंसे प्रायः सभी उपन्यास रोचक रहते हैं और अनेकोंमें कथानकके अप्रत्याशित मोड़ द्वारा औत्सुक्य बढ़ानेकी प्रवृत्ति भी मिलती है। अखिलन, ना० पार्थसारथी चांडिल्यन, जगशिल्पियन, को० वि० मणिशेखरन, विक्रमन आदि इस क्षेत्रमें ख्याति-प्राप्त हैं। अखिलनके विजयनगर साम्राज्यसे सम्बन्धित 'वेंगैका बेटा' (वेंगैयिन मैन्दन), पार्थसारथीके दक्षिणके इतिहासके अन्धकारमय युगसे सम्बन्धित 'कपाटपुरम', 'वंची महानगर', 'मणिपल्लवम' आदि वातावरण-सृजन और यथार्थ पात्र-रचनाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। चांडिल्यन और जगचिर्पियनके उपन्यास किसी रोचक कथाके साथ अनेक कल्पित घटनाएँ जोड़नेसे भारी-भरकम हो गये हैं। प्रेम और वीरकृत्योंके रोमांचकारी वर्णन और कल्पनाका वैभव इनमें देखने योग्य है। को० वि० मणिशेखरनने विविध कालोंकी ऐतिहासिक घटनाओंपर लिखा है, और उनका ऐतिहासिक आधार भी अधिक दृढ़ है। कई उपन्यासोंमें पात्रोंके सम्बन्धमें प्रचलित धारणाओंका निराकरण नयी धारणाएँ प्रचलित करनेका प्रयास भी किया गया है।

सामान्यतः इन उपन्यासोंमें तत्कालीन दृष्टिसे ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रोंको नये रूप में प्रस्तुत करनेकी प्रवृत्ति भी देखी जाती है।

कहानी

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी-साहित्यमें भी नयी-पुरानी धाराएँ हम देख सकते हैं। अधिकांश कहानीकार परम्परानुगत सामान्य विवरण शैलीमें सामान्य जीवन-सन्दर्भोंको प्रस्तुत कर रहे हैं। सामान्यतः इनमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपकी आदर्शवादी दृष्टि भी प्राप्य है। बहुप्रचारित पत्रिकाएँ ऐसी 'घरेलू' या 'पारिवारिक' कहानियोंको प्रोत्साहन दे रही हैं। वी० एस० रामैया, अखिलन, चिदम्बर रघुनाथन, नाराण दुरैकण्णन, आरवी, पी० कण्णन, अरु० रामनाथन, चूड़ामणि, अनुत्तमा, सरोजा राममूर्ति, गोमती सुब्रह्मण्यम, राजलक्ष्मी राममूर्ति 'गोमकळ्' आदि बीसियों लेखकोंने कहानी साहित्यको सम्पन्न बनाया है। यद्यपि इनकी कहानियोंमें जीवनकी संकुलताओं-विपन्नताओंको गहराईसे जानने और उनका विश्लेषण करनेकी प्रवृत्ति नहीं मिलती, तोभी, सामान्यं जीवनका सामान्य रूप मोहक रूपमें मिलता है। तमिल जनताके सामाजिक और पारिवारिक जीवनका सामान्य रूप जाननेके लिए ये कहानियाँ उपयोगी हैं। सहृदयताके साथ पारिवारिक सम्बन्धोंको प्रस्तुत करनेकी प्रवृत्ति अधिक मिलती है। प्रस्तुतिमें जिस भावुकतासे—कभी-कभी अतिभावुकतासे—काम लिया जाता है वह इन कहानियोंको सामान्य पाठकोंके लिए अत्यन्त मोहक बना देती है।

गत दो दशाब्दोंमें कहानीमें भी अधिक प्रौढ़ता और जीवनके प्रति अधिक जागरूकता आयी है। स्वतन्त्रता प्राप्तिके पूर्वही 'पुदुमैपित्तन' (नवताके सनकी) ने कहानीमें अधिक सामाजिक चेतना भरकर उसे अधिक गंभीर बना दिया। इसके बाद अनेक लेखकोंने जीवनके विविध पहलुओं का विश्लेषणकर कहानीको अधिक प्रौढ़ बनाया है। ति० जानकीरामन, जयकान्तन, अलगिरि सामी, राजम कृष्णन, जयलक्ष्मी आदिकी कहानियाँ इस दिशा-भेदकी परिचायक हैं। जानकी रामनकी अनेक कहानियोंमें उन मानसिक ग्रंथियोंके विश्लेषणका प्रयास है, जो व्यक्तियोंकी क्रिया-प्रक्रियाओंका आधार रहती हैं। जयकान्तनने नौकरानी पोन्नम्माल, धाई मुत्ताई, गलीपर भात बेचनेवाली आण्डालु, भिखारिन रुक्कु, कम्पोज़िटर एलुमलै, ट्रेडिलमैन विनायक मूर्ति, पोर्टर मरुतमुत्तु इत्यादि निम्न श्रेणीके अनेक पात्रोंके पीड़ाभरे जीवनको अपार सहानुभूति और यथार्थ-बोधके साथ प्रस्तुत किया है। जयकान्तनको तमिलका चेखव माना जाता है। उनकी 'एक मुट्ठी चावल', 'क्या भगवान आयेंगे?', 'ओवर टाइम', 'दाम्पत्य' आदि निम्न वर्ग की व्यथाको अभिव्यक्ति देनेवाली मार्मिक कहानियाँ हैं। अलगिरि सामीका लेखन अत्यन्त संयत रहता है। उनकी ऊपरी दृष्टिसे सामान्य लगनेवाली कहानियोंमें गहरी सहानुभूति और मानव-मनोवृत्तियोंकी हार्दिक जानकारी होती है। राजम कृष्णन और जयलक्ष्मीकी कहानियाँ जीवनके कुछ मार्मिक सन्दर्भोंको स्पष्ट करनेमें समर्थ हुई हैं।

गत दस वर्षोंमें कहानीमें भी नये भाव-बोधका विकास हुआ है। कई युवा लेखकोंने समकालिकताकी विशेष चेतनासे सृजन किया है, जिससे कहानीके शिल्पमें भी काफी अन्तर आया है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपकी सुधारोन्मुखता

ग्रौर विश्लेषणको छोड़कर सन्दर्भों तथा संवेदनाग्रोंको ईमानदारीके साथ प्रस्तुत करनेमें ये प्रयत्नशील हैं। सी० एस० चेल्लप्पा सुजाता (रंगराजन), अशोक मित्रन, ना० मुत्तुस्वामी, रामकृष्णन, इन्दिरा पार्थसारथी, कन्दसामी, वे० स्वामिनाथन,नकुलन, नील पद्मनाभन आदिकी कहानियाँ इस श्रेणीमें आती हैं। इनका अपना-अपना व्यक्तित्व है, दृष्टियाँ हैं, शैलियाँ हैं। इस नयी शैलीकी कहानीके विकासमें 'एषुत्तु' (लेखन), 'नडै' (शैली), 'कणैयाषि' (मुँदरी), 'कचटतपर' जैसी साहित्यिक पत्रिकाग्रोंका विशेष स्थान रहा है। अब कहानी साधारण कथाकथन-शैलीसे मुक्त होकर प्रायः भावचित्र या रेखाचित्र हो गयी है। 'अकहानी' नामको स्वीकृत न करनेपर भी नयी कहानियोंमें अकहानीके सब तत्त्व मिलते हैं।

गत तीन वर्षोंसे मद्रासकी 'इलक्किय चिन्तनै' (साहित्य चिन्तन) नामक संस्था प्रतिमास पत्रिकाग्रोंमें प्रकाशित होनेवाली कहानियोंका मूल्यांकन करने ग्रौर सर्वश्रेष्ठ कहानी को पुरस्कृत करनेकी ग्रौर वर्षके अन्तमें उनको प्रकाशित करनेकी आयोजना करती आ रही है। इससे कहानीके लिए एक सबल विवाद-मंच निर्मित हुआ है, ग्रौर कहानीके साहित्यिक मूल्यकी वृद्धिमें सहायता मिली है।

नाटक और एकांकी

स्वातन्त्र्योत्तर तमिल साहित्यके सबसे दुर्बल ग्रंग नाटक ग्रौर एकांकी हैं, जिनका विकास मात्राकी दृष्टिसे पर्याप्त होनेपर भी साहित्यिक मूल्यकी दृष्टिसे सन्तोषजनक नहीं है। रचनात्मक साहित्यकी एक सशक्त विधाके रूपमें नाटककी रचना करनेवाले लेखक बहुत कम हैं——नहींके बराबर हैं। पिछली शताब्दीके अन्तसे अत्यन्त व्यापक रूपमें प्रचलित संगीत-नाटक अब प्रायः लुप्त-सा हुआ है——यद्यपि स्वतन्त्रताके बादभी स्वामी शुद्धानन्द भारती, श्रीनिवास राघवन आदिके कुछ ऐसे नाटक प्रकाशित हुए हैं। दूसरी ग्रोर सामान्य जनताका मनोरंजन करनेवाले रंगमंचीय नाटककी जो परम्परा भी, वह सजीव है। इस युगमें लिखित अधिकांश नाटक इसी परम्परागत शैलीके हैं। यद्यपि सामयिक समस्याग्रोंको इनमें स्थान दिया गया है, तोभी उनका ढाँचा परिवर्तित नहीं हुआ है। सामान्य स्तरके ऐसे नाटक अनेक लिखे गये हैं। पर साहित्यिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण रचनाएँ कमही हैं। बी० एस० रामैयाका 'डाक्टर को दवा' (डाक्टरुक्कु मरुन्दु), बालचन्दरका 'सर्वर सुन्दरम्', 'पानीका भँवर' (नीर्क्कुमिषि), 'मोम बत्ती' (मेषुकु वत्ति) समस्याबोध ग्रौर रोचक प्रतिपादनके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। 'चो' के उपनामसे लिखनेवाले रामस्वामीके अनेक नाटक सामाजिक व्यंग्यके रूपमें ख्याति-प्राप्त हैं। उनका 'मुहमद बिन तुग़लक' वर्तमान अधिकारी वर्गकी निरंकुशताको हास्य-व्यंग्यकी शैलीमें प्रस्तुत करता है। 'संभवामि युगे युगे', 'किसीको शरम नहीं' आदि राजनीतिक क्षेत्रमें व्याप्त भ्रष्टाचारका भंडाफोड़ करनेवाली कृतियाँ हैं।

सामाजिक समस्या नाटकोंमें एस० डी० सुन्दरमके 'वीयतनामका घर' (वीयतनाम वीडु) ग्रौर 'ज्ञानका प्रकाश' (आन ग्रोळि) तीव्र मनोविकारों तथा सत् ग्रौर असत्के संघर्षोंके कारण रोचक बने हैं। नाटकके रूपमें अभिनीत होकर ग्रौर फिल्मके रूपमें ये बहुत प्रशंसित हुए हैं।

साधारण समस्या नाटकोंमें किसी विशेष दृष्टिसे आदर्शवादी प्रस्तुति होती है। एम० वेंकटरामनका 'ईश्वर मरा नहीं है' (कडवुळ् इरक्कविल्लै) जीवनकी कठिनाइयोंके बीचमें ईश्वरपर आस्थाकी आवश्यकतापर बल देता है। रा० वेंकटाचलमका 'लक्षदीप' एक आदर्श डाक्टरके चरित्रके द्वारा डाक्टरके कर्त्तव्यकी ग्रोर भी इंगित करता है, समाजके लिए ऐसे डाक्टरोंके महत्त्वपर भी। आर० टी० सामीका 'हमारा दैव' (एंगळ देय्वम) माताको ही सर्वश्रेष्ठ दैवके रूपमें देखनेवाली भावुकतापूर्ण कृति है। निरर्थक धार्मिक मिथ्याडम्बरों तथा अन्धविश्वासोंपर आक्रमण करते हुए इरैमुडिने 'मतिवदनन' में कुछ सुधारवादी विचार प्रस्तुत किये हैं। न० कन्दसामीका 'नया समाज' भूदानके आधार पर नये आदर्श समाजकी कल्पना करता है, तो अ० को० वेंकट रामानुजमका 'पूँजीपति' (मुतलाळि) सामाजिक क्रान्तिके द्वारा ही नव-समाजका निर्माण संभव मानता है। अ० एकाम्बरमका 'अमर जीवन' (अमर वाष्वु) परिश्रम ग्रौर अध्यवसायद्वारा समाज-निर्माण ग्रौर उन्नतिको प्राप्त करनेकी प्रेरणा देता है।

स्पष्ट है कि ये सभी नाटक लक्ष्य-युक्त हैं। सबमें सामान्य रूपसे समस्याग्रोंके रूप प्रस्तुत किये गये हैं, ग्रौर लेखककी दृष्टि ग्रौर आदर्शके अनुसार समाधानको लक्ष्य करके कथा-संचालन ग्रौर पात्र-विकास किया गया है।

सी० एस० चेल्लप्पाका हालमें प्रकाशित 'रिश्तेकी वधू' (मुरै पेण) इन सबसे भिन्न है। दक्षिणी तमिळनाडुकी 'तेवर' जातिके पारिवारिक जीवनपर आधारित यह नाटक सामाजिक अध्ययनकी दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है, आन्तरिक संघर्षों ग्रौर संवेदनाग्रोंके कारण भी।

[शेष पृष्ठ १७० पर]

ग. स्वातन्त्र्योत्तर तेलुगु साहित्य

— डॉ. भीमसेन 'निर्मल'
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यका विहंगावलोकन करते समय किसी प्रतिभाशाली आलोचकका यह वाक्य तत्काल स्मरण हो आता है कि It is an uneasy alliance of Freud and Marx, with Freud as the dominant partner. यह निर्विवाद तथ्य है कि स्वतन्त्रताप्राप्तिके पूर्वभी इन दोनों मेधावियोंके सिद्धान्तोंका प्रभाव भारतीय साहित्यपर था किन्तु स्वतन्त्रताप्राप्तिके पश्चात् स्वतन्त्र देशकी विचारधाराको इन सिद्धान्तोंने इस रूपमें आक्रान्त कर लिया है कि साहित्य अपनी देशीयतासे मानो वंचित-सा हो गया। (यह बात केवल साहित्यके लिए ही नहीं, जीवनके सभी क्षेत्रोंपर लागू हो सकती है)। निराशावाद भी इसके लिए उत्तरदायी है। स्वतन्त्रताप्राप्तिके लिए किये गये संघर्षोंके पीछे जो सुन्दर कल्पनाएँ थीं, वे स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद साकार तो नहीं हुईं, उल्टे जनताको यातनाओंका सामना करना पड़ा। यह निराशा अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त हुई है। इस निराशाकी ओर इंगित करते हैं कृष्णा कृपलानीके ये वाक्य 'The prevalant mood is one not of faith so much as of despair, not of daring as of defiance, not passion as of morbidity.'[1] यही कारण है कि स्वतन्त्रताके बादकी इस लंबी अवधिमें रविबाबू, शरत या प्रेमचन्दकी बराबरी करनेवाला साहित्यकार पैदा नहीं हो सका।

सन् ४७ के बाद अन्य भारतीय भाषाओंके समान तेलुगु भाषामें साहित्योत्पादन पर्याप्त मात्रामें हुआ है, विषय और रचनाशैलीके क्षेत्रमें अनेक नये प्रयोग हुए हैं और पुरानी कथावस्तु तथा रचनाशैलीको भी अपनाया गया। दिगंबर कवियोंके बाद पैगंबर कवियोंका उन्मेष हो रहा है तो आज भी प्राचीनतावादी (क्लासिकल) रचनाएँ सामने आ रही हैं। प्रत्येक क्षेत्रमें प्रतिभाशाली लेखक अपनी लेखनीद्वारा पाठकोंको आकृष्ट तथा प्रभावित कर रहे हैं। किन्तु पता नहीं कि कालकी कसौटीपर इनमें कितने खरे उतरेंगे।

तेलुगु प्रदेशमें भाषाके क्षेत्रमें एक नूतन क्रान्ति परिलक्षित हो रही है। इसे व्यावहारिक भाषाका आन्दोलन कह रहे हैं। यद्यपि इसका श्रीगणेश बीसवीं शतीके दूसरे दशकमें ही हो गया था, परन्तु सन् साठके बाद यह आन्दोलन ज़ोर पकड़ता गया। इस आन्दोलनका अर्थ है ग्रान्थिक या व्याकरणसम्मत भाषाके स्थानपर व्यावहारिक (बोलचाल की) भाषाका प्रयोग करना। जैसा बोलो, वैसा ही लिखो। इस आन्दोलनका प्रभाव इतना व्याप्त हो गया कि आज लगभग सभीको सिर झुकाना पड़ रहा है।

विगत २५ वर्षोंमें साधारण मानवके जीवन तथा उसकी समस्याओंको साहित्यमें व्यापक तथा यथार्थ प्रवेश मिला है। नये-नये प्रतीक, रूपक, नया वाक्य निर्माण, नये-नये मुहावरे आदिने रचयिताकी अभिव्यक्तिको कल्पनातीत रूपसे विस्तार प्रदान किया है। वह धार्मिक तथा राष्ट्रीय सीमाओंको पारकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें प्रवेश कर चुका है।

कविता

अपने सिद्धान्त या आन्दोलनके आवेशमें केवल नारे और दूषण-भूषण ही कविताके विषय बन गये हैं। अनुभूतिकी अपेक्षा विचारको प्रधानता मिलनेसे कविता मस्तिष्कप्रधान हो गयी है।

स्वतन्त्रताप्राप्तिके तुरन्त बाद रजाकारोंके अत्याचार, पुलिस कार्रवाई, प्रजाशक्तियोंका संघर्ष, कम्यूनिस्ट पार्टीपर रोक-थाम, प्रगतिवादी रचनाओंको ज़ब्त करना आदि कार्योंने तेलुगु साहित्यकी गतिविधिको अभूतपूर्व रूपसे प्रभावित किया है। अनिसेट्टि सुब्बारावकी 'अग्निवीणा', दाशरथीकी 'अग्निधारा', सोमसुन्दरका 'वज्रायुध', कुन्दुर्तिका 'तेलंगाणा', आरुद्रका 'त्वमेवाहं', रेंटालका 'संघर्षण', गंगिनेनिका 'उदयिनी' आदि इसके परिणाम हैं।

सन् १९५५ के बाद कवितामें किसान-मज़दूरोंकी अपेक्षा मध्यवर्गके व्यक्तियोंको — खासकर अराजपत्रित अधिकारियों को—अधिक स्थान मिला। अराजपत्रित अधिकारी काव्यका नायक बना। उसे बकोली (तितलीका पूर्व रूप) माना गया।

१. स्वतन्त्र भारतमें साहित्य—श्री नार्ल वेंकटेश्वररावके लेखसे उद्धृत।

सन् १९६२ के चीन आक्रमणके बाद कई प्रगतिवादी (साम्यवादसे निबद्ध) कवियोंकी दृष्टिमें परिवर्तन आया और वे राष्ट्रीय समस्याओंकी ओर दृष्टिपात करने लगे। दिगंबर कवियोंने बिना किसी मुखौटेके समाजके नग्न स्वरूप का चित्रण किया। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके विरुद्ध आन्दोलन कर रहे हैं वि० र० सं० (विप्लव रचयिताओंका संघ) के सदस्य। इसप्रकार समसामयिक परिस्थितियोंके अनुकूल काव्यधारा अनेक दशाओंसे गुजर रही है।

प्राचीन पद्धतिके काव्योंमें कविसम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायणके 'रामायण कल्पवृक्ष' का प्रथमतः उल्लेख होना चाहिये। भाव सम्पन्नताके लिए कल्पवृक्ष बना यह महाकाव्य रचना-चातुर्यके कारण 'शिल्पवृक्ष' भी माना जाता है। यह आन्ध्रोंका अहोभाग्य है कि विश्वनाथ जैसा सर्वतोमुखी प्रखर प्रतिभावान लेखक आन्ध्रदेशमें पैदा हुआ है। 'मध्याक्कर' नामक क्लिष्ट और अल्पप्रयुक्त देशी छन्दमें उन्होंने भक्तिप्रधान दस शतकोंकी रचना की है जो 'विश्वनाथ मध्याक्करलु' के नामसे प्रकाशित और केन्द्रीय साहित्य अकादमीद्वारा पुरस्कृत है।

आन्ध्रोंके इतिहासका सरस वर्णन करते हुए नौ सर्गोंमें श्री मधुनापन्तुल सत्यनारायण शास्त्रीने 'आन्ध्र पुराण' की रचना की है।

श्री तुम्मल सीतारामर्मूर्ति चौधरीने गान्धीजीकी आत्मकथाका पद्यानुवाद स्वतन्त्रतापूर्व ही प्रकाशित किया था। स्वतन्त्रताके बाद उन्होंने 'महात्मुनि कथा' के नामसे गान्धीजीके जीवनके उत्तरभागको काव्यके रूपमें निबद्ध किया है।

श्रीमान् वानमामलै वरदाचार्यने महाकवि पोतन्नाके जीवनको महाकाव्यके रूपमें प्रस्तुत किया है। आचार्यजी सभी प्रकारकी रचना शैलियोंमें सिद्धहस्त हैं।

क्लासिक पद्धतिमें लिखे गये अन्य काव्योंमें सर्वश्री आत्मकूरि गोविन्दाचार्यका 'गोविन्द रामायण', तंगिराल जगन्नाथ शास्त्रीका 'जगन्नाथ रामायण', वेदुल वेंकट शास्त्रीका 'अद्भुत रामायण', विद्वान् बिर्नीडि प्रसन्नका 'पृथ्वी भागवत' (पृथ्वीराज और संयोगिताकी कथा), गुंटि सुब्रह्मण्य शर्माका बुद्ध चरित्र, गुर्रम जापुवाका 'क्रीस्तु चरित्र' उल्लेखनीय हैं।

सर्वश्री विश्वनाथ वेंकटेश्वर्लु, नोरि नरसिंह शास्त्री, इंद्रगंटि हनुमच्छास्त्री, सन्निधानम सूर्यनारायण शास्त्री, दिवाकर्ल वेंकटावधानी आदिने प्राचीन पद्धतिमें सुन्दर काव्य लिखे हैं।

आन्ध्रोंकी विशिष्ट साहित्य प्रक्रिया अष्टावधान और शतावधान है। अवधान करनेवालोंमें सर्वश्री सी० वी० सुब्वन्न, कोट वीरांजनेय शर्मा, डॉ० प्रसादराय कुलपति, कुक्कुटेश्वरराव आदि उल्लेखनीय हैं।

गेय कविता रचनाके प्रथम उत्थानमें छायावादी रचनाओंका तथा द्वितीय उत्थानमें प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी रचनाओंका प्राचुर्य रहा। सन् ५० के बाद विविध विषयों तथा नाना रसोंसे युक्त गेय रचनाएँ लिखी जा रही हैं। कथाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, शतक, सिनीगीत आदि सभी प्रकारकी विधाओंके लिए गेय (देशी मात्रा छन्द में लिखे गये) प्रयुक्त हो रहा है।

कथाकाव्योंमें श्री नारप रेड्डीके 'कथगादिदि वध' (यह कथा नहीं, वध है) और 'रजनी'; विद्वान् विश्वंका 'पेन्नेटि पाट'; वानमामलै वरदाचार्यके 'विप्रलब्ध'; नागभैरव कोटेश्वररावका 'तुफ़ानु' उल्लेखनीय हैं। इनमें श्रमिकोंकी कथाके साथ ग्रामीण वातावरणका सफल चित्रण किया गया है।

डॉ० सी० नारायण रेड्डीने ऐतिहासिक इतिवृत्तको ग्रहण कर 'नागार्जुनसागरम्', 'कर्पूर वसन्तरायलु', 'विश्वनाथ नायकुडु' नामक गेय काव्योंकी रचना की है। नागभैरव कोटेश्वररावका 'रंगाजम्मा', इन्द्रगंटि श्रीकान्त शर्माका 'शिलामुरली' भी उल्लेखनीय हैं।

डॉ० नारायण रेड्डीने पं० नेहरूकी कथाको 'जाति रत्नं' (श्रेष्ठ रत्न) के नामसे काव्यबद्ध किया है।

वर्णनप्रधान गेय काव्योंमें सोमसुन्दरका 'गोदावरी जलप्रलयं', नारायण रेड्डीका 'ऋतु चक्रं', मुकुराल रामा रेड्डी का 'देवरकोंड दुर्गं' प्रसिद्ध हैं।

मेनका और विश्वामित्रकी कथाको सुप्रसिद्ध कलाकार, शिल्पी और कवि मडिपडग बलरामाचार्यने 'मेनका विश्वामित्रं' नामक गेय वृत्त काव्यमें निबद्ध किया है।

गेय नाटिकाके लेखकोंमें डॉ० नारायण रेड्डी, नारप रेड्डी, बापु रेड्डी, डॉ० के० वी० आर० नरसिंहम्, डॉ० यस्वी० जोगाराव सुप्रसिद्ध हैं।

अधिक्षेप, व्यंग्यके आधारपर गेयरचना करनेवालोंमें कालोजि नारायणराव, गज्जल मल्ला रेड्डीके स्वर अत्यन्त तीखे हैं। 'नव्वे कत्तुलु' (हँसती तलवारें) (मुकुराल रामा रेड्डी) भी इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय रचना है।

मुक्तक और शतक लिखनेवालोंमें नारायण रेड्डी और आरुद्रके नाम लिये जाने चाहियें। दाशरथीका 'कविता-

पुष्पकम्' प्रणय और शृंगार भावनाओंसे भरपूर सरस गेय काव्य है।

आधुनिक युगमें गेय कविताको मूर्धन्य स्थान प्राप्त हुआ है। इस क्षेत्रमें डॉ० नारायण रेड्डीने अन्यतम कृतियोंकी रचना की है और अद्वितीय प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

छन्दोबद्ध रचनाओं तथा गेय कविताके बाद वचन कविता (free verse) का उल्लेख होना चाहिये। प्रगतिवादी कवियोंके साथ प्रयोगवादी कवियोंने वचन-रचनाको

[पृष्ठ १६७ का शेष]

उपर्युक्त लेखकोंके अतिरिक्त शक्ति कृष्णस्वामी, अ० अलकप्पन, ए० पी० नागराजन, पूर्ण विश्वनाथन, गोमती स्वामिनाथन आदिने भी नाटक साहित्यको समृद्ध किया है।

नाटककी तरह एकांकीमें भी कलात्मक लेखनका अधिक प्रयास नहीं हुआ है। पारिवारिक जीवनके मार्मिक प्रसंगोंको और सामाजिक जीवनकी समस्याओंको प्रस्तुत करनेवाले लक्ष्ययुक्त एकांकी अनेक लिखे गये हैं। शक्ति कृष्ण स्वामी, नागराजन, मु० करुणानिधि, गुरुस्वामी इनकी कृतियाँ इसी प्रकारकी हैं। हालमें जो नयी दृष्टि आयी है उसके फलस्वरूप दो एक लेखकोंने अधिक गंभीर मनोवैज्ञानिक एकांकी प्रस्तुत किये हैं। इनमें इन्दिरा पार्थसारथीका 'बरसात' (मषै) और न० मुत्तुस्वामीका 'कुरसीवाला' (नार्कालिक्कारन) विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनोंमें वर्तमान जीवनमें व्यक्तिकी विवशता और असहायताको व्यक्त किया गया है।

जब सृजनात्मक साहित्यकी विभिन्न विधाओंका विविध दिशाओंमें विकास हुआ है, निबन्ध, आलोचना आदिका विकास उतना नहीं हुआ है। वैयक्तिक भाव-प्रधान निबन्धका विकास नहींके बराबर है। विचार-प्रधान और अध्ययनपूर्ण निबन्ध तथा शोधसम्बन्धी कार्य अधिकतः प्राचीन तमिल साहित्य और संस्कृतिसे सम्बन्धित ही हुए हैं।

इस सर्वेक्षणसे ज्ञात होगा कि स्वातन्त्र्योत्तर तमिल साहित्य प्राचीनताकी आस्थाओं तथा नवीनताकी आकांक्षाओंके बीचमें खड़ा होकर विकासका प्रयास कर रहा है। बाहरी प्रभावोंको उसने अत्यधिक संयमके साथही स्वायत्त किया है। अधिकांश साहित्य-सृजन प्राचीन संस्कृतिके प्रति आस्थावान है, और वर्तमान जन-संस्कृतिसे सम्बन्धित है। सीमित मात्रामें नयी चेतनाका संचार हुआ है, जिससे साहित्यकारकी दृष्टिमें कुछ परिवर्तन आया है, और विश्लेषणात्मक एवं सांकेतिक अभिव्यंजनाका भी कुछ विकास हुआ है।

प्रश्रय दिया था। आरुद्रका 'त्वमेवाऽहं' इस क्षेत्रमें सफल काव्य है। दाशरथीकी लम्बी रचना 'मस्तिष्कं लो लेबोरेटरी' भी उल्लेखनीय है। पाँचवें दशकके मध्य भाग तक वचन कविताको एक विशिष्ट रूप मिल गया है। श्री कुन्दुर्ति आंजनेयुलु फ्रीवर्स फ्रंटके अगुआ माने जाते हैं। अजन्ता, डॉ० मादिराजु रंगाराव, गोपाल चक्रवती आदिने सफल वचन-रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

डॉ० रंगाराव, वेगुंट मोहनप्रसाद, डॉ० अरिपिराल विश्वं, दुर्गानन्द आदिकी रचनाओंमें आन्तरिक चैतन्य तथा आन्तरिक संघर्षको अभिव्यक्ति मिली है तो सी० विजयलक्ष्मी, शीला वीर्राजु, सी०बी०कृष्णाराव, पेर्वारं जगन्नाथं, वे० नरसिंहा रेड्डी, संपतकुमार, वरवरराव, डॉ० शिवप्रसाद आदिकी रचनाओंमें लोकवृत्त तथा लोकजीवनके सुख-दुखों को अभिव्यक्ति मिली है। प्रथमतः कथात्मक वचन कविता लिखनेका श्रेय शीला वीर्राजुको प्राप्त हुआ है। दिगंबर कवियोंने वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके प्रति अपना तीव्र असन्तोष प्रकट किया है। दिगंबर कविगण (छः कवि) ने वर्तमान समाजके प्रति द्वेष, घृणा, असन्तोष व्यक्त करनेके लिए जुगुप्साप्रद प्रतीकोंका प्रयोगकर, पाठकोंको आकृष्ट किया और धीरे-धीरे मार्क्सीय धारामें विलीन हो, विप्लव कविताके समर्थक बने। किन्तु श्री श्री की अध्यक्षतामें स्थापित वि० र० सं० (विप्लव रचयितल संघ) से अलग ही रहे।

वचन कविताके क्षेत्रमें वरंगलसे प्रकाशित 'चेतनावर्त' (२ भाग) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानवके सर्वतोमुखी विकास, लोकतन्त्र व्यवस्था, राष्ट्रीय दृष्टिकोण, आधुनिक भाव चैतन्यको प्रधान लक्ष्यके रूपमें चुनकर लिखे गये चार कवियोंकी रचनाएँ इन संकलनोंमें संगृहीत की गयी हैं। ये चार कवि संपत्कुमार, डॉ० सुप्रसन्न, पेर्वारं जगन्नाथं और वे० नरसिंहा रेड्डी हैं।

उपन्यास

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आजकल तेलुगु साहित्यके क्षेत्रमें उपन्यास और कहानीका राज्य है। प्रतिवर्ष १००-१५० उपन्यास और २-३ हजार कहानियाँ प्रकाशित हो रही हैं। हाँ, यह सच है कि परिमाण ही श्रेष्ठताका लक्षण नहीं है, किन्तु इस बाढ़में अवश्यही कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जो तेलुगु उपन्यास तथा कहानीको विश्व-साहित्यके मंचपर गौरवपूर्ण स्थानका अधिकारी बनाती हैं।

स्वतन्त्रताके बाद प्रकाशित उपन्यासोंमें निम्न समस्याएँ प्रमुख रूपसे उभर कर आयी हैं : १. साम्यवादी समाज

व्यवस्था—पूँजीवादी और जमींदारी व्यवस्थाका विरोध, वर्ग संघर्षका चित्रण। २. नैतिक समस्याएँ—यथार्थके धरातलपर आदर्शका चित्रण। ३. वर्णान्तर विवाह और विवाहसे सम्बद्ध अन्य समस्याएँ। ४. मध्य वर्गकी आर्थिक समस्याओंके आधारपर जीवनका विशद चित्रण। ५. नेताओंपर या वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थापर व्यंग्य आदि।

उपर्युक्त समस्याओंको लेकर कई लेखकोंने सुन्दर उपन्यासोंकी रचना की है। इन उपन्यासोंमें अधिकतर नगर-जीवनका ही चित्रण पाया जाता है।

ग्रामीण जीवनका, विविध रूपोंमें, चित्रण करनेवाले उपन्यासोंमें 'कीलुबोम्मलु' (कठपुतलियाँ)—जी०वी०कृष्णाराव, कोल्लायिगट्टितेनेमि (अंगोछा पहनें तो क्या हुआ)—महीधर राममोहनराव, 'नल्लरेगडि' (काली मिट्टी)—पालगुम्मि पद्मराजु, 'संघं चेसिन मनिषि' (मानव जिसे समाजने बनाया) और 'दीपशिखा'—पोलामगड़ सत्यनारायण मूर्ति, 'चिल्लर देवुल्लु' (छुटपुट देवता)—दाशरथि रंगाचार्य, 'ऊबिलो दुन्न' (कीचड़में भैंसा) आदि उल्लेखनीय हैं। 'ऊबिलो दुन्न' प्रयोगात्मक रचना है। रंगाचार्यके 'मोदुगपूलु' (टेसूके फूल) में तेलंगानेके विप्लवका सफल चित्रण किया गया है।

इस युगके उपन्यासोंकी श्रीवृद्धिका श्रेय विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंको है। इन पत्र-पत्रिकाओंमें कई वर्द्धमान युवा उपन्यासकारोंकी रचनाएँ धारावाहिक रूपसे प्रकाशित की जा रही हैं। उपन्यास-प्रतियोगिताएँ भी चलाकर, उत्तम रचनाओंको पुरस्कृतकर लेखन-कार्यको प्रोत्साहित करनेमें ये पत्र-पत्रिकाएँ सराहनीय कार्य कर रही हैं।

स्व० बुच्चि बाबू (चिवरकु मिगिलेदि–अन्तमें जो बचेगा), स्व० गोपीचन्द (असमर्थकी जीवनयात्रा, पं० परमेश्वर शास्त्रीकी वसीयत आदि), श्री राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री (अल्पजीवी, राजु-महिषी), स्व० भास्कर भट्ल कृष्णाराव (प्रवाहमें तिनके, युगसन्धि, विचित्र प्रणयम), श्री आर० एस० सुदर्शनम (मल्ली वसन्तम) ने उल्लेखनीय रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। भास्कर भट्ल और राचकोंडाके उपन्यासोंमें चेतना-प्रवाह-शैलीका प्रयोग किया गया है। इस शैलीमें रचित 'अंपशय्या' (नवीन), 'पियक्कड' (वी० नागराजु) सफल उपन्यास हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखनेवालोंमें कविसम्राट् विश्वनाथ, सत्यनारायण और श्री नोरि नरसिंह शास्त्री उल्लेखनीय हैं। विश्वनाथजीने 'पुराण वैर ग्रन्थमाला', 'नेपाल-कश्मीर राजवंशकी कथाएँ' के नामसे बीसियों उपन्यास लिखे हैं जिनमें पुराणोंमें बताये विषयोंके आधारपर इतिहास-रचनाकी ओर संकेत है। श्री नरसिंह शास्त्रीने संख्यामें कम उपन्यास (रुद्रमादेवी, नारायण भट्ट, मल्ला रेड्डी, धूर्जटि) लिखे हैं किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासकी कसौटीपर ये रचनाएँ अपेक्षाकृत खरी उतरती हैं। श्रीमती मल्लादि वसुन्धरा, डॉ० पाटिवंड माधव शर्मा, डॉ० धूलिपाल श्रीराममूर्ति, डॉ० बोड्डुपल्लि पुरुषोत्तम आदिके नाम भी उल्लेखयोग्य हैं।

बलिवाडा कान्ताराव (दीवारपर तस्वीर, धोखा खानेवाला भाई), कोम्मूरि वेणुगोपालराव (खपरैलका मकान, हाउस सर्जन), पुराणं सूर्यप्रकाशराव (जीवन गग बदलते मनुष्य), अवसरालरामकृष्णरास (वह प्रश्न और यह जवाब, चंपक और चमेली), शीला वीर्राजु (मैना) आदिने मध्यवर्गीय समाज तथा उनकी समस्याओंका प्रभावशाली चित्रण किया है। कोडवटिगुंटि कुटुंबराव (पढ़ाई), पालगुम्मि पद्माराजु (रामराज्यके लिए राजमार्ग, दूसरे अशोकके तीन दिनका शासन) आदिने स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्वसे लेकर आजतककी परिस्थितियोंका, परिवर्तनशील समाजका चित्रण किया है। पोरंकि दक्षिणामूर्तिने उत्तम आंचलिक उपन्यासोंकी रचना की है।

स्वतन्त्रताके बाद लेखिकाओंने उपन्यासके क्षेत्रमें संख्याकी दृष्टिसे तो लेखकोंको मात कर दिया है। रचना-वैशिष्ट्यकी दृष्टिसे भी कई श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। लेखिकाओंने विशेष रूपसे सामाजिक, पारिवारिक समस्याओंको लेकर स्त्रीके जीवन—उतार-चढ़ाव, कर्तव्य-उत्तरदायित्व—का चित्रण किया है। इनमें श्रीमती मुप्पाल रंगनायकम्माका स्वर सबसे ऊँचा है। यद्दनपूडि सुलोचनाराणीकी रचनाएँ अपनी मधुर एवं सरस शैलीके कारण अत्यन्त लोकप्रिय बन गयी हैं। श्रीमती इल्लिदल सरस्वती देवी, वासिरेड्डी सीतादेवी, आनन्दा रामं, बीना देवी, लता, आरिकैपूडि कौसल्यादेवी आदिने अपने-अपने दृष्टिकोणसे स्त्री जीवनका चित्रण किया है। इनके अतिरिक्त द्विवेदुल विशालाक्षी, मालती चंदूर, उन्नव विजयलक्ष्मी, गंटि वेंकट रमण और परिमला सोमेश्वरने भी कुछ अच्छे उपन्यासोंकी रचना की है।

सम्प्रति तेलुगु उपन्यासके क्षेत्रमें अधिकतर रचनाएँ मध्य वर्गका विशद चित्रण प्रस्तुत कर रही हैं। कतिपय रचनाओंमें वर्तमान मानवकी विचारधाराका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेका प्रयास किया गया है। कुछ रचनाओंमें मधुर कल्पनाओंके द्वारा पाठकके मनको सुख-शान्ति प्रदान करनेका प्रयत्न किया गया है। जासूसी उपन्यासोंकी रचना

भी पर्याप्त मात्रामें हो रही है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं कि आजकल तेलुगु साहित्यके क्षेत्रमें उपन्यास का राज्य है।

कहानी

उपन्यासकी अपेक्षा कहानीका क्षेत्र अधिक विस्तृत है। नागरिक और ग्रामीण जीवनकी असंख्य समस्याओंको असंख्य दृष्टिकोणोंसे कहानीमें अभिव्यक्त किया गया है। विषय-वैविध्यकी दृष्टिसे तेलुगु कहानी बेजोड़ है किन्तु रचना-शैली और संक्षिप्तताकी दृष्टिसे तेलुगु कहानीको अभी विकसित होना है।

१९५० के आसपास प्रकाशित कहानियोंमें अंग्रेज सरकारके चले जानेके बाद देशी राजाओं अथवा छोटे-मोटे जमींदारोंके मानसिक परिवर्तन अथवा व्यथाको चित्रित करनेवाली कुछ अच्छी रचनाएँ हैं। विशाल आन्ध्रकी परिकल्पनाकी आकांक्षाको लेकर, आन्ध्रकी प्रसिद्ध नदियों, प्राचीन क्षेत्रोंकी पृष्ठभूमिपर आंचलिक जीवनका वर्णन आंचलिक भाषामें करनेवाली कहानियाँ भी लिखी गयी थीं। इनमें उल्लेखनीय 'नौका प्रयाण' (पा० पद्मराजु), अरक घाटीमें गिरा शिखर (बुच्चि बाबू), 'पानी' (पेद्दिभोट्ल सुब्बरामय्य) आदि हैं। अडिवि बापिराजु, मा० गोखले, कोलकलूरि इनाक, ताडिगिरि पोतराजुने भी इस प्रकारकी श्रेष्ठ कहानियाँ रची हैं।

ग्रामीण जीवनका सफल चित्रण करते हुए करुणकुमार ने अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। गोपीचन्दने ग्रामीणोंका शोषण करनेवाले व्यक्तियों अथवा परिस्थितियोंपर तीखा व्यंग्य करते हुए कहानियाँ लिखी हैं।

पारिवारिक जीवनके मधुर हास्यका चित्रण करते हुए मुनिमाणिक्यं नरसिंहारावजीने उत्तम कहानियाँ लिखी हैं। इस क्षेत्रमें के० रामलक्ष्मी, इच्छापुरं जगन्नाथराव, पी० भानुमतिके नाम उल्लेखनीय हैं। पारिवारिक प्रेमका चित्रण करते हुए कहानियोंकी रचना करनेवालोंमें मंजुश्री, रुद्राभट्ल नरसिंहाराव, अवसराल रामकृष्णाराव, वट्टिकोंड विशालाक्षी, कोम्मूरि वेणुगोपालराव, पुराणं सूर्यप्रकाशराव आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। दहेज, विवाह, पति-पत्नीके संबंधोंको लेकर कोनकल्ल वेंकटरत्नं, बलिवाडा कान्ताराव, वाचस्पति, कोडवटिंगटि कुटुंबराव, परिमला सोमेश्वर आदिने अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। श्रमिक और मज़दूरकी समस्याओंको लेकर श्री श्री, पिच्चेश्वरराव आदिने अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

गुमाश्तोंके जीवनकी अथवा मध्यवर्गीय समाजकी समस्याओंको लेकर वाकाटि पांडुरंगाराव, कलवकोलन सदानन्द, ऐ०वी०यस० अच्युतवल्ली, कालीपट्नम रामाराव, अरिगे रामाराव आदिने प्रभावशाली कहानियाँ लिखी हैं। अध्यापकीय जीवनको लेकर ग्रामीण जीवनकी पृष्ठभूमिपर मधुरान्तकं राजारामने अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

राजनीतिक अथवा सामाजिक व्यवस्थापर तीखा व्यंग्य करते हुए मुल्लपूडि वेंकटरमण, मंचिराजु वेंकटराव, आर० यस० वसुन्धराने अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री और बुच्चि बाबूने मनोविश्लेषणप्रधान कहानियाँ लिखी हैं। राचकोंडाकी शैली बेजोड़ है, जो छोटे-छोटे वाक्योंको लिए काव्यका-सा आनन्द देती है।

मुप्पाल रंगनायकम्मा, बीनादेवी, वासि रेड्डी सीता देवीने स्त्री जीवनकी समस्याओंको लेकर सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। आरिकेपूडि कौसल्यादेवी और मद्दनपूडि सुलोचनाराणी अपनी मधुर कल्पनाओंसे युक्त कहानियोंद्वारा पाठकोंको क्षणभरके लिए भुलावा देकर आनन्दसागरमें ऊभचूभ कर देती हैं। यह शैली साधारण पाठकोंको अत्यधिक आकर्षित करती है अतः इस प्रकारकी कहानियोंके कारण पत्र-पत्रिकाओंके प्रसारमें वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। हाँ, इतना सच है कि स्त्रियोंकी समस्याओंका यथार्थ और सहज चित्रण लेखिकाएँ ही कर सकती हैं। आर्थिक स्थितिगतियोंका तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंका जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका लेखिकाएँ बड़ी निर्भीकताके साथ चित्रण कर रही हैं, यह बड़े हर्षकी बात है।

उपर्युक्त कहानीकारोंके अतिरिक्त सैकड़ों कहानीकार हैं जो लगनके साथ साहित्यकी सेवा कर रहे हैं। गोल्लपूडि मारुतिराव, मंजुश्री, ताल्लूरि नागेश्वरराव, आरुद्र, राजा राममोहनराव तुरगा जानकीराणी, काविलपाटि विजय लक्ष्मी आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक

सन् १९४३ में आन्ध्र विश्वविद्यालयने नाटक रचना तथा अभिनयकी प्रतियोगिताओंका प्रारम्भ किया था। सन् '४५ में प्रजानाट्य मंडलीकी स्थापना हुई थी। इन दोनों घटनाओंके बाद तेलुगु नाटक साहित्यमें एक नये युगका प्रारम्भ हो गया था। इससे पारस्परिक नाटक पद्धतियाँ (रचना एवं अभिनयकी) समाप्त हुईं, प्रयोगात्मक नाटकोंका अभिनय शुरू हुआ। पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकोंकी अपेक्षा सामाजिक इतिवृत्तको प्राधान्य मिलने लगा तथा तेलुगु रंगमंचकी रूपरेखा बदलने लगी।

सामाजिक नाटकोंमें प्रधानतया स्त्रीसम्बन्धी समस्याओंको, समिष्टि परिवारकी समस्याओंको तथा वर्ग-संघर्ष (ज़मींदार-किसान अथवा मालिक-मज़दूर) का चित्रण किया गया। कोंडमुदि गोपालराय शर्माका 'एदुरीत' (प्रवाहके विरुद्ध तैरना) वर्णान्तर विवाहको लेकर लिखा गया तो आचार्य आत्रेयके 'एन० जी० ओ०' (अराजपत्रित अधिकारी) में मध्य वर्गकी समस्याओंका चित्रण मिलता है।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाकी पोल खोलनेवाले नाटककारोंमें आत्रेय, राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री, कोडालि गोपालराव प्रमुख हैं। सुप्रसिद्ध सिनी-अभिनेता नागभूषणं का 'रक्तकन्नीरु' (खूनके आँसू) इस क्षेत्रमें अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। विगत १६ वर्षोंमें इस नाटकको २०० से अधिक बार खेला गया है और आजभी इस नाटकके लिए टिकट मिलना बहुत कष्टसाध्य है।

ग्रामीण समस्याओंका चित्रण करनेवाले नाटककारोंमें सुंकर, वासि रेड्डी, बोयि भीमन्ना, के० यल० नरसिंहाराव उल्लेखनीय हैं।

मनोविश्लेषणात्मक नाटकोंकी रचना करनेवालोंमें बुच्चि बाबू (आत्मवंचना), आर० वी० यस० रामस्वामी, राघव, पात्रो प्रसिद्ध हैं।

डॉ० कोर्रपाटि गंगाधररावने अनेक विषयोंको लेकर लगभग सौ नाटक और नाटिकाएँ लिखी हैं। ये सभी रचनाएँ अभिनीत होकर लोकप्रिय हुई हैं।

हास्यरसप्रधान नाटककारोंमें (जिनमें व्यंग्यका पुट भी है) सोमंचि यज्ञन्न शास्त्री (पेद्द मनुषुलु—संभ्रान्त व्यक्ति), डी० वी० नरसराजु (नाटक), भमिडिपाटि राधाकृष्ण (कीर्तिशेषुलु—जिनकी कीर्ति ही बची हुई हो), रावि कोंडलराव (नालुगिल्ल चाविडि—चार घरोंके बीचका आँगन, कुक्क पिल्ल दोरिकिंदि—कुत्तेका पिल्ला मिल गया) आदि प्रमुख हैं।

अनिसेट्टि सुब्बाराव्, पिनिसेट्टि श्रीराममूर्ति, बेल्लंकोंडा रामदास, अवसराल सूर्यारावने वर्तमान मध्यवर्गीय सामाजिक परिस्थितियोंका चित्रण करते हुए उत्तम नाटकोंकी रचना की है। नंडूरि रामकृष्णमाचार्य, पडाल, आमंचर्ल गोपालरावने ऐतिहासिक नाटक, श्रीरामुल सच्चिदानंद शास्त्री, बोयि भीमन्नाने पौराणिक नाटक लिखे हैं। गेय और नृत्य नाटिकाएँ लिखनेवालोंमें शिवशंकर स्वामी, नोरिनरसिंह शास्त्री, देवुलपल्लिकृष्ण शास्त्री, बी० रजनीकान्तराव, डॉ० सी० नारायण रेड्डी, दाशरथी, मल्लवरपु विश्वेश्वरराव, विजमूरि शिवरामाराव, शशांक, बापु रेड्डी प्रमुख हैं। आरुद्र, कुंदुर्ति, डॉ० अरिपिराल विश्वने कुछ वचन गेयोंकी रचना की है।

बालकोंके लिए नाटक लिखनेवालोंमें जन्ध्याल पापय्य शास्त्री, इल्लिदल सरस्वती देवी, न्यापति राघवराव प्रमुख हैं। रेडियो नाटक लिखनेवालोंमें गोरा शास्त्री, हितश्री, कोडवटिगंटि, सुब्बाराव, प्रयाग नरसिंह शास्त्री, अमरेन्द्र लब्धप्रतिष्ठ हैं।

आलोचना

तेलुगु साहित्यमें आलोचनासम्बन्धी रचनाएँ संख्यामें अधिक नहीं हैं। इसका कारण यह है कि यह माना जाता है कि जो सृजनात्मक साहित्यकी रचना नहीं कर सकता, वही आलोचक बनता है। फिरभी जो कुछ आलोचनाप्रधान साहित्य है, वह गंभीर और उत्तम है। प्राचीन साहित्यकी जितनी आलोचना हुई है और जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उतनी आधुनिक साहित्यपर नहीं। विश्वविद्यालयों में भी अनुसन्धान अधिकतर प्राचीन साहित्य और प्राचीन कवियोंपर किया जा रहा है।

कवि जीवनियाँ, साहित्यका इतिहास, साहित्यकी विशिष्ट विधाओंका इतिहास, विशिष्ट काव्यकी आलोचना, भाषा, व्याकरण, छन्दसंबंधी आलोचना आदि विषयोंपर प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे गये हैं। सुप्रसिद्ध आलोचकोंमें कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी, राल्लपल्लि अनन्तकृष्ण शर्मा, पिंगलि लक्ष्मीकान्तम, विश्वनाथ सत्यनारायण, गुडिपाटि वेंकटचलं, तापि धर्माराव, निडदवोलु वेंकटराव, गिडुगु सीतापति, खंडवल्लि लक्ष्मीरंजनम्, दिवाकर्ल वेंकटावधानी, पाटिबंड माधव शर्मा आदिके नाम लिये जा सकते हैं।

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त साहित्यकी आलोचनासंबंधी उत्तम लेख और संकलनभी प्रकाशित हुए हैं। इनमें तेलुगु भाषा और साहित्यसंबंधी, साहित्यशास्त्रसंबंधी तथा अन्य भाषा-साहित्यसंबंधी रचनाएँ हैं।

संपादित और परिष्कृत पुस्तकोंकी भूमिकाओंके रूपमें तथा पुस्तक समीक्षाके रूपमें भी आलोचनात्मक साहित्य प्रकाशित है।

डॉ० केतवरपु रामकोटि शास्त्री, डॉ० जी०वी०कृष्णराव, के०वी० रमणा रेड्डी, कालूरि हनुमन्तराव, डॉ० जी०वी० सुब्रह्मण्यम्, डॉ० के० सुप्रसन्नाचार्य, गुन्टूर शेषेन्द्र शर्मा, आर० यस० सुदर्शनम् आदिने भी इस क्षेत्रमें उल्लेखनीय कार्य किया है।

[शेष पृष्ठ १७६ पर]

घ. स्वातन्त्र्योत्तर मलयालम साहित्य

—डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर
कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चिन

स्वातन्त्र्योत्तर मलयालम वाङ्मयकी चर्चाकी दो रूपरेखाएँ मेरे सामने आती हैं। पहली विस्तृत रूपरेखा, जिसमें प्रत्येक कवि, नाटककार आदिकी कृतियोंका विवरण है। बड़े-छोटे सभी नाम हैं। दूसरी रूपरेखा एक निबन्धकी है जिसमें एक विशेष दृष्टिकोणसे पूरे विषयका विवेचन किया गया है। इन दोनोंके बीच मैं मध्य-मार्ग स्वीकार करना चाहूँगा क्योंकि इस निबन्धका ध्येय मलयालम वाङ्मयकी समीक्षा करना ही नहीं है, हिन्दी-भाषियोंको मलयालम वाङ्मयके विकासका स्वरूप समझाना भी है। इस प्रक्रियामें यदि मेरे विवेचनमें प्रखरता न दिखायी दे तो पाठकगण क्षमा करेंगे।

गत पच्चीस वर्षका मतलब स्वतन्त्रताप्राप्तिके बादके युगसे है। साहित्यके छात्र "स्वातन्त्र्योत्तर" शब्द बराबर रटते हैं। मगर विचारणीय है कि भारतकी स्वतन्त्रता-प्राप्ति की प्रतिक्रिया क्या इतनी गंभीर एवं क्रान्तिकारी थी। पूरे सौ वर्षतक विदेशी शासनकी गुलामी करनेके बाद उससे भारत मुक्त हुआ। इसका महत्त्व फ्रांसकी क्रान्तिके महत्त्वसे कम नहीं है। न वह रूसकी समाजवादी क्रान्तिसे कम महत्त्वपूर्ण है। इसी महत्त्वके कारण हम स्वातन्त्र्योत्तर शब्दपर इतना जोर देते हैं। परन्तु हमें स्वाधीनता रूस या फ्रांसकी क्रान्तिकी तरह एकाएक जनताकी खूनी बगावतके कारण प्राप्त नहीं हुई थी। इसमें हिंसाकांड कमसे कम घटित हुए थे। वर्षोंतक हमारे देशसेवक अहिंसात्मक उपायों से स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके लिए जूझते रहे थे। इक्के-दुक्के हिंसाकांड अपवाद थे। अंतमें आजादीकी घोषणा ममतामय वातावरणमें की गयी। इंग्लैंडके सम्राट्के प्रतिनिधि लॉर्ड मौंटबैटन, महात्मा गान्धी और जवाहरलाल नेहरूके प्रशंसक थे, मित्र थे। यही ऐसा देश है जिसने सत्ताधारी ब्रिटिश लोगोंको मित्र माना। अबभी दोनों देशोंके लोग मित्र हैं। अधिकार हस्तांतरितकर जब अंग्रेज जा रहे थे तब ऐसा लगता था कि हमारे रिश्तेदार विदा लेकर अपने घर जा रहे हैं। सारकी बात यह है कि स्वतन्त्रता-पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर भारतके किसीभी क्षेत्रमें कोई क्रान्तिकारी अंतर नहीं आया। भारत-पाकिस्तानके बँटवारे और उससे उत्पन्न खूनखराबी की बात यहाँ नहीं भूल रहा। वह एक भीषण घटना थी और उस घटनाका स्मरणतक दिलको दहला देता है। पर वह कुछ पागलोंका काम था। धर्मकी, सांप्रदायिकताकी भीषणता हमने समझ ली। इसीलिए हमने अपने संविधानको धर्मनिरपेक्ष बना लिया। फिरभी हम स्वतन्त्रता-पूर्व-युग से कहींभी भिन्न नहीं हैं। धर्म और संप्रदाय भारतके सार्वजनिक जीवनमें जो योगदान कर रहे हैं वह किसीसे छुपा नहीं है। केरलमेंभी हम यह खूब देख रहे हैं। तो फिर स्वतन्त्रतापूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर युगका अंतर क्या रहा?

पर अंतर जरूर था। पहले लोगोंके मन में जो त्रास-भावना थी, वह गायब हो गयी। साँसकी घुटन अब नहीं रही। ब्रिटिश शासनके दिनोंमें थोड़ीभी क्रान्तिकारी भावना के या शासनके आलोचक साहित्यकारोंपर संकटके बादल मंडराते रहते थे। आर्थिक दृष्टिसे भी उन्हें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था, बीच-बीचमें सरकारी आतंकके कारण फरार भी रहते थे। इस आतंकके कारण साहित्यकार निर्भीक और स्पष्ट लेखनका साहसतक नहीं करते थे। स्वातंत्र्य-प्राप्तिके बाद साहित्यकारोंको इस बाह्य और आन्तरिक आतंकसे मुक्ति मिली। साहित्य-सर्जनपर इसके अनुकूल प्रभावके साथ वाग्वीरोंका भी उदय हुआ। जिसे देखो वह स्वतन्त्रताका गायक और विदेशी शासनका निन्दक निकला। भारत-चीन युद्ध और भारत-पाकिस्तान युद्धके दिनोंमें ऐसे क्षुद्र कवियोंकी बाढ़-सी आ गयी, 'आगि बुझे ज्यों राखिको रौंदि चले सब कोई'। इस कटु तथ्यका प्रमाण यह है कि हमारे देशकी भाषाओंमें महात्मा गान्धी एवं स्वाधीनता आन्दोलनपर आधारित ठोस साहित्यिक तथा गम्भीर रचनाएँ बहुत कम हुई हैं। मेरा निष्कर्ष मलयालम और हिन्दीपर आधारित है। हमारे देशका स्वाधीनता आन्दोलन जितना गंभीर था, उतने अच्छे ग्रंथ नहीं आये।

प्रेमचन्दके उपन्यास, यशपालका 'झूठा सच' आदि कुछ अपवाद हैं। मलयालममें ऐसे ग्रंथ बिलकुल कम हैं। देशव्यापक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंके नामपर सिर्फ़ नारेबाजीकी कृतियाँ अधिकतर रची जाती हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर भारतकी दशाके विषयमें मित्रवर डॉ० राघवन पिल्लैने[1] बिलकुल सही टीका की है कि हम सौभाग्यशाली हैं। "स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद हमेशा देशका भविष्य उज्ज्वल ही नहीं हो जाता। इतिहास बतलाता है कि भारतके स्वतन्त्रता-लाभके बाद आज़ाद बने कई यूरोपीय, एशियायी और अफ्रीकी राष्ट्र आजादीके आनन्दके बदले तानाशाह शासकोंकी दासतामें जकड़ गये। विदेशी प्रभुताके बिलसे निकलकर उससे भी भीषण स्वदेशी सत्ताकी बिल्लीके मुँहमें जा पड़े। कांगो, उगांडा आदि देश उदाहरण हैं। भारत अभी इस दयनीय दशामें नहीं है। यहाँ साहित्यकारको नियंत्रित करनेवाले अई अदृश्य स्रोत जरूर हैं। तथापि सरकार या कोई सत्ता उसे आँख दिखाकर, डराकर मुँह बन्द नहीं कर सकती। समाजवादी राष्ट्रोंकी कठोर साहित्यिक नीति भी यहाँ नहीं है। इससे साहित्यका वृक्ष सभी दिशाओंमें पल्लवित हो सका है। वामपक्षीय राजनीतिपर आधारित और समाजवादी विचारोंसे भरे मलयालम-ग्रंथ इस विकासके प्रमाण हैं। इसी भाषा में वासनाकी गुदगुदी भरनेवाले रोमानी कहानी-उपन्यास भी लिखे गये। ये खास दूकानों और फुटपाथोंपर बेचे जाते हैं। यह मलयालमकी ही नहीं, हिन्दीकी भी स्थिति है। लोकतंत्रवादी स्वतन्त्र देशके शासनकी उदार नीति ऐसी स्वच्छंदताका कारण कहला सकती है। मेरा मतलब यह है कि स्वाधीनता-लाभके बाद मलयालम साहित्यकी हर शाखाका पर्याप्त विकास हो सका है।

पिछले पच्चीस वर्षोंके साहित्यिक विकासका संक्षेपन एक साथ करना टेढ़ा काम है। अतएव कविता, कथा-साहित्य, नाटक चौर विविधके शीर्षकोंके अन्तर्गत इस विकासका संक्षिप्त विवरण देनेकी कोशिश की गयी है।

कविता

स्वाधीनता-प्राप्तिके दिनोंमें केरलके मूर्धन्य कवियोंमें सर्वश्री शंकर कुरुप, बालामणि अम्मा और कुंञ्ञुरामन नायर अपनी-अपनी काव्य-धाराके अग्रणी या पथ-प्रदर्शक थे। कुरुपजीकी छायावादी-रहस्यवादीधारा, बालामणि अम्माकी मातृभावना दार्शनिकता और पुराणोंकी नवबौद्धिक व्याख्या, कुञ्ञुरामन नायरकी केरलीयता, प्रकृति-पूजा और माधुर्य अपने-अपने ढंगकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं। इन तीनों धाराओंके कवियोंके मन स्वतंत्रता-प्रेमकी भावनासे भी भरे थे। केरलकी लोकप्रिय धाराके रूपमें चंगम्पुषा कृष्ण पिल्लैकी रोमांटिक काव्यधारा भी थी जो ताल-लय और रागसे रंजित रही। वे सभी प्रवृत्तियाँ जारी रही हैं। फिरभी रहस्यवाद और दार्शनिकता कुरुपजी और बालामणि अम्माकी व्यक्तिगत उपलब्धियोंतक सीमित रह गयी है। कविताका सामाजिक पक्ष मानवतावाद, बौद्धिकतावादी दृष्टिकोणसे सशक्त होता है। इनके प्रतिनिधि कवि इटश्शेरी गोविन्दन नायर और वैलोप्पिळ्ळि श्रीधर मेनोन हैं। इटश्शेरीके काव्यकी विशेषता है आंचलिक एवं ग्राम्य शब्दावली। सशक्तता एवं अपरिवर्तनीयता इन शब्दोंकी विशेषताएँ हैं। वैलोप्पिळ्ळि जी० शंकर कुरुपके ही पथपर चले, परन्तु विचार-पक्ष और मौलिक विश्लेषण उनकी विशेषता है। अतः इटश्शेरी एवं वैलोप्पिळ्ळि अवस्थासे प्रौढ़ होते हुएभी युवा-पीढ़ीके आदर्श और अनुकरणीय रहे।

उपर्युक्त कविगण मौलिक प्रतिभाके धनी एवं विशिष्ट व्यक्ति थे। सामान्य रूपसे मलयालम काव्य-जगत् कुछ वर्षों तक चंगंपुषाका मानस शिष्य रहा। इस केरलीय जयदेव जैसे युवक कविकी कलमपर काव्यनर्तकी नृत्य करने लगी। द्राविड़ी छन्द, लोकधुन, संस्कृतश्लोक और पश्चिमी छन्दोंका इच्छानुसार प्रयोग अद्भुत शब्दशिल्पी चंगंपुषाकी विशिष्टता रही। उन्हें 'गान-गंधर्व' का विरुद प्राप्त हुआ। उनकी कविताएँ युवा-पीढ़ीको कंठस्थ थीं। अतः उन्हींकी पंक्तियोंका अनुकरण कवि-यशोलिप्सुओंने किया। यह प्रभाव इतना प्रबल था कि बादकी पीढ़ीके कवियोंको एक समीक्षकने 'प्रतिध्वनि कवि' व्यंग्यपूर्ण उपाधि प्रदान की।

अनुकरण एवं प्रतिध्वनिका युग कुछ दिन ही जारी रहा है। नयी प्रतिभाएँ भी उभरती ही हैं। अक्कित्तम, ओ०एन०वी० कुरुप, सुगतकुमारी आदि उदाहरण हैं। मलयालम काव्य-जगतमें भी एक नया कविमंडल उदय हुआ। ये बहुधा उपाधि-प्राप्त हैं और पश्चिमकी नयी काव्यधारासे प्रभावित। इलियट और उनके बादके पश्चिमी कवियोंका अध्ययन उन्हें अपनी भाषामें बौद्धिकता, प्रतिबद्धता, रूढ़ि आदिसे मुक्तिकी प्रेरणा दे गया। वर्तमान कुण्ठा, वैयक्तिक अवसाद, नागरिक प्रदर्शन जैसी सामाजिक विकृतियोंपर व्यंग्य इनकी कविताके विषय हैं। यह हिन्दीकी नयी कविताकी-सी प्रवृत्ति है। इस धाराके कवियोंमें सर्वश्री अक्कित्तम, अय्यप्पपणिक्कर, विष्णुनारायणन नंपूतिरि,

१. साहित्यलोकम–जिल्द ३, सं० ४-५

सच्चिदानन्दन आदि हैं । आजकल कविता-ग्रंथ खरीदने की रुचि नहींके बराबर है । ये नये साहसी कवि आर्थिक दृष्टिको नगण्य मानते हैं। इनके सहयोगपूर्वक साहससे जगह-जगह युवकोंकी कवि-गोष्ठियाँ और कवि-मंडल बनते हैं। 'केरल कविता' जैसी काव्य-पत्रिका इनके साहसका प्रमाण है। ये कवि अपनी रोटी किसी कार्यालय, कॉलेज आदिमें कमाते हैं । इसलिए कविता इनके लिए हॉबी है, और यह किसी प्रकारकी आर्थिक समस्या उपस्थित नहीं करती । नयी कविताके रचयिताओंमें कुंञ्ुण्णि भी विशेष उल्लेख्य हैं । इन कविताओंसे प्रौढ़ पीढ़ीके लोग नाराज़ हैं। नये कवियोंमें कुछ अच्छे हैं, ठोस हैं । कुछ तो कवितासे भी अधिक दुरूह दार्शनिक व्याख्या करके पाठकोंको चकराते हैं । नये हिप्पी जीवनका तत्त्व सामान्य कोटिके लोगोंको जिस प्रकार अप्रिय है उसीप्रकार यह कविताभी किसी-किसी को अप्रिय है । मगर इस धाराकी अच्छी रचनाओंको अब नकारा नहीं जा सकता । इस कवि-आन्दोलनने यह प्रमाणित किया है कि विज्ञान आदिके दावेदार औरंगज़ेब इसे कितनीही गहराईमें क्यों न गाड़ दें, यह पौधा फिर

[पृष्ठ १७३ का शेष]

अन्य प्रकाशन

जीवनी तथा आत्मकथाके रूपमें भी पर्याप्त मात्रामें पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं ।

आचंट जानकीरामंका 'ना स्मृतिपथं लो' (मेरे स्मृति-पथमें) तथा 'सागुतुन्न यात्रा' (गतिशील यात्रा) साहित्यिक महत्त्वकी रचनाएँ हैं जिनमें सरस मधुर शैलीमें आन्ध्रकी साहित्यिक गतिविधियोंके संस्मरण संकलित हैं । स्व० जापुवाका 'ना कथा' (मेरी कथा) नामक काव्य भी सुन्दर है । इनके अतिरिक्त श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्रीजीकी पुस्तक 'अनुभवालु-ज्ञापकालु' (अनुभव-स्मृतियाँ) भी उल्लेखनीय है ।

सन् १९६४ में प्रकाशित 'बाल साहितीमाला' के द्वारा यह पता चलता है कि १९६३ तक ही तेलुगुमें प्रकाशित बालोपयोगी रचनाओंकी संख्या २००० से अधिक है।

बालोपयोगी गेय साहित्यकी रचना करनेवालोंमें नार्ल चिरंजीवी, बी० वी० नरसिंहाराव, न्यापति राघवराव, बी० रजनीकान्तराव, दाशरथी आदिने उल्लेखनीय कार्य किया है । बालोपयोगी उपन्यास-कहानियोंकी रचनाएँ करनेवालोंमें न्यापति राघवराव, कनकदुर्गा रामचन्द्रन, जी० सुरमौली आदि उल्लेखनीय हैं। स्व० मुहम्मद क़ासिम खानका 'बाल विज्ञान सर्वस्व' (Children's Encyclopedia) उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त नेशनल बुक ट्रस्टद्वारा प्रकाशित नेहरू बाल पुस्तकालयके शीर्षकसे प्रकाशित पुस्तकें तथा साउत इंडिया बुक ट्रस्ट और इंडिया बुक हाउसद्वारा प्रकाशित पुस्तकें भी उल्लेखनीय हैं ।

हिन्दीमें, संस्कृत तथा अंग्रेजीमें भी कतिपय मौलिक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं । संदर्भ ग्रंथ, शब्दकोश, विज्ञान संबंधी पुस्तकें भी पर्याप्त मात्रामें प्रकशित हुई हैं। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी प्रामाणिक ग्रन्थोंके प्रकाशनमें सराहनीय कार्य कर रही है । आन्ध्र प्रदेश बुक डिस्ट्रि-ब्यूटर्सने घर-घर में पुस्तकालयकी योजनाके अन्तर्गत कई अच्छी पुस्तकें प्रकाशित कर, जनतामें पुस्तक खरीदकर पढ़ने की आदत डाली है।

बुर्रकथा नामक लोकसाहित्यकी एक विधाका उपयोग प्रचारके लिए बहुत किया गया है । साम्यवादियोंने इसका खूब लाभ उठाया है। इस क्षेत्रमें सुंकर सत्यनारायण, नाजर, लक्ष्मीकान्तमोहन, बुर्रकथा सम्राट बेनर्जीके नाम लिये जा सकते हैं।

तेलुगु अकादमी तेलुगु भाषामें पाठ्यपुस्तकोंके अतिरिक्त प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तकोंके प्रकाशनमें लगी हुई है और लगभग २०० पुस्तकोंका प्रकाशन कर चुकी है।

इसप्रकार तेलुगु साहित्यने विगत पच्चीस वर्षोंमें अपूर्व विकास किया है, प्रत्येक प्रक्रियामें श्रेष्ठ ग्रन्थोंकी रचना हुई है, इतर भाषा साहित्योंसे संपर्कके कारण नयी-नयी प्रवृत्तियोंका उन्मेष हुआ है और जनतामें साहित्यके प्रति अभिरुचिमें विशेष वृद्धि हुई है । भारतीय साहित्यके रंगमंचपर तेलुगु साहित्य गौरवपूर्ण स्थानका अधिकारी बना हुआ है।

[स्वतन्त्रताप्राप्तिकी २५वीं वर्षगाँठके अवसर 'युव-भारती' नामक साहित्यिक संस्थाने 'महती' नामक पुस्तकका प्रकाशन किया था जिसमें विगत २५ वर्षोंके तेलुगु साहित्य, संस्कृति तथा अन्य गतिविधियोंका परिचय देनेवाले लेख संकलित हैं। भारतीय भाषाओंमें इसप्रकारके प्रयासका यह प्रथम सुपरिणाम है। इस लेखकी रचनामें उक्त पुस्तकसे सहायता ली गयी है। लेखक तदर्थ 'युव भारती' का आभारी है।]

अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होकर सहृदयोंको लुभाते ही हैं। हिन्दीमें अकवितासे लेकर जितनी नयी धाराएँ (या नये नाम?) चालू हैं वे केरलीय कवितामें नहीं मिलतीं।

गद्यकी विधाएँ

भारतीय भाषाओंके वाङमयकी परंपरा कवितासे शुरू होती है। इसलिए साहित्यकी समालोचनामें भी कविताकी ही चर्चा की जाती है। मगर वर्तमान युगमें गद्य अधिक प्रौढ़ है। गद्यकी विधाओंमें कथा-साहित्य सबसे लोकप्रिय है।

स्वतंत्रता-प्राप्तिके दिनोंमें केरलीय कथा-वाङमयके क्षेत्रमें कुछ नाम विशेष लोकप्रिय रहे, तकषि, दवे, वर्की। ये तीनों वामपक्षीय राजनीतिके समर्थक और प्रगतिवादी साहित्य-शिविरके पथचारी रहे। भाषा भी ज़ोरदार थी। इनकी रचनाएँ इतनी अधिक संख्यामें बिकती थीं कि ये कलमके भरोसेही जीवन-यापन कर सके हैं। अब तो ये खुशहाल हैं। इसका श्रेय पाठकगणको, प्रकाशकगणको और सबसे बढ़कर फिल्म-उद्योगको मिलना चाहिये। स्वाधीनता आन्दोलनकी प्रतिक्रिया केरलमें दो प्रकार से हुई। एक थी दीवान शासनकी समाप्तिकी पुकार, दूसरी थी खेती और उद्योगके क्षेत्रमें मालिकोंके खिलाफ़ मज़दूरोंका आन्दोलन। जातिवादकी कठोर निन्दा भी इसमें है। ये तीनों लेखक जिस धाराके प्रवर्तक रहे वह अभीतक चालू है। ग्रंथकी कथावस्तु भिन्न-भिन्न होती है, क्षेत्र बलदते हैं, पात्र बदलते हैं। परन्तु उपर्युक्त सामाजिक चेतना विद्यमान है। वर्तमान युगकी एक और प्रवृत्ति पुरानी रूढ़ियोंका तिरस्कार है। 'सेक्स' की चर्चा में झिझक या पुरानी मान्यताओंका मोह अब नहीं है। ये दोनों बातें पाठक-प्रियता बढ़ानेमें सहायक रही हैं।

कथा-साहित्य शब्दका व्यवहार मैं इसीलिए कर रहा हूँ कि इसमें कहानी भी शामिल हो। रूप और शिल्पविधि का अन्तर है ज़रूर। तथापि शेष बातोंमें उपन्यास एवं कहानी प्रायः अभिन्न हैं। हिन्दीके समान मलयालममें भी 'क्रमशः प्रकाशित होनेवाले उपन्यास' और 'कहानी' ही पत्रिकाओंके सबसे लोकप्रिय अंग हैं। क्रमशः प्रकाशित उपन्यास बादमें पुस्तकाकार होकर निकलते हैं। इनमेंसे कुछ फिल्माये भी जाते हैं। कथा-साहित्यमें प्रारंभमें क्रान्ति, प्रेम आदिका कुछ बँधा क्रम था। मगर वह बासी पड़ गया। बादमें लोगोंका ध्यान पश्चिमके शृंखलाबद्ध (इसे मलयालमके एक समीक्षकने नद्योपम नाम दिया) उपन्यासों की तरफ़ गया। वार एंड पीस आदिकी सफलता सामने थी। निदान एक नियत युगके जीवन, एक देहात, क्षेत्र या नगरके जीवनकी कुछ पीढ़ियों, किसी उद्योगसे सम्बन्धित लोगोंके जीवन आदिका चित्रण उपन्यासोंमें होने लगा। ऐसी कृतियोंमें अनेक पात्र होते हैं; घटनाएँ अनेक होती हैं। पाठकोंको काफी सामग्री मिलती है। एक उपन्यासमें अनेक उपन्यास पढ़ने और अनेक स्थानोंके पर्यटन करनेका आनन्द प्राप्त होता है। ऐसे उपन्यासोंमें कुछ हैं—विषकन्यका (पोट्टेक्काट), तालुकेट्टु (एम० टी० वासुदेवन नायर), सुन्दरि-कळुम सुन्दरन्मारुं (उरूब), अरनिप्पोन्नु (एन० पी० मोहम्मद), आळ्क्कूट्टम (आनन्दन), अयळक्कार (देव)।

विषकन्यका मलाबारके बागानोंकी गाथा है। 'सुन्दरि-कळुम सुन्दरन्मारुंमें मोप्पिला लोगोंके ग्रामोंकी जीवन-गाथा है। अरनिप्पोन्नु तस्करीसे सोना लानेवाले लोगोंकी कथा है, जो कालिकट और आसपासके द्वीपोंमें रहते हैं। आळ्क्कूट्टममें बंबईका जीवन है। अयलक्कार ट्रावनकोरके सांप्रदायिकतायुक्त सामाजिक जीवनके दिनोंकी कथा है। 'नालुळेट्टु'में गिरती सामाजिक एवं पारिवारिक दीवारोंकी कहानी है। मैंने इनका उल्लेख सिर्फ़ यह दिखानेके लिए किया है कि इनके विचारक्षेत्र कौन-कौनसे हैं।

हिन्दीकी भाँति मलयालममें भी आंचलिकता कथा साहित्यकी एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। 'आंचलिकता' शब्द पूर्णतः सही नहीं है। प्रत्येक समाजके अलग-अलग वर्गोंके जीवनकी पृष्ठभूमिपर ये उपन्यास लिखे जाते हैं। ऐसे उपन्यासोंकी भाषापर उन सामाजिक वर्गोंकी रुचि, रूढ़ि आदिका प्रभाव ज़रूर पड़ता है। ऐसी भाषा कृतिमें सजीवता लाती है, यद्यपि अनुवादकोंके लिए कठिनाई पैदा करती है। ऐसे ग्रंथोंके उदाहरण हैं—कोवूरका काटुं, पार-प्पुरमका अरनाषिक नेरम, ओ०वी० विजयनका खसाक्किन्टे इतिहासम, मलयाट्टूर रामकृष्णनका वेरुकळ आदि।

कथा-साहित्यकी अन्य उल्लेखनीय दिशा है समाजसे व्यक्तिकी ओर उसका मुड़ना। व्यक्तिके मनका द्वन्द्व कथा-साहित्यको नया विषय दे सका। यह मानसिक द्वन्द्व स्त्री-पुरुषका, स्त्री-मनका, पुरुष-मनका होता है और अन्तश्चेतना की व्याख्या करता है। श्री० सुरेन्द्रनके उपन्यासोंको इस कोटि का माना जाता है। अन्य लेखकोंमें स्व० राजलक्ष्मीका भी नाम उल्लेखनीय है। उपन्यासकार अब प्रत्येक वर्ग, मोहल्ले, पेशेका गहरा अध्ययन कर उपन्यास लिखते हैं। इन नये आयामोंसे उपन्यासोंके क्षेत्रक व्यापकता बढ़ी है। इधर बँगला और अन्य देशी-विदेशी भाषाओंके उपन्यास धड़ाधड़

अनूदित हो गये हैं। इनमेंसे किन्हें जनप्रियता मिली है, सो बात तो पाठकोंकी मत-परीक्षासे ही हो सकती है।

कहानी-वाङ्मयमें मलयालम भारतीय भाषाओंमें प्रथम श्रेणीकी है। विषय-वैविध्य और शिल्पविधि आदि सभी दृष्टियोंसे मलयालम कथा-साहित्य सुपुष्ट है। चित्र-कलामें प्रतीकात्मकता, अस्पष्टता, अमूर्तता आदि जैसी प्रवृत्तियाँ हैं वैसीही प्रवृत्तियाँ कुछ कहानियोंमें भी मिलती हैं। सामाजिक व्यंग्यको अंगी तत्त्व माननेवाली कहानियाँ बड़ी संख्यामें लिखी जाती हैं। मध्यवर्गकी स्नाबरीसे सम्बन्धित क्लब, थियेटर, पार्टी, तस्करी, शौकिया व्यभिचार आदि विषय कुछ कहानियोंमें चर्चित हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धकी उलझन, मध्यवर्गके युवककी नपुंसकता आदि अनेकों तत्त्व कहानीमें आते हैं। उपन्यासकारही प्रायः कहानियाँभी लिखते हैं। फिरभी कुछ लेखक केवल कहानियाँ लिखते हैं। कहानी-क्षेत्रका एक नया नाम है—वी०के०एन। के०टी० मोहम्मद, माधविक्कुट्टि, विजयन, मोहन वर्मा, सक्करिया आदि कुछ अतिरिक्त नामभी उल्लेखनीय हैं।

नाटक

मलयालममें अनेक रंगमंचीय नाटक प्रकाशित होते रहते हैं। स्वातंत्र्योत्तर युगके नाटकोंका प्रथम मोड़ श्री एन० कृष्णपिल्लैके समस्याप्रधान नाटकोंमें प्राप्त है। इब्सनसे प्रभावित होकर उन्होंने मलयालममें परिवार एवं एवं व्यक्तिके आन्तरिक द्वन्द्वको धुरी बनाकर कई अच्छे नाटक रचे। कन्यका, भग्न भवनम, बलाबलम, अवी-मुखत्तेक्कु आदि उदाहरण हैं। शिक्षित सहृदय समाजने इनमें ताजगीका अनुभव किया। कृष्णपिल्लैकी ही तरह लोकप्रिय अन्य नाटककार सी०जे० थामस हैं। इन दोनोंके नाटक-प्रयोग चुने हुए पाठकों और दर्शकोंतक सीमित थे। इससे पूर्व उच्च और मध्य वर्गके समाजकी कथाएँही नाट्य-विषय बनती थीं।

केरलीय वाङ्मयमें रंगमंचीय नाटकोंका विकास एक और दृष्टिसे उल्लेखनीय है। यहाँ व्यवसायी नाटक-संस्थाओंकी धूम रही है। वामपक्षीय राजनीतिके प्रचारके साधनके रूपमें नाटककी स्वीकृतिभी इस धूमका कारण है। श्री०तोप्पिल भासी, पोनकुन्नम वर्की आदिके नाटक इस कोटि के हैं। यदि इन नाटकोंको सोद्देश्य नाटककी संज्ञा दी जाये तो गलत न होगा। उपन्यास-वाङ्मयके समान नाटकोंमेंभी समाजके सभी स्तरों और क्षेत्रोंके पात्र आते हैं। संवेदनाकी गहराई और व्यापकता अधिकाधिक दर्शकोंको आकृष्ट कर सकी है। 'मास-अपील' को ध्येय बनाकर ये नाटककार नाटक लिखते हैं। अतः आंचलिक भाषा, रोमानी दृश्य, गीत, नृत्य, फ्लैश-बैक आदिका प्रयोग किया जाता है। इन नाटककारोंमें श्री के०टी०मोहम्मद, सदानन्दन, सी०एल० जोस आदि अनेक हैं। उच्च कोटिके नाटकोंकी माँग करने वाले समीक्षकगण इनमें प्रचारात्मकता, व्यावसायिकता, मेलोड्रामा आदि त्रुटियाँ पाते हैं। तथापि कुछ नाटकोंकी प्रभावशीलतामें कोई शक नहीं है। व्यावसायिक नाटक-कारोंमें श्री० एन० एन० पिल्लै विशेष लोकप्रिय हो सके हैं। उनकी मौलिकताके ह्रासकी शिकायत अब सुनायी देती है। तथापि सामान्य कोटिके सहृदय उनके कई नाटक पसंद करते हैं और उनपर फिल्में भी तैयार की गयी हैं। व्याव-सायिकताके कारण गंभीरता अवश्य कम हो सकती है। यह तो कलाका मर्म है।

शौकिया रंगमंचके प्रभावशाली संवादकी रचना और अनुकूल पात्रोंका मनोवैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण करनेवाले श्री० जी०शंकरपिल्लैने नाटक क्षेत्रमें कुछ सराहनीय प्रयोग किये हैं। इनके नाटकोंमें संवाद-तत्त्व सबसे प्रधान है। ये केवल नाटक-लेखनसे सन्तुष्ट नहीं हैं। रंगकर्मिताकी शक्तिपर इन्हें पूरा विश्सास है। अतः छाया-प्रकाशका प्रयोग, रंग-निर्देशन, खुला रंगमंच, प्रतीक-प्रयोग आदि नये शिल्प-तत्त्व इनके नाटकोंमें विविधता और प्रभाव लाते हैं। अपने कुछ मित्रोंके सहयोगसे एक छोटी गैर-व्यवसायी नाटक-मंडली गठित की है। इस मंडलीद्वारा कई शहरोंमें नाटक प्रस्तुत किये जाते हैं। इसका योगदान निस्संदेह सराहनीय है।

नाटक-चर्चाके उपसंहारमें गीति-नाट्योंका भी उल्लेख आवश्यक है। शुद्ध ग्रंथ-साहित्यके रूपमें गीति-नाट्यका महत्त्व कम है। तथापि रेडियोके माध्यमने इसे जनप्रिय बनाया है। थोड़ेसे संगीतप्रेमी साहित्यिक सहृदय गीति-नाट्यकी रचनामें विशेष आनन्द पाते हैं। उदाहरण हैं श्री०कावालम नारायण पानिक्कर। रेडियो गीतिनाट्यकी रचनामें पी०गंगाधरन नायरने विशेष सफलता प्राप्त की है। लोककथापर लोकधुनोंमें गीतिनाट्य रचनेकी प्रवृत्ति रेडियोमें विशेषतः मिलती है। नाटकोंने अपनी ऐसी धाक जमायी है कि एकांकियोंको अब लोग कम पूछते हैं। नाटककारही दोनों लिखते हैं। एकांकी पत्रिकाओंके लिए लिखे जाते हैं। वैसेतो एकांकियोंपर समीक्षात्मक विचार किया जा सकता है। किन्तु इस संक्षिप्त समीक्षामें उसका प्रयास नहीं किया जा रहा है।

[शेष पृष्ठ १८० पर]

६. उत्तरांचलीय भाषाएँ

क. स्वातन्त्र्योत्तर कश्मीरी साहित्य

—शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम'
आकाशवाणी, नयी दिल्ली

भारतकी अन्य अनेक प्रादेशिक भाषाओंकी तरह कश्मीरी भाषा एवं साहित्यके अस्तित्वका ऐतिहासिक विवरण हमें लगभग सात सौ वर्षोंसे स्पष्टतः मिलता है। कश्मीरी भाषाका उद्गम तथा विकास-क्रम भाषा-विज्ञानके विषय हैं। कश्मीरी साहित्यका ऐतिहासिक निरूपण एवं विश्लेषणभी प्रस्तुत लेखका विषय नहीं है। इतनाभर कहना प्रासंगिक है कि भारतीय भाषा-परिवारमें कश्मीरी साहित्यकी आदिम सामग्री मुख्यतः पद्यमें उपलब्ध है। यह सही है कि कश्मीरके जनमानसने अपनी इस साहित्यिक थातीको जी-जान से सँभाले रखा, उसकी परिपुष्टि की और उसको कालके कराल थपेड़ोंसे सुरक्षित रखकर सर्वथा तिरोहित या नष्ट होनेसे बचाया किन्तु सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियोंके कारण कश्मीरी भाषा व साहित्यको उसी प्रकार कभी संस्कृत, कभी फारसी और कालान्तरमें कभी उर्दू तो कभी अंग्रेजीके दासत्वमें दबकर सिमटे रहना पड़ा, जिस प्रकार कश्मीरकी सामान्य जनताको कालक्रमानुसार सामंतशाही, साम्राज्यवाद और पराधीनताके अन्य बन्धनोंमें कराहते रहना पड़ा। आम जनताकी तरह कश्मीरी साहित्य भी राजदरबारके आश्रय और मान-सम्मानसे वंचित रहा; मगर कश्मीरी भाषाके प्रेमियों और साहित्य-सेवियोंकी अनन्य साधना एवं निस्स्वार्थ लगनसे यह ज्योति अनवरत जलती रही और जनताके अडिग सम्बलसे इसकी आत्मा और इसके कलेवरको सर्वदा पुष्टि मिलती रही। हाँ, यह बात अवश्य है कि जिस प्रकार जनताको स्वराज्याधिकार पानेके लिए अनिवार्यतः संघर्ष करना पड़ा, उसी तरह कश्मीरी साहित्यके साधकोंको भी निज भाषा एवं साहित्यका मानवर्द्धन करने और उसको अपना यथोचित स्थान दिलाने के लिए अग्निपरीक्षामेंसे होकर निकलना पड़ा।

पूर्वरूप

१९४७ से पूर्वके कश्मीरी साहित्यमें ऐसी अनेक अन्तर्वर्ती सूचनाएँ मिलती हैं, जिनसे इस संघर्षकी किंचित जानकारी होती है। यद्यपि कश्मीरी साहित्यका पूर्वरूप प्रधानतः पद्यबद्ध ही रहा है और उसमें धर्म, दर्शन, प्रणय, प्रेमाख्यान और मानवीय भावोंके ऐसे विषयोंकी ही मुख्यतः अभिव्यक्ति मिलती है, जिनको सार्वकालिक और सार्वभौम विषय माना जाता है, तथापि इस बातको कोई झुठला नहीं सकता कि इस साहित्यका विश्लेषण करते हुए ऐसे संकेत अवश्य मिल जाते हैं, जिनसे तात्कालिक समाज-व्यवस्थाका कुछ-कुछ आभास हो जाता है। 'साहित्य समाजका दर्पण होता है'—यह उक्ति कश्मीरी साहित्यके इतिहासपर भी पूर्णतः लागू होती है। कश्मीरीकी आदि कवयित्री लल-द्यदके 'वारव' जहाँ मुख्यतः शिवतत्त्व, योग-साधना एवं धर्म-भावोंका निरूपण करते हैं, वहीं सांकेतिक रूपमें समाज-व्यवस्थाका भी परिचय कराते हैं—जैसे :

अथ मै बा लावुन् रवर बा..............

"गधेको अपनी पकड़से बाहर न जाने दे। यह कहीं औरोंकी वाटिकामें सागपात खाने लगेगा और उसका कठोर दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा।" दण्डविधानमें यहाँपर 'ललद्यद' ने 'नंगे बदनपर तलवारकी मार पड़नेका वर्णन किया है—'यति ननिस करतल् प्ययी'। स्पष्ट है कि उस समय छोटे-छोटे अपराधोंकी कठोर सजा मिलती थी। इसी तरह उस कालके समाजकी विषमता, मत-स्पर्धा, कुरीति-पालन आदि बातोंका भी इन 'वारवों' से संकेत मिलता है। अन्य कश्मीरी साहित्यकारभी कहीं प्रछन्न और कहीं स्पष्ट रूपमें पराधीनताकी घुटनकी अपनी अनुभूति व्यक्त करते रहे हैं। नुंद ऋषिके 'श्रुख' हब्बा खातून और अंरिजिमालके विरह-गीत, परमानन्दकी 'लीलाएँ', मक़बूल क़ालवारीकी 'गुलरेज' और 'ग्रीसनामा', वहाब खार, वली उल्ला-मत्तू, महमूद गामी, रसूलमीर, प्रकाशराम, कृष्ण राजयान, शम्स फक़ीर और अन्य अनेक कश्मीरी कवियोंकी रचनाएँ भावार्थकी दृष्टिसे भलेही उस उच्च साहित्यकी गिनतीमें लिये जायें जिनको क्लासीकी माना जाता है; किन्तु सामाजिक परि-

प्रेक्ष्यमें उनका विवेचन और विश्लेषण करनेसे इस बातकी छिटपुट सूचना मिल ही जाती है कि उस युगका समाज-तंत्र कैसा था और कश्मीरी भाषा व साहित्यकी तात्कालिक परिस्थिति किस ढंगकी थी।

स्वाधीनतासे पहलेकी स्थिति

स्वातंत्र्य-पूर्व कालकी साहित्यिक गतिविधिकी इस प्रकार जाँच करनेसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि कश्मीरी साहित्य आधुनिक युगमें प्रवेश करनेसे पूर्व गुणसंपन्न भलेही रहा हो; किंतु विकासशील नहीं था। इसमें गद्यका लगभग अभाव था। कविताकी परिपाटी ऐसे विषयोंसे आक्रान्त थी, जिनसे उद्बोधन तो क्या होता, उलटे तन्द्रा छा जानेकी ही सम्भावना थी। कश्मीरी भाषा अभिजात वर्गके लिए हेय थी, अतः उस भाषाके साहित्यका मान क्योंकर होता। उपादेयताकी दृष्टिसे भी कश्मीरीका मातृभाषाके अतिरिक्त कोई उपयोग नहीं था। अनुसंधान-प्रेमियों अथवा अपनी मातृभाषामें अभिव्यक्त ललित मनोभावोंका रसास्वादन करनेवाले कश्मीरियोंतक ही उपलब्ध साहित्यकी ख्याति सीमित थी।

किन्तु कालचक्र सदा एक जैसा नहीं रहता। ज्यों-ज्यों इस प्रदेशमें सामाजिक एवं राजनीतिक नवचेतनाका प्रकाश फैलता गया और परिवर्तनकी भावना प्रबल होती गयी त्यों-त्यों जनमानसमें निज भाषा एवं साहित्यकी उपादेयता का बोधभी बढ़ता गया। जनताके स्वाधीनता-संघर्षके साथ-ही-साथ निज भाषाके साहित्यको बढ़ावा देनेका आन्दोलन भी जड़ पकड़ने लगा। इस कालका प्रतिनिधित्व करनेका श्रेय कश्मीरीके लोकप्रिय कवि गुलाम अहमद 'महजूर' को मिला। उनकी काव्यरचना ऐसे संक्रान्ति कालमें सामने आयी जब समूचा राष्ट्र साम्राज्यवाद और सामन्तवादके विरुद्ध एक अभूतपूर्व संघर्ष कर रहा था। देशभक्तिकी भावना प्रबल हो चुकी थी। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का निनाद आकाशको गुंजा रहा था। स्पष्ट है कि समयके इस आह्वानसे जागरूक साहित्यिक अप्रभावित

[पृष्ठ १७८ का शेष]

समीक्षा

मलयालमके समीक्षा-वाङ्मयका विकास अन्य धाराओं की अपेक्षा कम हुआ है। कवियों और कृतियोंका अध्ययन तो यहाँ पहलेसे होता आया है। जैसे प्रो० जोसेफ़ मुंडश्शेरी और कुट्टिकृष्णमारार गंभीर समीक्षात्मक निबन्ध लिखते आये हैं। तथापि सैद्धान्तिक समीक्षाके क्षेत्रमें स्व० प्रो० एम०पी० पोळका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उपन्यास, कहानी, सौन्दर्य-समीक्षा आदिपर उनके ग्रंथ पथप्रदर्शक हैं। ऐसे मौलिक ग्रंथोंकी रचनाकी कुशलता कम लोगोंमें है। स्वातंत्र्योत्तर युगके मौलिक समीक्षा-वाङ्मयके रूपमें उपन्यासपर श्री पी०के० बालकृष्णनके ग्रंथ अच्छे हैं। समालोचना क्षेत्रमें इस वर्ष स्व० कुमारन आशानपर लिखी गयी ग्रंथमाला और निबन्धसंग्रह आकार-प्रकार और गहनताकी दृष्टिसे विशेष उल्लेखनीय हैं। केरलके किसी अन्य कविपर सीमित अवधिमें इतना बृहदाकार समीक्षा-वाङ्मय शायद ही लिखा गया हो। जीव चरित्र साहित्यम (डॉ० के० एम० जार्ज), पाश्चात्य साहित्य समीक्षा (प्रो० एम० अच्युतन) आदिभी इस युगके अन्य ग्रंथ हैं जो ऐसे ग्रंथोंकी कमीके कारण चर्चाके योग्य हैं।

मलयालम साहित्यका इतिहास अब कई लोग लिख रहे हैं। विश्वविद्यालयीन स्तरपर शोधकार्य अभी गत चार-पाँच वर्षोंसे ही चल रहा है। इस छोटी-सी अवधिमें कई विषयोंपर अनुसंधान एवं आलोचना प्रारंभ हुई है। आशा है कि शीघ्रही मलयालममें गंभीर एवं ठोस विषयोंपर सैद्धान्तिक आलोचना तथा अनुसन्धानसे सम्बन्धित कई ग्रंथ तथा लेख निकलेंगे।

अन्य विविध ग्रंथोंके विकासकी बात अंतमें चर्चाके योग्य है। ज्ञान-विज्ञानके वर्धक विविध ग्रंथ मलयालममें लिखनेकी प्रवृत्ति हालमें ही बढ़ती जा रही है। तिरुवनन्तपुरममें स्थापित भाषा-संस्थान इस क्षेत्रमें अत्यधिक प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। यद्यपि इस संस्थानकी भाषा-नीति, शब्द-गठन आदिपर समीक्षकगण कशाघात करते हैं तथापि इन ग्रंथोंका महत्त्व तथा इस संस्थाका योगदान इससे कम नहीं होता। विश्व-विज्ञान कोष जैसे ग्रंथोंका प्रकाशन इस विषयकी एक और महत्त्वपूर्ण बात है। प्रशासनिक कार्य मलयालमके माध्यमसे चलानेकी नयी योजना भाषाकी शक्ति को और बढ़ा सकती है। इन ग्रंथोंका उल्लेख मैंने यह प्रमाणित करनेके लिए किया है कि मौलिक साहित्यिक ग्रंथों के अलावा अन्य विषयोंके ग्रंथोंका भी विकास स्वातंत्र्योत्तर युगमें हुआ है। भाषाकी संवेदनक्षमता बढ़ी है, सौन्दर्य बढ़ा है, व्याप्ति एवं गहनता बढ़ी है।

नहीं रह सकता। 'महजूर' के भीतरका कविभी उद्घोष कर उठा—'व्लो हा बागवानो नववहारुक शान पैदा कर' —चमनके माली आ। नववसंतकी छविको जन्म दे। ऐसी उमंग पैदा कर, जिससे फूल खिल उठें और बुलबुलें अपनी जान न्यौछावर करनेको सन्नद्ध हों।"

कश्मीरी काव्यमें यह राष्ट्रीय भावनाका नया और स्पष्ट स्वर था। इस स्वरको और अधिक मुखर करनेवालोंमें इसी कालके एक और कश्मीरी कवि अब्दुल अहद 'आज़ाद' का नाम उल्लेखनीय है। आज़ादकी काव्यकृतियोंमें विद्रोहका स्वर इतना तीव्र था कि कई समालोचकोंने उनके क्रान्तिवादको समयसे पूर्वका आह्वान करार दिया।

कुछभी हो, इन दोनों कवियोंके नेतृत्वमें कश्मीरी साहित्यकारोंने स्वाधीनतासे पूर्वकी काव्यकृतियोंमें क्रान्तिके बीज बोये, उनको सींचा और पनपनेका अनुकूल वातावरण तैयार किया। इस प्रवृत्तिको आगे ले जानेमें मास्टर ज़िन्द कौल, मिर्ज़ा ऑरिफ, 'आसी' आदि अनेक कवियोंने उनका साथ दिया।

संक्राति काल

कश्मीरी साहित्यसेवियोंकी इस टोलीको स्वाधीनताका अग्रदूत कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि यही लोग थे, जिन्होंने साहित्यके क्षेत्रमें नये आन्दोलनको निश्चित दिशाकी ओर उसी तरह मोड़ा जिस तरह राजनीतिके क्षेत्रमें नेताओंने स्वातंत्र्य संघर्षको निश्चित लक्ष्यकी ओर बढ़ाया और इन्हीं लोगोंको जनतामें यह भावना जागृत करानेका श्रेय भी प्राप्त है कि कश्मीरी हमारी गौरवपूर्ण मातृभाषा है, इसको अपनाना हेय नहीं, सम्मानजनक और श्रेयस्कर है और इसी माध्यमद्वारा हम उन्नतिके शिखरको छू सकते हैं। 'महजूर' ने जहाँ अपने 'फूली-भरे वतन' की महिमा गायी, वहीं 'आजाद' ने 'गंगा और वितस्ता' के प्रेमके मुकाबलेमें 'स्वर्गकी दूधकी नहरों' को तुच्छ समझा। यही भावना उस प्रेरणाका स्रोत थी, जिसने मिर्ज़ा आरिफसे कहलवाया कि 'हमारी राहमें कितनी ही बाधाएँ आयीं, मगर हमारा कारवाँ आगेही आगे बढ़ता गया।'

१९४७ से पूर्वके इस संक्रान्ति कालमें एक ओर निज भाषा व साहित्यके प्रति जनमतमें जागरूकता बढ़ रही थी, दूसरी ओर आधुनिक शिक्षाके प्रचार व प्रसारके कारण कुछ वर्गोंमें विश्व-साहित्यको पढ़नेकी ललक पैदा हुई। परिणामतः वे उन सभी गतिविधियोंसे परिचित ही नहीं, प्रभावित भी हुए, जो विश्वके रंगस्थलपर यत्रतत्र चली थीं या चल रही थीं। ऐसा एक युवा शिक्षित वर्ग १९४७ से पहले कश्मीरमें भी उभरा। उन्होंने अपनी भाषाको अपनानेकी प्रेरणा कुछ अपनोंसे पायी और कुछ औरोंसे। किन्तु उनके विचारोंमें नवीनता थी, विश्व-साहित्यकी विविध शैलियों, विधाओं और विषयोंका बोध था और क्रान्तिजन्य अनुभवोंपर नज़र थी। अतः वे जब साहित्य-सृजनकी ओर प्रवृत्त हुए तो ऐसे लगा मानो वे नयी सीमाएँ खोजने और नये क्षितिजोंको छूनेके लिए छटपटा रहे हैं।

यह थी १९४७ से पूर्वकी कश्मीरी साहित्यकी भूमिका जिससे यहाँके साहित्य-विकासकी वह कहानी आरंभ होती है, जो पिछले २५ वर्षोंमें घटित हुई है।

१५ अगस्त, १९४७ को जब भारतने स्वाधीनता प्राप्त की, तो देशके अनेक भागोंमें सांप्रदायिक दंगोंका बीभत्स नाच हो रहा था। मगर कश्मीर इस ताण्डवसे अलग, अपनी आदर्श धर्मनिरपेक्ष परम्परापर अडिग रहा। इस वस्तुस्थिति का और जोभी कोई कारण हो, यह बात निर्विवाद है कि यहाँकी सांस्कृतिक एकता एवं साम्प्रदायिक सौहार्द्रको सुदृढ़ रखनेमें यहाँकी मानववादी साहित्य-परम्पराका प्रमुख योगदान रहा है। संभवतः यह प्रवृत्ति निषेधात्मक तत्त्वोंको एक आँख न भायी इसलिए कश्मीरकी उत्तरपश्चिमी सीमा के पार इस शांतिको भंग करनेका षड्यंत्र रचा गया। इस तरह कश्मीरमें स्वाधीनताका उदय उन क़बायली हमलावरोंकी बर्बरतापूर्ण लड़ाईसे हुआ, जिसका पृष्ठ-पोषण पाकिस्तानी सरकार कर रही थी। कालान्तरमें पाकिस्तान खुले बन्दों इस आक्रमणमें सम्मिलित हुआ।

नयी करवट

कश्मीरी साहित्यकारके लिए यह एक चुनौती थी। एक बार फिर कश्मीरी जनमनको दासताके बंधनोंमें जकड़ने का उपक्रम किया जा रहा था। वह जानता था कि अगर इस अवसरपर सचेत रहनेमें तनिक भी चूक हुई तो आने वाली पीढ़ियाँ उसे कदापि क्षमा नहीं करेंगी। दुर्भाग्यसे इन्हीं दिनों 'आजाद' हमसे बिछुड़ गये। 'महजूर' हममें मौजूद थे, वे स्वतंत्रताके नवविहानका स्वागत करनेमें व्यस्त थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस युगका प्रतिनिधित्व करने का भार प्रबुद्ध युवजनको वहन करना था। ऐसा ही हुआ। कविवर 'नादिम' का नया स्वर उभरा :

'बो ग्य नवें अज़
गुलन् तें बुलबुलन तें सोम्बलन तें मसवलन हुंदुय
खुमारें होत.....
सु बॉथ काँह—
—मैं आज गुलों, बुलबुलों, सुन्दरियोंके उन्मादपूर्ण गीत

नहीं गाऊँगा, क्योंकि आज जंगबाज़ मेरे देशके विरुद्ध नापाक मन्सूबे बनाकर आक्रमण करने आया है।'

भाव, भाषा ग्रौर विधा—सभी दृष्टियोंसे यह कश्मीरी काव्यका नया प्रयोग था। नयी पीढ़ीके साहित्यकारको समयके तकाज़ेके अनुरूप यह विधा रास आयी। जबतक यह युद्ध ग्रौर उससे अनुस्यूत षड्यंत्र बुने जाते रहे, चेतावनीके ये स्वर कश्मीरी साहित्यमें मुखर रहे। उस समयके अन्य कश्मीरी कवियों मिर्ज़ा आरिफ़, नूर मुहम्मद 'रोशन', आरिज़, 'रंजूर', हलीम, मजबूर प्रेमी ग्रौर बादमें रहमान राही, अमीन कामिल, फिराक़ आदिने इसी लय-तालपर कविताकी स्वरलहरीका विन्यास किया। उधर परंपरा-वादी कविगण भी महजूरके प्रतिनिधित्वमें कविताको नये भावोंसे सजाते रहे।

संक्रान्तिका यह काल धीरे-धीरे बदलता गया। हंगामे शान्त हुए। तूफ़ानके थमते ही कश्मीरी साहित्यकारको रुकनेकी फ़ुर्सत मिली। वह साहित्यके मूल्योंका पुनरांकन करने लगा। प्रगतिवादकी यह लहर यद्यपि सामयिक कही जाने लगी, जिसका आधार कईयोंके मतानुसार प्रासं-गिक भावावेश रहा, तथापि कश्मीरी साहित्यके विकासमें इसके महत्त्वको कम नहीं आँका जा सकता।

यह बात कश्मीर ही नहीं, समस्त भारत बल्कि सारे संसारकी साहित्य-सर्जनात्मक प्रवृत्तिपर लागू होती है। प्रगतिवादकी व्याख्या कुछ बदल गयी। अगर कहीं साहित्य-की कृतियोंमें कोरे नारोंका समावेश हो गया था तो उसने अब शाश्वत मूल्योंको स्थान देनेका अभिमत स्वीकार किया। कवि भावशिल्पी है सही, किन्तु उथले भावोंका नहीं, सार्वकालिक एवं सार्वभौम भावोंका शिल्पी है। इस धारणाने प्रगतिवादके अभिनव रूप-विन्यासमें कश्मीरीको नादिम की 'म्यान्यौ शारौ क्या वोन' (मेरे गीतोंने क्या कहा), म्यें छेम आश पगॅहॅच्य् (कल मेरी आशाग्रोंका दिन है), तथा राहीकी 'यलि र व खसि सुबहॅचि प्रवॅ त्रावान् (जब रवि प्रातर्रश्मियाँ बिखेरता हुआ उदय होगा) जैसी कविताएँ प्रदान कीं।

शीघ्रही विश्व साहित्यकी विभिन्न धाराग्रोंका प्रभाव कश्मीरी साहित्यकारपर भी पड़ा। प्रतिक्रिया अनिवार्य थी। अतः यहाँ भी 'कला कलाके लिए' एवं 'कला जीवनके लिए' का विवाद आ पहुँचा। इस विवादके अन्तर्गत जितनी भी नयी धारणाएँ अन्यत्र बनती-पनपती रही हैं, उन सबका प्रतिबिम्ब पिछले कुछ वर्षोंके कश्मीरी काव्यमें भी झलकता है। रूढ़िवादी गज़लों, नज्मों, रूबाइयों, कित्ग्रों (टुख) ग्रौर अन्य छंदोबद्ध काव्य रचनाग्रोंके अतिरिक्त गत २५ वर्षोंमें कश्मीरीमें सॉनेट ग्रौर ग्रॉपेरा (गीतिरूपक) भी लिखे गये। गीति-रूपकोंमें नादिमके 'बंबुर यंबर्ज़्वल' (भ्रमर ग्रौर नर्गिस) को बेजोड़ लोकप्रियता मिली। उनका ही 'ज़ून खॅच चोट हिश' (रोटी—ऐसा चन्द्रका उदय हुआ)—सॉनेट भी सर्वांगपूर्ण सफल सॉनेट रहा। इनके साथही कश्मीरी कवि मुक्तछन्दकी कविताका प्रयोग भी करने लगा। आज़ाद नज्म, नज्मे मुअर्रा अकविता, तजरीदी (Abstract) नज्मोंका प्रचलन भी होने लगा।

सारांश यह कि विषय हो या विधा—दोनों दृष्टियोंसे कश्मीरी काव्य अब विश्वके काव्य-साहित्यसे होड़ ले रहा है। कश्मीरी काव्यकी भाषा, भाव ग्रौर भण्डारको देखकर यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि यह साहित्य गत २५ वर्षोंमें बहुत समृद्ध हुआ है। परन्तु यह कहना अभी असा-मयिक होगा कि कश्मीरी काव्यके सभी नये प्रयोग कश्मीरी जनमनको ग्राह्य होंगे कि नहीं। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि लोकप्रियताकी दृष्टिसे अभीतक जो स्थान परम्परागत काव्यशैलीको प्राप्त है, वह नयी कविताको सुलभ नहीं। हो सकता है इसका कारण अभीतक श्रव्य-परम्पराकी प्रधानता हो। क्योंकि कविताके पठन-पाठनके मुकाबलेमें अभीतक कश्मीरी लोग गीत गा-गाकरही उनका रसास्वादन करते हैं।

जो भी हो, कश्मीरी काव्यका प्रांगण अब बहुत विशद हैं।

प्रसंगवश यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वाधीनताके बाद भारतीय भाषा-परिवारके क्षेत्रमें जो सबसे बड़ी प्रेरणाप्रद ग्रौर स्फूर्तिदायक घटना घटी, वह थी देशकी प्रमुख भाषाग्रोंकी संवैधानिक मान्यता। ग्रौर इसके फल-स्वरूप जिन संस्थाग्रों व विभागोंको विभिन्न भाषाग्रोंके साहित्य-संवर्द्धनमें सहायताका कार्य सौंपा गया, उनमें साहित्य अकादमी सूचना व प्रसारण मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नेशनल बुक ट्रस्ट आदि प्रमुख हैं। साहित्य अकादमी प्रतिवर्ष भारतीय भाषाग्रोंकी सर्वश्रेष्ठ कृतियोंको पुरस्कृत करती है। चूँकि कश्मीरी भाषाको भी संवैधानिक मान्यता का सौभाग्य प्राप्त है, अतः इसके साहित्यको भी वे सब सुभीते सुलभ हैं, जो अन्य प्रादेशिक साहित्योंको प्राप्त हैं। अबतक साहित्य अकादमीकी ग्रोरसे कश्मीरीकी भी अनेक साहित्य-कृतियाँ पुरस्कृत की गयी हैं। ग्रौर इसे संयोग नहीं कहा जा सकता कि उनमें तीन कृतियाँ काव्यकी ही हैं, जिनके नाम कवियों सहित ये हैं : १. सुमरन—(मास्टर ज़िन्द कौल),

२. नवरोज़ सबा—(प्रो० रहमान राही), ३. लवँ तँ प्रवँ—(अमीन कामिल)।

कश्मीरी काव्य साहित्यके विकासक्रमको जिन कवियों ने अपनी साधनाका विषय बनाया है, उनकी गणना अब सैंकड़ोंतक जा पहुँची है। नादिम, राही, कामिल, रसूल नाज़की, मिर्जा आरिफ, रसा जावदानी, फिराक़, रोशन, ख़याल, संतोष, साक़ी, चमन, बेकस, हलीम, मजबूर, अलमस्त, मसरंत, 'नाज़' 'नन' अम्बारदार, मुज़फ्फ़र आँज़िम, बेताब, फाज़िल, नाज़िर, फारुख नाजकी, रशीद नाजकी, शाहिद बडगामी, मसरूर, नाजी मुनव्वर, मुश्ताक, प्रेमी, बहार, वासुदेव 'रेह', कुन्दन, निराश, मधुप, सायल—ये और अनेक कवि अपनी भाषाका भावविन्यास करनेमें लगे हैं और इसका भण्डार समृद्ध कर रहे हैं। अनेक कवियोंने अपनी कविताओंके संग्रह प्रकाशित किये हैं। यहाँपर उनमेंसे कुछेक प्रकाशनोंके नाम कवियों सहित देनेतक ही सीमित रहूँगा; क्योंकि संक्षिप्त परिचय एवं समीक्षासे लेखका आकार बहुत ही बढ़ जानेका डर है। साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत तीन काव्य संकलनोंके अतिरिक्त जिन कविता-संग्रहोंको राज्यकी सांस्कृतिक अकादमीद्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है, उनमें मुजफ्फर आज़िम की 'ज़ोलानँ' (बेड़ियाँ), चमनकी 'शबनम्यशार' (ओस-सने गीत) तथा वासुदेव 'रेह' की 'शबगरुद' (रातका प्रहरी) उल्लेखनीय हैं। गुलाम रसूल 'नाज़की' का 'नमरूद-नामा', गुलाम नबी 'खयाल' का 'प्रागाश' (प्रभात), 'ज़ंज़ूरि हुंद साज़' (बेड़ियों का संगीत) और अमीन कामिलका 'ब्यियि सुय पान (फिर वही मैं) काव्य-संग्रहभी प्रकाशमें आये हैं। कश्मीरकी अकादमी गत अनेक वर्षोसे 'शीराज़ा' नामकी पत्रिका राज्यकी चार भाषाओं कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी और उर्दूके अतिरिक्त राष्ट्रीय भाषा हिन्दीमें भी समय-समयपर प्रकाशित करती है। कश्मीरीमें प्रतिवर्ष इसके कई अंक छपते हैं। साथही अकादमी प्रतिवर्ष 'सोन अदब' (हमारा साहित्य) का प्रकाशनभी करती है। इसमें कश्मीरी गद्य-पद्यकी अच्छी कृतियोंका चयन छापा जाता है। इनके अध्ययनसे मालूम होता है कि कश्मीरी काव्यका विकास किस गतिसे हो रहा है।

एक समय था जब कश्मीरी मुशायरे (कवि-सम्मेलन) की कल्पनातक नहीं की जा सकती थी। कहा जाता है कि एक बार कविवर 'महजूर' को इस शर्तपर एक मुशायरेमें अपनी कश्मीरी कविता सुनानेकी अनुमति दी गयी कि वह अपनी उर्दू कविताका पाठ भी अवश्य करें। और अब यह हाल है कि मुशायरोंमें अधिकांश कवियोंको समयाभावकी शिकायत रहती है। इतना ही नहीं, बल्कि सर्वभाषा कवि-सम्मेलनोंमेंभी अब कश्मीरी कविताओंको सुननेका अवसर मिलता है।

गद्यका पूर्व रूप

स्वाधीनताके उत्तरकालमें जो सबसे बड़ा मूलभूत और प्रभावकारी परिवर्तन कश्मीरी साहित्यके विकासक्रम में आया वह था कश्मीरी गद्यका प्रादुर्भाव और उसकी बहु-मुखी प्रगति। गद्यही वह स्थायी आधार है, जिसपर किसी साहित्यका भव्य प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। कश्मीरीमें गद्यकी कमी पहलेसेही सभी को महसूस होती रही है। इसलिए इस अभावको पूरनेके निमित्त स्वातंत्र्यपूर्व कालमें भी कई प्रयास किये गये।

लोककथाओं, परम्परागत आख्यानों तथा धार्मिक प्रवचनादि प्रक्रियाओंके कश्मीरीमें प्रचलित होनेके बावजूद कश्मीरी गद्यका सूत्रपात वस्तुतः ईसाई प्रचारकोंद्वारा १८२१ में किया गया। पहली बार कश्मीरी गद्यमें 'इंजील' का अनुवाद छपकर आया। यह क्रम १८९९ तक चलता रहा। यह प्रयास भले ही गद्यको लोकप्रिय न बना सका हो, किन्तु कश्मीरके शिक्षित वर्गमें इसकी उपादेयता खुब गयी। परिणामस्वरूप १८७६ में ज्यामितिका अनुवाद, 'तहरीरे अकलीदस' (अनु० पं० रामजूदर) और १९२१ में 'ग्रँज़ व्यद' नामक गणित रचना (ले० प्रो० तोषाखानी) का प्रकाशन किया गया। इसी कालान्तरमें कुछ यूरोपीय विद्वानों ने भी भारतीय भाषाओंका सर्वेक्षण-कार्य करते हुए कश्मीरकी लोककथाओं, मुहावरों तथा परम्पराओंका संकलन किया और उनको अनुवाद और टिप्पणी सहित छपवाया। इनमें हिन्टन नोल्ज़, ऑरेल स्टीन तथा जार्ज गियर्सनके नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

इस कालमें कुछ धार्मिक पुस्तकें भी अनुवाद और मूल रूपमें छपवायी गयीं, जिनमें कुरान शरीफ़के 'पारा अम' का कश्मीरी अनुवाद, 'कॉशिर मस्लॅ किताब' और 'शरअ् मुहम्मदी' प्रसिद्ध हैं।

भारत भरमें जो लोकप्रियता उन दिनों रंगमंचको प्राप्त थी, उसका प्रभाव कश्मीरी जनतापर भी पड़ा। इसके फलस्वरूप कश्मीरीमें अनेक नाटक लिखे और सफलतापूर्वक अभिनीत किये गये। इनमें 'सतॅच् कहवट' (सत्यकी कसौटी) ले० नंदलाल कौल (१९३०-३१ ई०); 'शीरीं फरहाद' ले० गुलाम नबी 'दिलसोज़' (१९१६-१९४१ ई०); 'अक़नन्दुन' (कश्मीरी लोककथापर आधारित), 'प्रेमँच

कहवट' (प्रेमकी परख) ले० ताराचंद 'बिस्मिल' तथा श्री नीलकंठ शर्माके नाटक 'बिल्वमंगल' व 'स्वप्नवासवदत्ता' सफल प्रयास थे। १६३८ ई० में प्रो० हाजनीने 'ग्रीस्य् सुंद घरॅ' (किसानका घर) नाटक छपवाया। यह नाटक परम्परासे हटकर आधुनिक नाटकोंकी गणनामें लिया जा सकता है।

उस समयके प्राध्यापकों तथा कवियोंने कालेजकी पत्रिकाओंमें 'कश्मीरी भाग' आरंभ करके कश्मीरी गद्यके अभावको पूरनेका आयोजन किया। इसका श्रीगणेश १६३६ ई० में 'प्रताप' पत्रिकामें किया गया। यह क्रम बीच में रुक गया था, किन्तु अब फिर जारी हुआ है और कालेजोंके विस्तारके साथ-साथ बढ़ रहा है।

१६४१ में कश्मीरीमें पहला साप्ताहिक समाचारपत्र छपने लगा। इसके प्रणेता कविवर महजूर थे। उनके सुपुत्र श्री मुहम्मद अमीनने इस साप्ताहिक पत्रका सालभर तक सफलतापूर्वक प्रणयन किया; किन्तु द्वितीय विश्वयुद्धमें यह काग़जके अभावकी भेंट चढ़ गया।

स्वाधीनतासे पूर्वके इन प्रयासोंका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं आँका जा सकता। किन्तु गद्य साहित्यका जो बहुमुखी विकास भाषा एवं साहित्यकी समृद्धिके लिए अपेक्षित था, वह अभाव इन प्रयासोंसे पूरा नहीं हो पाया।

इसीलिए स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद गद्यका अभाव असहनीय हदतक खलने लगा। इसका कारण शायद यह भी था कि नवयुग जनताका युग था। उसतक नया संदेश पहुँचानेका प्रभावजनक माध्यम कश्मीरीके अतिरिक्त और कोई न था। रेडियोद्वारा जनतातक पहुँचनेका आधुनिक साधन तो सुलभ हो गया, किन्तु माध्यम कश्मीरी न हो तो क्या हो—यह प्रश्न कश्मीरी साहित्यकारको गद्य-रचनाके लिए बाध्य करने लगा। उधर मात्र कविताद्वारा ही सभी साहित्यसेवी अपनी उत्सुकता, विचारशीलता और गवेषणा की प्रवृत्तिको व्यक्त करनेमें कठिनाई अनुभव करने लगे। इन बाधाओं और कालके तकाज़ोंने गद्यके प्रवाहको वेगपूर्वक सामने लाया।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, कश्मीरकी घाटीने क़बायली आक्रमणके साथ ही स्वाधीनताका स्वागत किया। अतः यहाँके बुद्धिजीवीको वस्तुतः मोर्चाबंदी करनी पड़ी। 'कल्चरल फ्रंट' का संगठन यही मोर्चा था जहाँ कश्मीरी साहित्य-सेवी बंदूकके साथ-साथ कलमसे भी काम लेने लगा। यही संगठन कालांतरमें कल्चरल काँग्रेसमें परिवर्तित हुआ। इन संगठनोंके तत्वावधानमें नाटकों, गोष्ठियों, वाद-विवादों, मुशायरों और साहित्यिक-शिविरोंका आयोजन किया जाने लगा। नाटक अभिनीत किये गये, कविता-पाठ मुशायरोंमें किया गया, मगर कहानी, लेख या रिपोर्ताज़ आदि लिखनेवालोंको किस माध्यमसे प्रचारित किया जाता ? इसके लिए एक पत्रिकाके प्रकाशनकी आवश्यकता अनुभव की गयी। इसीका परिपाक 'कुंग पोश' (केसरका फूल) का प्रकाशन था। स्वाधीनताके बाद लगभग दस वर्षतक यह कश्मीरी साहित्यकी मुख पत्रिका रही। इसके द्वारा गद्यकी स्थायी नींव पड़ी। एक-से एक बढ़िया कहानियाँ, एकांकी, विवेचनात्मक लेख, सूचनाप्रद निबंध आदि लिखे जाने लगे। देखते-ही-देखते कश्मीरी का वह कहानीकार उभरा, जिसने अपने पहलेही कहानीसंग्रहपर साहित्य अकादमीका पुरस्कार अर्जित किया। वे युवक साहित्यकार अख्तर महीउद्दीन हैं, जिनकी पुरस्कृत रचना 'सत संगर' (सप्त शिखर) के अलावा अबतक दो अन्य कृतियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। इनमें एक 'स्वंज़ल' (इन्द्रधनुष) कहानी संग्रह और दूसरा लघु उपन्यास 'दोददग' (रोग-शोक) है। अबतक कश्मीरीकी जिन अन्य गद्य रचनाओंको साहित्य अकादमी पुरस्कृत कर चुकी है, उनमें टाक ज़ैनागीरीद्वारा रचित 'कॉशिरियुक अलाकॅवाद फेर' (कश्मीरीके विभिन्न रूप) तथा प्रो० होजिनी कृत 'मक़ालात' (निबंध) सम्मिलित हैं। इनमेंसे पहली रचना गवेषणात्मक है और दूसरी निबन्ध-संग्रह। कश्मीरकी कल्चरल अकादमीद्वारा भी अनेक गद्य रचनाएँ पुरस्कृत की गयी हैं। इनमें बन्सी निर्दोषका कहानी-संग्रह 'बाल मरॉयो' (मैं बाला मरी जा रही हूँ), अवतार कृष्ण 'रहबर' रचित कॉशिरि अदबॅच्य तॉरीख़ (कश्मीरी साहित्यका इतिहास), प्रेमनाथ दर कृत नाटक 'जुॅइ गबर' (दोही बेटे) तथा अली मुहम्मद लोनका उपन्यास 'ॲसि् ति छि इन्सान' (हम भी इन्सान हैं) उल्लेख्य हैं।

पुरस्कारोंकी चर्चा चल पड़ी है तो यह कहे बिना प्रसंग पूरा नहीं होगा कि कश्मीरी साहित्यमें जिस महान् कविने अपनी ओजपूर्ण अद्भुत मौलिक पद्य एवं गद्यकी रचनाओं द्वारा युगकी धाराही पलट दी, नये स्वर और नये मूल्योंका सूत्रपात करके कश्मीरी कवितापर अपनी अमिट छाप छोड़ दी, उन कविवर दीनानाथ 'नादिम' को यद्यपि दुर्भाग्यवश न तो स्वयं अपना कोई काव्य-संग्रह अबतक प्रकाशित करने का अवसर मिला और न ही राज्यकी किसी संस्थाद्वारा उनका संकलन प्रकाशमें आया। फिरभी उनकी देन कश्मीरी साहित्य और विश्व-बंधुत्वकी दृष्टिसे इतनी बहुमूल्य मानी

गयी कि उसको सोवियत यूनियनकी नेहरू पुरस्कार समितिने समष्टिरूपेण अत्यधिक उपादेय मानकर 'नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किया। कश्मीरी साहित्यकी श्रेष्ठताको किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाद्वारा मान्यता मिलनेका यह पहला अवसर था। इस सिलसिलेमें वे रूसकी यात्रा भी कर आये हैं, जहाँ उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है।

कश्मीरी गद्य साहित्यके बहुमुखी विकासके फलस्वरूप इस समय उपर्युक्त पुरस्कृत रचनाओंके अतिरिक्त कथा-कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज़, नाटक, निबंध, गवेषणापूर्ण लेख, बालोपयोगी साहित्य, लोक-साहित्य, साहित्य-इतिहास आदिके अनेक प्रकाशन मिलते हैं।

कहानी

उपलब्ध कश्मीरी गद्यमें कहानी-साहित्यका महत्त्व सर्वप्रधान है। इस कार्यका श्रीगणेश १९४७ के पश्चात् जिन लेखकोंने किया, उनमें सोमनाथ ज़ुत्शी, अब्दुल अजीज़ हारून, दीनानाथ 'नादिम', नूर मुहम्मद रोशन, रहमान 'राही' और मिर्ज़ा आरिफ़के नाम वर्णनीय हैं। इनसे प्रेरित होकर जो कहानीकार उभरे, उनमें अख्तर महीउद्दीनके साथ-साथ अमीन कामिल, बंसी निर्दोष, सूफ़ी गुलाम मुहम्मद, उमेश कौल, डॉ० शंकर रैना, हृदयकौल भारती और 'रहबर' के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाएँ 'तबरुक़' (उपहार), 'आदम छु यिथ बदनाम' (मानव यूहीं बदनाम है), 'लूसिमित्य् तारख' (बुझे हुए तारे), 'शीशॅ तॅ संगिस्तानं' (दर्पण और पाषाणस्थल), 'ज़ितनि ज़ूल' (जुगनुओं की दीपावली), 'कथि मंज कथ' (बात-से-बात) प्रकाशित हुई हैं। कथा-साहित्यकी समालोचना यद्यपि यहाँ अभिप्रेत नहीं, तो भी यह कहे बिना रहा नहीं जाता कि २५ वर्षोंके ही अल्पकालमें कश्मीरी कहानीने विकासके अनेक चरण पार किये हैं। अब हम सफल कहानियोंकी पंक्तिमें 'दंद वजुन' (दांता किलकिल), 'आदम छु अजब ज़ाथ' (मानवभी अजीब है), 'तुलॅर' (भिड़), मालद्यद (मालदादीका चरित्र-चित्रण), 'अड़ॅइ कथ' (अधूरी बात), 'तेह' (आन), आबनूसुक रूलर,. . . .मिलि छुंद दुॅह (आबनूसी रूलर...मिलका धुआँ), 'सफर तॅ सूॅत्य्वोल' (सफ़र और साथी), 'फाटक' (आवारा पशुओंका दण्डस्थल), दिवता (देवता) और रंगौ मंजॅ बदरंग (रंगोंमें बदरंग) गर्वसे रख सकते हैं। जो युवक कहानीकार अब कश्मीरी कहानीका भण्डार भर रहे हैं। उनमें हरिकृष्णकौल, फारुख मसइदी, गुलाम नबी बाबाको उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

उपन्यास

कश्मीरीका उपन्यास-साहित्य अभी सीमित है। तीन-चार मौलिक उपन्यास और एकाध अनुवाद पर्याप्त सामग्री नहीं कही जा सकती। 'दोद-दग' (रोग-शोक) अख्तर मुहीउद्दीनका सामाजिक नावेल है। इसको कई आलोचक तवील अफ़साना (लम्बी कहानी) भी कहते हैं। अमीन कामिलका उपन्यास 'घटि मंज़ गाश' (अंधकारमें प्रकाश की किरण) क़बायली आक्रमणकी पृष्ठभूमिपर उभारा गया है और अलीमुहम्मद लोनका 'असि ति छि इन्सान' (हमभी मानव हैं) कइयोंके मतानुसार रिपोर्ताज़ है। 'म्वकजार' (तलाक़) बन्सी निर्दोषका अप्रकाशित उपन्यास है। प्रो० पुष्पने महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी 'चोखेर बाली' का अनुवाद 'अछि किटुर' नामसे किया है और साहित्य अकादमीद्वारा छपवाया है। हालमें अलीमुहम्मद लोनने मैक्सिम गोर्कीके उपन्यास 'मां' का अनुवाद करके कश्मीरीका मान बढ़ाया है।

नाटक

कश्मीरी नाटक एवं रंगमंचका पूर्वरूप संक्षेपसे अन्यत्र दर्शाया जा चुका है। १९४७ के बाद राजनीतिक परिवर्तन के कारण लोकजागृतिके लिए कश्मीरी रंगमंचकी आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। रंगमंच स्थापित हुआ, किन्तु आरम्भमें कश्मीरीके बदले इसपर उर्दूका ही बोलबाला रहा। 'कश्मीर हमारा है' स्टेज किया गया। मगर शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि कश्मीरीमें लिखे हुए नाटक अधिक प्रभावजनक हो सकते हैं। चुनांचि प्रेमनाथ परदेसी द्वारा लिखित 'शहीद शीर्वाणी' (नाटक) स्टेज किया गया। १९५१ ई० में श्री जगन्नाथ वलीने 'ज़ून' नाटक पुस्तकाकारमें छपवाया। यह कश्मीरकी प्रसिद्ध कवियित्री हब्बा खातूनकी जीवनीसे सम्बन्धित था। अभीतक यह रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किया गया। प्रो० साधुका 'बीरबल' (नाटक) भी ऐतिहासिक कथानकपर आधारित है।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, कश्मीरके कल्चरल फ्रंट, कल्चरल काँग्रेस एवं कल्चरल कान्फ्रेंसने कश्मीरी लेखकोंको एक मंचपर लाकर साहित्य सर्जनकी प्रेरणा दी। इन्हीं लेखकोंमें हमें वे नाटककार भी मिले, जिन्होंने कश्मीरीका नाट्य साहित्य संपन्न किया है। अलीमुहम्मद लोन, रौशन, अख्तर महीउद्दीन, सोमनाथ जुत्शी, पुष्कर भान, अमीन कामिल इसी संस्थाने उभारे हैं। और जब रेडियो कश्मीर का प्रसारण कश्मीरमें भी आरम्भ हुआ तो साहित्यकी अन्य विधाओंके साथ-साथ नाटकका कश्मीरी रूप-रंग भी उभर

आया । रेडियोने प्रतियोगिताएँ आयोजित कीं । इनके द्वारा अनेक सफल नाटक प्रसारित किये गये । इनमें सोमनाथ जुत्शीका 'विजिवादा' (वुलर झीलका वातचक्र), पुष्कर भानका व्यंग्य नाटक 'हीरो मचामा', अलीमुहम्मद लोनका 'तॉज्य् बॅटी कान', अख्तर मुहीउद्दीनका 'महमदू वल्द लस्सू' और श्री मोहनी कौलका 'शर्य् भट' (श्री भट्ट) उल्लेख्य हैं । जिन सफल नाटकोंको रंगमंचपर पेश किया गया, उनमें लोनका 'विज़ छे सॉन्य' (आई हमारी वेला), अमीन कामिलका 'पगाह छु गोशदार' (कल प्रकाशमान है), राधेकृष्ण ब्रारूका 'याह्' (फाख्ता), सुदामाजीका 'मिलचार' (मेल मिलाप) और पुष्कर भान व सोमनाथ साधुका 'ग्रैण्ड रिहर्सल' लोकप्रिय हुए हैं ।

इसी कालमें नादिमद्वारा कश्मीरीका पहला ऑपेरा (गीति रूपक) बोम्बुर-यंबर्ज़ल (भ्रमर और नर्गिस) स्टेज किया गया । इसकी सफलता कश्मीरेतर क्षेत्रोंमें भी स्वीकारी गयी । इन्हींका एक और ऑपेरा 'नेकीबदी' भी सफल और लोकप्रिय हुआ । रोशन और नादिमद्वारा लिखित 'हीमाल-नॉग्य्राय' (कश्मीरी लोकविश्रुत प्रेमकथा) का गीतिरूपक इसी कड़ीका एक और प्रयास था, जो अधिक लोकप्रिय न हो सका ।

जो नाटक अभीतक मुद्रणालयोंमेंसे निकले हैं, उनमें उपर्युक्त कुछ मौलिक रचनाओंके अतिरिक्त कई अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं । इनमें इब्सनके वाइल्ड डक (Wild Duck) और घोस्ट्स (Ghosts) का अनुवाद क्रमशः 'थुज्य्' (जुत्शी) और 'छाय' (अख्तर) साहित्य अकादमी ने प्रकाशित किये हैं । महाकवि रवि टाकुरके जिन अनेक नाटकोंका कश्मीरी रूपान्तर किया गया है, उनके नाम ये हैं : व्वज़ॅल्य् गुलाल (रक्तकरबी), उपहार, मालिनी, चाण्डाल (अनुवादक, रौशन), डाकघर और 'राजॅ-तॅ-रॉन्य्' (राजा-रानी—अनु० कामिल) मुक्तधारा अनु० लोन और चित्रांगदा अनु० रहबर । अलीमुहम्मद लोनने हालमें 'सुय्या' नामक नाटक प्रकाशित कराया है । इसका कथानक कश्मीरके इतिहासप्रसिद्ध शिल्पकार इंजीनियर 'सुय्या' पर आधारित है, जिन्होंने अवन्तिवर्म्मनके राज्यकालमें कश्मीरको जल-प्लावनकी तबाहीसे बचाया था ।

कश्मीरी रंगमंच एवं नाटक साहित्यको अपनी मूल परंपरासे सम्बद्ध रखने और उसमें नये मूल्यों और तकाज़ोंका सामंजस्य करनेमें अकिनगामके भगत थियेटरका बहुत बड़ा योगदान है । कश्मीरकी पुरातन स्वांग-परम्परा 'भाण्ड-जश्न' को आधुनिक नाटकोंसे समन्वित करके जो नूतन नाटक उभरे हैं, उनमें 'पोज़-अपुज़' (झूठ-सच), 'यिति छु बनवुन (यहभी होता है), 'तकदीर' (भाग्य), 'हवस' (कामना) और 'ज्वलिगयम तॅ क्वलि गयम कॉगॅर' (चूक हुई नहीं कि मैं लुट गया) अबतक सफलतासे अभिनीत किये गये हैं । इनके निर्देशनमें कश्मीरीके नाटककार मोतीलाल 'क्यमू' ने जिस सिद्धहस्तताका प्रमाण प्रस्तुत किया है, उससे कश्मीरी रंगमंचको बड़ा बल मिला है । क्यमू स्वयं सफल नाटककार हैं और कई ड्रामा लिख चुके हैं ।

समालोचना

समालोचना एवं समीक्षाकी दृष्टिसे अभीतक कश्मीरीमें बहुत कम लिखा गया है और उससे भी कम प्रकाशित किया गया है । प्रो० हाजनी तथा टाक जैनागीरीकी चर्चा पुरस्कृत रचनाकारोंके प्रसंगमें ऊपर की गयी है । उनके अतिरिक्त प्रो० जे० एल० कौल, प्रो० पुष्प, अबदुलअहद 'आज़ाद', प्रो० राही इस दिशामें कुछ कार्य कर चुके हैं । इधर जो समीक्षात्मक एवं अनुसंधानपूर्ण कृतियाँ प्रकाशमें आयी हैं, उनमें आरस्तू की 'पोयटिका' का इसी नामसे गुलाम नबी 'खयाल' ने कश्मीरीमें भावानुवाद किया है । 'रहबर' कश्मीरी साहित्यका इतिहास (प्रथम भाग) छाप चुके हैं । अमीन कामिलने सूफी शायरोंपर एक गवेषणापूर्ण विस्तृत लेख लिखकर प्रशंसनीय काम किया है । यूसुफ टेंगद्वारा लिखित 'गुलरेज़' और 'वलीउल्लाह मत्तू' की भूमिकाएँ, बलजिन्नाथ पंडितका 'रामावतारचरित' पर 'पूर्ववचन' और इकबालनाथ वनपूहके कई खोजपूर्ण लेख इस बातके निर्देशक हैं कि कश्मीरीका विवेचनात्मक साहित्य अब उभरने लगा है । यहाँपर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि अनेक कठिनाइयों के कारण अधिकांश साहित्य-कृतियाँ अभीतक अप्रकाशित पड़ी हैं, जिनमें विशम्भरनाथ कौल लिखित 'ज़ग-तॅ-प्रोन' (दूधका दूध पानीका पानी) उल्लेखनीय है । इसमें आज़ाद और महजूरकी काव्य-समालोचना तुलनात्मक दृष्टिसे की गयी है ।

अन्य साहित्य

इसी लेखमें ऊपर कहा जा चुका है कि भारत सरकार ने प्रादेशिक भाषाओंके रचनात्मक एवं शिक्षासम्बन्धी साहित्यको प्रोत्साहित करनेके निमित्त अनेक योजनाएँ बनायी हैं । इनमें केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालयकी बालोपयोगी साहित्य प्रतियोगिता-योजना, नवसाक्षरोंके साहित्यकी प्रतियोगिता योजना एवं सामुदायिक विकास-योजनाके अन्तर्गत कश्मीरीकी अनेक रचनाएँ पुरस्कार पा चुकी हैं । इनमें कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें ये हैं : शम्भुनाथ भट्ट

'हलीम' द्वारा लिखित 'बाल्-यार' (बाल सखा), 'रहबर' व नाजी मुनवर कृत 'म्वख्तॅलर' (मोतियोंकी लड़ी), 'फाज़िल' रचित 'निगहबान', प्रो० शामलाल साधुद्वारा रचित 'वुछॅ प्रंग' (उड़न-खटोला), 'डान क्विकज़ॉट', 'व्यथि हंद्य् मलर (वितस्ताकी लहरें) । इनके अतिरिक्त जो बालोपयोगी पुस्तकें छप चुकी हैं, उनमें 'हलीम' की अनूदित रचनाएं 'झलकारी', गोदावरी, शंकराचार्य, 'रुत शहरी' (सच्चा नागरिक); साधु रचित 'पोशिमाल'; विशम्भर कौल द्वारा अनूदित 'गांधीजीयुन लोकचार' (गांधीजीका विद्यार्थी जीवन) और नाजी मुनवरकृत 'शुर्य्न हॅंद्य् बॉथ' (बालकोंके गीत) सम्मिलित हैं।

भाषाका क्षेत्र-विस्तार

गत पच्चीस वर्षोंमें ही कश्मीरी भाषा एवं साहित्यने गुमनामीसे निकलकर देश और विदेशोंके विश्वविद्यालयोंमें अनुसंधान और प्रशिक्षणका गौरव प्राप्त किया है। साहित्य के इस तुलनात्मक और गवेषणात्मक अध्ययनके कारण कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथ सामने आये हैं। इनमें डॉ० ओंकारनाथ कौलका शोधप्रबंध कश्मीरी रामकथा काव्यसे सम्बन्धित है। डॉ० जवाहरलाल हंडूने कश्मीरी लोकगीतोंपर अनुसंधान किया है। डॉ० त्रिसल, डॉ० एस० के० रैना एवं डॉ०मोहनी कौल कश्मीरी साहित्यके विभिन्न पहलुओंपर शोध प्रबंध पूर्ण कर चुके हैं। कश्मीरीके एक अनन्य साधक डॉ०बृजबिहारी काचरूने हज़ारों मील दूर बैठकर अमरीका के इलिनॉय विश्वविद्यालयमें कश्मीरीके 'संदर्भ व्याकरण' का अद्भुत और मूल्यवान संपादन-कार्य पूर्ण किया है। डॉ० काचरू न केवल स्वयं कश्मीरी साहित्यकी श्रीवृद्धिमें लगे हैं, प्रत्युत् औरोंको भी इस दिशामें प्रेरित कर रहे हैं।

कुछ समस्याएँ

अन्तमें उन अनेक समस्याओंकी ओर भी ध्यानाकर्षण कराना आवश्यक है, जिनका समाधान कश्मीरी साहित्यके विकासकी गति बढ़ायेगा।

यह सही है कि १९४७ से पहले कश्मीरी साहित्यका वह रूप नहीं था, जो अब है; किन्तु वर्तमान कालकी सांसारिक गतिविधिको देखते हुए जितना सुव्यवस्थित प्रबंध साहित्य-निर्माण एवं इसके प्रसार व प्रचारके लिए होना चाहिये, मानना पड़ेगा कि उतना प्रबंध नहीं है। उदाहरणतः इस भाषामें अभीतक स्वतंत्र रूपसे कोई दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक या द्विमासिक पत्रिका नहीं छपती। यह कहनेकी ढिठाई नहीं करता कि ऐसे प्रयास पहले नहीं किये गये। 'कुंग पोश', 'पंपोश' की चर्चा तो की ही जा सकती है, परन्तु मासिक पत्रिकाओं 'गुलरेज', 'नेब', 'कॉशुर अदब' और साप्ताहिक 'वतन' की उपेक्षा कैसे की जा सकती है। 'गुलरेज़' का प्रकाशन मिर्ज़ा आरिफ़ करते रहे, 'नेब' अमीन कामिलकी निगरानीमें छपता रहा। 'कॉशुर अदब' का संरक्षण श्री 'संतोष' करते रहे, जो एक प्रसिद्ध चित्रकार भी है, और 'वतन' नामक साप्ताहिक पत्र चलाकर गुलाम नबी 'खयाल' ने एक दुरूह भार वहन किया। मगर ये सभी प्रयास विफल हुए। इसके कारणोंका विश्लेषण आवश्यक है। इस समय केन्द्रीय सूचना विभाग 'प्रागाश' नामकी साप्ताहिक सूचना पत्रिका प्रकाशित करता है और राज्य सरकारद्वारा 'चमन' प्रति सप्ताह छापा जाता है, किन्तु इन्हींसे साहित्य-विकासकी सभी आशाएँ लगाना अधिक तर्क-संगत नहीं लगता। कश्मीरमें उर्दू-अंग्रेजीमें अनेक दैनिक व साप्ताहिक पत्र सफलतापूर्वक छपते हैं और उनमेंसे अधिकतरके प्रणेता कश्मीरीके प्रसिद्ध लेखक हैं, फिरभी उन्हें कश्मीरीमें पत्रिका-प्रकाशन का उत्साह नहीं। कहीं राज्य की ओरसे तो उपेक्षा नहीं होती? जोभी हो, इस समस्याका समाधान अनिवार्य है।

दूसरी समस्या है कश्मीरीमें प्रकाशकोंके अभावकी। कश्मीरकी कल्चरल अकादमी इस दिशामें निश्चयही भगीरथ प्रयत्न कर रही है किन्तु वह पर्याप्त नहीं। उसका क्षेत्रभी तो सीमित है। इससे पूर्व कि प्रकाशक सामने आयें, यह जरूरी है कि जितना प्रकाशन अवतक हुआ है, वह नियमित रूपसे किसी एक या अनेक केन्द्रोंसे सुलभ हो। दुर्भाग्य से इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। परिणाम यह कि चाहते हुएभी साहित्य प्रेमियोंको कश्मीरीकी रचनाएँ सुविधासे उपलब्ध नहीं होतीं। इस दिशामें यदि कश्मीरकी अकादमी विशुद्ध रूपसे व्यापारी ढंगपर पुस्तक विक्रयका केन्द्र स्थापित कर दे, जहाँसे यथासंभव सभी उपलब्ध कश्मीरी पुस्तकें मिल सकें तो यह कमी बहुत हदतक दूर हो सकती है।

कश्मीरी साहित्यके विकासमें लिपिका अभावभी बहुत बाधक रहा है। यद्यपि उर्दू लिपिमें कुछ ध्वनि-संकेत बढ़ाकर इस बाधाको कुछ कम कर लिया गया है तथापि विश्वसाहित्य की तीव्र गतिको देखते हुए इसीपर रुका नहीं जा सकता। अगर हमें टाइप आदिका लाभ लेना है और संसारसे होड़ लेनी है, तो हमारे विचारकोंको इस सम्बन्धमें और अधिक सोचना पड़ेगा। इस समस्यापर विचार करते हुए हमें अनेक दुराग्रहोंसे ऊपर उठना पड़ेगा। ध्यान रहे कि साहित्य-

[शेष पृष्ठ १९० पर]

ख. स्वातन्त्र्योत्तर पंजाबी साहित्य

—फूलचन्द मानव,
१८५/११ एफ, २३ए,
चंडीगढ़

पंजाबी साहित्य शुरूसे ही सह-अस्तित्वका पोषक, शक्तिशाली, प्रगतिशील और विद्रोही रुचियोंका रहा है, पंजाबका इतिहास स्वयं इसकी शहादत है। इस दृष्टिसे पिछले २५ साल पर्याप्त गतिशील और घटना भरपूर कहे जा सकते हैं। इसी दौरान चीन व पाकिस्तानके तीन प्रबल आक्रमण गवाह हैं। देश विभाजनके समय १९४७ में भी सबसे बड़ा बलिदान पंजाबको ही देना पड़ा। और यह पंजाबी-चरित्र ही है कि उखड़, बिखर, टूटकरभी अपने पैरोंपर खड़ा पात्र आज बन्धनमुक्त होकर सोचने-समझनेमें समर्थ सिद्ध हुआ है। संघर्षरत व्यक्तित्व पंजाबियोंकी विरासत है। शरणार्थी-समस्या इनके लिए कोई नयी बात नहीं। असंख्य अनाथ सन् सैंतालीसमें विस्थापित कहलाये। पंजाबी साहित्यकार इन्हीं घटनाओंसे प्रभावित हुआ और प्रेरणा पाकर उसने अलग-अलग विधाओंमें रचनाएँ कीं। फिर वह रचना यशपाल, अज्ञेय, अश्क, मोहन राकेश, सुदर्शन जैसे पंजाबी हिन्दी लेखकोंकी हो या अमृताप्रीतम, मोहनसिंह, बलवन्त गार्गी, सेखों, सफ़ीर या धीरकी——कहीं-न-कहीं प्रगतिशील लहर या मार्क्सवादी मूल्योंसे प्रभावित है।

अपनी परम्परामें जनम-साखियाँ, किस्सा काव्य, जफ़र-नामा, सूफ़ी साहित्य आदि विभिन्न परिपाटियोंको पार करके स्वतन्त्रताके पश्चात्‌का पंजाबी साहित्य सिद्धान्त और समीक्षामें ही आगे नहीं बढ़ा, उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, निबन्ध, लोकयान——सभी विधाओंमें नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। विश्वविद्यालय स्तरपर पंजाबी पाठ्य-क्रमका निर्धारण, आकाशवाणी प्रसारण, पंजाबी साहित्य अकादमी, शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, पंजाबी और गुरु नानक युनिवर्सिटियोंकी स्थापना, राजकीय भाषा विभाग, गुरु गोविन्दसिंह फाउण्डेशन राष्ट्रीय पुस्तक-न्यास आदि सरकारी, अर्द्धसरकारी अथवा गैर-सरकारी संस्थाओं-संस्थानोंके अतिरिक्त पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, बंगाल, जम्मू-कश्मीर राज्योंसे प्रकाशित सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओंका योगदान, नवयुग-हमदर्द आदि प्रतिष्ठित प्रकाशन-गृह और बाहर विदेशोंसे भी प्रकाशित-प्रसारित कतिपय प्रयत्न इस दिशामें पंजाबी साहित्यकी प्रगतिमें सहायक पहलू सिद्ध हुए हैं। नानकसिंह, गुरबख्ससिंह, स्व० बलराज साहनी, कर्तारसिंह दुग्गल, अमृताप्रीतम, स्व० शिवकुमार बटालवी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करनेवाले कलमकारोंका सक्रिय लेखन इन अढ़ाई दशकोंमें जिस स्वर और स्तरको मुखरित कर रहा है, सराहनीय एवं अभिनन्दनीय है।

कविता

कविताके क्षेत्रमें छठे दशकतक ही छायावादी-रोमांस-वाद रोमांटिक-क्रांतिवाद, प्रगति-प्रयोगवादसे लेकर पुर्न-स्थापनवाद तक यथार्थकी तलाशमें पंजाबी कविगण सक्रिय रहे हैं। यहाँ पहले दौरमें १९४७ से १९५६ तक उर्दू व हिन्दी कवितासे प्रभावित प्रगतिवादी कविताएँ कच्च, सच्च, आवाज़ां, वड्डा वेला जैसे अपने काव्य संग्रहोंमें मोहनसिंहने प्रस्तुत की है। बाबा बलवन्त, अवतारसिंह आजाद, डॉ० गुरचरणसिंह मुसाफिर, मोहनसिंह दीवाना, अमृताप्रीतम आदिकी कृतियाँभी इसी समयकी देन हैं जिनमें सुनेहड़े, बन्दरगाह, कत्तक कूंजां, मर्द-अणमड़ा, विश्वनूर, महांवलि, अग्नारविन्द आदि महाकाव्य, मुक्तक काव्य और प्रबन्ध काव्यकी गणना की जा सकती है। प्रकृति-चित्रण और क्रांतिके स्वर देते हुए बाबा बलवन्त, रहस्यवादी अस्पष्टताको लेकर प्रीतमसिंह सफीर और विभाजनके बाद भावुक हृदयोंको सहज भावसे उत्प्रेरणा देनेवाली, अमृताप्रीतमके काव्य संग्रह यहाँ उल्लेखनीय हैं।

अध्यात्मिक प्रेम और गीतात्मक भावोंको सरस वाणी देकर अपना लेखन कार्य शुरू करनेवाली अमृताप्रीतमने पंजाबकी नारीका नेतृत्व करते हुए आवाज़ लगायी

> अज्ज आखां वारस शाह नूं किते कबरां विच्चों बोल।
> ते आज्ज क़िताबे इश्क दा कोई अगला वरका फोल।
> इक ऐई सी धी पंजाब दी तू लिखलिख मारे वैण।
> अज्ज लखां धीयां रोंदियां तैणू वारस शाह नू कैहण।

उट्ठ दर्द मंदा दिया दर्दि या, उठ तक्क अपणा पंजाब।
अज्ज वेले लाशां विच्छियां, ते लहू दी भरी चनाव।

और पूंजीवादी समाजकी नींवकी स्पष्ट समीक्षा करते हुए प्रो० मोहनसिंह ने शांतिकी बात चलायी थी :

तुरिया अमन दा काफ़ला, जहान नाल है।
कामगर नाल है, किसान नाल है।।

इस तरह जहाँ मोहनसिंह लोककविके रूपमें उजागर होते हैं वहीं पंजाबकी आवाज़ अमृताप्रीतम 'मैं गीत लिखदी हां' गाकर कहती हैं :

बन जाए आवाज़ मेरी
अज्ज ज़माने दी आवाज़।

× × ×

स्वतन्त्रताके पश्चात् पंजाबी कविताके मूल्यांकन स्तर पर अमृताप्रीतम और मोहनसिंहके पश्चात् तीसरा चर्चित और अलगसे पहचानका कवि स्व० शिवकुमार बटालवी है, जिसने निश्चितही अपने नामका एक युग अर्जित कर लिया है। पंजाबी-काव्यको बटालवीने गीतात्मकता तो प्रदान की ही है, नई उपमाओंका चयन भी इन्होंने उदारतासे किया है। आजतक पीड़ां दा परागा, लाजवंती, आट्टे दियां चिड़ियां, मैनूं विदा करो, दर्द मंदा दियां आहीं, बिरहा तू सुलतान और 'मैं ते मैं' आदि स्व० शिवकुमारकी काव्य कृतियाँ तो अगणित पाठकोंतक पहुँची ही हैं, 'लूणा' नामक काव्य-नाट्य रचनापर साहित्य अकादमी स्व० शिवकुमारको पुरस्कृत कर चुकी है। अभी पिछले साल ही लाहौर बुक शाप, लुध्यानाने स्व० शिवकुमार की श्रेष्ठ गीति रचनाओंका संकलन 'आरती' प्रकाशित किया है।

स्व० नन्दलाल नूरपुरीने भी स्व०शिवकुमारकी तरह ही इस युगमें लोकप्रियता अर्जित की और लोकधुनोंपर उनके बहुतसे गीत पंजाबी चलचित्र जगतमें लगातार गूँजते रहे हैं। मंचके कवियोंमें सर्वश्री विधातासिंह तीर, दर्शनसिंह आवारा, कुन्दन, गुरदेवसिंह मान, गुरदासपुरी, ईशर, भाईया, गोपालदास, सन्तोषसिंह धीर, स्व० कर्तारसिंह बलग्गन, हरीसिंह हसरत आदिका योगदानभी सहजमें भुलाया नहीं जा सकता।

प्रो० मोहनसिंहकी कविताएँ जै मीर जन्दरे, कच्च सच्च, अधवाटे आदि काव्य संकलनोंमें प्रकाशित हुई हैं। 'प्रगतिवादी' विचारधारामें मोहनसिंहका साथ सन्तोखसिंह धीरने भी अपनी इस कालकी कविताओंमें दिया है। धरती मंगदी मींह, बिरहड़े आदि इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। प्यारासिंह सहराई की वन तृण, शकुन्तला आदि, बाबा बलवन्त की सुगन्ध समीर, बन्दरगाह, महानाच; गुरचरन रामपुरकी किरण दा आल्हणा, 'अन्ही गली'; सुरजीत रामपुरीकी ठरी चानणी, इच्छा दा जन्म काव्य पुस्तकें इसी प्रगतिवादी दौरकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं जिन्हें पंजाबी कविताके योगदानमें अलग नहीं रखा जा सकता।

भाईया, निराला भाईया, मतवाला भाईया, रंगीला भाईया श्री ईशरसिंह ईशरकी प्रतिनिधि काव्य पुस्तकें हैं जिनमें हास्य कविताएँ सँजोयी गयी हैं। भाईयाके साथही श्री अनन्तसिंह काबुली, गुरनामसिंह तीर, सूबासिंह, प्यारा सिंह दाता आदि हास्य-व्यंग्यके कवि हैं, जिन्होंने अपनी हास्य कविताओंसे पंजाबी श्रोतावर्गको गुदगुदाया है।

प्रीतमसिंह सफीरको सही अर्थोंमें पंजाबीका रहस्यवादी कवि कहा जाता है और अस्पष्टताके कारण दुरूह कविताके धनी भी इन्हें कहा गया है। लेकिन अपने काव्य संकलनोंद्वारा कत्तक कूंजा, पाय दे सोहिले, रक्त बून्दां, राग रिशमां आदिमें सफीरने बौद्धिक कविता तो पंजाबी पाठकोंको दी ही है, एक नया दृष्टिकोणभी प्रदान किया है।

स्व० ला० धनीराम चात्रिकका एक संकलन 'सूफीखाना' १९५० में प्रकाशित हुआ, जिसमेंसे कुछ कविताएँ आजतक विभिन्न कक्षाओंके पाठ्यक्रमका शृंगार बनी हुई हैं। चात्रिक के बाद पंजाबीमें छायावादसे प्रभावित कविताने जन्म लिया। प्रकृति प्रेमको बहुतसे कवियोंने अपनी-अपनी रचनाओंमें अभिव्यक्ति दी। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करके भी सत्यार्थी, मुसाफिर, अमृता प्रीतम, मोहनसिंह, सफीर आदिने तो पंजाबी कविताको इस दृष्टिकोणसे भरपूर बनाया है। श्रीमती प्रभजोत कौरके कविता-संग्रह खाड़ी, पब्बी आदिमें दार्शनिक दृष्टिकोणका एक और युगशील जीवन दृष्टिगोचर होता है।

यदि पंजाबी कविताका दूसरा दौर १९५६ से १९६४ तक मान लिया जाये तो इस कालमें सर्वश्री इन्दरजीतसिंह तुलसी, डॉ० हरिभजनसिंह, सुखपालवीरसिंह हसरत, जसवीरसिंह आहलूवालिया, भगवन्तसिंह, सोहनसिंह मीशा, जगतार, रविन्द्र रवि, अजायब कमल, तारासिंह कायल, तख्तसिंह, साधुसिंह हमदर्द, दीवानसिंह महिरम, गोपाल सिंह दर्दी, नेकी, जसवन्तसिंह राही तथा जसवन्तसिंह कंवल आदिके काव्य-संग्रह सामने आते हैं जिनमें प्रयोगवादकी प्रक्रिया, प्रतिक्रिया, लघुमानवकी पहचान, शक्ति मार्ग तथा भोगवादकी त्रासदी, बौद्धिक विलासिता, कामचेष्टा, व्यंग्य-विद्रूप, विरह, निराशावादी स्वरूप चित्रित किया गया है।

यहाँ श्रेष्ठ कुल और रा[illegible] नायक मध्यवर्गीय चेतनाका प्रतिनिधित्व करनेवाला हो जाता है। गेयताकी दृष्टिसे, शब्द, रूप और शैलीके क्षेत्रमें इस बीच नये प्रयोग किये गये हैं। बिम्ब और प्रतीकके नये कीर्तिमान डॉ० हरिभजनसिंहने अपने लासां, न धूपे न छावें, सड़क दे सफे उत्ते और अलफ़ दोपहर काव्य-संग्रहोंमें उभारे हैं। चुरस्ता, दस्तक (मीशा), पैंड़ां (सुखबीर), धुंध सुनहिरी (गुलवंत), कचनार (प्रीतम राही) आदि संकलनोंके अतिरिक्त इसी कालमें ग़ज़लकी ओर विशेष ध्यान दिया गया और गुरदेव निर्धन, तख्तसिंह चानण गोविन्दपुरी, बिशनसिंह उपासक, साधुसिंह हमदर्द आदि ग़ज़लगो एक नये धरातलपर सामने आये।

सन् १९६४ के बाद पंजाबी काव्यका तीसरा दौर शुरू हुआ जिसमें पिछले पड़ावके बहुतसे कवि जहाँ सक्रिय रहे, वहीं सुरिन्दर मिल्ल, मोहनजीत, कर्मजीत, वरियाम असर, रणधीरसिंह चन्द, विश्वानाथ तिवाड़ी, स्वर्ण, कंवर चौहान, ठाकुर भारती आदि दर्जनों नये नाम जुड़ गये, जिन्होंने अस्पष्ट स्पर्धा, गम्भीर चिन्तन, मानवका आन्तरिक विकास और जीवनकी विसंगति तथा खोखलेपनको खुलकर उजागर किया।

पंजाबी कवितापर नक्सलपंथी आंदोलनका असर हुआ और जुझारू कविताकी शुरूआत हुई। क्रांतिकारी कविताके इस दौरमें जहाँ कविने समाजमें आदमीके सहज स्वरूपको पहचाना, वहीं पूँजीवादी व्यवस्थाके खिलाफ़ ऐतिहासिक चरित्रोंको उभारकर उनके चेहरोंकी खरोंचें [illegible] पाश, लालसिंह दिल, लोकनाथ, सन्त-सिंह संधु, संतराम उदासीकी तेज तर्रार कविताएँ इस क्रांतिकारी दौरमें मुखरित होकर अपने तेवर प्रकट कर रही हैं। सर्वश्री सतिकुमार, मिन्दर, त्रैलोचन, सुरजीत पातर, परमिन्दरजीत, अनितोज, खुर्शीद, त्रिलोक आनन्द, सतिन्दर सिंह नूर, गुरबचन, हरनाम, गुल चौहान, कंवर सुखदेव आदिकी कविताएँ भी आजके आदमीका दर्द, सही पात्रकी पहचान, संघर्षरतका आक्रोश अभिव्यक्त कर रही हैं।

सम्पूर्ण रूपसे जहाँ पच्चीस वर्षोंमें पंजाबी कविताके चार-पाँच दौर अलग-अलग प्रवृत्तियोंके आधारपर उजागर हुए हैं वहीं अमृता, मोहनसिंह, हरिभजनसिंह, शिवकुमार, हरनाम, जगतार, धीर आदिका समग्र योगदान पंजाबी कविताको अग्रसर पड़ाव प्रदान कर रहा है।

कहानी

कहानीके क्षेत्रमें पंजाबी साहित्यने विगत पच्चीस सालोंमें जो पड़ाव तय किये हैं, वे कम रोचक नहीं हैं। अ-कहानी, सचेतन कहानी, एंटी-स्टोरी (अ-कहानी) आदि बाहरके प्रभावोंको ग्रहण करते हुए भी पंजाबी कहानी ने इस दौरमें अपना निजत्व बनाये रखा है, जिसकी साक्षी कतिपय कथाएँ हैं, जिनमें लोगरंग तो दृष्टिगोचर होता ही है, साथमें आंचलिक धरातलपर समाजशास्त्रीय विवेचनभी विभिन्न पात्रोंके माध्यमसे प्रस्तुत-प्रकट किया गया है।

कथा-क्षेत्रमें करतारसिंह दुग्गल अकेले कथाकार हैं जो पूर्ण रूपसे इस कालपर छाये रहे हैं। मानवीय संवेदनाके टूटते चटखते संबंधोंको जिस सूक्ष्मताके साथ अपनी कहानियों में दुग्गलने कथ्यको समेटा है, स्वयंमें एक उदाहरण है। विषय-वस्तुकी दृष्टिसे प्रायः प्रचलित मत है कि दुग्गल यौन-संबंधोंके लेखक हैं और इनकी कहानियाँ सैक्सके विभिन्न आयामोंको चित्रित करती हैं। सम्भ्रांत आदमीका अकेलापन, संत्रास, कुण्ठा, घुटन, अजनबी अनुभवकी पकड़ और उच्च मध्यम वर्गकी सजीव पेशकारीने दुग्गलकी कलाके एक तरहसे निखारा ही है।

छोटे-छोटे वाक्योंमें स्थितिको दोहराते हुए अपनी बात कह जाना दुग्गलकी निजी विशेषता है। पिछले पच्चीस सालोंमें एक दर्जनसे अधिक कथा-संग्रह दुग्गलने पंजाबी पाठकोंके सम्मुख पेश किये हैं। विषय नगर-बोध का हो या साम्प्रदायिक फसादोंकी चर्चा, राष्ट्रीय नीति प्रचारकी बात हो या योजनाओंकी स्तुति श्रृंखला, मनोवैज्ञानिक विश्लेषणद्वारा दुग्गलने अपने पदचिह्न पंजाबी कथा-क्षेत्रमें

[पृष्ठ १८७ का शेष]

सर्जनकी उपादेयता उसके पढ़नेवालोंमें उसका अधिकाधिक प्रसार एवं प्रचार है। यह तबतक संभव नहीं जबतक पुस्तकालयों, पंचायतों, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों, विद्यालयों और पुस्तकविक्रेताओंद्वारा पुस्तकें सर्वसाधारणको सुलभ न रहें। राज्य सरकारका दायित्व इस बारेमें क्या है—यह शायद कहनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि जनराजमें सभी कार्योंका स्रोत राज्य सरकारें ही होती हैं। किन्तु कश्मीरी साहित्यके निर्माताभी अपनी ज़िम्मेदारीसे छूट नहीं सकते। यद्यपि अपनी सर्वप्रिय वस्तु साहित्य-सृजनका उपहार देकर वे बड़ी सेवा करते हैं; किन्तु परिस्थितियोंको देखते हुए क्या यह उनका दायित्व नहीं कि वे अपनी श्रमसाधनाको फलीभूत होते भी देखें? निस्संदेह यह संघर्षका काम है, लेकिन इसके बिना निस्तार भी तो नहीं। ●

अविस्मरणीय छोड़े हैं। पिपल पत्तियाँ, कुड़ी कहानी करदी गई, डगर, अग्ग खाण वाले, कच्चा दुध, नवां घर, लड़ाई नहीं, करामात, गौरज, पारै मेरे, इक छिट्ट चाण्न दी तथा माझा नहीं मरिया और सोनार बँगला इस कालमें दुग्गलकी उपलब्धियाँ हैं।

स्वतन्त्रता संग्रामके दिनोंसे अबतक पंजाबी कहानी लिखने वालोंमें संतसिंह सेखों, सुजानसिंह, गुरबखशसिंह प्रीतलड़ी, डॉ० गुरचरण सिंह, हीरासिंह दर्द तथा मुसाफिर आदि नाम उल्लेखनीय हैं। दौर प्रगतिका हो या प्रयोगका, इन कथाकारोंने सहजही अपनी बात कहानीके माध्यमसे कही है और इसी सहजताको पंजाबी पाठकने खूब पसन्द भी किया है।

संघर्षकी स्थितिसे जूझते हुए वातावरणको लेकर संतोखसिंह धीर, कुलवन्तसिंह विर्क, अजीत कौर, दलीप कौर टिवाणा, नवतेजसिंह, अमृताप्रीतम आदिने इस कालमें जो कहानियाँ लिखी हैं उनमें शिल्प और शैलीकी नवीनताके साथ-साथ विषयकी नव्यता भी प्रायः दृष्टिगोचर होती है। अजीत कौर और अमृताप्रीतमने सैक्सकी 'बोल्डनेस' को उभारकर चित्रित किया है, वहीं मानवीय अनुभूतियोंका दिग्दर्शन करानेवाली स्थितियोंका सिलसिला कुलवंतसिंह विर्कने दिखाया है।

द्वादशी, दुध दा छप्पड़, नवें लोक (विर्क), सांझी कंध, दुध दा गलास (धीर) चल दा बुटा, ओपरा घर (गुरदयाल सिंह), तिन्न बूहियाँवाला घर, लक टुणू टुणू, पैरिस दा आदमी (सत्यार्थी), साधना, वेदना, किसे दी धी (दलीपकौर टिवाणा) बुतशिकन, महिक दी मौत (अजीत कौर) अपनी-अपनी सीमा, ग़म दा साक (विरदी), मनुख दी पैड़, तिलचौली (मोहन भण्डारी) आदि बीसियों कथा-संग्रह साक्षी हैं उस मोड़के, जहाँसे पंजाबी कहानी करवट लेती है। परम्परावादी होकर भी प्यारके प्रति नया दृष्टिकोण, स्पष्टवादिता आदि गुण सुजानसिंहकी कहानियोंमें मिलते हैं। रिपोर्ताज शैलीकी कहानियाँ सुरजीतसिंह सेठीने लिखीं। कथावस्तुविहीन रचनाएँ भी सेठीने प्रयोगके नामपर दी हैं। यौन भावपर केन्द्रित कथा कहनेवालोंमें प्रेमप्रकाश खन्नवीं, सुखवीर, अमृताप्रीतम्, रबिन्दर रवि, सुरजीतसिंह विरदी आदिके नाम लिये जा सकते हैं।

ग्रामीण परिवेशकी कथावस्तुपर रामस्वरूप अणखी, मोहन भण्डारी, सूबासिंह आदिने भरपूर कहानियाँ लिखी हैं। वस्तुतः पंजाबीमें कहानीका जन्म ही १९४७ के बाद माना जाये तो कोई असंगति न होगी। इन सालोंमें महेन्द्र सिंह जोशी, सरनी, स्वर्गवासी नौरंगसिंह, गुलजारसिंह संधु, बूटासिंह, देवेन्द्र, केवल सूद, त्रिलोक आनन्द, तेजवन्त मान, दीपक मुल्लर, जगजीत बराड आदि ११०० के लगभग कहानीकार हैं जिन्होंने निम्न मध्य वर्गके खोखलेपनका चित्रण अपनी-अपनी कहानियोंमें विविध शैलियोंद्वारा किया है। इस दौरान कहानीका मुख्य तेवर व्यंग्य-प्रधान ही रहा है। बलवन्त गार्गीकी कहानियाँ इसके अच्छे उदाहरण हैं। 'साहित्य—समाजके लिए' का नारा भी पंजाबी कहानीमें खूब चला है। मात्र कहानियोंके नाम गिनाये जायें तो सूची बहुत लंबी हो जाती है और कथा-संकलनोंसे अलग लेखकोंके चेहरे इस दिशामें स्पष्ट पहचाने जा सकते हैं उनमें सर्वश्री गुरवेल पन्न, जगदीश सोढ़ी, मिन्दर, सुरिन्दर सिंह जौहर, संसारसिंह ग़रीब, गुरबचनसिंह मुल्लर, नवतेज पुआधी, गुरदेव रूपाणा, दीप मोहिनी, रघुवीर ढंड, गुलनारी हैं। इनसे भविष्यमें जो सम्भावनाएँ हो सकती हैं, उसका बीज अबतक इनकी कहानियोंद्वारा बोया जा चुका है।

स्व० नानकसिंहकी 'ताशकी आदत' से भलेकर मोहन भण्डारीकी 'मैनूं टैगोर बना दे मां. . . .' तककी इस यात्रामें कतिपय कहानियाँ भाभी मैना, प्रेमी दे तियाणे, खसमां खाणे, रास लीला, करामात, सवेर होण तक, सूली उत्ते लटके पल, हिन्दू पाती मुस्लमान पाती, बागां दा राखा, शताब्दी टिकट, कोई इक सवार, कुत्ता ते आदमी, गुलवानों, मोड़ा भी नज़र अन्दाज नहीं की जा सकती, जिनमें किसी-न-किसी बहाने कोई नयी दिशा सुझायी गयी है। अतः अग्रगामी दृष्टिकोण, स्वस्थ नवीन वस्तु, सामाजिक जागृति, लौकिक रुचि, कलात्मक सादगी, व्यंग्यात्मक शैली, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, संयमी लेकिन तीखी शब्दावली, मनोभावोंका बेरोक, स्पष्ट बयान आजतककी पंजाबी कहानीमें १९४७ के पश्चात् ही स्पष्ट सामने आया है। और यही पंजाबी कहानीकी विशेषता भी है।

उपन्यास

उपन्यासके क्षेत्रमें भी पंजाबी कहानीकी तरह ही पर्याप्त प्रगति इन पच्चीस सालोंमें हुई है। आध्यात्मिक भाव, समाज-सुधार आदि पारस्परिक रुढ़ियोंको छोड़कर उपन्यासकारोंने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया। प्रयोगके क्षेत्रमें उपन्यासके प्लाटपभर इतना ज़ोर नहीं दिया गया जितना कि चरित्र-निर्माणपर। दृष्य-वर्णनको छोड़कर विचारोत्तेजक उपन्यासोंकी रचना की गयी। गम्भीर वातावरणकी ओर विशेष ध्यान दिया गया। नानकसिंहको पंजाबी उपन्यासकी आत्मा माना गया है। जसवन्तसिंह

कंवल, सुरिन्दरसिंह नरूला, नरेन्द्रपाल सिंह, अमृता प्रीतम, करतारसिंह दुग्गल, गुरदयालसिंह, सुरिन्दरसिंह सेठी, सत्यार्थी, सुखबीर, दलीप कौर टिवाणा, मोहन काहलों, निरंजन तसनीम, हरनामदास सहराई, जसवन्तसिंह विर्दी आदि उपन्यासकारोंने पंजाबीका एक अच्छा पाठक वर्ग तैयार किया है और यही पंजाबी उपन्यासकी सबसे बड़ी देन है।

'अग्ग दी खेड' और **खून दे सोहिले** आदि उपन्यासोंमें नानकसिंहने बँटवारेके समय देशमें हुए कत्लेआम तथा नारीवर्गकी संघर्षमय रुचियोंका दिग्दर्शन कराया है। विस्थापित लोगोंके पुनर्वासकी समस्यापर तथा पंजाबकी मध्यवर्ती श्रेणीके सम्मानित नेताओंमें भ्रष्टाचारकी भावना का भंडाफोड़ **मंझधार** और **चित्रकार** नामक उपन्यासोंमें नानकसिंहने किया है। पूंजीवादी वर्गके शोषणके विरुद्ध स्वर इनके **आदमखोर** में स्पष्ट होता है। गांधीवादी विचार-धारासे प्रेरणा लेकर भी नानकसिंहने उपन्यासोंकी रचना की है। संगम, कटी हुई पतंग, पुजारी, छलावा, इक म्यान से तलवारां, पवित्र पापी, गगन दमामा बाजिओ, कोई हरिया बूट राहियो री आदि नानकसिंहके अन्य उल्लेखनीय उपन्यास हैं जिनकी रचना आज़ाद भारतके परिवर्तित दृष्टि-कोणको लेकर उपन्यासकारने की है।

जसवन्तसिंह कंवल और सुरिन्द्रसिंह निरुलाका योग-दान इस क्षेत्रमें अविस्मरणीय है। रूप धारा, जेरा, पूर्ण-मासी, हाणी, सिविल लाईन आदि एक दर्जन उपन्यासोंके रचयिता कंवल ने ग्रामीण जीवनकी दलित जातियोंको उभारते हुए बड़ी सूक्ष्मताके साथ अपने पात्रोंका चरित्र चित्रण किया है और भाषाकी दृष्टिसे आंचलिकताको शक्तिशाली बनाया है। मार्क्सवादी समाजवादी दर्शनसे प्रभावित जसवंतसिंह कंवल नारी जातिपर अत्याचार, मूल्य-परिवर्तन, निरक्षरता, निर्धनता आदि अनेक विषमताओंके चितेरे हैं। आदर्शवाद इनका लक्ष्य रहा है, शायद इसीलिए वे पाठकोंपर गहरा प्रभाव नहीं डाल पाते। घटना-स्थलोंमें मोगा-फिरोजपुरके आसपासका क्षेत्रही इनकी लेखनीमें बार-बार आया है।

लोक दुश्मन, दिल दरिया, सिल अलूणी आदि ८-१० उपन्यासोंके कारण नरूलाका स्थान विशिष्ट है। 'प्यो-पुत्तर' में अमृतसरका सजीव चित्रण देकर स्वतंत्रतासे पूर्वही नरूला ने अपना एक विशेष पाठक वर्ग तैयार कर लिया था, मगर बादके उनके समाजवादी दृष्टिकोणने अधिक सफल-सार्थक ढंगसे सामयिक समस्याओंको उजागर करके उनका समा-धान भी यथाशक्ति सुझाया है।

नरेन्द्रपालसिंहको ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है अतः इन्हें पंजाबीका वृन्दावनलाल वर्मा कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। सामाजिक, मनोवैज्ञानिक उपन्यासोंकी रचना भी नरेन्द्रपालसिंहने खूब की है जिनमें इनके अपने भ्रमणके अनुभवही मुख्य रूपसे उभरकर सामने आते हैं। **शक्ति** और **त्रियाजाल** हमारे समाजमें नारी जातिकी दुर्गतिके परिचायक हैं। **पुन्निया कि मसिया, टापू, चानण खड़ा किनारे** हमारे देशकी वर्तमान स्थितिका वर्णन करते हैं जिनमें सामाजिक चेतनाके साथ-साथ अन्ध-विश्वास, पाखण्ड आदिको चेतना-प्रवाह शैलीमें अभिव्यक्त किया गया है। **ऐतु मार्ग चलणा, इक सरकार बाझों** और **खानिओ तिखी वालो निक्की** इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। वैसे पंजाबीमें हरनामदास सहराई, साधुसिंह हमदर्द, सीतल आदिने भी ऐतिहासिक उपन्यासोंकी रचना की है।

करतारसिंह दुग्गलने भी कहानियों, नाटकोंके साथ ५-६ उपन्यास भी लिखे हैं जिनमेंसे **दिल दरिया**, इक दिल विकाऊ है, और मेरा दिल मोड़ दे काफी चर्चित और सफल कृतियाँ हैं। पोठोहारी बोलीके माध्यमसे पात्रोंका चरित्र-चित्रण आकर्षक बन पड़ा है। उपन्यासोंमें दुग्गलका वर्णन स्पष्ट और खुला, फ्रायडसे प्रभावित है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए स्थानीय भाषामें कई जगह तो दुग्गलने खूब रंग बाँधा है। पश्चिमी पंजाबके जीवनको खास तौर पर दुग्गलने ही उजागर किया है। कवि हृदयकी भावुकता और काव्यात्मकताभी दुग्गलके उपन्यासोंकी एक खूबी है। मर्मस्पर्शी कथाओंके कारण पाठकवर्गमें बड़ी सुरुचिके साथ दुग्गलके उपन्यासोंको पढ़ा-पढ़ाया जाता है।

पंजाबी उपन्यासोंमें प्रयोगकी दृष्टिसे सुरजीत सिंह सेठीका योगदान सराहनीय है। इक खाली प्याला, कलभी सूरज नहीं चढ़ेगा और आवरा कदावरा आदि इनकी बहुचर्चित कृतियाँ हैं। पात्रोंका आत्मसंघर्ष, अपने आसपासका वातावरण और जीवनके प्रति सूक्ष्म तथा स्वस्थ दृष्टिकोण सेठीकी उपन्यास-कलाकी खूबियाँ हैं। इसी तरह मोहन काहलों, गुरदयालसिंह, दलीप कौर टिवाणाके उपन्यासोंमें भी भाषा-शैलीकी ताजगी और शिल्पकी नव्यता पायी जाती है। 'मढ़ी दा दीवा' लिखकर गुरदयालसिंहने पंजाबी उपन्यासको एक झटका दिया है। ६-७ उपन्यास लिखकर दलीप कौर टिवाणाने इसी साल गैर-पंजाबी पाठकों कोभी अपनी और आकर्षित किया है, चूँकि 'एहो हमारा जीवणा' पर साहित्य अकादमीने इस बार इन्हें सम्मानित

किया है । तीली दा निशान, विद इन विद आऊट तथा सूरजते समुन्द्र इनके आजकल चर्चित उपन्यास हैं जिनमें पंजाबके मालवा क्षेत्रकी भाषा, ग्रामीण महिलाओंकी चुस्त फिकरेबन्दी और रोचक संवाद खास तौरपर उभरकर सामने आते हैं । **मछली इक दरिया दी** और **बेड़ी ते बरेता** के बाद मोहन काहलोंका एक तीसरा उपन्यास इन्हीं दिनों छपकर आया है, जिसने पंजाबी आलोचकों तथा पाठकोंको एकसाथ अपनी ओर खींचा है । गुज्जर जातिके विशेष चरित्र-चित्रणके आधारपर मोहन काहलोंको आंचलिक कथाकार माना जाता है और इसीलिए कभी-कभी वे पंजाबीके रेणु लगने लगते हैं । प्राकृतिक मुक्त जीवन और स्थानीय रंगको काहलोंने निडरताके साथ बाँधा-पिरोया है । सत्यार्थीने **घोड़ा बादशाह, सूई बाजार** आदिमें नये प्रयोग किये हैं, हालाँकि सूई बाजारकी पाठकोंको बेकरारीसे इन्तजार है । बिखरे बिखरे तथा अन्दरले दरवाजे (जसवन्तसिंह विरदी) परदा ते रोशनी (अणखी) घुप्प दरिया दी दोस्ती (जमजीत बराड़) कुझ पत्तरे (बरजिन्दर हमदर्द) पाणी ते पुल, सड़कां ते कमरे (सुखवीर) जंगी कैदी (केसरसिंह) आदिभी कुछ और चर्चित उपन्यास हैं जिनपर खुलकर बात हो सकती है और जिन्होंने पिछले पच्चीस सालोंमें पंजाबी उपन्यासके इतिहासमें एक नया अध्याय जोड़ा है । पंजाबी उपन्यासोंमें नागरिक जीवन, ग्रामीण संस्कृति, मध्यश्रेणीके तथाकथित दूषित वातावरणका चित्रण खूब किया गया है । नवलेखनके क्षेत्रमें 'घुप्प दरिया दी दोस्ती' पंजाबीका पहला श्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें आधुनिकताकी दृष्टिसे जगजीत बराड़को बधाई दी जा सकती है । वैसे अमृताप्रीतम, राजेन्द्रसिंह वेदी, सुरजीत हांस, देविन्दर, अजीत कौर, मंजीत राणा, बलवीर मोनी, हरीसिंह दिलवर, त्रिलोकसिंह, महेन्द्रसिंह सरना, बूटासिंह शाद, ओमप्रकाश गासो आदिने भी पंजाबी उपन्यासमें श्रीवृद्धि की है ।

नाटक

नाटकके क्षेत्रमें सन् सैंतालीसके बाद लाहौरका विस्थापित रंगमंच दिल्ली तथा शिमलामें पुर्नस्थापित हो सका । ईश्वरचन्द्र नन्दा, बलवन्त गार्गी, डॉ॰ हरचरणसिंह, संत सिंह सेखों, कपूरसिंह घुम्मण, परितोश गार्गी, शीला भाटिया, प्रेम जालन्धरी, प्रकाश साथी, देविन्दर आदि दिल्लीमें समय-समयपर अपने नाटक प्रस्तुत कर चुके हैं । सन् १९४९ में गुरदयालसिंह खोसलाने पंजाबी रंगमंचकी स्थापना करके दिल्लीमें प्रथम सम्मेलन किया । इसी समय थियेटर मंचपर पहली बार पंजाबी नाटक अभिनीत किये गये । इपटा (इंडियन पीपल्स थेटरीकल एसोशियन) की देन बलवन्त गार्गी और शीला भाटिया हैं, जिन्होंने पंजाबमें नये नाट्य जीवनका संचार किया ।

खोसलाके पंजाबी रंगमंचने बूट्टे बैठी धी, मरमिटण वाले, बेघरे, जुत्तियां दा जोड़ा, परलों तों पहिलां, सतारवां पति, मन दियां मन विच आदि डेढ़ दो दर्जन नाटकोंका आयोजन दिल्ली तथा पंजाबके अन्य नगरोंमें किया । ईश्वरचन्द्र नन्दाको पंजाबी नाटकका जन्मदाता कहा जाता है । स्वातन्त्र्योतर कालमें झलकारे और लिशकारे नामक उनके दो एकांकी संग्रह, बावे घसीटे दी नाटक मण्डली (१९५४) प्रकाशित हुए । गार्गीका नाटक लोहा कुट्ट, केसरो, राई दा पहाड़, कणक दी वल्ली, दसवंध आदि पंजाबमें विभिन्न स्थानोंपर खेले जा चुके हैं । हरचरणसिंहके नाटकों में दोष, अनजोड़, तेरा घर सो मेरा घर, रत्ता सालू, पुन्निया दा चन्न आदि प्रसिद्ध हैं । शीला भाटियाने वादी **दी** पुकार, हीर रांझा, रुखे खेत आदिका मंचन किया । इस तरह पंजाबी ओपेराकी छाप भारत भरमें बैठ गयी और सोहणी महिवाल तथा सस्सी पन्नू, मिर्जा साहिबां आदिभी मंचपर प्रस्तुत किये गये ।

विषय और विचारकी दृष्टिसे संतसिंह सेखोंने १९४७ के बाद भूमिदान, बेड़ा बन्धन सकियो, मोयां सार न काई, दमयन्ती, स्यालां दी नढ़ी, नारकी और मित्तर प्यारा नाटकों की रचना की है । गुरदयालसिंह फुल्लने भी स्वतन्त्रताके पश्चात् सर्वाधिक नाटक लिखे हैं । 'जिनु सचु पल्ले होए' इनका विख्यात नाटक है जिसे अमृतसर कला केन्दरने अनेक बार पेश किया है—विभिन्न नगरों तथा गाँवोंमें जा-जाकर ।

घुम्मणके जीऊंदी लाश, अतीत दे परछावें, पुतली घर; सेठीके कादर पार, किंग मिर्जा ते सपेरा, मर्द मर्द नहीं, तीवीं तीवीं नहीं; परितोश गार्गीके परछावें, छलेडा, वगदे पाणी आदि नाटक दर्शकों (प्रेक्षकों) का मन जीत चुके हैं । पटियालामें हरपाल टिवाणा, घुम्मण तथा सेठी, अमृतसरमें गुरशरणसिंह, चण्डीगढ़में बलवन्त गार्गी, दमन, हरसरनसिंह आदि नाटककार समय-समयपर अपने या मित्रोंके नाटक पेश करते ही रहते हैं । गुरु नानकदेवकी जन्म शताब्दीके उपलक्ष्यमें 'गगनमें थालु' गार्गीका चर्चित नाटक रहा है जिसे रंगीन रोशनी और ध्वनि प्रभावद्वारा 'जन चाणन होआ' के नामसे भारत सरकारके कर्नल गुप्तेने अपने निर्देशनमें अमृतसरमें पेश किया ।

धूणी दी अग्ग तथा सुल्तान रज़िया—गार्गीके दो अन्य आजकल चर्चित नाटक हैं, जिनमें भारतीय रंगमंचकी तुलनामें मंचन सम्पन्न हुआ है। उदास लोक, जिगरा, अपराधी कौन आदि हरसरनसिंहके नाटक भी पिछले दस सालोंमें लोकप्रिय रहे हैं। मकड़ी दा जाल, कधो रेत दीयां, अंधकार आदि रोशनलाल आहूजाके नाटक हैं। पंजाबी नाटकके विकासमें आकाशवाणीकाभी अच्छाखासा योगदान रहा है, जिसके माध्यमसे बहुतसे नये नाटककार अपनी कृतियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। एकांकीके क्षेत्रमें भी लगभग सभी नाटककारोंने प्रयत्न किये हैं और पाठ्यक्रमकी विधा भर रह जानेके कारण एकांकी आजकल कमही रचे जा रहे हैं।

गुरचरणसिंह जसूजा, अमरीकसिंह, सुरेश सेठ, कुछ अन्य पंजाबी नाटककार हैं जिनसे भविष्यमें संभावनाएँ हैं।

निबन्ध-आलोचना

पंजाबीमें निबन्ध लेखन कार्य इन पच्चीस सालोंमें सीमित रूपमें ही हो पाया है। प्रो० पूर्णसिंह, भा० वीरसिंह, प्रिं०तेजासिंह, गुरबखससिंहकी परम्परामें बहुत कम आगे बढ़ा है। प्रायः पाठ्यक्रमके अनुकूल विभिन्न पत्रिकाओंके आग्रहपर, सामयिक चिन्तन या विषय विशेषपर ही पंजाबी में लेख लिखे जाते हैं। हाँ, इस कालमें व्यंग्य लेखोंकी एक स्वस्थ कड़ी जरूर अग्रसर हुई है। लालसिंह कमला अकाली, हरिन्दरसिंह रूप, ईश्वर चित्रकार, स०कपूरसिंह, प्रिं०तालिब, बाबा बलवन्त (स्व०), प्रो० सुजानसिंह, गुरबखससिंह प्रीतलड़ीके पदचिह्नोंपर चलते हुए निबन्धके क्षेत्रमें स० सूबासिंह, गुरनामसिंह तीर, अनन्तसिंह काबुली, भगवन्त सिंह, प्यारासिंह दाता, कुलवीरसिंह कांग, बलवन्त गार्गी, करनजीत आदिने विभिन्न विषयों और व्यक्तियोंपर रेखा-चित्र, लेख आदि लिखे हैं।

ललित निबन्ध लिखकर कुलवीरसिंह कांगने सागरमें गागर भरनेका प्रयत्न किया है। गार्गी और कर्णजीतके व्यक्ति-चित्र अलगसे पंजाबीमें पहचाने जा सकते हैं। सर्वश्री जीतसिंह सीतल, सत्यार्थी, विर्दी, अजीतसिंह, चरण अशोक आदिने भी रेखाचित्र लिखकर पंजाबी गद्यमें योगदान किया है। निम्म दे पत्ते, सुरमें वाली अक्ख, कलम दा मेत, इसी तरहके संकलन हैं। पत्थर लीकां, साहित्य चिन्तन, बदलां दे रंग कुलवीरसिंह कांगकी कृतियाँ हैं। **जिगर पारे** पंजाबीकी एक अलग विधा है जिसके अन्तर्गत गगन पाकिस्तानी, लेखराज परवाना आदिने प्रयोग किये हैं। 'समकाली पंजाबी-साहित्य' पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियालासे जसवीर सिंह आहलूवालियाके सम्पादनमें प्रकाशित हुआ था। 'पाकिस्तानकी अजोकी पंजाबी कहानी' भाषा विभाग पंजाबने प्रकाशित की है। कथा-पंजाबका प्रकाशन नेशनल बुक ट्रस्ट नयी दिल्लीकी ओरसे हुआ है। इसी तरह कुछ अनूदित साहित्य पंजाबीमें भाषा विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास आदिने भी प्रकाशित किया है।

आलोचनाके क्षेत्रमें सर्वश्री सन्तसिंह सेखों, कसेल, डॉ० गुरचरणसिंह, डॉ० अतरसिंह, डॉ० प्रेमप्रकाशसिंह, प्रो० किशनसिंह, डॉ० अमरजीत सिंह, देवेन्द्र विद्यार्थी, कांग, विनोद, करनजीत, छावड़ा, प्रीतमसिंह, हसरत, आहलूवालिया, कोहली, डॉ० गोपालसिंह, अटारी आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

एम०ए० पंजाबी विषयमें शुरू होनेपर तथा शोधकार्यका सूत्रपात हो जानेके कारण पंजाबीमें इस ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। सौन्दर्यवादी तथा प्रगतिवादी आलोचनाकी धारा पंजाबीमें एक दशकतक जारी रही। मार्क्ससे प्रभावित सेखोंने भी समाजवादी दृष्टिकोणको अपनाकर आर्थिक मूल्योंपर पंजाबी साहित्यको परखा-खींचा है। तोभी पंजाबीमें मौलिक चिन्तनका अभाव ही है। क्रोचे, टी०एस० इलियटसे प्रभावित होकर कुछ तथा-कथित आलोचकोंने अनुकरण भी किया है। निज प्रशंसा-वादी इतिहासकार और प्रयोगशील लहरके जन्मदाता लोगोंमें नवलेखन तथा आधुनिकताकी पकड़ बहुत सीमित रही है।

गुलवन्त, कालासिंह बेदी, हमदर्द, शान, सूरी, तिवाड़ी, डॉ० सिंगल, दीवानसिंह, परमिन्दरसिंह, मा० जोधसिंह, गुरदेवसिंह, पदम, अशोक, डॉ० प्यारसिंह आदिके बिना आलोचकोंकी सूची अधूरी रहेगी।

पत्रकारिताके क्षेत्रमें एस० स्वर्णने 'चेतना' प्रकाशित करके एक नये धरातलकी स्थापना की थी। पंज दरिया, सिरजणा, सूरजमुखी (पहली), इकत्ती फर्वरी, प्रतीक आदि पत्रिकाएँ अब बन्द हो चुकी हैं। आरसी, नागमणि, लकीर, प्रीतलड़ी, मुहान्दरा, नीलगिरी, जागृति, जनसाहित्त, पंजाबी दुनियां, शीराज़ा, भारती ते विदेशी साहित्य, विज्ञान दर्पण, सामाजिक विज्ञान दर्पण, देश प्रदेश (यू०के०) आदि अनेक पत्रिकाएँ मासिक तथा त्रैमासिक पंजाबीमें अभीभी छप रही हैं जिनके लिए नवयुग प्रेस, अमृताप्रीतम, प्रीतलड़ी परिवार, भाषा विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब राज्य विश्वविद्यालय पाठ्य-पुस्तक बोर्ड चण्डीगढ़, साहित्य अकादमी जम्मू तथा पंजाबमें विभिन्न नगरोंकी साहित्य सभाएँ बधाईके पात्र हैं।

पंजाबी-साहित्यके भविष्यके बारेमें अब यह निश्चित ही है कि भारतीय भाषाओंके साहित्यके समतुल्य और विदेशी प्रभावके समानान्तर अवश्यही बहुत-सी सम्भावनाएँ बँध रही है। पिछले अढ़ाई दशकमें जो प्रगति पंजाबी साहित्यकी विविध विधाओंमें हुई है, उसका जायज़ा लेते हुए उपर्युक्त सर्वेक्षण भर ही प्रस्तुत किया गया है।

सुबोध पॉकेट बुक्स

की नई पुस्तकें
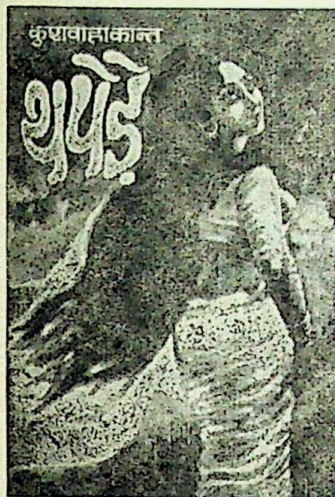
थपेड़े
कुशवाहाकान्त का एक
अविस्मरणीय उपन्यास
मूल्य : दो रुपये
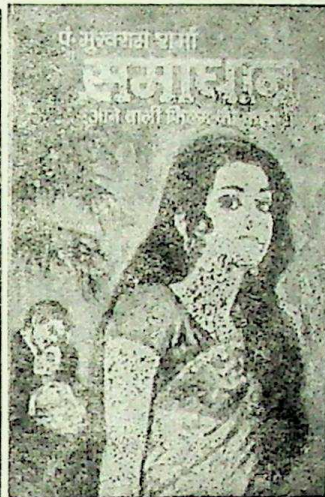
समाधान
पं० मुखराम शर्मा का
नया उपन्यास जिस पर
फिलम भी बनेगी, मू. २/-

बेबसी
दत्तभारती का एक
अजीब बेबसी लिए
नया उपन्यास। मू. २/-

प्रेमरंग
अमृता पांचाली मोडलिंग
गर्ल की रोमांचक कहानी
मूल्य : दो रुपये
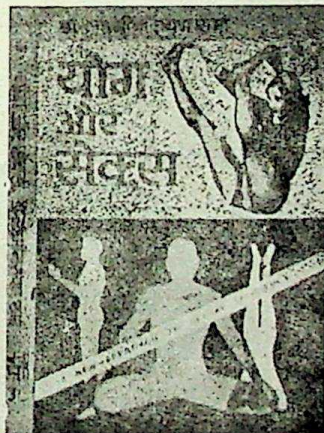
योग और सेक्स
डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा
की अपने विषय की पहली पुस्तक
मूल्य : दो रुपए

हेमा मालिनी
बच्चन श्रीवास्तव द्वारा प्रस्तुत
लाखों दिलों की धड़कन स्वप्न-सुन्दरी की
लुभावनी कहानी। मूल्य : दो रुपए

* दस रुपये की पुस्तकें मँगवाने पर डाक खर्च माफ *

सुबोध पॉकेट बुक्स, २ दरियागंज, दिल्ली–६

अनुवादके सिद्धान्त, कविताओं तथा कहानियों आदिके अनुवाद, भाषा-विज्ञान तथा भाषा-शिक्षण आदिकी त्रैमासिक पत्रिका

अनुवाद

सम्पादक :

डॉ० भोलानाथ तिवारी

श्री महेन्द्र चतुर्वेदी

सम्पर्क :

ई-४/२३, मॉडल टाउन,

दिल्ली-९

हमें खेद है

कि उत्तरप्रदेशके बिजली संकट और आगरा के प्रेसोंकी हड़तालके कारण 'प्रकर' के विशेषांकके प्रकाशन में असाधारण विलम्ब हो गया है।

आशा है हमारी विवशताको ध्यानमें रखते हुए कृपालु पाठक इस विलम्बके लिए क्षमा करेंगे।

—व्यवस्थापक

'प्रकर'

नवभारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान (सी०)

ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

संस्थाके प्रकाशन

आलोचना

छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रो. नित्यानन्द पटेल	७.५०
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—डॉ. महेन्द्र भटनागर	८.००
रूसी भाषा और संस्कृतमें आन्तरिक समानता—श्रीमती इन्दुलेखा	१.२५
अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा	१०.००

उपन्यास

अपराधी वैज्ञानिक—यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	८.००
ये पहाड़ी लोग— ,, ,,	४.५०
सुधा—टी. एन. गोपीनाथ नायर	३.५०
शकुन्तला—विराज	४.५०
प्रवासी —श्यामाचरण मिश्र	५.००

नाटक

देवयानी—डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नायर	३.५०
श्रेष्ठ एकांकी—डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद	३.५०

जीवन और दर्शन

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन – वैद्य नारायणदत्त	२.५०
महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन— ,,	५.००
गुरु नानक : जीवन और दर्शन— ,,	५.५०
श्री अरविन्द : जीवन और दर्शन—रवीन्द्र	३.००

अन्य प्रकाशन

रुपयेका अवमूल्यन और उसका प्रभाव	८.००
समाजवादी बर्मा –श्यामाचरण मिश्र	४.००
विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी	१.२५
कच्छ –श्रीमती पद्मा अग्रवाल	२.२५
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहनलाल माथुर	२.५०
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'	२.२५

प्रचारित साहित्य

शोध प्रबन्ध

संस्कृत कवितामें रोमाण्टिक प्रवृत्तियाँ—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा	२०.००
सन्त काव्यका दार्शनिक विश्लेषण—डॉ. मनमोहन सहगल	१५.००
पं. अम्बिकादत्त व्यास : एक अध्ययन—डॉ. कृष्णकुमार	२५.००

आलोचना

आधुनिकता और राष्ट्रीयता—डॉ. राजमल बोरा	६.५०
सूरके कृष्ण : एक अनुशीलन—शशि तिवारी	१०.००
कामायनी : इतिहास और रूपक—सुशीला भारती	१०.००
नयी कविताके सात अध्याय—डॉ. देवेश ठाकुर	१२.००
जनकवि दिनकर—डॉ. सत्यकाम वर्मा	५.००
महाकवि प्रसाद— ,,	४.००
महाकवि पन्त— ,,	४.००

भाषा-विज्ञान

भाषा तत्व और वाक्यपदीय—डॉ. सत्यकाम वर्मा	२०.००
भारतीय भाषा विज्ञानकी भूमिका—डॉ. भोलानाथ तिवारी	३२.००

उपन्यास

आचार्य चाणक्य—डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार	६.००
राजुली मालूसाही—यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	८.००

कहानी-संग्रह

प्राचीन कथाएँ—डॉ. कृष्णकुमार	५.००
अप्सराका सम्मोहन तथा अन्य कहानियाँ—यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	५.००
खोये हुए लोग—ओम्प्रकाश निर्मल	५.००

कविता

फार्टी पोइम्स ऑफ डॉ० महेन्द्र भटनागर	१०.००

नाटक

श्री चन्द्रावली नाटिका (भारतेन्दु)—सं. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा	३.००
मन्दिरकी जोत—चिरंजीत	३.५०
पांच प्रहसन— ,,	४.००
घेराव— ,,	४.००

अन्य प्रकाशन

अजन्ताकी गुफाएँ—धीरेन्द्रनाथ वर्मा	१२.००
बर्माका इतिहास—श्यामाचरण मिश्र	९.००
हिमगिरि विहार—स्वामी तपोवनम्‌जी	१०.००

बाल-किशोर साहित्य

होलीका हौवा—हरिकृष्ण तैलंग	१.००
जूता चर्चा ,,	१.००
चुन्नू-मुन्नू-पुष्पा (बच्चोंके पाँच नाटक)—चिरंजीत	३.५०

नवभारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान (सी०)

ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

गेहूँ खरीद की सरकारी योजना

किसान और उपभोक्ता की अपनी योजना है

इसकी सफलता में दोनों का लाभ है

किसान गेहूँ कहाँ बेचे ?

राज्य सरकार सहकारी संघ और भारतीय खाद्य निगम द्वारा खोले गये क्रय केन्द्र ही केवल गेहूँ की थोक खरीद करेंगे। खरीदारी साल भर होगी। किसान थोक में गेहूँ इन्हीं क्रय-केन्द्रोंपर बेचें।

ये एजेंसियाँ किसानों से हर किस्म का गेहूँ प्रतिदिन खरीदेंगी। किसान चाहे तो बिनावट का अन्न अपने साथ वापस ले जा सकता है लेकिन यदि वह उसको बेचना चाहेगा तो सरकार उसकी खरीद का भी प्रबंध मुर्गियों और पशुओं के उपयोग के लिये कर लेगी।

किसान को अपने गाँव से मंडियों तक गेहूँ बेचने के लिए लाने पर कोई रोक-टोक नहीं है। लेकिन गेहूँ प्रदेश के बाहर कोई भी नहीं ले जा सकता है।

किसान को क्या मूल्य मिलेगा ?

औसत किस्म के लाल देशी गेहूँ का ७४ रुपया, सफेद मेक्सिकन और समान किस्मों के गेहूँ का ७६ रुपया तथा उत्तम फार्म गेहूँ का ८२ रुपये प्रति कुन्तल मूल्य मिलेगा।

इसके अतिरिक्त सरकार किसान को दो रुपये प्रति कुन्तल गेहूँ ढुलाई का भाड़ा और देगी। उनसे गाड़ी से गेहूँ उतराई, छनाई और मंडी शुल्क नहीं लिया जायगा। दी गई चुंगी टोल टैक्स या घाट उतराई की रसीद पेश करने पर उसका भी भुगतान सरकार करेगी।

किसान को पूरी रकम आसानी से भुगतान हो जाने वाले बियर चेकों द्वारा दी जाएगी। उसकी रकम से किसी प्रकार की कटौती नहीं की जाएगी।

उपभोक्ता गेहूँ कहाँ से प्राप्त करें ?

राशन की दूकान से निर्धारित मात्रा में।
खुले बाजार में लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता से ४० किलोतक एक समय में।
रजिस्टर्ड परचूनी से २० किलो तक एक समय में।
वह स्वयं अपने उपभोग के लिए किसान से सीधा एक कुन्तल गेहूँ खरीद सकता है।
वह अपने गाँव से अपने खेत की उपज का एक कुन्तल गेहूँ एक समय में अपने शहर के निवास स्थान पर भी ला सकता है।

कौन कितना गेहूँ रख सकता है और कितना बेच सकता है ?

किसान जितनी भी मात्रा में चाहे गेहूँ बेचने के लिए क्रय केन्द्र पर ला सकता है। लेकिन वह १० कुन्तल तक गेहूँ लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता को और दो कुन्तल तक रजिस्टर्ड परचूनी को और एक कुन्तल तक उपभोक्ता को बेच सकता है।

लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता १० कुन्तल तक एक वक्त में खरीद सकता है और ५० कुन्तल तक स्टाक कर सकता है।

रजिस्टर्ड परचूनी दो कुन्तल तक एक वक्त में खरीद सकता है और ५ कुन्तल तक स्टाक कर सकता है।

योजना से क्या लाभ होगा ?

किसान को वर्ष भर गेहूँ का उचित मूल्य मिलेगा।
उपभोक्ता को वर्ष भर गेहूँ उचित कीमत पर मिलेगा।
शिक्षित बेरोजगारों और मजदूरों को अधिक रोजगार मिलेगा।
मूल्यों में स्थिरता आने से समाज के समस्त वर्ग लाभान्वित होंगे।

सूचना विभाग उ० प्रदेश, लखनऊ

'प्रकर' का आगामी महत्त्वपूर्ण विशेषांक

१९७२ के उल्लेखनीय प्रकाशन

इसमें सभी भारतीय भाषाओंके १९७२ के महत्त्वपूर्ण, विशिष्ट और उल्लेखनीय प्रकाशनोंपर समीक्षात्मक लेख होंगे।

हिन्दीकी सभी प्रमुख विधाओंके १९७२ के विशिष्ट प्रकाशनोंपर अलग-अलग लेख होंगे।

सभी लेखक अपने क्षेत्रके अधिकारी विद्वान् हैं।

'प्रकर' के स्थायी ग्राहकोंको यह विशेषांक ९.०० रु० के वार्षिक शुल्कमें प्राप्त होगा और नये बननेवाले स्थायी ग्राहकोंको भी यह सुविधा प्राप्त होगी। इसलिए ९.०० रु० वार्षिक शुल्क भेजकर तुरन्त ग्राहक बन सकते हैं।

पृष्ठ संख्या : २०० मूल्य : छः रुपये

पूर्व प्रकाशित विशेषांक

१९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन	१.०० रु०
१९७० ,, ,,	४.०० रु०
१९७१ ,, ,,	६.०० रु०
अहिन्दी भाषियोंका हिन्दी साहित्य	४.०० रु०

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली ११०००७

'नवभारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान (सी०)' के लिए विद्यासागर विद्यालंकारद्वारा सम्पादित, प्रताप मुद्रणालय, दिल्ली-७ के लिए दी एज्युकेशनल प्रेस, सिटी स्टेशन मार्ग, आगरा—३ में मुद्रित, ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित।